

विषय-सूची

[भूमिका](#)

[अध्याय एक](#)

महाप्रभु से श्रील रूप गोस्वामी की द्वितीय भेट

[अध्याय दो](#)

छोटे हरिदास को दण्ड

[अध्याय तीन](#)

श्रील हरिदास ठाकुर की महिमा

[आध्याय चार](#)

जगन्नाथ पुरी में महाप्रभु से सनातन गोस्वामी की भेंट

[अध्याय पाँच](#)

प्रद्युम्न मिश्र का रामानन्द राय से उपदेश लेना

[अध्याय छह](#)

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रघुनाथ दास गोस्वामी की भेट

[अध्याय सात](#)

श्री चैतन्य महाप्रभु एवं वल्लभ भट्ट की भेंट

[अध्याय आठ](#)

रामचन्द्र पुरी द्वारा महाप्रभु की आलोचना

भूमिका

श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा उपदेशों का मुख्य ग्रन्थ है। श्री चैतन्य महाप्रभु उस महान् सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलन के प्रवर्तक हैं, जो भारत में 500 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जिसने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से दूसरी धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधाराओं को न केवल भारत में अपितु समग्र विश्व में प्रभावित किया है। उन श्रीकृष्ण चैतन्य के प्रभाव को प्रसारित करने में कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भतिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के प्रयासों का मुख्य योगदान रहा है, जो इस ग्रन्थ के अनुवादक तथा भाष्यकार होने के साथ-साथ अन्तराष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) के संस्थापक-आचार्य भी हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु को अतीव ऐतिहासिक महत्व का पुरुष माना जाता है। किन्तु ऐतिहासिक विश्लेषण की हमारी पारम्परिक विधि, जो व्यक्ति को उनके समय की उपज के रूप में देखती है, यहाँ पर विफल हो जाती है, क्योंकि श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसे पुरुष हैं, जो ऐतिहासिक व्यवस्था के सीमित क्षेत्र से परे हैं।

जिस समय पश्चिम में मानव भौतिक ब्रह्माण्ड की संरचना का अध्ययन करने तथा नवीन सागरों और महाद्वीपों की खोज में समुद्री यात्राएँ करने में अपनी अनुसन्धानात्मक शक्ति लगा रहा था, तभी पूर्व में श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसी क्रान्ति का प्रवर्तन एवं कुशल नेतृत्व कर रहे थे, जो मनुष्य के आध्यात्मिक स्वभाव के सर्वोच्च विज्ञान सम्मत ज्ञान की दिशा में निर्दिष्ट था।

श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवनचरित के मुख्य ऐतिहासिक स्रोत मुरारि गुप्त तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा लिखे गये कड़चा (दैनन्दिनियाँ) हैं। मुरारि गुप्त एक वैद्य तथा श्रीकृष्ण चैतन्य के अन्तरंग पार्षद थे, जिन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के संन्यास ग्रहण करने तक के प्रारम्भिक चौबीस वर्षों के विषय में विस्तृत टिप्पणियाँ लिखीं। श्री चैतन्य महाप्रभु के अड़तालीस वर्षों के जीवन की शेष घटनाएँ श्री चैतन्य महाप्रभु के अन्य अन्तरंग पार्षद स्वरूप दामोदर गोस्वामी के कड़चा में अंकित हैं।

श्रीचैतन्य चरितामृत के तीन खण्ड हैं, जिन्हें लीला कहा जाता है। ये हैं आदि लीला, मध्य लीला तथा अन्त्य लीला। मुरारि गुप्त का कड़चा ही आदि लीला का आधार है और स्वरूप दामोदर का कड़चा मध्य तथा अन्त्य लीलाओं के लिए विस्तृत विवरण प्रदान करता है।

आदिलीला के सत्रह अध्यायों में से प्रथम बारह अध्याय सम्पूर्ण ग्रन्थ की प्रस्तावना स्वरूप हैं। वैदिक शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा कृष्णदास कविराज यह स्थापित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु कलियुग (जो पाँच हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और जो भौतिकता, दम्भ तथा कलह का प्रतीक है) के लिए कृष्ण के अवतार हैं। लेखक यह भी प्रमाणित करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् कृष्ण से अभिन्न हैं और अधम युग के पतितात्माओं को महामन्त्र के संकीर्तन का प्रचार करके शुद्ध भगवत्प्रेम उदारतापूर्ण वितरित करने के लिए अवतरित होते हैं। यह संकीर्तन महामन्त्र का बृहद् सार्वजनिक कीर्तन है। इसके उपरान्त कृष्णदास कविराज ने इस ग्रन्थ के बारहवें अध्याय में इस जगत् में श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का गुह्य प्रयोजन, उनके सह-अवतारों तथा प्रमुख भक्तों का वर्णन किया है और उनकी शिक्षाओं को सार रूप में प्रस्तुत की हैं। आदि लीला के शेष अध्यायों (13 से 17 तक) में लेखक ने चैतन्य महाप्रभु के दिव्य जन्म तथा संन्यास ग्रहण करने तक के जीवन का संक्षिप्त विवरण दिया है। इसमें उनके बचपन के चमत्कारों, अध्ययन, विवाह तथा प्रारम्भिक दार्शनिक शास्त्रार्थों के साथ-साथ उनके व्यापक संकीर्तन-आन्दोलन के संगठन तथा मुस्लिम सरकार द्वारा दमन के विरुद्ध उनके कानून अवज्ञा आन्दोलन का वर्णन है।

तीनों लीलाओं में सबसे लम्बी मध्यलीला की विषय वस्तु श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा एक संन्यासी, शिक्षक, दार्शनिक तथा गुरु एवं योगी के रूप में सारे भारत की विस्तृत एवं घटनापूर्ण यात्राओं का विशद वर्णन है। छह वर्षों की इस अवधि में श्री चैतन्य महाप्रभु अपने प्रमुख शिष्यों को शिक्षाएँ देते हैं। वे अपने समकालीन सुविख्यात दार्शनिकों तथा धर्मज्ञों से, जिनमें शंकराचार्य के अनुयायी, बौद्ध तथा मुसलमान सम्मिलित हैं, शास्त्रार्थ करते हैं और उन्हें तथा उनके शिष्य तथा अनुयायी वर्गों को अपने दल में सम्मिलित करते हैं। इस खण्ड में उड़ीसा में होने वाले विशाल जगन्नाथ रथयात्रा उत्सव के अवसर पर चैतन्य महाप्रभु की चमत्कार-पूर्ण लीलाओं का विस्तृत विवरण सम्मिलित है।

अन्त्यलीला में श्री चैतन्य की प्रकट उपस्थिति के अन्तिम अठारह वर्षों का विवरण है, जिसे उन्होंने जगन्नाथ पुरी के सुप्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर के निकट लगभग एकान्त में बिताये। इन अन्तिम वर्षों में श्रीकृष्ण चैतन्य भावसमाधि में गहरे उतरते गये, जो समस्त पूर्वी अथवा पाश्चात्य धार्मिक तथा साहित्यिक इतिहास में अद्वितीय है। उनके नित्य संगी स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा दिये गये प्रत्यक्षदर्शी विवरण, जिनसे श्री चैतन्य की शाश्वत तथा नित्य वर्धमान धार्मिक परमानन्द की अवस्था प्रकट होती है, आधुनिक मनोविज्ञानियों तथा प्रत्यक्षवादियों के धार्मिक अनुभवों की अनुसन्धानात्मक तथा विवरणात्मक क्षमताओं को स्पष्ट रूप से चुनौती देने वाले हैं।

इस महान् ग्रन्थ के रचयिता कृष्णदास कविराज गोस्वामी का जन्म 1507 ई. में हुआ था। वे चैतन्य महाप्रभु के विश्वस्त अनुयायी रघुनाथ दास गोस्वामी के शिष्य थे। रघुनाथ दास विख्यात वैरागी सन्त थे, जिन्होंने स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा बतलाई गई चैतन्य महाप्रभु की समस्त लीलाओं को सुना था और स्मरण कर रखा था। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा स्वरूप दामोदर के निधन के बाद रघुनाथ दास ने अपने इन आराध्यों की विरह वेदना सहन न कर सकने के कारण गोवर्धन पर्वत से कूदकर आत्म-हत्या करने के उद्देश्य से वृन्दावन की यात्रा की। किन्तु वृन्दावन में उनकी भेंट चैतन्य महाप्रभु के दो सर्वाधिक अन्तरंग शिष्यों-रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी से हुई, जिन्होंने उनसे आत्महत्या की योजना का परित्याग करने तथा चैतन्य महाप्रभु के अन्तिम जीवन की प्रेरक घटनाओं को प्रकट करने के लिए प्रेरित किया। उस समय कृष्णदास कविराज गोस्वामी भी वृन्दावन में रह रहे थे, जिन्हें रघुनाथ दास गोस्वामी ने श्री चैतन्य के दिव्य जीवन का पूर्ण विवरण प्रदान किया।

उस समय तक श्रीकृष्ण चैतन्य के जीवन पर अनेक समसामयिक विद्वान तथा भक्तों द्वारा कई जीवन-चरित विषयक ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। इनमें मुरारि गुप्त कृत श्रीचैतन्य-चरित, लोचन दास ठाकुर कृत चैतन्य-मंगल तथा वृन्दावन दास कृत चैतन्य-भागवत सम्मिलित हैं, जिनमें से चैतन्य भागवत के लेखक वृन्दावन दास ठाकुर को उस समय श्री चैतन्य के जीवन के विशेषज्ञ माने जाते थे। जब वृन्दावन दास इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना कर रहे थे, तब उन्होंने इस भय से श्री चैतन्य के जीवन की अनेक घटनाओं को, विशेषतया परवर्ती घटनाओं को सम्मिलित नहीं किया कि इससे ग्रन्थ का आकार बढ़ जायेगा। इस अन्तिम लीलाओं को सुनने के इच्छुक वृन्दावन के भक्तों ने कृष्णदास कविराज गोस्वामी से, जिन्हें वे महान् सन्त और विद्वान के रूप में सम्मान देते थे, यह अनुरोध किया कि इन घटनाओं का विस्तार से वर्णन करने वाले ग्रन्थ की रचना करें। इस अनुरोध पर तथा वृन्दावन के मदन मोहन अर्चाविग्रह की अनुमति तथा आशीर्वाद से उन्होंने श्रीचैतन्य चरितामृत की रचना प्रारम्भ की, जिसे चैतन्य महाप्रभु के गहन दर्शन तथा शिक्षाओं के सम्यक् प्रस्तुतीकरण, एवं जीवन-चरित विषयक श्रेष्ठता के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा गूढ़ शिक्षा के सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ के रूप में आज सारे विश्व में मान्यता दी जा रही है।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने वृद्धावस्था में इस ग्रंथ पर कार्य प्रारम्भ किया, जब उनका स्वास्थ्य गिर चुका था। जैसाकि उन्होंने स्वयं लिखा है, “अब मैं अति वृद्ध एवं अक्षमता से विक्षुब्ध हूँ। लिखते समय मेरे हाथ काँपते हैं, मुझे ठीक से किसी बात का स्मरण नहीं हो पाता, न ही मैं ठीक से देख या सुन सकता हूँ फिर भी मैं लिखता हूँ जो कि

अपने आप में एक महान् आश्चर्य है।” तो भी उन्होंने इस अक्षम अवस्था में मध्यकालीन भारत के इस महान्तम साहित्यिक मणि को पूरा किया, जो साहित्यिक इतिहास के आश्चर्यों में एक है।

जैसाकि पहले बताया जा चुका है, इसका औग्रेजी अनुवाद कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा सम्पन्न किया गया, जो समग्र विश्व में भारतीय धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधारा के सर्वाधिक विख्यात शिक्षक हैं। श्रील प्रभुपाद का भाष्य दो बँगला भाष्यों पर आधारित है-एक तो उनके गुरु, महान् वैदिक विद्वान, उपदेशक और संत श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर, जिन्होंने भविष्यवाणी की थी कि, “एक समय ऐसा आयेगा, जब श्रीचैतन्य चरितामृत पढ़ने के लिए विश्वभर के लोग बँगला सीखेंगे” और दूसरा भाष्य श्रील भतिसिद्धान्त के पिता भक्तिविनोद ठाकुर का जिन्होंने आधुनिक युग में श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं के प्रचार में अग्रदूत का काम किया।

श्रील प्रभुपाद स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु की गुरु-शिष्य परम्परा में आते हैं और वे पहले विद्वान हैं, जिन्होंने श्रीकृष्ण चैतन्य के अनुयायियों के प्रमुख ग्रन्थों का अँग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया। उनकी बँगला तथा संस्कृत में विद्वता और श्रीकृष्ण चैतन्य के उपदेशों से उनका अन्तरंग परिचय ऐसा उपयुक्त मेल है, जो उन्हें इस महत्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ को अँग्रेजी भाषी संसार के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए सर्वाधिक योग्य बनाता है। वे जिस सहजता तथा स्पष्टता से पूर्णतया अपरिचित पाठक को भी इन गहन तथा स्मरणीय ग्रन्थ को समझने तथा उसकी प्रशंसा करने के लिए समर्थ बनाता है।

तात्पर्य समेत सम्पूर्ण मूल पाठ को नौ सचित्र खण्डों में भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जो समकालीन मनुष्य के बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक जीवन में प्रमुख महत्वपूर्ण योगदान का प्रतिनिधित्व करता है।

श्रील प्रभुपाद के द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत का हिन्दी अनुवाद उनके शताब्दी उत्सव के अवसर पर प्रकाशित किया जा रहा है, जो भारत के भक्तों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

अध्याय एक

महाप्रभु से श्रील रूप गोस्वामी की द्वितीय भेट

प्रथम अध्याय का सारांश श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह भाष्य में इस प्रकार से दिया है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन से जगन्नाथ पुरी लौट आये, तो यह शुभ समाचार पाकर भारत के अन्य भागों से उनके सारे भक्त पुरुषोत्तम क्षेत्र अर्थात् जगन्नाथ पुरी आये। शिवानन्द सेन अपने साथ एक कुत्ता लाये थे और उसके लिए नदी को पार करने का शुल्क भी अदा किया था। किन्तु एक रात को उस कुत्ते को भोजन नहीं मिला और इसलिए वह सीधे जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु के पास पहुँच गया। अगले दिन जब शिवानन्द अपनी टोली के साथ जगन्नाथ पुरी पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि वह कुत्ता श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दी गई नारियल की गरी खा रहा है। इस घटना के बाद कुत्ते को मुक्ति प्राप्त हुई और वह भगवद्धाम चला गया।

इस बीच श्रील रूप गोस्वामी वृन्दावन से लौटकर बंगाल पहुँचे। यद्यपि वे बंगाली भक्तों के साथ साथ नहीं आ पाये, किन्तु कुछ समय बाद वे भी जगन्नाथ पुरी आये, जहाँ वे हरिदास ठाकुर के साथ ठहरे। श्रील रूप गोस्वामी ने एक महत्वपूर्ण श्लोक की रचना की, जो प्रियः सोऽयम् शब्दों से शुरू होता है, जिसका श्री चैतन्य महाप्रभु ने अत्यधिक आस्वादन किया। एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु, रामानन्द राय, सार्वभौम भट्टाचार्य और अन्य हरिदास ठाकुर के स्थान पर गये और रूप गोस्वामी के ग्रन्थ ललित माधव और विदग्ध माधव के कुछ श्लोकों को सुना। इन दोनों पुस्तकों की हस्तलिपियों को देखने के बाद रामानन्द राय ने उसे स्वीकृति दी और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। चातुर्मास्य के बाद बंगाल से आये सारे भक्त अपने अपने घर लौट गये। किन्तु श्रील रूप गोस्वामी कुछ काल तक जगन्नाथ पुरी में ही रहे।

पङ्गुं लङ्घयते शैलं मूकमावर्तयेच्छ्रुतिम् ।

यत्कृपा तमहं वन्दे कृष्ण-चैतन्यमीश्वरम् ॥ 1 ॥

पङ्गम्-लँगड़े व्यक्ति को; लङ्कयते-पार करवा सकती है; शैलम्-पर्वत, मूकम्गुं को; आवर्तयेत्—उच्चारण करवा सकती है; श्रुतिम्-वैदिक साहित्य की; यत्-कृपाजिनकी कृपा; तम्-उनको, अहम्-मैं; वन्दे-सादर नमस्कार करता हूँ, कृष्ण-चैतन्यम्-श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु को जो साक्षात् कृष्ण हैं; ईश्वरम्-भगवान्।

अनुवाद

मैं श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ, जिनकी कृपा से लँगड़ा व्यक्ति भी पर्वत को लाँघ सकता है और गूँगा व्यक्ति वैदिक साहित्य का उच्चारण कर सकता है।

दुर्गमे पथि मेऽन्धस्य स्खलत्पाद-गतेर्मुहुः ।

स्व-कृपा-यष्टि-दानेन सन्तः सन्त्ववलम्बनम् ॥ 2॥

दुर्गमे-अत्यन्त कठिन; पथि-मार्ग में, मे-मेरे; अन्धस्य-अन्धे के; स्खलत् फिसलते हुए; पाद-पैर; गते:-चाल वाले; मुहु:-बारम्बार; स्व-कृपा-अपनी कृपा; यष्टि-लाठी, दानेन-दान देकर; सन्त:-वे सन्तजन, सन्तु-बन जाएँ, अवलम्बनम्-मेरा सहारा ।

अनुवाद

मेरा मार्ग अत्यन्त कठिन है। मैं अन्धा हूँ और मेरे पैर बारम्बार फिसल रहे हैं। इसलिए सन्तजन कृपया मुझे अपनी कृपारूपी लाठी का सहारा दें।

श्री-रूप, सनातन भट्ट-रघुनाथ ।

श्री-जीव, गोपाल-भट्ट, दास-रघुनाथ ॥ 3॥

एइ छय गुरु करों चरण वन्दन ।

याहा हैते विध्न-नाश, अभीष्ट-पूरण ॥ 4॥

शब्दार्थ

श्री-रूप-श्री रूप; सनातन-सनातन; भट्ट-रघुनाथ—रघुनाथ भट्ट: श्री-जीव-श्री जीव; गोपाल-भट्ट-श्री गोपाल भट्ट; दास-रघुनाथ-रघुनाथ दास; एइ छय-इन छ: गुरु-गुरुओं के; करों-मैं करता हूँ, चरण वन्दन-चरणों की वन्दना; याहा हैते-जिसके द्वारा; विध्न-नाश-बाधाएँ नष्ट हो जायें, अभीष्ट-पूरण-मनोभिलाषा पूर्ण हो सके।

अनुवाद

मैं श्री रूप, सनातन, भट्ट रघुनाथ, श्री जीव, गोपाल भट्ट तथा दास रघुनाथ-इन छह गोस्वामियों के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, जिससे मेरे इस ग्रन्थ के लेखन की सारी बाधाएँ नष्ट हो जाएँ और मेरी वास्तविक इच्छा पूरी हो सके।

तात्पर्य

यदि कोई व्यक्ति पूरे संसार को लाभ पहुँचाना चाहता है, तो निश्चय ही उसे कूकर-सूकर जैसे व्यक्ति मिलेंगे, जो अनेकानेक विध्न उत्पन्न करेंगे। यह स्वाभाविक है। किन्तु यदि कोई भक्त छह गोस्वामियों के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है, तो ये दयालु गोस्वामी निश्चय ही भगवान् के सेवक को संरक्षण प्रदान करेंगे। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि सारे संसार में कृष्णभावनामृत का प्रचार करने वालों के मार्ग में विध्न डाले जाते हैं। फिर भी, यदि हम छह गोस्वामियों के चरणकमलों में निष्ठावान रहें और उनकी कृपा की प्रार्थना करें, तो सारे विध्न नष्ट हो जायेंगे और भगवान् की सेवा करने की दिव्य भक्तिमयी आकांक्षा पूरी हो जायेगी।

जयतां सुरतौ पङ्गोर्मम मन्द-मतेर्गती ।

मत्सर्वस्व-पदाम्भोजौ राधा-मदन-मोहनौ ॥५॥

शब्दार्थ

जयताम्-जय हो; सु-रतौ-परम करुणामय अथवा माधुर्य प्रेम में नियुक्त; पङ्गोः-लँगड़े के; मम-मेरे; मन्द-मतेः - मूर्ख के; गती-आश्रय हैं; मत्-मेरे; सर्व-स्व-सर्वस्व; पद-अम्भोजौ-जिनके चरणकमल, राधा-मदन-मोहनौ-राधारानी तथा मदनमोहन के।

अनुवाद

परम कृपालु राधा तथा मदनमोहन की जय हो। मैं लँगड़ा तथा मूर्ख हूँ, फिर भी वे मेरे निर्देशक हैं और उनके चरणकमल मेरे लिए सब कुछ हैं।

दीव्यद-वृन्दारण्य-कल्प-दुमाधः

श्रीमद्-रत्नागार-सिंहासन-स्थौ ।

श्रीमद्-राधा-श्रील-गोविन्द-देवौ

प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि ॥ 6 ॥

शब्दार्थ

दीव्यत्-प्रकाशमान; वृन्दा-अरण्य-वृन्दावन के जंगल में; कल्प-दुम-कल्पवृक्ष; अधः-के नीचे; श्रीमत्-परम सुन्दर, रत्न-आगार-रत्नों के मन्दिर में, सिंह-आसनस्थौ-एक आसन पर बैठकर; श्रीमत्-अत्यन्त सुन्दरी; राधा-श्रीमती राधारानी; श्रीलगोविन्द-देवी-तथा श्री गोविन्द देव; प्रेष्ठ-आलीभिः-अत्यन्त अन्तरंग पार्षदों द्वारा; सेव्यमानी-सेवित हैं; स्मरामि-मैं स्मरण करता हूँ।

अनुवाद

वृन्दावन में रत्नों के मन्दिर में, कल्पवृक्ष के नीचे, श्री श्री राधासिंहासन पर आसीन हैं। मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।

श्रीमान् रास-रसारम्भी वंशीवट-तट-स्थितः ।

कर्षन् वेणु-स्वनैर्गोपीगोपी-नाथः श्रियेऽस्तु नः ॥7॥

शब्दार्थ

श्रीमान्—सर्वकर्षक; रास—रासलीला के; रस-दिव्य रस के; आरम्भी—प्रवर्तक; वंशी-वट-वंशीवट के; तट-तट पर; स्थितः-खड़े हुए, कर्षन्-आकृष्ट करनेवाले, वेणु-वंशी; स्वनैः-की ध्वनि से; गोपी-गोप कन्याओं को, गोपी-नाथः-श्री गोपीनाथ, श्रिये-मंगल, अस्तु-करें; नः-हमारा।

अनुवाद

रासनृत्य के दिव्य रस के प्रवर्तक श्री श्रील गोपीनाथ वंशीवट के किनारे खड़े हैं और अपनी सुविख्यात वंशी की ध्वनि से गोपियों का ध्यान आकृष्ट करते हैं। वे सभी हमारा मंगल करें।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥8॥

शब्दार्थ

जय जय श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो; जय नित्यानन्द-श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो; जय अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत प्रभु की जय हो; जय गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तों की जय हो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो! तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

मध्य-लीला सङ्गाक्षेपेते करिलें वर्णन ।

अन्त्य-लीला-वर्णन किछु शुन, भक्त-गण ॥9॥

शब्दार्थ

मध्य-लीला-मध्य लीला; सङ्क्षेपेते-संक्षेप में; करिलें वर्णन-मैंने वर्णन किया है; अन्त्य-लीला-अन्तिम लीलाओं का; वर्णन-वर्णन; किछु-कुछ; शुन-सुनिष्ट; भक्तगण-हे भक्तों।

अनुवाद

मैंने मध्य-लीला के अन्तर्गत श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का संक्षेप में वर्णन किया है। अब मैं उनकी अन्तिम लीलाओं के विषय में वर्णन करने का प्रयास करूँगा, जो अन्त्य लीला कहलाती हैं।

मध्य-लीला-मध्ये अन्त्य-लीला-सूत्र-गण ।

पूर्व-ग्रन्थे सङ्क्षेपेते करियाछि वर्णन ॥ 10 ॥

शब्दार्थ

मध्य-लीला-मध्ये-मध्यलीला के अन्तर्गत; अन्त्य-लीला-सूत्र-गण-अन्त्य लीला की रूपरेखा; पूर्व-ग्रन्थे-पूर्व अध्यायों में, सङ्क्षेपेते-संक्षेप में, करियाछि वर्णन-मैंने वर्णन किया है।

अनुवाद

मैंने मध्य-लीला के अन्तर्गत अन्त्य-लीला का सूत्रों के रूप में संक्षिप्त वर्णन किया है।

आमि जरा-ग्रस्त, निकटे जानिया मरण ।

अन्त्य कोनो कोनो लीला करियाछि वर्णन ॥ 11 ॥

शब्दार्थ

आमि जरा-ग्रस्त-मैं वृद्धावस्था के कारण प्रायः अक्षम हूँ, निकटे-अत्यन्त निकट, जानिया-जानता हूँ, मरण—मृत्यु कीसम्भावना; अन्त्य-अन्तिम; कोनो कोनो-कुछ; लीला-लीलाओं का; करियाछि वर्णन-मैंने वर्णन कर दिया है।

अनुवाद

अब मैं वृद्धावस्था के कारण प्रायः अक्षम हूँ और जानता हूँ कि किसी भी क्षण मेरी मृत्यु हो सकती है। इसलिए मैं अन्त्य-लीला के कुछ अंशों का पहले ही वर्णन कर चुका हूँ।

तात्पर्य

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी के पदचिह्नों पर चलते हुए मैं भी श्रीमद्/वत का जितनी जल्दी हो सके अनुवाद करने का प्रयास कर रहा हूँ किन्तु अपने आपको वृद्ध तथा वातरोग से अक्षमप्राय जानते हुए मैंने समस्त ग्रन्थों के सार श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध का सारांश के रूप में पहले ही अंग्रेजी में अनुवाद कर दिया है। मैंने सत्तर वर्ष की आयु में कृष्णभावनामृत आन्दोलन प्रारम्भ किया। अब मैं अठहत्तर वर्ष का हूँ, अतः मेरी मृत्यु निकट है। मैं श्रीमद्भागवत का अनुवाद यथाशीघ्र समाप्त करने का प्रयास कर रहा हूँ किन्तु इसे समाप्त करने से पहले ही मैंने अपने पाठकों को लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण नामक पुस्तक भेंट कर दी है, जिससे यदि सम्पूर्ण कार्य समाप्त करने के पूर्व में मर जाऊँ, तो वे इस पुस्तक का आनन्द प्राप्त कर सकें, जो कि श्रीमद्भागवत का सार है।

पूर्व-लिखित ग्रन्थ-सूत्र-अनुसारे ।

येइ नाहि लिखि, ताहा लिखिये विस्तारे ॥ 12॥

शब्दार्थ

पूर्व-लिखित-इससे पहले लिखे हुए, ग्रन्थ-सूत्र-लीलाओं के सूत्र; अनुसारे-के अनुसार, येइ-जो कुछ, नाहि लिखि-मैंने उल्लेख नहीं किया; ताहा-वह सब, लिखिये मैं लिखूँगा (वर्णन करूँगा); विस्तारे-विस्तृत रूप से।

अनुवाद

इसके पूर्वलिखित सूत्रों के अनुसार मैंने जो कुछ उल्लेख नहीं किया, उसका विस्तार से वर्णन करूँगा।

वृन्दावन हैते प्रभु नीलाचले आइला ।

स्वरूप-गोसाजि गौडे वार्ता पाठाइला ॥ 13॥

शब्दार्थ

वृन्दावन हैते-वृन्दावन से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; नीलाचले आइला-नीलाचले, जगन्नाथ पुरी वापस आये;
स्वरूप-गोसाजि-स्वरूप दामोदर, गौड़े-बंगाल में; वातां पाठाइला-खबर भेज दी।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन से जगन्नाथ पुरी लौटे, तो स्वरूप दामोदर गोसांङ्ग ने तुरन्त ही महाप्रभु के आने का समाचार बंगाल के भक्तों को भेज दिया।

शुनि' शची आनन्दित, सब भक्त-गण ।

सत्रे मिलि' नीलाचले करिला गमन ॥ 14 ॥

शब्दार्थ

शुनि'-यह सुनकर; शची-माता शची; आनन्दित-अत्यन्त प्रसन्न, सब भक्त-गणतथा नवद्वीप के अन्य सारे भक्तगण, सबे मिलि'-सभी मिलकर, नीलाचले-जगन्नाथ पुरी, करिला गमन-प्रस्थान किया।

अनुवाद

यह समाचार सुनकर माता शची तथा नवद्वीप के अन्य सारे भक्त परम प्रसन्न थे और वे सभी मिलकर नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) के लिए चल पड़े।

कुलीन-ग्रामी भक्त आर यत खण्ड-वासी ।

आचार्य शिवानन्द साने मिलिला सबे आसि' ॥15॥

शब्दार्थ

कुलीन-ग्रामी-कुलीन ग्राम नामक गाँव के निवासी, भक्त-भत; आर-तथा; यत-सभी; खण्ड-वासी-श्रीखण्ड के सभी निवासी; आचार्य-अद्वैत आचार्य, शिवानन्दशिवानन्द सेन; सने-एक साथ; मिलिला-मिले; सबे आसि'-सभी आकर।

अनुवाद

इस तरह कुलीन ग्राम तथा श्रीखण्ड के सारे भक्त एवं अद्वैत आचार्य एकसाथ शिवानन्द सेन से मिलने आये।

शिवानन्द करे सबार घाटि समाधान ।

सबारे पालन करे, देय वासा-स्थान ॥16॥

शब्दार्थ

शिवानन्द-शिवानन्द; करे-करते हैं; सबार-सभी के; घाटि-यात्रा की; समाधान-व्यवस्था, सबारे-सभी का, पालन-पालन; करे-करते हैं; देय-देते हैं; वासा-स्थान-रिहायशी कमरे।

अनुवाद

शिवानन्द सेन ने यात्रा की व्यवस्था की। उन्होंने हर एक का भरण पोषण किया और हर एक को निवासस्थान दिया।

एक कुक्कुर चले शिवानन्द-सने ।

भक्ष्य दिया लजा चले करिया पालने ॥17॥

शब्दार्थ

एक-एक, कुक्कुर-कुता;चले-जाता है; शिवानन्द-सने-शिवानन्द सेन के साथ; भक्ष्य-भोजन; दिया-देते हुए; लजा-साथ लेकर; चले-जाते हैं; करिया पालने-उसका भरण-पोषण करते हैं।

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी जाते समय शिवानन्द सेन ने अपने साथ एक कुत्ते को चलने दिया। वे उसे खाने को भोजन देते थे और उसका भरण-पोषण करते थे।

एक-दिन एक-स्थाने नदी पार हैते ।

उड़िया नाविक कुक्कुर ना चड़ाय नौकाते ॥ 18॥

शब्दार्थ

एक-दिन-एक दिन, एक-स्थाने-एक स्थान पर, नदी-एक नदी; पार-पार करने; हैते-के लिए, उड़िया नाविक-एक उड़िया (उड़िसा के) नाविक ने, कुक्कुर-कुत्ते को; ना चड़ा-चढ़ने नहीं देता, नौकाते-नाव पर।

अनुवाद

एक दिन जब शिवानन्द को नदी पार करनी थी, तो एक उड़िया नाविक ने कुत्ते को नाव पर नहीं चढ़ने दिया।

कुक्कुर रहिला,-शिवानन्द दुःखी हैला ।

दश पण कड़ि दिया कुक्कुरे पार कैला ॥ 19॥

शब्दार्थ

कुक्कुर रहिला-कुत्ता पीछे रह गया; शिवानन्द दुःखी हैला-शिवानन्द अत्यन्त दुःखी हुए, दश पण-दस पण; कड़ि-छोटे शंख (कौड़ियाँ); दिया-देकर, कुक्कुरे-कुत्ते को; पार कैला-नदी पार करवाने के लिए।

अनुवाद

शिवानन्द दुःखी थे कि कुत्ता पीछे छूट रहा है, इसलिए उन्होंने कुत्ते को नदी पार ले जाने के लिए दस पण। कौड़ियाँ उस नाविक को दीं।

तात्पर्य

एक पण अस्सी कौड़ियों के बराबर होता है। पहले, यहाँ तक कि पचाससाठ वर्ष पूर्व भी, भारत में कागज की मुद्रा (नोट) नहीं थी। सिके प्रायः सोने, चाँदी तथा ताँबे के बनते थे, निम्न धातु के नहीं बनते थे। दूसरे शब्दों में, विनिमय का माध्यम सचमुच कोई कीमती वस्तु होती थी। चार कौड़ि का एक गंडा होता था और बीस गण्डे का एक पण होता था। यह कौड़ि विनिमय का भी माध्यम थी। इसलिए शिवानन्द सेन ने कुत्ते के लिए दश पण अर्थात् 800 कौड़ि दी। उन दिनों एक पैसे को भी छोटी-छोटी कौड़ियों में विभाजित किया जाता था। किन्तु आजकल वस्तुओं के मूल्य इतने बढ़ गये हैं कि एक पैसे के बदले में कुछ नहीं मिलता। किन्तु उन दिनों एक पैसे से एक परिवार के लिए पर्याप्त शाक-सब्जी खरीदी जा सकती थी। यहाँ तक कि तीस वर्ष पूर्व भी पूरे परिवार के एक दिन के लिए एक पैसे से पर्याप्त शाक-सब्जी खरीदी जा सकती थी।

एक-दिन शिवानन्दे घाटियाले राखिला ।

कुक्कुरके भात दिते सेवक पासरिला ॥20॥

शब्दार्थ

एक-दिन-एक दिन, शिवानन्द-शिवानन्द सेन को, घाटियाले-एक शुल्क संग्राहक ने, राखिला-रोक लिया;
कुक्कुरके-कुत्ते को, भात दिते-भात देना; सेवक-एक सेवक; पासरिला-भूल गया।

अनुवाद

एक दिन जब एक शुल्क संग्राहक ने शिवानन्द को रोक लिया, तो उनका नौकर उस कुत्ते को पकाया
चावल (भात) देना भूल गया।

रात्रे आसि' शिवानन्द भोजनेर काले ।

‘कुक्कुर पाजाछे भात?’-सेवके पुछिले ॥ 21॥

शब्दार्थ

रात्रे आसि'-रात में लौटकर, शिवानन्द-शिवानन्द सेन ने, भोजनेर काले-भोजन करते समय; कुक्कुर-कुत्ते को;
पाजाछे-मिला या नहीं; भात-भोजन; सेवके-सेवक से; पुछिले-पूछा।

अनुवाद

रात में, जब शिवानन्द सेन लौटे और भोजन कर रहे थे, तो उन्होंने अपने नौकर से पूछा कि कुत्ते को
भोजन मिला या नहीं।

कुक्कुर नाहि पाय भात शुनि' दुःखी हैला ।

कुक्कुर चाहिते दश-मनुष्य पाठाइला ॥22॥

शब्दार्थ

कुक्कुर-कुत्ते को, नाहि-नहीं; पाय-प्राप्त हुआ; भात-भात (चावल); शुनि'- यह सुनकर; दुःखी हैला-शिवानन्द
सेन अत्यन्त दुःखी हुए, कुक्कुर चाहिते-कुत्ते को ढूँढने के लिए, दश-मनुष्य-दस लोग; पाठाइला-भेजे।

अनुवाद

जब उन्हें ज्ञात हुआ कि उनकी अनुपस्थिति में कुत्ते को भोजन नहीं दिया गया, तो वे अत्यन्त दुःखी हुए। तब उन्होंने तुरन्त उस कुत्ते को ढूँढने के लिए दस व्यक्ति भेजे।

चाहिया ना पाइल कुक्कुर, लोक सब आइला ।

दुःखी हजा शिवानन्द उपवास कैला ॥ 23॥

शब्दार्थ

चाहिया- ढूँढने पर; ना-नहीं, पाइल-खोज सके, कुक्कुर-कुत्ते को; लोक सब आइला-सभी लोग वापस आ गये; दुःखी हजा-दुःखी होकर, शिवानन्द-शिवानन्द सेन ने; उपवास-उपवास, कैला-किया।

अनुवाद

जब लोग असफल होकर लौट आये, तो शिवानन्द सेन अत्यन्त दुःखी हुए और उस रात उन्होंने उपवास किया।

प्रभाते कुक्कुर चाहि' काँहा ना पाइल ।

सकल वैष्णवेर मने चमत्कार हैल ॥ 24॥

शब्दार्थ

प्रभाते-प्रातः काल में, कुक्कुर-कुत्ते की; चाहि'-खोज की, काँहा-कहीं भी, ना पाइल-नहीं पाया, सकल वैष्णवेर-सभी उपस्थित वैष्णवों के; मने-मनों में, चमत्कार हैल-अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

अनुवाद

उन्होंने प्रातःकाल कुत्ते की खोज की, किन्तु वह कहीं नहीं मिला। इससे सारे वैष्णव अत्यन्त चकित हुए।

तात्पर्य

कुत्ते के प्रति शिवानन्द सेन का लगाव उस पशु के लिए महान् वरदान सिद्ध हुआ। यह कुत्ता आवारा कुत्ता प्रतीत होता है। चूँकि जब शिवानन्द सेन अपनी टोली सहित जगन्नाथ पुरी जा रहे थे, तब यह उनके साथ चल पड़ा था; इसलिए उन्होंने इसे अपनी टोली में सम्मिलित करके उसका भी पालन उसी तरह से किया, जिस तरह वे अन्य भक्तों का कर रहे

थे। ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि एक बार इस कुत्ते को नाव में नहीं चढ़ने दिया गया, किन्तु शिवानन्द ने इसे पीछे नहीं छोड़ा, अपितु नाविक को धन देकर उसे नदी पार कराने के लिए राजी किया था। फिर जब नौकर इस कुत्ते को खाना खिलाना भूल गया और वह अदृश्य हो गया, तो शिवानन्द ने अत्यन्त चिन्तित होने के कारण उसे ढूँढ़ने के लिए दस व्यक्तियों को भेजा भी। जब वे उसे नहीं ढूँढ़ पाये, तो शिवानन्द ने उपवास किया। इस तरह ऐसा लगता है कि, हो न हो, शिवानन्द उस कुत्ते के प्रति अनुरत हो चुके थे।

जैसाकि अगले श्लोकों से विदित होगा, इस कुत्ते को श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा प्राप्त हुई और यह तुरन्त वैकुण्ठ को प्राप्त हुआ, जिससे वहाँ नित्य भक्त बन सका। इसीलिए श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने गाया है : तुमि त' ठाकुर, तोमार कुक्कुर, बलिया जानह मोरे (शरणगति 19)। इस प्रकार वे वैष्णव का कुत्ता बनना चाहते हैं। ऐसे अन्य अनेक उदाहरण हैं, जब वैष्णव का पालतू पशु वैकुण्ठ लोक को प्राप्त हुआ। वैष्णव का किसी भी प्रकार से प्रिय बनने का ऐसा ही लाभ मिलता है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने यह भी गाया है कीट-जन्म हउ यथा तुया दास (शरणगति 11)। बारम्बार जन्म लेने में कोई हानि नहीं है। हाँ, हमारी एकमात्र इच्छा किसी वैष्णव की देखरेख में जन्म लेने की होनी चाहिए। सौभाग्यवश हमें ऐसे वैष्णव पिता से जन्म लेने का अवसर मिला, जिन्होंने बहुत ही अच्छे ढंग से हमारी देखरेख की। उन्होंने श्रीमती राधारानी से विनय की कि भविष्य में हम श्रीकृष्ण की नित्य संगिनी के दास बनें। इस तरह हम येनकेन प्रकारेण उस सेवा में लगे हुए हैं। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कुत्ते के रूप में भी हमें वैष्णव की शरण लेनी चाहिए। इससे जो लाभ होगा, वह किसी वैष्णव के संरक्षण में उच्च भक्त को मिलने वाले लाभ जैसा ही होगा।

उत्कण्ठाय चलि' सबे आइला नीलाचले ।

पूर्ववत् महाप्रभु मिलिला सकले ॥ 25 ॥

शब्दार्थ

उत्कण्ठाय-अत्यन्त चिन्तित होकर; चलि'-चलकर; सबे-सभी भक्त; आइला नीलाचले-नीलाचल, जगन्नाथ पुरी आ गये; पूर्ववत्-सदा की तरह, महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, मिलिला सकले-उन सब से मिले।

अनुवाद

इस प्रकार वे सभी अत्यन्त चिन्तित होकर जगन्नाथपुरी पैदल आये, जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु सदा की तरह उनसे मिले।

सबा लजा कैला जगन्नाथ दर्शन ।

सबा लजा महाप्रभु करेन भोजन ॥ 26॥

शब्दार्थ

सबा लजा-उन सबको लेकर; कैला-किया; जगन्नाथ दर्शन-जगन्नाथ मन्दिर का दर्शन; सबा लजा-उन सबके साथ; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने, करेन भोजन-भोजन किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु उनके साथ भगवान् का दर्शन करने मन्दिर में गये और उस दिन उन्होंने सभी भक्तों के साथ भोजन भी किया।

पूर्ववत् सबारे प्रभु पाठाइला वासा-स्थाने ।

प्रभु-ठाजि प्रातः-काले आइला आर दिने ॥ 27॥

शब्दार्थ

पूर्ववत्-पहले की तरह ही; सबारे-सब को; प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने; पाठाइला-भेज दिया; वासा-स्थाने-उनके निवासस्थानों में; प्रभु-ठाजि-चैतन्य महाप्रभु के स्थान में; प्रातः-काले-प्रातः काल, आइला-वे आये, आर दिने-अगले दिन।

अनुवाद

पहले की ही तरह महाप्रभु ने उन सबको आवासीय कक्ष दिये और अगले दिन प्रातःकाल सारे भक्त महाप्रभु को मिलने आये।

आसिया देखिल सबे सेइ त कुक्कुरे ।

प्रभु-पाशे वसियाछे किछु अल्प-दूरे ॥ 28॥

शब्दार्थ

आसिया-आकर; देखिल-उन्होंने देखा; सबे-सभी ने; सेइ त कुक्कुरे-वही कुत्ता; प्रभु-पाशे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के समीप; वसियाछे-बैठा हुआ था; किछु अल्पदूरे-महाप्रभु से कुछ ही दूरी पर।

अनुवाद

जब सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर आये, तो उन्होंने उसी कुत्ते को महाप्रभु से कुछ ही दूरी पर बैठा हुआ देखा।

प्रसाद नारिकेल-शस्य देन फेलावा ।

‘राम’ ‘कृष्ण’ ‘हरि’ कह’—बलेन हासिया ॥ 29 ॥

शब्दार्थ

प्रसाद-प्रसाद, नारिकेल-शस्य-हरे नारियल का गूदा, देन-देते हैं; फेलावा-फेंककर, राम-भगवान् रामचन्द्र; कृष्ण-श्रीकृष्ण, हरि-हरि का पवित्र नाम; कह’-का उच्चारण करो; बलेन-श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं; हासिया-हँसते हुए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु उस कुत्ते के सामने हरे नारियल के गूदे का प्रसाद फेंक रहे थे। अपने ढंग से हँसते हुए, वे कुत्ते से कह रहे थे, “राम, ‘कृष्ण’ तथा ‘हरि’ नाम का उच्चारण करो।”

शस्य खाय कुक्कुर, ‘कृष्ण’ कहे बार बार ।

देखिया लोकेर मने हैल चमत्कार ॥ 30 ॥

शब्दार्थ

शस्य खाय-हरे नारियल का गूदा खाकर, कुक्कुर-कुत्ते को; कृष्ण-कृष्ण का पवित्र नाम; कहे-उच्चारण करते; बार बार-बारम्बार; देखिया-यह देखकर, लोकेर-सभी लोगों के; मने-मनों में, हैल-हुआ; चमत्कार-आश्चर्य।

अनुवाद

कुत्ते को हरे नारियल का शास्य खाते और बारम्बार “कृष्ण,” “कृष्ण” का उच्चारण करते देखकर वहाँ उपस्थित सारे भक्त अत्यधिक आश्चर्यचकित हुए।

शिवानन्द कुक्कुर देखि’ दण्डवत्कैला ।

दैन्य करि’ निज अपराध क्षमाइला ॥ 31 ॥

शब्दार्थ

शिवानन्द-शिवानन्द सेन ने; कुक्कुर-कुत्ते को; देखि'-वहाँ देखकर, दण्डवत् कैला-नमस्कार किया; दैन्य करि'-सहज दीनता प्रदर्शित करते हुए; निज-अपने, अपराध-अपराधों के लिए; क्षमाइला-क्षमायाचना की।

अनुवाद

जब शिवानन्द ने कुत्ते को उस तरह बैठे तथा कृष्ण-नाम का उच्चारण करते देखा, तो उन्होंने अपनी सहज दीनतावश तुरन्त ही कुत्ते को दण्डवत् प्रणाम किया, जिससे उसके प्रति किये गये अपराध क्षमा हो जाएँ।

आर दिन केह तार देखा ना पाइला ।

सिद्ध-देह पाजा कुक्कुर वैकुण्ठेते गेला ॥ 32॥

शब्दार्थ

आर दिन-अगले दिन, केह-उन सभी ने; तार-उस कुत्ते को; देखा ना पाइलानहीं देखा; सिद्ध-देह पाजा-आध्यात्मिक देह प्राप्त करके; कुक्कुर-वह कुत्ता, वैकुण्ठेते गेला-वैकुण्ठ लोक चला गया था।

अनुवाद

अगले दिन किसी ने उस कुत्ते को नहीं देखा, क्योंकि उसे आध्यात्मिक शरीर प्राप्त हो चुका था और वह वैकुण्ठ चला गया था।

तात्पर्य

यह साधु-संग का फल है कि श्री चैतन्य महाप्रभु की संगति तथा भगवद्धाम की प्राप्ति हो सकी। वैष्णव की कृपा से यह फल कुत्ते के लिए भी सम्भव है। इसलिए मनुष्य जीवन में हर व्यक्ति को भक्तों की संगति करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। थोड़ी-सी सेवा करके-कीर्तन तथा नृत्य की बात जाने दें, यहाँ तक कि प्रसाद खाकर हर व्यक्ति वैकुण्ठ लोक को प्राप्त हो सकता है। इसलिए यह अनुरोध है कि इस्कॉन समुदाय के हमारे सारे भक्त शुद्ध वैष्णव बनें, जिससे उनकी कृपा से उनके बिना जाने ही विश्व के सारे लोग वैकुण्ठ लोक चले जाएँ। हर व्यक्ति को प्रसाद प्राप्त करने का अवसर देना चाहिए और इस तरह हरे कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन तथा भाव में नृत्य करने के लिए भी प्रेरित

Formatted: Font: Bold, Font color: Text 1, Complex Script Font: Bold

Formatted: Font: Bold, Font color: Text 1, Complex Script Font: Bold

करना चाहिए। इन तीनों विधियों से, भले ही वे किसी ज्ञान या शिक्षा के बिना ही सम्पन्न क्यों न हों, एक पशु तक भगवद्धाम चला गया।

ऐछे दिव्य-लीला करे शचीर नन्दन ।

कुक्कुरके कृष्ण कहाजा करिला मोचन ॥ 33॥

शब्दार्थ

ऐछे-इस प्रकार की; दिव्य-लीला-दिव्य लीलाएँ करे-करते हैं; शचीर नन्दन-शची माता के पुत्र, कुक्कुरके-एक कुत्ते तक को; कृष्ण कहाजा-“कृष्ण” नाम का उच्चारण करने के लिए प्रेरित करके; करिला मोचन-उसका उद्धार कर दिया।

अनुवाद

शची माता के पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु की दिव्य लीलाएँ ऐसी ही हैं। उन्होंने एक कुत्ते तक को हरे कृष्ण महामन्त्र का उच्चारण करने के लिए प्रेरित करके उसका उद्धार कर दिया।

एथा प्रभु-आज्ञाय रूप आइला वृन्दावन ।

कृष्ण-लीला-नाटक करिते हैल मन ॥ 34॥

शब्दार्थ

एथा-इसी बीच; प्रभु-आज्ञाय-श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश पर; रूप-रूप गोस्वामी; आइला-आये; वृन्दावन-वृन्दावन; कृष्ण-लीला-नाटक-भगवान् कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित नाटक; करिते-लिखने का; हैल-हुआ; मन-मन।

अनुवाद

इस बीच श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार श्रील रूप गोस्वामी वृन्दावन लौट आये। उन्होंने भगवान् कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित नाटक लिखने की इच्छा की।

वृन्दावने नाटकेर आरम्भ करिला ।

मङ्गलाचरण ‘नान्दी-श्लोक’ तथाइ लिखिला ॥ 35॥

शब्दार्थ

वृन्दावने-वृन्दावन में, नाटकेर-नाटक का; आरम्भ-प्रारम्भ; करिला-लिखा; मङ्गलाचरण-मंगलाचरण; नान्दी-श्लोक-नान्दी श्लोक; तथाइ-वहाँ, लिखिला-उन्होंने लिखा।

अनुवाद

वृन्दावन में रूप गोस्वामी ने एक नाटक लिखना प्रारम्भ किया। विशेषतया उन्होंने मंगलाचरण सूचक नान्दी श्लोक की रचना की।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने नाटक चन्द्रिका से उद्धृत किया है, जहाँ लिखा गया है:

प्रस्तावनायास्तु मुखे नान्दी कार्या शुभावहा ।

आशीर्नमस्क्रियावस्तु-निर्देशान्यतमान्विता ॥

अष्टाभिर्दशभिर्युक्ता किंवा द्वादशभिः पदैः ।

चन्द्रनामांकिता प्रायो मंगलार्थपदोज्ज्वला ।

मंगलं चक्रकमलचकोरकुमुदादिकम् ॥

इसी प्रकार साहित्य दर्पण (श्लोक 282) के छठे अध्याय में कहा गया है :

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।

देवद्विजनृपादीनां तस्मान् नान्दीति संज्ञिता ॥

नाटक का प्रारम्भिक अंश जो सौभाग्य का आवाहन करने के लिए लिखा जाता है, वह नान्दी श्लोक कहलाता है।

पथे चलि' आइसे नाटकेर घटना भाविते ।

कइचा करिया किछु लागिला लिखिते ॥ 36॥

शब्दार्थ

पथे चलि'-मार्ग में चलते; आइसे-जाते हुए; नाटकेर-नाटक की; घटनाघटनाओं को; भाविते-विचार करते हुए, कइचा करिया-टिप्पणियाँ बना ली; किछुकुछ; लागिला लिखिते-लिखना भी प्रारम्भ कर दिया।

अनुवाद

गौड़देश जाते हुए रूप गोस्वामी सोच रहे थे कि नाटक की घटना को किस तरह लिखा जाए। इस तरह उन्होंने कुछ टिप्पणियाँ बना ली थीं और लिखना भी प्रारम्भ कर दिया।

एड़-मते दुड़ भाड़ गौड़-देशे आइला ।

गौड़े आसि' अनुपमेर गड़गा-प्राप्ति हैला ॥ 37॥

शब्दार्थ

एड़-मते-इस प्रकार; दुड़ भाड़-रूप गोस्वामी तथा उनका छोटा भाई अनुपम, गौड़-देशे आइला-बंगाल पहुँचे, जो गौड़ देश के नाम से विख्यात है; गौड़े आसि'-गौड़ पहुँचकर; अनुपमेर-अनुपम को; गड़गा-प्राप्ति हैला-माँ गंगा की शरण प्राप्त हो गई (देहान्त हो गया)।

अनुवाद

इस तरह रूप तथा अनुपम दोनों भाई बंगाल पहुँचे, किन्तु जब वे वहाँ पहुँच गये, तो अनुपम का देहान्त हो गया।

तात्पर्य

पूर्व काल में जब कोई व्यक्ति मरता था, तो साधारणतया यही कहा जाता था कि उसे माता गंगा की शरण प्राप्त हो गई, चाहे वह गंगा तट पर न भी मरा हो। हिन्दुओं में प्रथा है कि मरणासन्न व्यक्ति को पास के गंगा-तट पर ले जाया जाता है। क्योंकि ऐसा माना जाता है कि यदि कोई व्यक्ति गंगा के तट पर मरता है, तो उसका आत्मा भगवान् विष्णु के चरणकमलों को प्राप्त करता है क्योंकि गंगाजी भगवान् के चरणकमलों से निकलती हैं।

रूप-गोसाजि प्रभु-पाशे करिला गमन ।

प्रभुरे देखिते तारँ उत्कण्ठित मन ॥ 38॥

शब्दार्थ

रूप-गोसाजि-रूप गोस्वामी; प्रभु-पाशे-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान में; करिला गमन-प्रस्थान किया, प्रभुरे देखिते-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन के लिए, तारँ-उनका; उत्कण्ठित-उत्सुक था; मन-मन।

अनुवाद

तब रूप गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने के लिए प्रस्थान किया, क्योंकि वे उनके दर्शन के लिए अत्यन्त उत्सुक थे।

अनुपमेर लागि' तौर किछु विलम्ब हइल ।

भक्त-गण-पाश आइला, लागना पाइल ॥ 39 ॥

शब्दार्थ

अनुपमेर लागि'-अनुपम के देहान्त के कारण; तौर-रूप गोस्वामी को; किछु-कुछ; विलम्ब-देरी, हइल-हो गई थी; भक्त-गण-पाश-बंगाल के भक्तों के पास; आइला-आये, लाग ना पाइल-वे उनसे सम्पर्क नहीं कर पाये।

अनुवाद

अनुपम के देहान्त के कारण कुछ देरी हो गई थी, इसलिए जब रूप गोस्वामी भक्तों से मिलने बंगाल गये, तो वे उनसे सम्पर्क नहीं कर पाये, क्योंकि वे पहले ही चले गये थे।

उड़िया-देशे 'सत्यभामा-पुर'-नामे ग्राम ।

एक रात्रि सेइ ग्रामे करिला विश्राम ॥ 40 ॥

शब्दार्थ

उड़िया-देशे-उड़ीसा प्रान्त में, सत्यभामा-पुर-सत्यभामा पुर; नामे-नामक; ग्रामएक गाँव, एक रात्रि-एक रात, सेइ ग्रामे-उसी गाँव में, करिला विश्राम-उन्होंने विश्राम ।

अनुवाद

उड़ीसा प्रान्त में सत्यभामापुर नामक एक गाँव है। श्रील रूप गोस्वामी ने जगन्नाथ पुरी जाते समय उसी गाँव में एक रात विश्राम किया।

तात्पर्य

उड़ीसा के कटक जिले में सत्यभामापुर नामक एक स्थान है। यहजानकादेइपुर गाँव के निकट है।

रात्रे स्वप्ने देखे,— एक दिव्य-रूपा नारी ।

सम्मुखे आसिया आज्ञा दिला बहु कृपा करि' ॥ 41॥

रात्रे-रात में, स्वप्ने देखे-उन्होंने स्वप्न देखा; एक-एक, दिव्य-रूपा नारी-दिव्यसुन्दर स्त्री, सम्मुखे आसिया-उनके समक्ष आकर; आज्ञा दिला-आदेश दिया; बहु कृपा करि'-उन पर कृपा करके।

अनुवाद

सत्यभामापुर में विश्राम करते समय उन्होंने स्वप्न देखा कि एक दिव्य सुन्दरी स्त्री उनके समक्ष आई और कृपा करके उन्हें यह आदेश दिया।

अनुवाद

आमार कृपाते नाटक हैबे विलक्षण" ॥42॥

शब्दार्थ

आमार नाटक-मुझ पर नाटक; पृथक् करह रचन-अलग से लिखो; आमार कृपाते-मेरी कृपा से; नाटक-नाटक; हैबे-होगा; विलक्षण-अद्वितीय सुन्दर।

अनुवाद

उसने कहा, “तुम मेरे ऊपर एक अलग नाटक लिखी। मेरी कृपा से यह अद्वितीय सुन्दर होगा।”

स्वप्न देखि' रूप-गोसाजि करिला विचार ।

सत्यभामार आज्ञा—पृथक् नाटक करिबार ॥ 43॥

शब्दार्थ

स्वप्न देखि'-स्वप्न देखने के बाद, रूप-गोसाजि-रूप गोस्वामी ने; करिला विचार-विचार किया; सत्यभामार आज्ञा-श्रीमती सत्यभामा का आदेश; पृथक् नाटक करिबार-एक अलग नाटक लिखने का।

अनुवाद

इस स्वप्न के बाद श्रील रूप गोस्वामी ने विचार किया, “यह तो सत्यभामा का आदेश है कि मैं उनके लिए एक अलग नाटक लिखें।

Formatted: Font: Bold, Complex Script Font: Bold

ब्रज-पुर-लीला एकत्र करियाछि घटना ।

दुद्ध भाग करि एबे करिमु रचना ॥44॥

शब्दार्थ

ब्रज-पुर-लीला-भगवान् कृष्ण के ब्रज तथा द्वारका की लीलाएँ, एकत्र-एक ही पुस्तक में, करियाछि-मैंने संकलित की हैं; घटना-सभी घटनाएँ दुइ भाग करि'-दो अलग नाटकों में विभाजित करके; एबे-अब; करिमु रचना-मैं लिखूँगा।

अनुवाद

“मैंने भगवान् कृष्ण द्वारा वृन्दावन तथा द्वारका में सम्पन्न सारी लीलाओं को एक ही पुस्तक में संकलित किया है। अब मुझे उन्हें दो नाटकों में विभाजित करना होगा।”

भाविते भाविते शीघ्र आइला नीलाचले ।

आसि' उत्तरिला हरिदास-वासा-स्थले ॥ 45 ॥

शब्दार्थ

भाविते भाविते-सोचते हुए; शीघ्र-बहुत जल्दी; आइला नीलाचले-नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) पहुँच गये; आसि'-आकर, उत्तरिला-पहुँच गये; हरिदास-वासा-स्थलेवह स्थान जहाँ हरिदास ठाकुर रहते थे।

अनुवाद

अनुवाद

इस तरह विचारमग्न होकर वे शीघ्र ही जगन्नाथ पुरी पहुँच गये। वहाँ आकर वे हरिदास ठाकुर की कुटिया में जा पहुँचे।

Formatted: Font: Bold, Complex Script Font: Bold

हरिदास-ठाकुर तारे बहु-कृपा कैला ।

‘तुमि आसिबे, मोरे प्रभु ये कहिला’ ॥ 46॥

शब्दार्थ

हरिदास-ठाकुर-हरिदास ठाकुर ने, तारे-उनके प्रति; बहु-कृपा कैला-अत्यन्त प्रेम तथा कृपावश अत्यधिक स्नेह दर्शाया; तुमि आसिबे-तुम आओगे; मोरे-मुझे; प्रभुश्री चैतन्य महाप्रभु ने; ये-यह; कहिला-सूचित कर दिया था।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने प्रेम तथा कृपावश श्रील रूप गोस्वामी को बतलाया, “श्री चैतन्य महाप्रभु ने पहले ही मुझे सूचित कर दिया है कि तुम यहाँ आओगे।”

‘उपल-भोग’ देखि’ हरिदासेरे देखिते ।

प्रतिदिन आइसेन, प्रभु आइला आचम्बिते ॥ 47॥

शब्दार्थ

उपल-भोग-दोपहर के समय भगवान् जगन्नाथ को भोजन अर्पण; देखि’-देखकर, हरिदासेरे देखिते-हरिदास ठाकुर को मिलने, प्रतिदिन-प्रतिदिन; आइसेन-आते, प्रभुश्री चैतन्य महाप्रभु, आइला-वहाँ पहुँच गये; आचम्बिते-अचानक ही।

अनुवाद

जगन्नाथ मन्दिर में उपल भोग उत्सव देखने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु नियमित रूप से प्रतिदिन हरिदास को मिलने आते थे। अतः वे सहसा वहाँ आ पहुँचे।

‘रूप दण्डवत् -करे’,—हरिदास कहिला ।

हरिदासे मिलि’ प्रभु रूपे आलिङ्गिला ॥48॥

शब्दार्थ

रूप-रूप गोस्वामी; दण्डवत् करे-आपको प्रणाम करता है; हरिदास कहिला-हरिदास ने श्री चैतन्य महाप्रभु को सूचित किया; हरिदासे मिलि’-हरिदास से मिलकर, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; रूपे आलिङ्गिला-रूप गोस्वामी को आलिंगन किया।

अनुवाद

जब महाप्रभु वहाँ आये, तो रूप गोस्वामी ने तुरन्त उन्हें नमस्कार किया। हरिदास ने महाप्रभुको सूचित किया, “यह रूप गोस्वामी आपको नमस्कार कर रहा है,” और महाप्रभु ने उनका आलिंगन किया।

हरिदास-रूपे लजा प्रभुवसिला एक-स्थाने ।

कुशल-प्रश्न, इष्ट-गोष्ठी कैला कत-क्षणे ॥ 49 ॥

शब्दार्थ

हरिदास-रूपे-हरिदास ठाकुर तथा रूप गोस्वामी; लजा-के साथ; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, वसिला-बैठ गये; एक-स्थाने-एक स्थान पर; कुशल-प्रश्न-कुशलता के समाचार; इष्ट-गोष्ठी-आपस में चर्चाएँ, कैला कत-क्षणे-कुछ समय तक परस्पर करते रहे।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु हरिदास तथा रूप गोस्वामी के पास बैठ गये। उन सबने एक-दूसरे से कुशल समाचार पूछे और तब कुछ समय तक परस्पर बातें करते रहे।

सनातनेर वार्ता यबे गोसाजि पुछिल ।

रूप कहे,—‘तार सङ्गे देखा ना हइल ॥50॥

शब्दार्थ

सनातनेर वार्ता-सनातन गोस्वामी के विषय में; यबे-जब; गोसाजि-श्री चैतन्य महाप्रभु, पुछिल-ने पूछा, रूप कहे-रूप गोस्वामी ने कहा; तार सङ्गे-उनके साथ; देखा ना हइल-मेरी भेंट नहीं हुई।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी के विषय में पूछा, तो रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया, “उनसे मेरी भेंट नहीं हुई।”

आमि गङ्गा-पथे आइलाड तिहो राज-पथे ।

अतएव आमार देखा नहिल तार साथे ॥ 51 ॥

शब्दार्थ

आमि-मैं, गङ्गा-पथे-गंगा के किनारे वाले मार्ग से, आइलाड-आया हूँ, तिहो वे, राज-पथे-राजमार्ग से; अतएव-इस कारण से, आमार-मेरी; देखा-भेंट; नहिल-हो नहीं पाई, तार साथे-उनके साथ।

अनुवाद

“मैं गंगा-तट के मार्ग से आया हूँ, जबकि सनातन गोस्वामी सार्वजनिक मार्ग से आये हैं। इसलिए हम एक-दूसरे से मिल नहीं पाये।”

Formatted: Font: Bold, Complex Script Font: Bold, (Complex) Sanskrit

प्रयागे शुनिलै, तेंही गेला वृन्दावने ।

अनुपमेर गङ्गा-प्राप्ति कैल निवेदने” ॥52॥

शब्दार्थ

प्रयागे-प्रयाग में, शुनिलै-मैंने सुना; तेंहो-वे; गेला वृन्दावने-वृन्दावन चले गये हैं; अनुपमेर-अनुपम को; गङ्गा-प्राप्ति-गंगा की कृपा प्राप्त हो गई (देहान्त); कैल निवेदने-उन्होंने जानकारी दी।

अनुवाद

“मैंने प्रयाग में सुना कि वे पहले ही वृन्दावन चले गये हैं।” इसके बाद रूप गोस्वामी ने अनुपम के

देहान्त के विषय में महाप्रभु को जानकारी दी।

रूपे ताहाँ वासा दिया गोसाजि चलिला ।

गोसाजिर सङ्गी भक्त रूपेरे मिलिला ॥ 53॥

शब्दार्थ

रूपे-रूप को; ताहाँ-वहाँ, वासा दिया-निवासस्थान प्रदान कर, गोसाजि चलिला-श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ से चले गये; गोसाजिर सङ्गी-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथी; भक्त-सभी भक्त, रूपेरे मिलिला-रूप गोस्वामी से मिले।

अनुवाद

वहाँ रूप गोस्वामी को आवासीय कक्ष देकर श्री चैतन्य महाप्रभु चले गये। तब महाप्रभु के सारे भक्तों ने श्रील रूप गोस्वामी से भेंट की।

आर दिन महाप्रभु सब भक्त लजा ।

रूपे मिलाइला सबाय कृपा त' करिया ॥ 54॥

आर दिन-अगले दिन; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, सब-सभी; भक्त लजा-भक्तों को लेकर; रूपे मिलाइला-रूप गोस्वामी का परिचय करवाया; सबाय-उन सब पर; कृपा त' करिया-अपनी कृपा दर्शाकर।

अनुवाद

अगले दिन, चैतन्य महाप्रभु रूप गोस्वामी से फिर मिले और कृपा करके अपने सारे भक्तों का उनसे परिचय कराया।

Formatted: Font: Bold, Complex Script Font: Bold

Formatted: Font: Bold, Complex Script Font: Bold

सबार चरण रूप करिला वन्दन ।

कृपा करि' रूपे सबे कैला आलिङ्गनः ॥55॥

शब्दार्थ

सबार-सभी भक्तों के; चरण-चरणकमलों में, रूप-श्रील रूप गोस्वामी ने; करिलावन्दन-प्रणाम किये; कृपा करि'-अत्यन्त कृपा करके, रूपे-रूप गोस्वामी का, सबेसभी भक्तों ने, कैला-किया; आलिङ्गन-आलिंगन।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने उन सबके चरणकमलों पर सादर नमस्कार किया और सारे भक्तों ने अत्यन्त कृपा करके उनका आलिंगन किया।

Formatted: Font: Bold, Complex Script Font: Bold

Formatted: Font: Bold, Complex Script Font: Bold

‘अद्वैत नित्यानन्द, तोमरा दुइ-जने’ ।

प्रभु कहे-रूपे कृपा कर काय-मने ॥56॥

शब्दार्थ

अद्वैत-अद्वैत आचार्य, नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु; तोमरा दुइ-जने’-आप दोनों, प्रभु कहे-भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने कहा; रूपे-रूप गोस्वामी पर; कृपा-कृपा; कर-कीजिये, काय-मने-हार्दिक रूप से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य तथा नित्यानन्द प्रभु से कहा, “आप दोनों को पूरे हृदय से रूप गोस्वामी पर कृपा करनी चाहिए।

तोमा-दुँहार कृपाते इँहार हउ तैछे शक्ति ।

याते विवरिते पारेन कृष्ण-रस-भक्ति ॥57॥

Formatted: Font: Bold, Complex Script Font: Bold

Formatted: Font: Bold, Complex Script Font: Bold

शब्दार्थ

तोमा-दुँहार कृपाते-आप दोनों की कृपा से; इँहार-रूप गोस्वामी को, हउ-प्राप्त हो जाए; तैछे-ऐसी; शक्ति-शक्ति; याते-जिसके द्वारा; विवरिते-वर्णन करने में, पारेनसमर्थ हो जाए; कृष्ण-रस-भक्ति-भक्ति के दिव्य रस का।

अनुवाद

“आप दोनों की कृपा से रूप गोस्वामी इतना शक्तिशाली हो जाये कि वह भक्ति के दिव्य रस का वर्णन कर सके।”

गौड़िया, उड़िया, यत प्रभुर भक्त-गण ।

सबार हड़ल रूप स्नेहेर भाजन ॥ 58 ॥

शब्दार्थ

गौड़िया-बंगाल के भक्त, उड़िया-उड़ीसा के भक्त; यत-सभी, प्रभुर भक्त-गणभगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त; सबार-उन सभी के; हड़ल-बन गये; रूप-रूप गोस्वामी; स्नेहेर भाजन-प्रेम तथा स्नेह के पात्र।

अनुवाद

~~इयत रूप गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों के स्नेह और प्रेम के पात्र बन गये जिन्हें बंगाल के और उड़ीसा के भक्त मिलित थे।~~

प्रतिदिन आसि' रूपे करेन मिलने ।

मन्दिरे ये प्रसाद पान, देन दुइ जने ॥59॥

शब्दार्थ

प्रतिदिन-प्रतिदिन, आसि'-आकर, रूपे-रूप गोस्वामी से; करेन मिलने-चैतन्य महाप्रभु मिलते, मन्दिरे-जगन्नाथ मन्दिर में, ये-जो कुछ भी; प्रसाद पान-प्रसाद वे प्राप्त करते; देन-दे देते; दुइ जने-उन दोनों को, श्रील रूप गोस्वामी तथा हरिदास ठाकुर को।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रतिदिन रूप गोस्वामी से मिलने जाते और मंदिर से जो भी प्रसाद पाते, उसे वे रूप गोस्वामी तथा हरिदास ठाकुर को दे देते।

इष्ट-गोष्ठी दुँहा सने करि' कत-क्षण ।

मध्याह्न करिते प्रभु करिला गमन ॥60॥

शब्दार्थ

इष्ट-गोष्ठी-वार्तालाप; दुँहा सने-रूप गोस्वामी तथा हरिदास के साथ; करि'-करके; कत-क्षण-कुछ समय तक, मध्य-अह्न करिते-दोपहर के नित्यकर्म करने के लिए, प्रभुश्री चैतन्य महाप्रभु; करिला गमन-चले जाते।

अनुवाद

फिर महाप्रभु उन दोनों से कुछ देर तक बातें करते और तब दोपहर के नित्य कर्म करने के लिए चले जाते।

एइ-मत प्रतिदिन प्रभुर व्यवहार ।

प्रभु-कृपा पात्रा रूपेर आनन्द अपार ॥ 61 ॥

शब्दार्थ

एइ-मत-इस प्रकार; प्रतिदिन-प्रतिदिन; प्रभुर व्यवहार-श्री चैतन्य महाप्रभु का व्यवहार होता; प्रभु-कृपा-चैतन्य महाप्रभु की कृपा; पात्रा-प्राप्त करके; रूपेर-श्रील रूप गोस्वामी को, आनन्द अपार-असीम आनन्द की अनुभूति हुई।

अनुवाद

इस तरह प्रतिदिन उनके साथ चैतन्य महाप्रभु का व्यवहार चलता रहा। इस प्रकार महाप्रभु की दिव्य कृपा पाकर श्रील रूप गोस्वामी को अपार आनन्द हुआ।

भक्त-गणा लजा कैला गुण्डिचा मार्जन ।

आइटोटा आसि' कैला वन्य-भोजन ॥ 62 ॥

शब्दार्थ

भक्त-गण-सभी भक्तों को; लजा-लेकर, कैला-किया; गुण्डिचा मार्जन-गुण्डिचा मन्दिर की सफाई तथा धुलाई, आइटोटा आसि'-निकटवर्ती आइटोटा नामक बगीचे में आकर, कैला-किया; वन्य-भोजन-बगीचे में वनभोज।

अनुवाद

अपने सारे भक्तों को साथ लेकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने गुण्डिचा मन्दिर की सफाई तथा धुलाई की और बाद में आइटोटा नामक बगीचे में गये और वहीं पर वन्य-भोजन के रूप में उन्होंने प्रसाद ग्रहण किया।

प्रसाद खाय, 'हरि' बले सर्व-भक्त-जन ।

देखि' हरिदास-रूपेर हरषित मन ॥ 63 ॥

शब्दार्थ

प्रसाद खाय-प्रसाद ग्रहण करते हुए; हरि बले-हरि के पवित्र नाम का गान करते; सर्व-भक्त-जन-सभी भक्तों को; देखि'-यह देखकर, हरिदास-हरिदास, रूपेर-तथा रूप गोस्वामी के; हरषित-आनन्दित हो गये, मन-मन।

अनुवाद

जब हरिदास ठाकुर तथा रूप गोस्वामी ने देखा कि सारे भक्त प्रसाद ग्रहण कर रहे हैं तथा हरि के पवित्र नाम का उच्चारण कर रहे हैं, तो वे दोनों अत्यन्त प्रसन्न हुए।

गोविन्द-द्वारा प्रभुर शेष-प्रसाद पाइला ।

प्रेमे मत दुइ-जन नाचिते लागिला ॥64॥

शब्दार्थ

गोविन्द-द्वारा-गोविन्द द्वारा; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; शेष-प्रसाद-शेष प्रसाद; पाइला-प्राप्त करके; प्रेमे मत-भावविभोर होकर, दुइ-जन-वे दोनों, नाचिते लागिलानाचने लगे।

अनुवाद

जब उन्होंने गोविन्द के हाथों से श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रसाद का अवशेष प्राप्त किया, तो उन्होंने उसको सादर ग्रहण किया और तब दोनों ही भावविभोर होकर नाचने लगे।

आर दिन प्रभु रूपे मिलिया वसिला ।

सर्वज्ञ-शिरोमणि प्रभु कहिते लागिला ॥ 65॥

शब्दार्थ

आर दिन-अगले दिन, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, रूपे-श्रील रूप गोस्वामी के साथ; मिलिया-मिलकर; वसिला-बैठे; सर्व-ज्ञ-शिरोमणि-सर्वज्ञों में सर्वश्रेष्ठ, श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, कहिते लागिला-कहने लगे। अनुवाद अगले दिन जब श्री चैतन्य महाप्रभु श्रील रूप गोस्वामी को मिलने गये, तब सर्वज्ञ महाप्रभु इस प्रकार बोले।

‘कृष्णरे बाहिर नाहि करिह ब्रज हैते ।

ब्रज छाड़ि’ कृष्ण कभुना यान काहाँते ॥ 66॥

शब्दार्थ

कृष्णरे-कृष्ण को; बाहिर-बाहर; नाहि-मत, करिह-ले जाओ, ब्रज हैते वृन्दावन से; ब्रज छाड़ि’-वृन्दावन को छोड़कर; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; कभु-किसी भी समय; ना-नहीं, यान-जाते; काहाँते-कहीं भी।

अनुवाद

“कृष्ण को वृन्दावन से बाहर ले जाने का प्रयास मत करो, क्योंकि वे कभी भी अन्यत्र नहीं जाते।”

कृष्णोऽन्यो यदु-सम्भूतो यः पूर्णः सोऽस्त्यतः परः ।

वृन्दावनं परित्यज्य स क्वचित्त्रैव गच्छति ॥67॥

शब्दार्थ

कृष्णः-भगवान् कृष्ण; अन्यः-अन्य (भगवान् वासुदेव); यदु-सम्भूतः-यदुकुल में जन्मे; यः-जो; पूर्णः-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण; सः-वे; अस्ति-हैं; अतः-उनसे (वासुदेव से); परः-भिन्न, वृन्दावनम्-वृन्दावन नामक स्थान; परित्यज्य-छोड़कर; सः-वे; क्वचित्-कभी भी, न एव गच्छति-नहीं जाते।

अनुवाद

“यदुकुमार नाम से विख्यात कृष्ण वासुदेव कृष्ण हैं। वे उन कृष्ण से भिन्न हैं, जो नन्द महाराज के पुत्र हैं। यदुकुमार कृष्ण अपनी लीलाएँ मथुरा तथा द्वारका नगरों में प्रकट करते हैं, किन्तु नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण कभी भी वृन्दावन नहीं छोड़ते।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत लघुभागवतमृत (1.5.461) में पाया जाता है।

एत कहि' महाप्रभु मध्याहे चलिला ।

रूप-गोसाजि मने किछु विस्मय हइला ॥ 68 ॥

शब्दार्थ

एत कहि'-यह कहकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मध्य-अहेचलिला-मध्याह्न कृत्य करने के लिए चले गये; रूप-गोसाजि-श्रील रूप गोस्वामी के; मने-मन में; किछु-कुछ; विस्मय हइला-आश्चर्य हुआ।

अनुवाद

यह कहकर चैतन्य महाप्रभु दोपहर के कृत्य करने चले गये और श्रील रूप गोस्वामी आश्चर्यचकित से रह गये।

“पृथक् नाटक करिते सत्यभामा आज्ञा दिल ।

जानिलु, पृथक् नाटक करिते प्रभु-आज्ञा हैल ॥ 69 ॥

शब्दार्थ

पृथक् नाटक-भिन्न नाटक; करिते-लिखने का; सत्यभामा-सत्यभामा ने; आज्ञा दिल-आदेश दिया था; जानिलु-अब मैं समझ गया; पृथक् नाटक-पृथक् नाटक; करिते-लिखने का; प्रभु-आज्ञा-महाप्रभु का आदेश, हैल-हुआ।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने सोचा, “सत्याभामा ने मुझे अलग-अलग दो नाटक लिखने का आदेश दिया है। अब मैं समझा कि इस आदेश की पुष्टि श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा हो गई है।

पूर्वे दुइ नाटक छिल एकत्र रचना ।

दुहू-भाग करि एबे करि मु घटना ॥70॥

शब्दार्थ

पूर्वे-पहले, दुइ नाटक-दो नाटक; छिल-थे; एकत्र-एक साथ; रचना-लिखित; दुइ-भाग करि-दो भाग करके; एबे-अब, करि मु घटना-मैं घटनाएँ लिखूँगा।

अनुवाद

“पहले मैंने दो नाटकों को एक ही रचना के रूप में लिखा। अब मैं इसे विभाजित करूँगा और उन घटनाओं का वर्णन दो अलग ग्रन्थों में करूँगा।”

दुइ ‘नान्दी’ ‘प्रस्तावना’, दुइ ‘संघटना’ ।

पृथक्करिया लिखि करिया भावना ॥71॥

शब्दार्थ

दुइ नान्दी-दो नान्दी; प्रस्तावना-प्रस्तावनाएँ, दुइ-दो; संघटना-घटनाओं के क्रम; पृथक् करिया-पृथक् करके; लिखि-मैं लिखूँगा; करिया भावना-उन पर विचार करके।

अनुवाद

“मैं दो अलग-अलग नान्दी और दो अलग-अलग प्रस्तावनाएँ लिखूँगा। मैं इस विषय में गम्भीरता से विचार करके घटनाओं का दो अलग-अलग वर्गों में वर्णन करूँगा।”

तात्पर्य

दो ग्रन्थ हैं विदग्ध माधव तथा ललित माधव। विदग्ध माधव में वृन्दावन लीलाओं का और ललित माधव में द्वारका तथा मथुरा की लीलाओं का वर्णन हुआ है।

रथ-यात्राय जगन्नाथ दर्शन करिला ।

रथ-अग्रे प्रभुर नृत्य-कीर्तन देखिला ॥72॥

शब्दार्थ

रथ-यात्राय-रथयात्रा उत्सव के दौरान, जगन्नाथ-भगवान् जगन्नाथ के; दर्शन करिला-उन्होंने दर्शन किये, रथ-अग्रे-रथ के सामने; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; नृत्य-नृत्य, कीर्तन-कीर्तन; देखिला-देखा।

अनुवाद

रथयात्रा उत्सव के समय रूप गोस्वामी ने भगवान् जगन्नाथ के दर्शन किये। उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को रथ के आगे नाचते और कीर्तन करते भी देखा।

प्रभुर नृत्य-श्लोक शुनि' श्री-रूप-गोसाजि ।

सेइ श्लोकार्थ लजा श्लोक करिला तथाइ ॥ 73 ॥

शब्दार्थ

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा; नृत्य-श्लोक-नृत्य करते हुए उच्चारित श्लोक; शुनि'-सुनते ही, श्री-रूप-गोसाजि-श्रील रूप गोस्वामी ने; सेइ श्लोक-अर्थ-उसी श्लोक का अर्थ, लजा-ग्रहण करके, श्लोक करिला-एक अन्य श्लोक की रचना कर दी; तथाइ-उसी समय।

अनुवाद

जब रूप गोस्वामी ने उस उत्सव में श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा उच्चारित एक श्लोक सुना, तो उन्होंने तुरन्त ही उसी विषय से सम्बन्धित एक अन्य श्लोक रच दिया।

पूर्वे सेइ सब कथा करियाछि वर्णन ।

तथापि कहिये किछु सङ्क्षेपे कथन ॥74॥

शब्दार्थ

पूर्वे-पहले से; सेइ-इन, सब-सब; कथा-घटनाओं का; करियाछि वर्णन-मैं वर्णन कर चुका हूँ; तथापि-फिर भी; कहिये-करना चाहता हूँ किछु-कुछ; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; कथन-वर्णन।

अनुवाद

मैं पहले ही इन घटनाओं का वर्णन कर चुका हूँ, तो भी मैं संक्षेप में कुछ और कहना चाहता हूँ।

सामान्य एक श्लोक प्रभु पढ़ने कीर्तने ।

केने श्लोक पड़े-इहा केह नाहि जाने ॥ 75॥

शब्दार्थ

सामान्य-सामान्यतया; एक-एक; श्लोक-श्लोक; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; पढ़ने-पाठ करते थे, कीर्तने-कीर्तन करते समय, केने-क्यों, श्लोक-उस श्लोक को, पड़े-पढ़ते थे; इहा-इसे; केह नाहि जाने-कोई नहीं जानता था।

अनुवाद

सामान्यतया रथ के सामने नृत्य तथा कीर्तन करते समय श्री चैतन्य महाप्रभु एक श्लोक का पाठ किया करते थे। किन्तु कोई यह नहीं जानता कि वे उस विशेष श्लोक को क्यों पढ़ते थे।

सबे एका स्वरूप गोसाजि श्लोकेर अर्थ जाने ।

श्लोकानुरूप पद प्रभुके करान आस्वादने ॥76॥

शब्दार्थ

सबे-केवल एका-एकमात्र; स्वरूप गोसाजि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी श्लोकेर अर्थ-उस श्लोक का अर्थ, जाने-जानते थे, श्लोक-अनुरूप पद-उस विशिष्ट श्लोक के भाव के अनुरूप अन्य श्लोक उद्धृत करते; प्रभुके-श्री चैतन्य महाप्रभु की; करान-करवाने के लिए; आस्वादने-आस्वादन।

अनुवाद

एकमात्र स्वरूप दामोदर गोस्वामी उस अभिप्राय को जानते थे, जिसके हेतु महाप्रभु वह श्लोक सुनाया करते थे। महाप्रभु के मनोभाव के अनुसार स्वरूप दामोदर गोस्वामी अन्य श्लोक उद्धृत करते थे, जिससे महाप्रभु रस का आस्वादन कर सकें।

रूप-गोसाजि प्रभु जानिया अभिप्राय ।

सेइ अर्थे श्लोक कैला प्रभुरे ये भाय ॥77॥

शब्दार्थ

रूप-गोसाजि-श्रील रूप गोस्वामी, प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; जानिया-जान गये; अभिप्राय-मन्तव्य को; सेइ अर्थे-उसी अर्थानुरूप; श्लोक-एक श्लोक की; कैला-रचना की; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; ये-जो; भाय-अच्छा लगा।

अनुवाद

किन्तु रूप गोस्वामी महाप्रभु के उद्देश्य को समझ गये और उन्होंने एक दूसरा श्लोक रचा, जो श्री चैतन्य महाप्रभु को अच्छा लगा।

यः कौमार-हरः स एव हि वरस्ता एव चैत्र-क्षपास् ते

चोन्मीलित-मालती-सुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः ।

सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरत-व्यापार-लीला-विधौ।

रेवा-रोधसि वेतसी-तरु-तले चेतः समुत्कण्ठते ॥78॥

शब्दार्थ

य-वही व्यक्ति, कौमार-हरः-युवावस्था में मेरा हृदय चुरानेवाला, सः-वहीं, एव हि-निश्चित रूप से; वरः-प्रेमी; ताः-ये; एव-अवश्य ही; चैत्र-क्षपाः-चैत्र मास की चाँदनी रातें, ते-वे; च-तथा; उन्मीलित-खिले हुए मालती-मालती फूलों की; सुरभयः-सुगन्ध; प्रौढाः-विकसितः; कदम्ब-कदम्ब पुष्प की सुगन्ध से युक्त; अनिलाः-वायु, सा-वह; च-तथा; एव-निश्चय ही; अस्मि-मैं हूँ, तथा अपि-फिर भी; तत्र-वहाँ, सुरत-व्यापार-अन्तरंग सम्बन्ध में, लीला-लीलाओं के; विधौ-सम्बन्ध में, रेवा-रेवा नामक नदी के; रोधसि-किनारे; वेतसी-वेतसी नामक; तरु-तले-वृक्ष के नीचे; चेतः-मेरा मन; समुत्कण्ठते-उत्कण्ठा से व्याकुल है।

अनुवाद

“जिस व्यक्ति ने मेरी युवावस्था में मेरा हृदय चुराया था, अब पुनः वह मेरा स्वामी है। ये चैत्र मास की चाँदनी से पूर्ण वही रातें हैं। मालती फूलों की वही सुगन्ध है और कदम्ब के वन से वही मधुर मन्द वायु बह रही है। घनिष्ठ सम्बन्ध में, मैं भी वही प्रेमिका हूँ, फिर भी मेरा मन यहाँ प्रसन्न नहीं है। मैं रेवा के तट पर वेतसी वृक्ष के नीचे उसी स्थान पर लौट जाने के लिए उत्सुक हूँ यही मेरी इच्छा है।”

तात्पर्य

इस श्लोक का उच्चारण श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा किया गया है।

प्रियः सोऽयं कृष्णः सह-चरि कुरु-क्षेत्र-मिलितस्

तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः सङ्गम-सुखम् ।

तथाप्यन्तः-खेलन्मधुर-मुरली-पञ्चम-जुषे

मनो मे कालिन्दी-पुलिन-विपिनाय स्पृहयति ॥ 79 ॥

शब्दार्थ

प्रियः-अत्यन्त प्रिय; सः-वे; अयम्-यह; कृष्णः-भगवान् कृष्ण; सह-चरि-हे मेरी प्रिय सखी, कुरु-क्षेत्र-मिलितः-जो सब कुरुक्षेत्र में मिले हैं; तथा-तथा; अहम्-मैं; सा-वही; राधा-राधारानी हूँ; तत्-वही; इदम्-यह; उभयोः-हम दोनों के; सङ्गमसुखम्-मिलन का आनन्द; तथा अपि-फिर भी; अन्तः-भीतर; खेलन्-विहार; मधुर-मधुर; मुरली-मुरली का; पञ्चम-पंचम स्वर; जुषे-आनन्द देने वाला; मनःमन; मे-मेरा; कालिन्दी-यमुना के; पुलिन-किनारे; विपिनाय-वृक्षों के नीचे; स्पृहयति-इच्छा कर रहा है।

अनुवाद

“हे प्रिय सखी, अब मैं इस कुरुक्षेत्र में अपने अत्यन्त पुराने तथा प्रिय मित्र कृष्ण से मिली हूँ। मैं वही राधारानी हूँ और हम अब मिल रहे हैं। यह अत्यन्त सुहावना है, किन्तु तो भी मैं यमुना-तट के वन के वृक्षों के नीचे जाना चाहती हूँ। मैं वृन्दावन के जंगल के भीतर उनकी मधुर वंशी से पंचम स्वर निकलते सुनना चाहती हूँ।”

तात्पर्य

यह श्रील रूप गोस्वामी द्वारा विरचित श्लोक है। यह उनकी पुस्तकपट्ट/वली (386) में सम्मिलित है।

ताल-पत्रे श्लोक लिखि' चालेते राखिला ।

समुद्र-स्नान करिबारे रूप-गोसाजि गेला ॥ 80॥

शब्दार्थ

ताल-पत्रे-ताल पत्र पर; श्लोक-वह श्लोक, लिखि'-लिखकर, चालेते-कुटिया की छत पर, राखिला-रख दिया;
समुद्र-स्नान-समुद्र में स्नान; करिबारे-करने के लिए, रूप-गोसाजि-रूप गोस्वामी, गेला-चले गये।

अनुवाद

ताड़ के एक पत्ते पर इस श्लोक को लिखने के बाद रूप गोस्वामी ने इसे अपनी कुटिया की छत में कहीं
रख दिया और वे समुद्र-स्नान करने चले गये।

हेन-काले प्रभु आइला ताँहारे मिलिते ।

चाले श्लोक देखि प्रभु लागिला पड़िते ॥ 81 ॥

शब्दार्थ

हेन-काले-उसी समय; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आइला-वहाँ पहुँचे; ताँहारे मिलिते-उनसे मिलने के लिए, चाले-
कुटिया की छत पर; श्लोक-श्लोक; देखिदेखकर, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; लागिला-लगे; पड़िते-पढ़ने।

अनुवाद

उसी समय श्री चैतन्य महाप्रभु उनसे वहाँ मिलने आये और जब उन्होंने छत में रखे ताड़-पत्र को देखा
और उन्हें श्लोक दिखाई दिया, तो वे उसे पढ़ने लगे।

श्लोक पड़ि' प्रभु सुखे प्रेमाविष्ट हैला ।

हेन-काले रूप-गोसाजि स्नान करि' आह्वला ॥ 82 ॥

शब्दार्थ

श्लोक पड़ि'-उस श्लोक को पढ़कर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, सुखे-अत्यन्त आनन्द से; प्रेम-आविष्ट हैला-प्रेम
भावाभिभूत हो गये; हेन-काले-उसी समय, रूप-गोसाजि-श्रील रूप गोस्वामी; स्नान करि'-स्नान करके; आइला-वापस
लौटे।

अनुवाद

यह श्लोक पढ़कर श्री चैतन्य महाप्रभु आनन्दमय प्रेम से अभिभूत हो गये। उसी समय समुद्र-स्नान करके
रूप गोस्वामी लौटे।

प्रभु देखि' दण्डवत्प्राङ्गणे पड़िला ।

प्रभु तौरै चापड़ मारि' कहते लागिला ॥ 83 ॥

शब्दार्थ

प्रभु देखि'-वहाँ महाप्रभु को देखकर, दण्डवत्-दण्डवत् प्रणाम; प्राङ्गणे-आँगन में, पड़िला-गिर गये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु तौरै-रूप गोस्वामी को, चापड़ मारि'-एक हल्की चपत लगाकर, कहते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

महाप्रभु को देखकर श्री रूप गोस्वामी नमस्कार करने के लिए आँगन में दंड की तरह गिर पड़े। महाप्रभु ने प्रेम से उन्हें एक हल्की चपत लगाई और इस प्रकार बोले।

‘गूढ़ मोर हृदय तुजि जानिला केमने?’ ।

एत कहि' रूपे कैला दृढ़ आलिङ्गने ॥ 84॥

शब्दार्थ

गूढ़-अत्यन्त गोपनीय, मोर-मेरा; हृदय-हृदय, तुजि-तुमने, जानिला-जान लिया; केमने-कैसे; एत कहि'-ऐसा कहकर, रूपे-रूप गोस्वामी का; कैला-किया; दृढ़ आलिङ्गने-प्रगाढ़ आलिंगन।

अनुवाद

“मेरा हृदय अत्यन्त गोपनीय है। तुमने किस तरह मेरे मन को जान लिया?” यह कहकर उन्होंने रूप गोस्वामी का गाढ़ आलिंगन किया।

सेइ श्लोक लजा प्रभु स्वरूपे देखाइला ।

स्वरूपेर परीक्षा लागि' ताँहारे पुछिला ॥ 85॥

शब्दार्थ

सेइ श्लोक-वही श्लोक; लजा-लेकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; स्वरूपे देखाइला-स्वरूप दामोदर को दिखाया; स्वरूपेर-स्वरूप दामोदर को; परीक्षा लागि'- परीक्षा करने के उद्देश्य से, ताँहारे पुछिला-महाप्रभु ने उससे पूछा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने वह श्लोक ले लिया और उसे स्वरूप दामोदर को परीक्षा करने के लिए दिखलाया।
तब उन्होंने उनसे पूछा।

‘मोर अन्तर-वार्ता रूप जानिल केमने?’ ।

स्वरूप कहे-जानि, कृपा करियाछ आपने ॥ 86॥

शब्दार्थ

मोर अन्तर-वार्ता-मेरे आन्तरिक मनोभावों को; रूप-रूप गोस्वामी; जानिल-जान गया; केमने-कैसे; स्वरूप कहे-स्वरूप ने उत्तर दिया; जानि-मैं यह समझ सकता हूँ, कृपा करियाछ-आपने अपनी कृपा प्रदान की है; आपने-स्वयं ही।

अनुवाद

“रूप गोस्वामी किस तरह मेरे मन को समझ सका?” महाप्रभु ने पूछा। स्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया,
“मेरी समझ में तो यही आता है कि आपने पहले ही उस पर अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान कर दी है।”

अन्यथा ए अर्थ कार नाहि हय ज्ञान ।

तुमि पूर्वे कृपा कैला, करि अनुमान ॥87॥

शब्दार्थ

अन्यथा-अन्यथा; ए अर्थ-यह गूढ़ अर्थ, कार-किसी को, नाहि-नहीं, हय-होता; ज्ञान-ज्ञान; तुमि-आपने; पूर्व-पहले से ही, कृपा कैला-कृपा कर दी है; करि अनुमान-मेरा यह अनुमान है।

अनुवाद

“अन्यथा इस अर्थ को कोई नहीं समझ सकता था। इसलिए मेरा अनुमान है कि आपने इसके पूर्व उस पर अपनी अहैतुकी कृपा कर दी है।”

प्रभु कहे,—“इँहो आमाय प्रयागे मिलिल ।

योग्य-पात्र जानि इँहाय मोर कृपा त’ हइल” ॥ 88॥

शब्दार्थ

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; इँहो-रूप गोस्वामी; आमाय-मुझसे; प्रयागे-प्रयाग में, मिलिल-मिला था, योग्य-पात्र जानि-उसे एक योग्य पात्र जानकर; इँहाय-उस पर; मोर-मेरी, कृपा त' हइल-कृपा हो गई।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, “रूप गोस्वामी मुझसे प्रयाग में मिला था। उसे उपयुक्त व्यक्ति जानकर मैंने स्वभावतः उस पर अपनी कृपा कर दी थी।”

तबे शक्ति सञ्चारि' आमि कैलुँ उपदेश ।

तुमिह कहिओ इहाँय रसेर विशेष” ॥ 89 ॥

शब्दार्थ

तबे-तब; शक्ति सञ्चारि'-अपनी दिव्य शक्ति से युक्त करके; आमि-मैंने, कैलुँ उपदेश-उपदेश दिया; तुमिह-तुम भी, कहिओ-उपदेश दो, इहाँय-उसे; रसेर विशेषदिव्य रसों के विषय में विशिष्ट जानकारी।

अनुवाद

“तब मैंने उसे अपनी दिव्य शक्ति भी प्रदान की। अब तुम भी उसे, विशेष करके दिव्य रसों के विषय में उपदेश दो।”

स्वरूप कहे-“याते एइ श्लोक देखिलुँ ।

तुमि करियाछ कृपा, तबँहि जानिलु” ॥ 90॥

शब्दार्थ

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने कहा; याते-क्योंकि, एइ श्लोक-यह श्लोक; देखिलुँ-मैंने देख लिया है; तुमि-आपने; करियाछ कृपा-अपनी कृपा प्रदान की है; तबँहि-तुरन्त ही; जानिलु-मैं समझ गया।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने कहा, “जैसे ही मैंने इस श्लोक की अद्वितीय रचना देखी, मैं तुरन्त समझ गया कि आपने उसे अपनी विशेष कृपा प्रदान की है।”

फलेन फल-कारणमनुष्मीयते ॥91॥

शब्दार्थ

फलेन-परिणाम द्वारा; फल-कारणम-परिणाम का कारण; अनुमीयते-अनुमान लगाया जा सकता है।

अनुवाद

“परिणाम देखकर उस परिणाम के कारण को समझा जा सकता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक न्याय सिद्धान्त से लिया गया है।

स्वर्गापगा-हेम-मृणालिनीनां

नाना-मृणालाग्र-भुजो भजामः ।

अन्नानुरूपां तनु-रूप-ऋद्धिं

कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते ॥92॥

शब्दार्थ

स्वर्ग-अपगा-देव लोकों में बहने वाली गंगा के जल का; हेम-स्वर्णिम; मृणालिनीनाम्-कमल पुष्पों के; नाना-अनेक प्रकार के; मृणाल-अग्र-भुजः-जो उन पुष्पों के डंठलों के अग्र भाग को खाते हैं (जिसे मखाना कहा जाता है); भजामः-हमें प्राप्त है; अन्न-अनुरूपाम्-अन्न के ही अनुरूप; तनु-रूप-ऋद्धिम्-प्रचूर शारीरिक सुन्दरता; कार्यम्-प्रभाव अथवा परिणाम;; निदानात्-कारण से; हि-अवश्य ही; गुणान्-गुणों को; अधीते-प्राप्त करता है।

अनुवाद

“स्वर्ग में बहने वाली गंगा नदी सुनहरे कमल के फूलों से पूर्ण है और उस लोक के निवासी हम फूलों के डंठलों को खाते हैं। इसीलिए हम अन्य किसी लोक के निवासियों की अपेक्षा अधिक सुन्दर हैं। यह कार्य-कारण नियम के फलस्वरूप है, क्योंकि यदि सत्त्वगुणी भोजन किया जाता है, तो सत्त्वगुण उसके शरीर का सौन्दर्य बढ़ा देता है।”

तात्पर्य

मनुष्य की शारीरिक कान्ति तथा सौन्दर्य, उसका गठन, उसके कार्य तथा गुण कार्य-कारण नियम पर आधारित हैं। भौतिक प्रकृति में तीन गुण होते हैं और जैसाकि भगवद्गीता (13.22) में कहा गया है-कारण गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु-मनुष्य भौतिक प्रकृति के गुणों के साथ अपने पूर्व संसर्ग के अनुसार अच्छे या बुरे परिवार में जन्म लेता है। इसलिए जो व्यक्ति दिव्य सिद्धि-कृष्णभावनामृत-प्राप्त करने का इच्छुक है, उसे कृष्ण-प्रसाद खाना चाहिए। ऐसा भोजन सात्विक होता है, किन्तु जब वह कृष्ण को अर्पित किया जाता है, तो वह दिव्य बन जाता है। हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन कृष्णप्रसाद वितरित करता है और जो लोग ऐसा दिव्य भोजन खाते हैं, वे निश्चित रूप से भगवद्भक्त बन जाते हैं। यह अत्यन्त वैज्ञानिक विधि है, जैसाकि नलनैषध के इस श्लोक (3.17) में कहा गया है काय निदान/द्ध गुण/ अधीते/ यदि व्यक्ति अपने सारे कार्यों में सत्वगुण पर दृढ़ रहता है, तो वह निश्चित रूप से अपनी सुप्त कृष्ण-चेतना को विकसित कर लेगा और अन्ततः भगवान् कृष्ण का शुद्ध भक्त बन जायेगा। दुर्भाग्यवश आज समाज के नेताओं के, विशेषतया सरकारी नेताओं के, शारीरिक गठन दूषित हैं। श्रीमद्भागवत (12.1.40) में कहा गया है :

असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसावृताः ।

प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरुपिणः ॥

ऐसे नेताओं के पास अपने खान-पान को शुद्ध करने का कोई अवसर नहीं है। राजनीतिक लोग परस्पर मिलते हैं और मद्यपान करके शुभ कामनाओं का आदान-प्रदान करते हैं। यह इतना दूषित तथा पापमय वातावरण है कि शराबी तथा मांसाहारी लोग स्वभावतः तमोगुणी अधम मनोवृत्ति विकसित कर लेते हैं। विभिन्न गुणों में भोजन करने की विधियाँ भगवद्गीता में बतलाई गई हैं, जिनमें यह बताया गया है कि जो चावल, गेहूँ, सब्जी, दूध की वस्तुएँ, फल तथा चीनी खाते हैं, वे उच्च सत्वगुण में स्थित होते हैं। इसलिए यदि हम सुखी तथा शान्त राजनीतिक स्थिति चाहते हैं, तो हमें ऐसे नेता चुनने चाहिए, जो कृष्ण-प्रसाद खाते हों। अन्यथा नेतागण मांस खायेंगे और मदिरा पीयेंगे और इस तरह वे असंस्कृत तथा क्रियाहीन होंगे अर्थात् आध्यात्मिक व्यवहार से हीन होंगे। दूसरे शब्दों में, वे म्लेच्छ तथा यवन होंगे अर्थात् वे जो आदतों में अपवित्र बिगड़े हुए होंगे। ऐसे लोग कर लगाकर यथासम्भव नागरिकों का शोषण करते हैं और इस तरह नागरिकों को लाभ दिलाने के स्थान पर उनका भक्षण करते हैं। इसलिए यदि ऐसे ही अशुद्ध म्लेच्छ तथा यवन सरकार को चलायेंगे, तो हम कुशल सरकार की आशा नहीं कर सकते।

चातुर्मास्य रहि' गौड़े वैष्णव चलिला ।

रूप-गोसाजि महाप्रभुर चरणे रहिला ॥93॥

शब्दार्थ

चातुर्मास्य रहि'—चातुर्मास्य के चार मास तक रहकर; गौडे-बंगाल; वैष्णव-सारे भक्त; चलिला-लौट गये; रूप—
गोसाजि-श्रील रूप गोस्वामी, महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरणे-चरणों की शरण में, रहिला-रह गये।

अनुवाद

चातुर्मास्य के चार महीनों (श्रावण, भाद्र, आश्विन तथा कार्तिक) के बाद बंगाल के सारे वैष्णव अपने-
अपने घर लौट गये, किन्तु श्रील रूप गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण में जगन्नाथ पुरी
में ही रहे।

एक-दिन रूप करेन नाटक लिखन ।

आचम्बिते महाप्रभुर हैल आगमन ॥ 94॥

शब्दार्थ

एक-दिन-एक दिन; रूप-रूप गोस्वामी, करेन-कर रहे थे; नाटक-नाटक (अपनी पुस्तक); लिखन-रचना,
आचम्बिते-अचानक ही; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का, हैल-हो गया; आगमन-आगमन।

अनुवाद

एक दिन जब रूप गोस्वामी अपनी पुस्तक लिख रहे थे, तब श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ सहसा प्रकट हुए।

सम्भ्रमे दुँहे उठि' दण्डवत् हैला ।

दुँहे आलिङ्गिया प्रभु आसने वसिला ॥95॥

शब्दार्थ

सम्भ्रमे-अत्यधिक सम्मानपूर्वक; दुँहे-हरिदास ठाकुर और रूप गोस्वामी, उठि'- उठकर, दण्डवत् हैला-प्रणाम
करने के लिए भूमि पर दण्डवत् गिर गये; दुँहे-दोनों को; अङ्गिया-गले लगाकर, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, आसने वसिला-
आसन पर बैठ

अनुवाद

जैसे ही हरिदास ठाकुर तथा रूप गोस्वामी ने महाप्रभु को आते देखा, वे दोनों खड़े हो गये और वे उन्हें सादर नमस्कार करने के लिए दण्डवत् भूमि पर गिर गये। श्री चैतन्य महाप्रभु ने दोनों का आलिंगन किया और बैठ गये।

‘क्या पुंथि लिख?’ बलि’ एक-पत्र निला ।

अक्षर देखिया प्रभु मने सुखी हैला ॥ 96॥

शब्दार्थ

क्या-किस प्रकार की; पुंथि-पुस्तक; लिख-तुम लिख रहे हो; बलि’-यह कहकर, एक-पत्र निला-तालपत्र पर लिखा हुआ एक पत्र उठाया; अक्षर-सुन्दर लिखाई; देखियादेखकर, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, मने-मन में, सुखी हैला-अत्यन्त आनन्दित हुए।

अनुवाद

महाप्रभु ने पूछा, “तुम किस तरह की पुस्तक लिख रहे हो?” उन्होंने एक ताड़-पत्र उठाया, जो पाण्डुलिपि का पन्ना था और जब महाप्रभु ने सुन्दर हस्तलिपि देखी, तो उनका मन अतीव प्रसन्न हो गया।

श्री-रूपेर अक्षर-येन मुकुतार पाँति ।

प्रीत हजा करेन प्रभु अक्षरेर स्तुति ॥ 97॥

शब्दार्थ

श्री-रूपेर अक्षर-श्री रूप गोस्वामी की लिखावट; येन-की भाँति है; मुकुतार पाँति-मोतियों की पंक्ति; प्रीत हजा-प्रसन्न होकर, करेन-करने लगे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; अक्षरेर स्तुति-श्रील रूप गोस्वामी की लिखावट की प्रशंसा।

अनुवाद

इस तरह प्रसन्न होकर महाप्रभु ने यह कहते हुए लिखावट की प्रशंसा की, “रूप गोस्वामी की हस्तलिपि मोतियों की पंक्तियों की तरह है।”

सेइ पत्रे प्रभु एक श्लोक ये देखिला ।

पड़ितेइ श्लोक, प्रेमे आविष्ट हइला ॥ 98 ॥

शब्दार्थ

सेइ पत्रे-उस ताल पत्र पर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; एक श्लोक-एक श्लोक; ये-जो; देखिला-देखा, पड़ितेइ-पढ़कर; श्लोक-वह श्लोक, प्रेमे-भावमय प्रेम से; आविष्ट हइला-अभिभूत हो गये।

अनुवाद

उस हस्तलिपि को पढ़ते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस पृष्ठ पर एक श्लोक देखा और ज्योंही उन्होंने उसे पढ़ा, वे भावमय प्रेम से अभिभूत हो गये।

तुण्डे ताण्डविनी रतिं वितनुते तुण्डावली-लब्धये

कर्ण-क्रोड़-कडुम्बिनी घटयते कर्णाबुदेभ्यः स्पृहाम् ।

चेतः-प्राङ्गण-सङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां

नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णोति वर्ण-द्वयी ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तुण्डे-मुख में, ताण्डविनी-नृत्य करता है; रतिम्-इच्छा; वितनुते-बढ़ाता है; तुण्ड-आवली-लब्धये-अनेक मुख प्राप्त करने की; कर्ण-कान के; क्रोड़-छिद्र में, कडुम्बिनी-प्रस्फुटित होता है; घटयते-उत्पन्न करता है; कर्ण-अर्बुदेभ्यः स्पृहाम्-लाखों कान प्राप्त करने की इच्छा; चेतः-प्राङ्गण-हृदय के आँगन में; सङ्गिनी-संगी बनकर; विजयते-जीत लेता है; सर्व-इन्द्रियाणाम्-सभी इन्द्रियों के; कृतिम्-कार्यकलापों को; न उ-नहीं, जाने-मैं जानता, जनिता-उत्पन्न करता है; कियद्भिः-कितनी मात्रा में, अमृतैः-अमृत द्वारा; कृष्ण-कृष्ण नाम; इति-ये; वर्ण-द्वयी-दो अक्षर ।

अनुवाद

“मैं नहीं जानता हूँ कि ‘कृष्-ण’ के दो अक्षरों ने कितना अमृत उत्पन्न किया है। जब कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण किया जाता है, तो यह मुख के भीतर नृत्य करता प्रतीत होता है। तब हमें अनेकानेक मुखों की इच्छा होने लगती है। जब वही नाम कानों के छिद्रों में प्रविष्ट होता है, तो हमारी इच्छा करोड़ों कानों के लिए होने लगती है। और जब यह नाम हृदय के आँगन में नृत्य करता है, तब यह मन की गतिविधियों को जीत लेता है, जिससे सारी इन्द्रियाँ जड़ हो जाती हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (1.15) में सन्निहित है। इस सात अध्यायों वाले नाटक की रचना श्रील रूप गोस्वामी ने की है, जिसमें कृष्ण की वृन्दावन लीलाओं का वर्णन हुआ है।

श्लोक शुनि हरिदास हइला उल्लासी ।

नाचिते लागिला शलोकेर अर्थ प्रशंसि' ॥ 100 ॥

श्लोक शुनि'-यह श्लोक सुनकर, हरिदास-हरिदास ठाकुर, हइला उल्लासी-अत्यन्त आनन्दविभोर हो गये, नाचिते लागिला-वे नाचने लगे, श्लोकेर-श्लोक के; अर्थ प्रशंसि'-अर्थ की प्रशंसा करते हुए।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह श्लोक पढ़ा, तो हरिदास ठाकुर उस ध्वनि को सुनकर अत्यन्त प्रफुल्लित हो उठे तथा इसके अर्थ की प्रशंसा करते हुए नाचने लगे।

कृष्ण-नामेर महिमा शास्त्र-साधु-मुखे जानि ।

नामेर माधुरी ऐछे काहाँ नाहि शुनि ॥ 101॥

कृष्ण-नामेर महिमा-भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम की महिमा; शास्त्र-प्रामाणिक शास्त्रों, साधु-साधुओं के; मुखे-मुख से; जानि-हम समझ सकते हैं; नामेर माधुरीपवित्र नाम की मधुरता, ऐछे-इस प्रकार से, काहाँ-और कहीं भी, नाहि शुनि-हम नहीं सुनते।

अनुवाद

भगवान् के नाम के सौन्दर्य तथा उसकी दिव्य स्थिति को भक्तों के मुख से प्रामाणिक शास्त्रों का श्रवण करके सीखना होता है। हम अन्यत्र कहीं भी भगवान् के पवित्र नाम की मधुरता को नहीं सुन सकते।

तात्पर्य

पद्मपुराण में कहा गया है—अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यम् इन्द्रियैः। भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन तथा श्रवण सामान्य इन्द्रियों द्वारा सम्पन्न नहीं किया जा सकता। भगवान् के पवित्र नाम की दिव्य ध्वनि पूर्णतया आध्यात्मिक है। अतः इसे आध्यात्मिक स्रोतों से ग्रहण किया जाना चाहिए और गुरु के मुख से सुनने के बाद ही उसका

उच्चारण किया जाना चाहिए। जो व्यक्ति हरे कृष्ण मन्त्र का उच्चारण सुनता है, उसे चाहिए कि उसे गुरु से कानों से सुनकर प्राप्त करे। श्रील सनातन गोस्वामी ने अवैष्णवों-यथा व्यवसायी अभिनेताओं तथा गायकों-द्वारा किये जाने वाले कृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन को सुनने से मना किया है। यह सर्प के होठों से छुए हुए दूध के समान है, जैसाकि पढ़ापुराण में कहा गया है :

अवैष्णवमुखोद्गीर्णं पूतं हरिकथामृतम् ।

श्रवणं नैव कर्तव्यं सर्पोच्छिष्टं यथा पयः ॥

इसलिए जहाँ तक सम्भव हो सके, कृष्णभावनामृत आन्दोलन के भक्तों को एकत्र होकर जनता के बीच कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करना चाहिए, जिससे कीर्तन करने वाले तथा श्रोता दोनों ही लाभान्वित हों।

तबे महाप्रभु दुँहे करि' आलिङ्गन ।

मध्याह्न करिते समुद्रे करिला गमन ॥102॥

शब्दार्थ

तबे-उसके बाद; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; दुँहे-रूप गोस्वामी तथा हरिदास ठाकुर दोनों को; करि'-करके; आलिङ्गन-आलिंगन, मध्य-अह्न करिते-अपने मध्याह्न कृत्यों के लिए; समुद्रे-समुद्र की ओर; करिला गमन-चले गये।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास तथा रूप गोस्वामी दोनों का आलिंगन किया और दोपहर के कृत्य करने के लिए समुद्र की ओर चले गये।

आर दिन महाप्रभु देखि' जगन्नाथ ।

सार्वभौम-रामानन्द-स्वरूपादि-साथ ॥ 103 ॥

सबे मिलि' चलि आइला श्री-रूपे मिलिते ।

पथे तार गुण सबारे लागिला कहिते ॥ 104॥

शब्दार्थ

आर दिन-अगले दिन; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु देखि' -दर्शन करके; जगन्नाथ-मन्दिर में भगवान् जगन्नाथ के; सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य, रामानन्दरामानन्द राय, स्वरूप-आदि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी, साथ-के साथ, सबे मिलि'-मिलकर, चलि आइला-आ गये; श्री-रूपे मिलिते-श्रील रूप गोस्वामी से मिलने; पथे-मार्ग में, तौर-रूप गोस्वामी के; गुण-सभी सद्गुण, सबारे-सभी अन्तरंग संगियों की; लागिला कहिते-बताने लगे।

अनुवाद

अगले दिन हमेशा की तरह भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर जाने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य, रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर से मिले। तब वे सभी मिलकर श्रील रूप गोस्वामी के पास गये और रास्ते में महाप्रभु ने उनके गुणों की अत्यधिक प्रशंसा की।

दुइ श्लोक कहि' प्रभुर हैल महा-सुख ।

निज-भक्तेर गुणा कहे हजा पञ्च-मुख ॥ 105॥

शब्दार्थ

दुइ श्लोक कहि'-दो श्लोक कहकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को, हैल-हुआ; महा-सुख-अत्यधिक आनन्द, निज-भक्तेर-अपने भक्त के; गुण-गुणों का; कहे-वर्णन करते हैं; हजा-मानो हो गये; पञ्च-मुख-पाँच मुख।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने दो महत्वपूर्ण श्लोक सुनाए, तो उन्हें परम सुख हुआ। इस तरह वे अपने भक्त की प्रशंसा करने लगे मानो उनके पाँच मुख हों।

तात्पर्य

जिन दो श्लोकों का उल्लेख हुआ है, वे हैं, प्रियः सोऽयम् (79) तथा तुण्डे ताण्डविनी (99) से शुरू होने वाले श्लोक।

सार्वभौम-रामानन्दे परीक्षा करिते ।

श्री-रूपेर गुण दुँहारे लागिला कहिते ॥ 106॥

शब्दार्थ

सार्वभौम-रामानन्दे-सार्वभौम भट्टाचार्य तथा रामानन्द राय की; परीक्षा करिते-परीक्षा करने के लिए श्री-रूपे
गुण-श्रील रूप गोस्वामी के दिव्य गुणों का; दुँहारे-उन दोनों के समक्ष, लागिला कहिते-वर्णन करने लगे।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य तथा रामानन्द की परीक्षा लेने के लिए ही उनके समक्ष महाप्रभु श्री रूप गोस्वामी
के दिव्य गुणों की प्रशंसा करने लगे।

‘ईश्वर-स्वभावा’-भक्तेर ना लय अपराध ।

अल्प-सेवा बहुमाने आत्म-पर्यन्त प्रसाद ॥107॥

शब्दार्थ

ईश्वर-स्वभाव-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का स्वभाव है; भक्तेर-शुद्ध भक्त का; ना लय-गम्भीरतापूर्वक नहीं लेते;
अपराध-कोई भी अपराध, अल्प-सेवा-अल्प मात्र सेवा की; बहु माने-भगवान् अत्यन्त महान् स्वीकार करते हैं; आत्म-
पर्यन्त-स्वयं को देकर, प्रसाद-कृपा करते हैं।

अनुवाद

स्वभावतः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपने शुद्ध भक्त के किसी अपराध को गम्भीरता से नहीं लेते। भक्त
जो भी स्वल्प सेवा करता है, उसे भगवान् इतनी बड़ी सेवा के रूप में स्वीकार करते हैं कि वे अपने आपको
भी अर्पित करने के लिए प्रस्तुत रहते हैं, अन्य वरदानों के बारे में क्या कहा जाए।

भृत्यस्य पश्यति गुरुनपि नापराधान्

सेवां मनागपि कृतां बहुधाभ्युपैति ।

आविष्करोति पिशुनेष्वपि नाभ्यसूयां

शीलेन निर्मल-मतिः पुरुषोत्तमोऽयम् ॥ 108 ॥

शब्दार्थ

भृत्यस्य-सेवक के; पश्यति-वे देखते हैं; गुरुन्-बड़े; अपि-भी; न-नहीं, अपराधान्-अपराधों को; सेवाम्-सेवा को;
मनाक् अपि-कितनी ही तुच्छ; कृताम्-की गई; बहुधा-अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक; अभ्युपैति-स्वीकार करते हैं;

आविष्करोतिप्रकट करते हैं; पिशुनेषु-शत्रुओं पर भी, अपि-भी; न-नहीं; अभ्यसूयाम्-ईर्ष्यालुओं पर; शीलेन-भद्र व्यवहार द्वारा; निर्मल-मतिः-स्वभावतः शुद्ध मन वाले; पुरुष-उत्तमः-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, सर्वश्रेष्ठ पुरुष; अयम्-यह।

अनुवाद

“परम भगवान् पुरुषोत्तम के नाम से विख्यात हैं और सबसे महान् हैं। उनका मन निर्मल है। वे इतने दयालु हैं कि यदि उनका सेवक कोई बड़ा अपराध भी कर दे, तो वे उसे गम्भीरता से नहीं लेते। हाँ, यदि उनका सेवक छोटी-सी भी सेवा करता है, तो भगवान् उसे बहुत बड़ी सेवा के रूप में स्वीकार करते हैं। यदि कोई ईर्ष्यालु व्यक्ति भगवान् की निन्दा भी करता है, तो वे उसके प्रति कभी क्रोध प्रकट नहीं करते। ऐसे हैं उनके महान् गुण।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत भक्तिरसामृतासिन्धु (2.1.138) से लिया गया है।

भक्त-सङ्गे प्रभु आइला, देखि' दुइ जन ।

दण्डवत् हजा कैला चरण वन्दन ॥ 109 ॥

भक्त-सङ्ग-अन्य भक्त पार्षदों के साथ; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, आइला-आये हैं; देखि'-यह देखकर; दुइ जन-रूप गोस्वामी तथा हरिदास ठाकुर; दण्डवत् हजा-दण्ड की तरह भूमि पर गिरकर, कैला-किया; चरण वन्दन-उनके चरणों में वन्दना।

अनुवाद

जब हरिदास ठाकुर तथा रूप गोस्वामी ने देखा कि श्री चैतन्य महाप्रभु अपने अन्तरंग भक्तों के साथ आये हैं, तो उन दोनों ने तुरन्त भूमि पर दण्ड की तरह गिरकर उनके चरणकमलों की वन्दना की।

भक्त-सङ्गे कैला प्रभु दुँहारे मिलन ।

पिण्डाते वसिला प्रभु लजा भक्त-गण ॥ 110 ॥

शब्दार्थ

भक्त-सङ्गे-अपने अन्तरंग पार्षदों के साथ; कैला-किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; दुँहारे-दोनों (रूप गोस्वामी तथा हरिदास ठाकुर) से; मिलन-मिलन, पिण्डाते-उच्च आसन पर; वसिला-बैठ गये; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, लजा भक्त-गण-अपने भक्तों के साथ।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके निजी भक्त रूप गोस्वामी तथा हरिदास ठाकुर से मिले। तब महाप्रभु अपने भक्तों के साथ एक चबूतरे पर बैठ गये।

रूप हरिदास दुँह वसिला पिण्डा-तले ।

सब्बार आग्रहे ना उठिला पिण्डार उपरे ॥ 111 ॥

शब्दार्थ

रूप हरिदास-रूप गोस्वामी तथा हरिदास ठाकुर, दुँहे-दोनों, वसिला-बैठ गये; पिण्डा-तले-उस उच्च आसन से नीचे जिस पर श्री चैतन्य महाप्रभु बैठे थे; सबार-सभी भक्तों के; आग्रहे-आग्रह करने पर; ना उठिला-उठे नहीं, पिण्डार उपरे-उच्च आसन पर, जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों के साथ बैठे थे।

अनुवाद

रूप गोस्वामी तथा हरिदास ठाकुर उस चबूतरे के नीचे बैठे, जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु बैठे थे। यद्यपि सभी लोग उनसे महाप्रभु तथा उनके पार्षदों की बराबरी में बैठने का आग्रह कर रहे थे, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया।

‘पूर्व-श्लोक पड़, रूप,’ प्रभु आज्ञा कैला ।

लज्जाते ना पड़े रूप मौन धरिला ॥ 112 ॥

शब्दार्थ

पूर्व-श्लोक-पिछला श्लोक, पड़-पढ़ो, रूप-मेरे प्रिय रूप; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; आज्ञा कैला-आदेश दिया; लज्जाते-अत्यन्त शर्म के कारण; ना पड़े-नहीं पढ़ा; रूप-रूप गोस्वामी, मौन धरिला-मौन रहे।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रूप गोस्वामी को पहले वाला श्लोक पढ़ने का आदेश दिया, तो अत्यधिक लजावश रूप गोस्वामी ने इसे नहीं पढ़ा, अपितु चुप रहे।

स्वरूप-गोसाजि तबे सेइ श्लोक पड़िल ।

शुनि' सबाकार चित्ते चमत्कार हैल ॥ 113॥

शब्दार्थ

स्वरूप-गोसाजि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी, तबे-तब, सेइ-वह, श्लोक पड़िल-श्लोक पढ़े, शुनि'-उसे सुनकर; सबाकार-उन सभी के, चित्ते-मनों में, चमत्कार हैल-अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

अनुवाद

तब स्वरूप गोस्वामी ने वह श्लोक सुनाया और जब सारे भक्तों ने इसे सुना, तो उनके मन आश्चर्यचकित हो उठे।

प्रियः सोऽयं कृष्णः सह-चरि कुरु-क्षेत्र-मिलितस्

तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः सङ्गम-सुखम् ।

तथाप्यन्तः-खेलन्मधुर-मुरली-पञ्चम-जुषे

मनो मे कालिन्दी-पुलिन-विपिनाय स्पृहयति ॥ 114॥

शब्दार्थ

प्रियः-अति प्रिय; सः-वे; अयम्-यह; कृष्णः-भगवान् कृष्ण; सह-चरि-हे मेरी प्रिय सखी, कुरु-क्षेत्र-मिलितः-जो अब कुरुक्षेत्र में मिले हैं; तथा-तथा; अहम्-मैं; सा-वही; राधा-राधारानी (हूँ); तत्-वही; इदम्-यह; उभयोः-हम दोनों के; सङ्गमसुखम्-मिलन का आनन्द (है); तथा-अपि-फिर भी; अन्तः-भीतर, खेलन्-बजाते हुए, मधुर-मधुर; मुरली-मुरली का; पञ्चम-पंचम स्वर, जुषे-जो आनन्द लेता है; नीचे; स्पृहयति-इच्छा उत्पन्न हो रही है।

अनुवाद

“हे सखी, अब मैं इस कुरुक्षेत्र में अपने पुराने तथा प्रिय मित्र कृष्ण से मिली हूँ। मैं वही राधारानी हूँ और अब हम मिल रहे हैं। यह अत्यन्त सुहावना है, किन्तु फिर भी मैं यमुना-तट के वन के वृक्षों के नीचे जाना चाहती हूँ। मैं वृन्दावन के जंगल के भीतर उनकी मधुर वंशी से पंचम स्वर निकलते सुनना चाहती हूँ।”

राय, भट्टाचार्य बले,-“तोमार प्रसाद विने ।

तोमार हृदय एड़ जानिल केमने ॥ 115॥

शब्दार्थ

राय-रामानन्द राय; भट्टाचार्य-सार्वभौम भट्टाचार्य; बले-बोले; तोमार प्रसाद विने-आपकी विशेष कृपा के बिना; तोमार हृदय-आपका मनोभाव, एड़-यह रूप गोस्वामी, जानिल-जान गया, केमने-कैसे।

अनुवाद

यह श्लोक सुनकर रामानन्द राय तथा सार्वभौम भट्टाचार्य दोनों ने चैतन्य महाप्रभु से कहा, “आपकी विशेष कृपा के बिना यह रूप गोस्वामी किस तरह आपके मन को समझ सकता था?”

आमाते सञ्चारि' पूर्वे कहिला सिद्धान्त ।

ये सब्ब सिद्धान्ते ब्रह्मा नाहि पाय अन्त ॥ 116 ॥

शब्दार्थ

आमाते-मेरे, सञ्चारि'-सभी सिद्धान्तों का संचार करके; पूर्वे-पहले ही; कहिलाआपने प्रकट कर दिये; सिद्धान्त-निष्कर्षात्मक तथ्य; ये-जिन; सब-सभी का; सिद्धान्तेनिष्कर्ष, ब्रह्मा-ब्रह्माजी तक; नाहि पाय अन्त-सीमा नहीं पा सकते।

अनुवाद

श्रील रामानन्द राय ने स्वीकार किया कि इसके पूर्व श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके हृदय को वह शक्ति प्रदान कर दी थी, जिससे कि वे उच्च तथा निर्णायक कथन को व्यक्त कर सकें, जिस तक ब्रह्माजी तक की पहुँच नहीं है।

ताते जानि—पूर्वे तोमार पाजाछे प्रसाद ।

ताहा बिना नहे तोमार हृदयानुवाद ॥117॥

शब्दार्थ

ताते-ऐसी परिस्थितियों में, जानि-मैं समझ सकता हूँ, पूर्व-पहले से ही; तोमार-आपकी; पाजाछे प्रसाद-विशेष कृपा उसने प्राप्त कर ली है; ताहा विना-इसके बिना; नहे-सम्भव नहीं है; तोमार-आपके; हृदय-अनुवाद-हृदय के भावों को व्यक्त करना।

अनुवाद

उन्होंने कहा, “यदि आपने पहले उस पर कृपा न की होती, तो उसके लिए आपके आन्तरिक भावों को व्यक्त कर पाना सम्भव न हो पाता।”

तात्पर्य

भक्तगण श्रील रूप गोस्वामी पर श्री चैतन्य महाप्रभु की विशेष कृपा के लिए कृतज्ञता-ज्ञापन निम्नलिखित शब्दों में करते हैं :

श्रीचैतन्यमनोऽभीष्टं स्थापितं येन भूतले ।

स्वयं रूपः कदा मह्यं ददाति स्वपदान्तिकम् ॥

“कब श्रील रूप गोस्वामी प्रभुपाद, जिन्होंने इस भौतिक जगत् में चैतन्य महाप्रभु की इच्छापूर्ति हेतु आन्दोलन स्थापित किया है, अपने चरणकमलों में मुझे शरण देंगे?”

श्रील रूप गोस्वामी का विशेष कार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के भावों को स्थापित करना है। ये भाव उनकी इच्छाएँ हैं कि उनकी विशेष कृपा को इस कलियुग में विश्वभर में प्रसारित किया जाए।

पृथिवीते आछे यत नगरादि-ग्राम ।

सर्वत्र प्रचार हैबे मोर नाम ॥

श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा है कि सारे जगत् में, हर गाँव तथा हर नगर में हर व्यक्ति उनको तथा उनके संकीर्तन आन्दोलन को जाने। ये श्री चैतन्य महाप्रभु की आन्तरिक भावनाएँ हैं। श्री रूप गोस्वामी ने महाप्रभु की इन समस्त भावनाओं को लिपिबद्ध करने का बीड़ा उठाया। अब पुनः श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से वही भावनाएँ गोस्वामियों के सेवकों द्वारा सारे विश्व में प्रसारित की जा रही हैं। और वे भक्त जो शुद्ध तथा सरल हैं इस प्रयास की सराहना करेंगे। किन्तु जैसाकि श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने निष्कर्ष निकाला है कि जो लोग कूकर-सूकर के स्तर पर हैं, वे कभी भी

इस महत् प्रयास की सराहना नहीं करेंगे। फिर भी श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय के प्रचारकों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि वे विश्वभर में अपना उत्तरदायित्व निभाते रहेंगे, भले ही कूकर-सूकर तुल्य पुरुष उनकी प्रशंसा न करें।

प्रभु कहे,—“कह रूप, नाटकेर श्लोक ।

ये श्लोक शुनिले लोकेर याय दुःख-शोक” ॥118॥

शब्दार्थ

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, कह-कृपया सुनाओ; रूप-मेरे प्रिय रूप; नाटकेर श्लोक-अपने नाटक का श्लोक; ये-जिस; श्लोक-श्लोक को, शुनिलेसुनकर; लोकेर-सभी लोगों के; याय-दूर हो जाये; दुःख-शोक-दुःख तथा शोक।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभुने कहा, “हे प्रिय रूप, तुम अपने नाटक का वह श्लोक सुनाओ, जिसे सुनने पर सारे लोगों के दुःख तथा शोक भाग जाते हैं।”

बार बार प्रभु यदि तारे आज्ञा दिल ।

तबे सेइ श्लोक रूप-गोसाजि कहिल ॥ 119 ॥

शब्दार्थ

बार बार-बारम्बार; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, यदि-जब, तारे-उन्हें; आज्ञा दिल-आदेश दिया; तबे-तब; सेइ श्लोक-वह श्लोक, रूप-गोसाजि-रूप गोस्वामी ने; कहिल-उच्चारण किया।

अनुवाद

जब महाप्रभु उसी के लिए बारम्बार आदेश देते रहे, तब रूप गोस्वामीने वह श्लोक, जो आगे आया है, सुनाया।

तुण्डे ताण्डविनी रतिं वितनुते तुण्डावली-लब्धये

कर्ण-क्रोड़-कडुम्बिनी घटयते कर्णाबुंदेभ्यः स्पृहाम् ।

चेतः-प्राङ्गण-सङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां

कृतिं नो जाने जनिता कियद्विरमृतैः कृष्णेति वर्ण-द्वयी ॥ 120 ॥

शब्दार्थ

तुण्डे-मुख में, ताण्डविनी-नृत्य करता है; रतिम्-अभिलाषा; वितनुते-बढ़ाता है; तुण्ड-आवली-लब्धये-अनेक मुख प्राप्त करने की; कर्ण-कान के; क्रोड़-छिद्र में, कड़म्बिनी-प्रस्फुटित होता है; घटयते-उत्पन्न कराता है; कर्ण-अर्बुदेभ्यः स्पृहाम्लाखों कान प्राप्त करने की इच्छा, चेतः-प्राङ्गण-हृदय के आँगन में, सङ्गिनी-संगी बनकर; विजयते-जीत लेता है; सर्व-इन्द्रियाणाम्-सभी इन्द्रियों के; कृतिम्-कार्यकलापों को; न उ-नहीं, जाने-मैं जानता, जनिता-उत्पन्न करता है; कियक्त्रिः-कितनी मात्रा में, अमृतैः-अमृत द्वारा; कृष्ण-कृष्ण नाम; इति-ये; वर्ण-द्वयी-दो वर्ण ।

अनुवाद

“मैं नहीं जानता हूँ कि “कृष्-ण” शब्द के दो अक्षरों ने कितना अमृत उत्पन्न किया है। जब कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण किया जाता है, तब यह मुख के भीतर नृत्य करता प्रतीत होता है। तब हमें अनेकानेक मुखों की इच्छा होने लगती है। जब वही नाम कानों के छिद्रों में प्रविष्ट होता है, तब हमारी इच्छा करोड़ों कानों के लिए होने लगती है और जब यह पवित्र नाम हृदय के आँगन में नृत्य करता है, तब यह मन की गतिविधियों को जीत लेता है, जिससे सारी इन्द्रियाँ जड़ हो जाती हैं”

यत भक्त-वृन्द आर रामानन्द राय ।

श्लोक शुनि’ सबार हइल आनन्द-विस्मय ॥ 121॥

शब्दार्थ

यत भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी संगी भत; आर-तथा; रामानन्द रायरामानन्द राय; श्लोक शुनि’-इस श्लोक को सुनकर, सबार-सभी को; हइल-हो गया; आनन्द-विस्मय-दिव्य आनन्द तथा आश्चर्य।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों ने, विशेष रूप से श्री रामानन्द राय ने यह श्लोक सुना, तो वे दिव्य आनन्द से पूरित हो गये और आश्चर्यचकित रह गये।

सबे बले,-‘नाम-महिमा शुनियाछि अपार ।

एमन माधुर्य केह नाहि वर्ण आर’ ॥122॥

शब्दार्थ

सबे बले-उन सभी ने कहा; नाम-महिमा-हरि नाम के कीर्तन की महिमा, श्रुनियाछि-हमने सुनी है; अपार-कई बार; एमन-इस प्रकार की; माधुर्य-मधुरता; केह-किसी, नाहि-नहीं, वर्ण-वर्णित की, आर-और ने।

अनुवाद

सबने स्वीकार किया कि यद्यपि उन्होंने भगवान् के पवित्र नाम की महिमा विषयक अनेक कथन सुन रखे हैं, किन्तु उन्होंने रूप गोस्वामी का जैसा मधुर वर्णन कभी नहीं सुना।

राय कहे,-“कोन् ग्रन्थ कर हेन जानि?।

याहार भितरे एइ सिद्धान्तेर खनि?” ॥ 123।

शब्दार्थ

राय कहे-रामानन्द राय ने पूछा, कोन्-किस प्रकार का; ग्रन्थ-नाट्य ग्रन्थ; करतुम लिख रहे हो; हेन-ऐसा; जानि-मैं समझ रहा हूँ, याहार भितरे-जिसमें, एइ-इन, सिद्धान्तेर खनि-सिद्धान्तों की खान है।

अनुवाद

रामानन्द राय ने पूछा, “तुम किस तरह का नाटक लिख रहे हो? हम समझ सकते हैं कि यह निष्कर्ष रूप सिद्धान्तों की खान है।”

स्वरूप कहे,-“कृष्ण-लीलार नाटक करिते।

ब्रज-लीला-पुर-लीला एकत्र वर्णिते” ॥124॥

शब्दार्थ

स्वरूप कहे-रूप गोस्वामी की ओर से स्वरूप दामोदर उत्तर दिये; कृष्ण-लीलारभगवान् कृष्ण की लीलाओं का, नाटक करिते-नाटक रचना कर रहे हैं; ब्रज-लीला-पुर लीला-उनकी वृन्दावन में की गई लीलाएँ तथा मथुरा तथा द्वारका की लीलाएँ, एकत्रएक ही ग्रन्थ में, वर्णिते-वर्णन करने के लिए।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने श्रील रूप गोस्वामी की ओर से उत्तर दिया, “उसने भगवान् कृष्ण की लीलाओं पर नाटक लिखना चाहा था। उसने एक ही पुस्तक में वृन्दावन लीलाओं तथा द्वारका एवं मथुरा की लीलाओं का वर्णन करने की योजना बनाई थी।

आरम्भियाछिला, एबे प्रभु-आज्ञा पाजा ।

दुड़ नाटक करितेछे विभाग करिया ॥ 125॥

शब्दार्थ

आरम्भियाछिला-श्रील रूप गोस्वामी ने आरम्भ किया; एबे-अब; प्रभु-आज्ञा पाजा-श्री चैतन्य महाप्रभु का आदेश पाकर; दुड़ नाटक-दो भिन्न नाटक; करितेछे-वह रचना कर रहा है; विभाग करिया-मूल विचार को विभक्त करके।

अनुवाद

“उसने इस तरह से प्रारम्भ किया, किन्तु अब श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार वह इसे दो भागों में विभाजित करके दो नाटक लिख रहा है-एक मथुरा तथा द्वारका की लीलाओं से सम्बन्धित और दूसरा वृन्दावन लीलाओं से सम्बन्धित।”

विदग्ध-माधव आर ललित-माधव ।

दुड़ नाटके प्रेम-रस अदभुत सब ॥ 126॥

शब्दार्थ

विदग्ध-माधव-विदग्ध माधव नामक, आर-तथा; ललित-माधव-ललित माधव नामक; दुड़ नाटके-दोनों नाटकों में, प्रेम-रस-भगवान् कृष्ण के प्रति प्रेमभाव रस, अदभुत-अद्भुत; सब-सभी।

अनुवाद

“ये नाटक विदग्ध माधव तथा ललित माधव कहलाते हैं। इन दोनों में भगवत्प्रेम-रस का अदभुत वर्णन हुआ है।”

तात्पर्य

श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इस सम्बन्ध में हमें सूचित करते हैं कि श्रील रूप गोस्वामी ने शकाब्द 1454 (1532 ई.) में विदग्ध माधव नामक नाटक की रचना समाप्त की और ललित-माधव को शकाब्द 1459 (1537 ई.) में समाप्त किया। रामानन्द राय तथा श्रील रूप गोस्वामी की यह वार्ता 1437 शकब्द (1515 ई.) में जगन्नाथ पुरी में हुई।

राय कहे, -“नान्दी-श्लोक पड़ देखि, शुनि?” ।

श्री-रूप श्लोक पड़े प्रभु-आज्ञा मानि’ ॥ 127॥

शब्दार्थ

राय कहे-श्री रामानन्द राय ने कहा; नान्दी-श्लोक पड़-कृपया नान्दी (प्रस्तावना) श्लोक पढ़ो; देखि-ताकि मैं देख सकूँ, शुनि-ताकि मैं सुन सकूँ; श्री-रूप श्लोक पड़े-श्री रूप गोस्वामी ने श्लोक पढ़ा; प्रभु-आज्ञा मानि’-श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश को स्वीकार करके।

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, “कृपया तुम विदग्ध माधव का नान्दी श्लोक सुनाओ, जिससे मैं सुन सकूँ और परीक्षा कर सकूँ।” इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभुका आदेश होने पर श्री रूप गोस्वामी ने श्लोक सुनाया (1.1)।

सुधानां चान्द्रीणामपि मधुरिमोन्माद-दमनी

दधाना राधादि-प्रणय-घन-सारैः सुरभिताम् ।

समन्तात्सन्तापोद्गम-विषम-संसार-सरणी-

प्रणीतां ते तृष्णां हरतु हरि-लीला-शिखरिणी ॥128॥

शब्दार्थ

सुधानाम्-अमृत की; चान्द्रीणाम्-चन्द्रमा पर उत्पन्न; अपि-भी; मधुरिमा-मधुरता; उन्माद-दमनी-गर्व को नीचा दिखाने वाली; दधाना-वितरित करने वाली; राधा-आदिश्रीमती राधारानी तथा उनकी सखियों का; प्रणय-घन-सघन प्रेम व्यापार, सारे:-सार द्वारा, सुरभिताम्-सुगन्ध; समन्तात्-सर्वत्र; सन्ताप-कष्टी को; उद्गम-उत्पन्न होने वाले; विषम-अत्यन्त भयानक, संसार-सरणी-भौतिक जगत् में, प्रणीताम्-बनाया; ते-आप; तृष्णाम्-अनावश्यक इच्छाओं को, हरतु-समाप्त करें, हरि-लीला-श्रीकृष्ण की लीलाएँ, शिखरिणी-दही और मिश्री के मिश्रण के समान।

अनुवाद

“श्रीकृष्ण की लीलाएँ भौतिक जगत् में व्याप्त कष्टों को कम करें और अनावश्यक इच्छाओं को समाप्त करें। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की लीलाएँ शिखरिणी के समान हैं, जो दही तथा मिश्री का मिश्रण है। वे चन्द्रमा पर उत्पन्न अमृत के गर्व को भी नीचा दिखाने वाली हैं, क्योंकि वे श्रीमती राधारानी तथा गोपियों के सघन प्रेम-व्यवहार की मधुर सुगन्धि को व्याप्त करने वाली हैं।”

राय कहे,— ‘कह इष्ट-देवेर वर्णन’ ।

प्रभुर सङ्कोचे रूप ना करे पठन ॥129॥

शब्दार्थ

राय कहे-रामानन्द राय कहते हैं; कह-अब सुनाओ; इष्ट-देवेर वर्णन-अपने आराध्य श्रीविग्रह की महिमा का वर्णन; प्रभुर सङ्कोचे-श्री चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति में संकोच का अनुभव करके; रूप-रूप गोस्वामी; ना करे-नहीं कर पाये; पठन-पाठ।

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, “अब कृपया अपने आराध्य श्रीविग्रह की महिमा का वर्णन सुनाओ।” किन्तु रूप गोस्वामी संकोच कर रहे थे, क्योंकि श्री चैतन्य महाप्रभु उपस्थित थे।

प्रभु कहे,—“कह, केने कर सङ्कोचे-लाजे? ।

ग्रन्थेर फल शुनाइबा वैष्णव-समाजे ?” ॥ 130 ॥

शब्दार्थ

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; कह-सुनाओ; केने-क्यों, कर-तुम करते हो; सङ्कोचे-लाजे-संकोच तथा लज्जा; ग्रन्थेर-ग्रन्थ का; फल-फल; शुनाइबा-सुनाओ; वैष्णव-समाजे-शुद्ध भक्तों के समाज में।

अनुवाद

किन्तु महाप्रभु ने यह कहते हुए रूप गोस्वामी को प्रोत्साहित किया, “तुम संकोच क्यों कर रहे हो? तुम इसे सुनाओ, जिससे भक्तगण तुम्हारे ग्रन्थ के शुभ फल को सुन सकें।”

तबे रूप-गोसाजि यदि श्लोक पड़िल ।

शुनि' प्रभु कहे,—‘एइ अति स्तुति हैल’ ॥ 131॥

शब्दार्थ

तबे-उस समय, रूप-गोसाजि-रूप गोस्वामी ने; यदि-जब, श्लोक पड़िल-श्लोक पढ़ा, शुनि'-उसे सुनकर; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; एइ-यह; अति स्तुति-अतिशयोक्तिपूर्ण प्रार्थना, हैल-हो गई।

अनुवाद

जब रूप गोस्वामी ने उनका श्लोक सुनाया, तो चैतन्य महाप्रभु ने इसको अस्वीकृत कर दिया, क्योंकि इसमें उनकी निजी महिमा का वर्णन था। उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि यह अतिशयोक्तिपूर्ण कथन है।

अनर्पित-चरीं चिरात्करुणयावतीर्णः कलौ

समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वल-रसां स्व-भक्ति-श्रियम् ।

हरिः पुरट-सुन्दर-द्युति-कदम्ब-सन्दीपितः

सदा हृदय-कन्दरे स्फुरतु वः शची-नन्दनः ॥ 132॥

शब्दार्थ

अनर्पित-न दिया गया; चरीम्-पहले, चिरात्-चिरकाल से; करुणया-अहैतुकी कृपा द्वारा, अवतीर्णः-अवतरित, कलौ-कलियुग में, समर्पयितुम्-प्रदान करने के लिए, उन्नत-अत्यन्त उच्च स्तर का; उज्ज्वल-रसाम्—माधुर्य रस; स्व-भक्ति-अपनी ही भक्ति का; श्रियम्-खजाना; हरिः-भगवान्, पुरट-सोने से भी; सुन्दर-अधिक सुन्दर, द्युति-कान्ति से; कदम्ब-समूह के साथ; सन्दीपितः-चमकते; सदा-सर्वदा, हृदय-कन्दरे-हृदय के अन्तरतम में, स्फुरतु-स्थित हो; वः-आपके; शची-नन्दनः-माता शची का पुत्र।

अनुवाद

“परम भगवान्, जो कि श्रीमती शचीदेवी के पुत्र के रूप में सुविख्यात हैं, आपके हृदय के अन्तरतम प्रदेश में स्थित हों। पिछले सोने की द्युति से देदीप्यमान, वे अपनी अहैतुकी कृपा से कलियुग में वह प्रदान

करने के लिए अवतरित हुए हैं, जो अन्य अवतारों ने कभी नहीं दियावे भक्ति का सर्वाधिक उच्च रस अर्थात् माधुर्य-प्रेम-रस प्रदान करने के लिए अवतरित हुए हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक (विदग्ध माधव 1.2) आदिलीला (1.4 तथा 3.4) में भी दृष्टिगत होता है। विदग्ध माधव की अपनी टीका में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर मन्तव्य देते हैं—महाप्रभो: स्फूर्ति बिना हरिलीला रसास्वादनानुपपत्तेरिति भावः—“श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा बिना व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की लीलाओं का वर्णन नहीं कर सकता।” अतः श्रील रूप गोस्वामी ने कहा—वो युष्माकं हृदय रूप गुहायां शचीनन्दनो हरिः सिःस्फुरतु—“श्री चैतन्य महाप्रभु, जो साक्षात् सिंह के समान हैं और जो कामनारूपी हाथी का वध करते हैं, प्रत्येक के हृदय में स्फुरित हों, क्योंकि उनके कृपापूर्ण आशीर्वाद से व्यक्ति कृष्ण की दिव्य लीलाओं को समझ सकता है।”

सब भक्त-गण कहे श्लोक श्रुनिया ।

कृतार्थ करिला सबाय श्लोक श्रुनाजा ॥ 133॥

शब्दार्थ

सब भक्त-गण-वहाँ उपस्थित सभी भक्तगण, कहे-कहने लगे; श्लोक श्रुनियायह श्लोक सुनकर; कृत-अर्थ करिला-आपने कृतार्थ कर दिया; सबाय-सब को; श्लोक श्रुनाजा-यह श्लोक सुनाकर।

अनुवाद

उपस्थित समस्त भक्तों ने इस श्लोक की इतनी अधिक प्रशंसा की कि उन्होंने उनके दिव्य उच्चारण के लिए रूप गोस्वामी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की।

राय कहे,—“कोन्आमुखे पात्र-सन्निधान?” ।

रूप कहे,—“काल-साम्ये ‘प्रवर्तक’ नाम” ॥134॥

शब्दार्थ

राय कहे—रामानन्द राय ने कहा; कोन्-किस प्रकार; आमुखे-परिचय; पात्र-सन्निधान-पात्रों की उपस्थिति का, रूप कहे-श्रील रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया; कालसाम्ये-उचित समय पर, प्रवर्तक नाम-प्रवर्तक शीर्षक के अन्तर्गत।

अनुवाद

रामानन्द राय ने पूछा, “तुमने पात्रों के समूह का परिचय किस तरह कराया है?” रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया, “सारे पात्र प्रवर्तक शीर्षक के अन्तर्गत उपयुक्त समय पर एकत्र होते हैं।”

तात्पर्य

नाटकों में सारे अभिनेता पत्र कहलाते हैं। विश्वनाथ कविराज ने साहित्य दपण (6.283) में यही लिखा है :

दिव्यमर्त्ये स तद्रूपो मिश्रमन्यतरस्तयोः ।

सूचयेद् वस्तुबीजं वामुखं पात्रमथापि वा ॥

आमुख का अर्थ श्रील रूप गोस्वामी ने नाटक चन्द्रिका में दिया है :

सूत्रधारो नटी ब्रूते स्वकार्यं प्रतियुक्तिः ।

प्रस्तुताक्षेपिचित्रोक्त्या यत्तदामुखमीरितम् ॥

जब श्रील रामानन्द राय ने नाटक में पात्रों के समूह का परिचय कराने की योजना के विषय में पूछा, तो रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया कि जब सर्वप्रथम समय के अनुसार पात्र मंच पर प्रवेश करते हैं, तब इस प्रवेश को शास्त्रीय रूप से प्रवतक कहा जाता है। उदाहरण के लिए देखें निम्नलिखित श्लोक 136। श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि प्रस्तावना जिसे शास्त्रीय दृष्टि से अ/मुख कहते हैं, साहित्य दर्पण(6.288) के अनुसार पाँच प्रकार की हो सकती है :

उद्धृत्यकः कथोद्धतः प्रयोगातिशयस्तथा ।

प्रवर्तकावलगिते पञ्च प्रस्तावना-भिदाः ॥

“प्रस्तावनाएँ पाँच प्रकार की हैं : (1) उद्धृत्यक, (2) कथोद्धत, (3) प्रयो7/तिः/य, (4) प्रवतक तथा (5) अवलगित ।”

ये पाँच प्रकार की प्रस्तावनाएँ आमुख कहलाती हैं। श्रील रामानन्द राय ने पूछा कि इन पाँच प्रस्तावनाओं में किसका प्रयोग हुआ है। श्रील रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया कि उन्होंने प्रवतक प्रस्तावना का प्रयोग किया है।

आक्षिप्तः काल-साम्येन प्रवेशः स्यात्प्रवर्तकः ॥ 135 ॥

आक्षिप्तः-क्रियान्वित होता है; काल-साम्येन-उपयुक्त समय आने पर; प्रवेशः- प्रवेश; स्यात्-हो; प्रवर्तकः- प्रवर्तकः।

अनुवाद

“जब उपयुक्त समय आने पर पात्रों का प्रवेश होता है, तो यह प्रवेश प्रवर्तक कहलाता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत नाटक-चन्द्रिका (12) का है।

सोऽयं वसन्त-समयः समियाय यस्मिन्

पूर्ण तमीश्वरमुपोढ-नवानुरागम् ।

गूढ-ग्रहा रुचिरया सह राधयासौ

रङ्गाय सङ्गमयिता निशि पौर्णमासी ॥ 136॥

शब्दार्थ

सः-वही; अयम्-यह; वसन्त-समयः-वसन्त ऋतुः समियाय-आ चुकी है; यस्मिन्-जिसमें; पूर्णम्-सम्पूर्ण; तम्-उनको; ईश्वरम्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, उपोढ-प्राप्त किया हुआ, नव-अनुरागम्-नवीन आकर्षण; गूढ-ग्रहा-जिसने तारों को ढक दिया; रुचिरया-अत्यन्त सुन्दर; सह-के साथ; राधया-श्रीमती राधारानी; असौ-उस पूर्णमासी की रात में, रङ्गाय-सौन्दर्य बढ़ाने के लिए सङ्गमयिता-मिलने के लिए निशि-रात्रि के समय; पौर्णमासी-पूर्ण चन्द्रमा से युक्त रात।

अनुवाद

“वसन्त ऋतु आ चुकी थी तथा उस ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा ने सभी प्रकार से पूर्ण भगवान् को रात में सुन्दरी राधारानी से मिलने के नवीन आकर्षण से प्रेरित किया, जिससे उनकी लीलाओं का सौन्दर्य बढ़ सके।”

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने इस श्लोक (विदग्ध माधव 1.10) की दो प्रकार से व्याख्या की है-एक भगवान् कृष्ण के लिए और दूसरी श्रीमती राधारानी के लिए। जब कृष्ण के पक्ष में व्याख्या की जाती है, तब रात से अमावस्या का अर्थ लिया जाता है और जब श्रीमती राधारानी के पक्ष में ली जाती है, तो पूर्णमासी के रूप में।

राय कहे,-“प्ररोचनादि कह देखि, शुनि?” ।

रूप कहे,-“महाप्रभुर श्रवणेच्छा जानि” ॥137॥

शब्दार्थ

राय कहे-श्रील रामानन्द राय ने कहा; प्ररोचनादि कह-कृपया प्ररोचना सुनाइये, देखि-मैं परीक्षा करूंगा; शुनि-और सुनूंगा, रूप कहे-श्रील रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में, श्रवण-इच्छा-सुनने की इच्छा; जानि-मुझे लगता है।

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, “कृपया तुम मुझे प्ररोचना भाग सुनाओ, जिससे मैं सुन सकूँ तथा परीक्षा कर सकूँ।” श्री रूप ने उत्तर दिया, “मैं सोचता हूँ कि श्री चैतन्य महाप्रभु की प्ररोचना सुनने की इच्छा है।”

तात्पर्य

काल तथा स्थान, नायक तथा दर्शक कफी प्रशंसा करके दर्शक को अधिकाधिक सुनने के लिए उन्मुख करने की विधि प्ररोचना कहलाती है। प्ररोचन के विषय में नाटक-चन्द्रिक का यह कथन है :

देशकालकथावस्तुसभ्यादीनां प्रशंसया ।

श्रोतृणां उन्मुखीकारः कथितेयं प्ररोचना ॥

इसी तरह साहित्य दर्पण (6.286) में कहा गया है :

तस्याः प्ररोचना वीथी तथा प्रहसनामुखे ।

अंगान्यत्रोमुखीकारः प्रशंसातः प्ररोचना ॥

संस्कृत में प्रस्तुत किये जाने वाले किसी भी साहित्य को प्रामाणिक सन्दर्भ ग्रन्थों में उल्लिखित नियमों का पालन करना चाहिए। श्रील रामानन्द राय द्वारा पूछे गये शास्त्रीय प्रश्न तथा श्रील रूप गोस्वामी के उत्तर सूचित करते हैं कि दोनों ही नाटक लिखने की विधियों से भलीभाँति अवगत थे तथा उनमें दक्ष थे।

भक्तानामुदगादनर्गल-धियां वर्गो निसर्गोज्ज्वलः शीलैः

पल्लवितः स बल्लव-वधू-बन्धोः प्रबन्धोऽप्यसौ ।

लेभे चत्वरतां च ताण्डव-विधेर्तृन्दाष्टवी-गर्भ-भूर

मन्ये मद्बिध-पुण्य-मण्डल-परीपाकोऽयमुन्मीलति ॥138॥

शब्दार्थ

भक्तानाम्-भक्तों के; उदगात्-प्रकट हुए हैं; अनर्गल-धियाम्-निरन्तर राधा कृष्ण का चिन्तन करना; वर्गः-सभा; निर्ग-उज्ज्वलः-स्वाभाविक रूप से अत्यन्त उन्नत; शीलैः-प्राकृतिक काव्यात्मक अलंकारों के साथ, पल्लवितः-एक वृक्ष के पत्तों की भाँति फैले; सः-वह; बल्लव-वधू-बन्धोः-गोपियों के बन्धु, श्रीकृष्ण; प्रबन्धः-ग्रन्थ; अपिभी, असौ-उसने; लेभे-प्राप्त किया है; चत्वरताम्-समतल जमीन वाले चतुष्कोणीय स्थान के गुण, च-तथा; ताण्डव-विधेः-नृत्य करने के लिए, वृन्दा-अटवी-वृन्दावन के वन के लिए; गर्भ-भू-आन्तरिक मैदान, मन्ये-मैं मानता हूँ, मत्-विध-मुझ जैसे व्यक्तियों के; पुण्य-मण्डल-पुण्य कर्मों का समूह; परीपाकः-पूर्ण विकसित; अयम्-यह; उन्मीलति-प्रतीत होता है।

अनुवाद

“इस समय उपस्थित भक्तगण निरन्तर भगवान् के विषय में सोचते रहते हैं, अतएव वे बहुत उच्च हैं। विदग्ध माधव नामक यह ग्रन्थ भगवान् कृष्ण की लीलाओं का काव्यात्मक अलंकारों के विभूषणों के साथ चित्रण करता है। वृन्दावन के भीतरी भूभाग गोपियों के साथ कृष्ण के नृत्य के लिए उपयुक्त मंच प्रस्तुत करते हैं। इसलिए मैं सोचता हूँ कि हम जैसे लोग, जिन्होंने भक्ति में आगे बढ़ने का प्रयास किया है, उनके पुण्यकर्म अब परिपक्व हो चुके हैं।

तात्पर्य

यह विदग्ध माधव के प्रथम अंक का आठवाँ श्लोक है।

अभिव्यक्ता मत्तः प्रकृति-लघु-रूपादपि बुधा

विधात्री सिद्धार्थान्हरि-गुण-मयी वः कृतिरियम् ।

पुलिन्देनाप्यग्निः किमुस मधमुन्मथ्य जनित

हिरण्य-श्रेणीनामपहरति नान्तः-कलुषताम् ॥ 139 ॥

शब्दार्थ

अभिव्यक्ता-अभिव्यक्त हुआ है; मत्तः-मुझ से; प्रकृति-स्वभाव से, लघु-रूपात्दीन अवस्था में स्थित, अपि-यद्यपि, बुधाः-हे विद्वान् भक्तों, विधात्री-जो शायद ला पाये; सिद्ध-अर्थान्-सिद्धि के सभी अनिवार्य तत्त्व; हरि-गुण-मयी-जिसकी विषय वस्तु श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन है; वः-आपके; कृतिः-विदग्ध माधव नामक काव्य ग्रन्थ, इयम्-यह; पुलिन्देन-

निम्न श्रेणि के व्यक्तियों द्वारा, अपि-यद्यपि, अग्नि:-आग; किम् उ-चाहे; समिधम्-लकड़ी; उन्मथ्य-को रगड़कर, जनित:-
उत्पन्न की गई हो; हिरण्यसोने के; श्रेणीनाम्-के भण्डारों का; अपहरति-नष्ट कर देती है; न-नहीं, अन्त:-आन्तरिक;
कलुषताम्-कल्मश।

अनुवाद

“हे विद्वान भक्तों, मैं स्वभाव से अज्ञान तथा दीन हूँ। फिर भी यद्यपि मुझसे यह विदग्ध माधव निकला है, तो भी यह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दिव्य गुणों के वर्णन से भरा पड़ा है। इसलिए क्या ऐसा ग्रन्थ जीवन के उच्चतम लक्ष्य-प्राप्ति को पूरा नहीं करा सकेगा? यद्यपि इसके काठ को निम्न श्रेणी का व्यक्ति भी जला सकता है, तो भी यह अग्नि सोने को शुद्ध कर सकती है। इसी तरह यद्यपि मैं स्वभाव से अत्यन्त नीच हूँ, फिर भी यह ग्रन्थ स्वर्ण जैसे भक्तों के हृदयों के भीतर की धूल को स्वच्छ करने में सहायता कर सकता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक भी विदग्ध-माधव (1.6) का है।

राय कहे,—“कह देखि प्रेमोत्पत्ति-कारण ? ।

पूर्व-राग, विकार, चेष्टा, काम-लिखन?” ॥140॥

शब्दार्थ

राय कहे-श्रील रामानन्द राय ने आगे पूछा, कह-कृपया वर्णन कीजिये; देखि-ताकि मैं जान पाऊँ, प्रेम-उत्पत्ति-कारण-प्रेम भाव जागृत करने का कारण, पूर्व-राग-पहले का अनुराग, विकार-प्रेम विकार, चेष्टा-प्रेम चेष्टा, काम-लिखन-गोपियों की कृष्ण के प्रति आसक्ति को प्रकट करने वाले पत्रों को लिखना।

अनुवाद

तब रामानन्द राय ने कृष्ण तथा गोपियों के मध्य प्रेम-व्यापार के कारणों के विषय में, यथा पूर्व-राग, प्रेम-विकार, प्रेम-चेष्टा तथा कृष्ण के लिए गोपियों के प्रेम के जागृत होने को प्रकट करने वाले पत्रों के आदान-प्रदान के विषय में पूछा।

क्रमे श्री-रूप-गोसाजि सकलि कहिल ।

शुनि' प्रभुर भक्त-गणेर चमत्कार हैल ॥ 141 ॥

शब्दार्थ

क्रमे-क्रमबद्ध तरीके से; श्री-रूप-गोसाजि-श्रील रूप गोस्वामी ने; सकलि कहिल-सब कुछ वर्णन किया; शुनि'-जिसे सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्तगणेर-भक्तों को; चमत्कार-आश्चर्य, हैल-हो गया।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने क्रमशः रामानन्द राय द्वारा पूछी गई हर बात बता दी। उनकी व्याख्या सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्त आश्चर्यचकित रह गये।

तात्पर्य

श्रील रूप गोस्वामी ने अपने ग्रन्थ उज्ज्वला-नीलमणि (विप्रलम्भ प्रकरण 26) में काम-लिखन की विवेचना की है :

स लेखः कामलेखः स्यात् यः स्व-प्रेमप्रकाशकः ।

युवत्या यूनि यूना च युवत्यां सम्प्रहीयते ॥

“युवक तथा युवती के मध्य पत्रों का आदान-प्रदान, जिसका सम्बन्ध उनकी पारस्परिक अनुरक्ति को जागृत करने से होता है, काम-लेख कहलाता है।”

एकस्य श्रुतमेव लुम्पति मतिं कृष्णेति नामाक्षरं

सान्द्रोन्माद-परम्परामुपनयत्यन्यस्य वंशी-कलः ।

एष स्निग्ध-घन-द्युतिर्मनसि मे लग्नः पटे वीक्षणात्

कष्टं धिक्पुरुष-त्रये रतिरभून्मन्ये मृतिः श्रेयसी ॥ 142 ॥

शब्दार्थ

एकस्य-एक व्यक्ति के; श्रुतम्-सुन लिया है; एव-निश्चित रूप से; लुम्पति—हर लेता है; मतिम्-मन को; कृष्ण इति-कृष्ण; नाम-अक्षरम्-नाम के वर्ण; सान्द्र-उन्मादगहरी उन्मत्तता, परम्पराम्-एक झड़ी, उपनयति-उत्पन्न करता है; अन्यस्य-एक अन्य की, वंशी-कलः-वंशी की ध्वनि; एषः-यह तीसरा; स्निग्ध-प्रेम देने वाला; घन-द्युतिः-बिजली के समान कान्तियुक्त; मनसि-मन में, मे-मेरे, लग्नः-आसक्ति; पटे-चित्र में, वीक्षणात्-देखने पर, कष्टम् धिक्-अरे, मुझ पर धिकार

है; पुरुष-त्रये-तीन व्यक्तियों के प्रति; रति:-आसक्ति; अभूत-जागृत हो गई है; मन्ये-मैं सोचती हूँ, मृति:-मृत्यु; श्रेयसी-श्रेयस्कर है।

अनुवाद

“(कृष्ण के प्रति पहले के अनुराग-पूर्व-राग का अनुभव करते हुए राधारानी ने सोचा :) “चूँकि मैंने कृष्ण नामक व्यक्ति का नाम सुन रखा है, इसलिए मेरी सदबुद्धि नष्ट हो चुकी है। फिर, एक दूसरा व्यक्ति भी है, जो अपनी वंशी इस तरह बजाता है कि उसकी ध्वनि सुनकर मेरे हृदय में गहन उन्माद उत्पन्न होता है। यही नहीं, एक अन्य व्यक्ति भी है, जिसके प्रति मेरा मन अनुरत हो उठता है जब मैं उसके चित्र में उसका सुन्दर बिजली जैसा तेज देखती हूँ। इसलिए मैं सोचती हूँ कि मुझे धिक्कार है, क्योंकि मैं एकसाथ तीन व्यक्तियों पर आसक्त हूँ। इसके लिए मेरे लिए मर जाना ही श्रेयस्कर होगा।”

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (2.9) का है।

इयं सखि सु-दुःसाध्या राधा-हृदय-वेदना ।

कृता यत्र चिकित्सापि कुत्सायां पर्यवस्यति ॥ 143॥

शब्दार्थ

इयम्-यह; सखि-मेरी प्रिय सखी, सु-दुःसाध्या-उपचार करने में कठिन; राधाश्रीमती राधारानी की; हृदय-वेदना-हृदय के दुःख को; कृता-किया गया; यत्र-जिनमें, चिकित्सा-उपचार, अपि-यद्यपि, कुत्सायाम्-अपयश में ही; पर्यवस्यति-फलित होगा।

अनुवाद

“हे प्रिय सखी, श्रीमती राधारानी के हृदय की इन वेदनाओं को ठीक कर पाना अत्यन्त कठिन है। यदि इसका कोई उपचार भी किया जाए, तो अपयश ही हाथ लगेगा।”

तात्पर्य

यह श्लोक स्वयं श्रीमती राधारानी द्वारा कहा हुआ है (विदग्ध माधव 2.8) ।

धरि-अ पड़िच्छन्द-गुणं

सुन्दर मह मन्दिरे तुमं वससि ।

तह तह रुन्धसि बलि-अं

जह जह च-इदा पलाएम्हि ॥ 144 ॥

शब्दार्थ

धरि-अ-पकड़कर; पड़िच्छन्द-गुणम्-चित्र की कलात्मकता का गुण, सुन्दर-हे परम सुन्दर, मह-मेरे; मन्दिरे-हृदय के भीतर, तुमम्-तुम, वससि-वास करते हो; तह तह-उतना ही; रुन्धसि-रोक लेते हो; बलि-अम्-बलपूर्वक; जह जह-जितना ही; चइदा-विचलित होकर, पलाएम्हि-मैं भागने का प्रयास करती हूँ।

अनुवाद

“हे अतीव सुन्दर, तुम्हारे चित्र की कलात्मक सुन्दरता ने मेरे मन के भीतर छाप छोड़ दी है। चूँकि अब तुम मेरे मन के भीतर बसे हुए हो, इसलिए मैं तुम्हारी छाप के कारण उद्विग्न होकर जहाँ कहीं भी भागना चाहती हूँ, हे मित्र, मैं पाती हूँ कि तुम मेरा रास्ता रोक रहे हो।”

तात्पर्य

यह श्लोक (विदग्ध माधव 2.33) प्राकृत भाषा में है, संस्कृत में नहीं है। इसका संस्कृत रूपान्तर इस प्रकार होगा:

धृता प्रतिच्छन्दगुणं सुन्दर

मम मन्दिरे त्वं वससि ।

तथा तथा रुणत्सि बलितं

यथा यथा चकिता पलाये ॥

इसका अर्थ एक ही है, किन्तु भाषा भिन्न है। यह श्लोक मधुमंगल ने श्रीकृष्ण से कहा था, जब उसने श्रीमती राधारानी का पत्र उन्हें पढ़कर सुनाया था।

अग्रे वीक्ष्य शिखण्ड-खण्डमचिरादुत्कम्पमालम्बते

गुञ्जानां च विलोकनान्मुहुरसौ सास्त्रं परिक्रोशति ।

नो जाने जनयन्पूर्व-नटन-क्रीड़ा-चमत्कारितां बालायाः

किल चित्त-भूमिमविशत्कोऽयं नवीन-ग्रहः ॥ 145॥

शब्दार्थ

अग्रे-समक्ष; वीक्ष्य-देखकर; शिखण्ड-खण्डम्--कुछ मोर पंख; अचिरात्-अचानक; उत्कम्पम्-हृदय और देह का कम्पन; आलम्बते—ले जाती है; गुञ्जानाम्-गुञ्ज (छोटे शंख) की माला के; च-भी; विलोकनात्-देखकर, मुहुः-निरन्तर; असौ-वे; स-अस्त्रम्-आसुओं से युक्त; परिक्रोशति-रोने लगती है; न उ-नहीं, जाने-मैं जानता हूँ जनयन्-जाग जाता है; अपूर्व-नटन-अपूर्व कलात्मक नर्तन, क्रीड़ा-क्रियाओं की; चमत्कारिताम्-उन्मत्तता; बालायाः-इस दीन बाला की; किल-अवश्य ही, चित्तभूमिम्-हृदय में, अविशत्-प्रवेश कर गई है; कः-कैसे, अयम्-यह; नवीन-ग्रहः- नवीन भावविभोर करने वाले लक्षण।

अनुवाद

“अपने समक्ष मोर-पंख को देखकर यह बाला एकाएक काँपने लगती है। जब कभी यह गुंजा की माला देखती है, तो अश्रुपात करती है और उच्च स्वर से क्रन्दन करती है। मैं नहीं जानती हूँकि इस बेचारी बाला के हृदय में किस तरह का नवीन भाव प्रवेश कर गया है। की नाचने की प्रवृत्ति से ओतप्रोत कर दिया है, जिससे रंगमंच पर अदभुत अद्वितीय नृत्य उत्पन्न होता रहता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक (विदग्ध माधव 2.15) भगवान् कृष्ण की मातामही की सखी मुखरा ने बात-बात में मधुमंगल की मातामही पौर्णमासी से कहा है।

अकारुण्यः कृष्णो यदि मयि तवागः कथमिदं मुधा

मा रोदीर्मे कुरु परमिमामुत्तर-कृतिम् ।

तमालस्य स्कन्धे विनिहित—भुज-वल्लरिरियं

यथा वृन्दारण्ये चिरमविचला तिष्ठति तनुः ॥146॥

शब्दार्थ

अकारुण्यः-अत्यन्त निर्दयी; कृष्णः-भगवान् कृष्ण; यदि-यदि; मयि-मुझ पर; तव-तुम्हारा; आगः-दोष; कथम्-कैसे है; इदम्-यह; मुधा-व्यर्थ ही; मा रोदीः- मत रोओ; मे-मेरे लिए, कुरु-करो; परम्-लेकिन बाद में, इमाम्-यह; उत्तर-कृतिमुअन्तिम संस्कार; तमालस्य-एक तमाल वृक्ष के; स्कन्धे-तनों से; विनिहित-आलिंगन करती हुई, भुज-वल्लरिः-लताओं जैसी भुजाएँ, इयम्-यह; यथा-जहाँ तक सम्भव हो; वृन्दा-अरण्ये-वृन्दावन में, चिरम्-सदैव, अविचला-अविचल भाव से; तिष्ठति-रहे; तनुः-देह।

अनुवाद

“(श्रीमती राधारानी ने अपनी नित्य संगिनी विशाखा से कहा :) “हे प्रिय सखी, यदि कृष्ण मेरे प्रति क्रूर हैं, तो तुम्हे रोने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं होगा। तब मुझे मरना होगा, किन्तु बाद में तुम मेरे लिए एक काम करना-मेरे अन्तिम संस्कार में, मेरे शरीर तमाल वृक्ष पर उसी तरह रखना, जिस तरह मेरी भुजाएँ लताओं के समान तमाल वृक्ष का आलिंगन करती रहीं, जिससे मैं अविचल भाव से वृन्दावन में सदा-सदा के लिए रह सकती हूँ। यही मेरी अन्तिम विनती है।”

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (2.47) का है।

राय कहे,—“कह देखि भावेर स्वभाव?” ।

रूप कहे,—“ऐछे हय कृष्णा-विषयक ‘भाव’ ॥147॥

शब्दार्थ

राय कहे-रामानन्द राय ने कहा; कह-कृपया वर्णन कीजिये; देखि-ताकि मैं जान सकुँ, भावेर स्वभाव-प्रेमभाव का लक्षण; रूप कहे-रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया; ऐछे-ऐसा, हय-है; कृष्ण-विषयक-कृष्ण सम्बन्धी, भाव-प्रेमभाव।

अनुवाद

रामानन्द राय ने पूछा, “भावात्मक प्रेम के क्या लक्षण हैं?” रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया, “कृष्ण विषयक भावात्मक प्रेम का यह स्वभाव है” :

पीड़ाभिर्नव-कालकूट-कटुता-गर्वस्य निर्वासनो

निस्यन्देन मुर्दा सुधा-मधुरिमाहङ्कार-सङ्कोचनः ।

प्रेमा सुन्दरि नन्द-नन्दन-परो जागर्ति यस्यान्तरे

ज्ञायन्ते स्फुटमस्य वक्र-मधुरास्तेनैव विक्रान्तयः ॥ 148 ॥

शब्दार्थ

पीड़ाभिः-कष्टों द्वारा; नव-नवीन; काल-कूट-विष के; कटुता-विषैलेपन का; गर्वस्य-गर्व का; निर्वासनः-निषेध; निःस्यन्देन-बहाकर; मुदाम्-प्रसन्नता; सुधा-अमृत की; मधुरिमा-मधुरता का; अहङ्कार-अभिमान; सङ्कोचेनः-कम करता; प्रेमा-प्रेम; सुन्दरि-सुन्दर सखी, नन्द-नन्दन-परः-नन्द महाराज के पुत्र में एकनिष्ठ; जागर्तिविकसित करता है; यस्य-जिसका; अन्तरे-हृदय में, ज्ञायन्ते-देखे जाते हैं, स्फुटम्-स्पष्ट रूप से, अस्य-उसका; वक्र-कुटिल, मधुराः-तथा मधुर, तेन-उसके द्वारा; एव-अकेले ही; विक्रान्तयः-प्रभाव।

अनुवाद

“हे सुन्दरी, यदि कोई नन्द महाराज के पुत्र भगवान् कृष्ण के प्रति भगवत्प्रेम उत्पन्न कर लेता है, तो इस प्रेम के सारे कटु तथा मधुर प्रभाव उसके हृदय में प्रकट हो जायेंगे। ऐसा भगवत्प्रेम दो तरह से कार्य करता है। भगवत्प्रेम के विषैले प्रभाव सर्प के गहन तथा ताजे विष को परास्त कर देते हैं। फिर भी इसके साथ ही दिव्य आनन्द होता है, जो नीचे बहकर सर्प के विषैले प्रभावों को तथा अपने सिर पर अमृत डालने से प्राप्त सुख को भी परास्त कर देता है। यह दोहरा प्रभावशाली अनुभव होता है एकसाथ विषैला तथा अमृतमय।”

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (2.18) का है। यह मध्य-लीला (2,52) में भी आया है। यह पौर्णमासी द्वारा कहा गया है।

राय कहे,—“कह सहज-प्रेमे लक्षण” ।

रूप-गोसाजि कहे,—“साहजिक प्रेम-धर्म” ॥ 149 ॥

शब्दार्थ

राय कहे-श्रील रामानन्द राय ने पूछा; कह-कृपया मुझे बताओ, सहज-प्रेमे स्वाभाविक प्रेम का; लक्षण-लक्षण; रूप-गोसाजि कहे-रूप गोस्वामी उत्तर देते हैं; साहजिक-स्वाभाविक; प्रेम-धर्म-भगवत्प्रेम के लक्षण।

अनुवाद

रामानन्द राय ने आगे पूछा, “भगवत्प्रेम के उदय होने के स्वाभाविक लक्षण क्या हैं?” रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया, “ये भगवत्प्रेम के स्वाभाविक लक्षण हैं” :

स्तोत्रं यत्र तटस्थतां प्रकटयच्चित्तस्य धत्ते व्यथां

निन्दापि प्रमदं प्रयच्छति परीहास-श्रियं बिभ्रती ।

दोषेण क्षयितां गुणेन गुरुतां केनाप्यनातन्वती

प्रेम्णः स्वारसिकस्य कस्यचिदियं विक्रीडति प्रक्रिया ॥ 150 ॥

शब्दार्थ

स्तोत्रम्-प्रशंसा; यत्र-जिसमें; तटस्थताम्-तटस्थता; प्रकटयत्-प्रदर्शित करता है; चित्तस्य-हृदय में, धत्ते-देता है; व्यथाम्-पीड़ा का अनुभव, निन्दा-दोषारोपण; अपितथा; प्रमदम्—आनन्द को; प्रयच्छति—लाता है; परीहास-परिहास; श्रियम्-सौंदर्य, बिभ्रती-लाता है; दोषेण-दोष दर्शन से; क्षयितम्-घटने का गुण; गुणेन-सद्गुणों द्वारा; गुरुताम्-बढ़ता है; केन अपि-किसी के द्वारा; अनातन्वती-बढ़ता नहीं; प्रेम्णः- भगवत्प्रेम का; स्वारसिकस्य-स्वाभाविक; कस्यचित्-किसी का; इयम्-यह; विक्रीडति-हृदय में कार्य करता है; प्रक्रिया-प्रक्रिया।

अनुवाद

“जब कोई अपनी प्रिया से अपनी प्रशंसा सुनता है, तो वह बाहर से उदासीन बना रहता है, किन्तु अपने हृदय में पीड़ा का अनुभव करता है। जब वह अपनी प्रिया को अपने ऊपर दोषारोपण करते सुनता है, तो वह उन्हें परिहास मानता है और आनन्द लेता है। जब वह अपनी प्रेमिका में दोष देखता है, तो इससे उसका प्रेम घटता नहीं, न ही प्रेमिका के सद्गुण उसके सहज स्नेह को बढ़ा पाते हैं। इस तरह स्वाभाविक प्रेम सभी परिस्थितियों में चलता रहता है। इसी तरह स्वाभाविक भगवत्प्रेम हृदय के भीतर कार्य करता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (5.4) का है। इसे मधुमंगल की पितामही पौर्णमासी तथा सान्दीपनि मुनि की माता ने कहा है।

श्रुत्वा निष्ठुरतां ममेन्दु-वदना प्रेमाङ्कुरं भिन्दती

स्वान्ते शान्ति-धुरां विधाय विधुरे प्रायः पराञ्चिष्यति ।

किं वा पामर-काम-कार्मुक-परित्रस्ता विमोक्षयत्यसून् हा

मौग्ध्यात्फलिनी मनोरथ-लता मृद्वी मयोन्मूलिता ॥151॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा-सुनने से; निष्ठुरताम्-कूरता;मम-मेरी; इन्दु-वदना-चन्द्र सदृश मुख वाली; प्रेम-अङ्करम्-प्रेम के अङ्कुर को, भिन्दती-भेद देती है; स्व-अन्ते-अपने हृदय में, शान्तिधुराम्-अत्यन्त सहनशीलता; विधाय-धारण करके; विधुरे-शोकाकुल; प्रायः-लगभग, पराकिञ्चि-विरुद्ध हो सकती है; किं वा-अथवा, पामर-अति पतित, काम-काम भाव या कामदेव के; कार्मुक-बाण के; परित्रस्ता-भयभीत; विमोक्षयति-त्याग देगी; असून्-प्राण, हा-हाय; मौग्ध्यात्-मोह के कारण, फलिनी-लगभग फलित, मनः-स्थलता-विकसित होते प्रेम की लता, मृद्वी-अति कोमल, मया-मेरे द्वारा, उन्मूलिता-जड़ से उखाड़ दी गई।

अनुवाद

“मेरी क्रूरता सुनकर चन्द्रमुखी राधारानी अपने दुःखी हृदय में किसी न किसी तरह का धैर्य धारण कर सकती है। किन्तु तब वह मेरे विरुद्ध हो सकती है अथवा उग्र कामदेव के धनुष द्वारा उत्पन्न वासनामयी इच्छाओं से भयभीत होकर वह अपना जीवन भी त्याग सकती है। हाय! मैंने उसकी इच्छारूपी कोमल लता को, जिसमें फल आने ही वाले थे, मूर्खतापूर्वक उखाड़ दिया है।”

तात्पर्य

श्रीमती राधारानी के प्रति अत्यन्त क्रूर होने के कारण कृष्ण इस तरह पश्चाताप कर रहे हैं (विदग्ध माधव 2.40)।

यस्योत्सङ्ग-सुखाशया शिथिलता गुर्वी गुरुभ्यस्त्रपा

प्राणेभ्योऽपि सुहृत्तमाः सखि तथा यूयं परिक्लेशिताः ।

धर्मः सोऽपि महान्मया न गणितः साध्वीभिरश्यासितो

धिग्धैर्यं तदुपेक्षितापि यदहं जीवामि पापीयसी ॥152॥

शब्दार्थ

यस्य-जिसके; उत्सङ्ग-सुख-आशया-संग के आनन्द की इच्छा से; शिथिलिताशिथिलता; गुर्वी-अति महान्; गुरुभ्यः-गुरुजनों के प्रति; त्रपा-लज्जा को; प्राणेभ्यः-मेरे प्राणों से भी, अपि-यद्यपि; सुहृत्-तमाः-सबसे प्रिय; सखि-हे मेरी प्रिय सखी; तथा-उसी प्रकार, यूयम्-तुम्हें; परिक्लेशिताः-अत्यन्त कष्ट पहुँचाया; धर्मः-मेरे पति के प्रति कर्तव्य; सः-वह; अपि-भी; महान्-अति महान्; मया-मेरे प्रति; न-नहीं; गणितः-परवाह किये गये; साध्वीभिः-सती अथवा भद्र महिलाओं द्वारा, अध्यासितः-आचरित; धिक् धैर्यम्-तथाकथित धैर्य को धिक्कार है; तत्-उनके द्वारा; उपेक्षिता-उपेक्षित; अपि-यद्यपि; यत्-जो; अहम्-मैं; जीवामि-जी रही हूँ, पापीयसी-सबसे पापिन।

अनुवाद

“हे सखी, उनकी संगति तथा आलिंगन के सुख की इच्छा से मैंने अपने गुरुजनों तक की उपेक्षा की और उनके समक्ष अपनी लज्जा तथा गम्भीरता को शिथिल कर दिया। इसके अतिरिक्त, यद्यपि तुम मेरी सर्वोत्तम सखी हो और मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय हो, किन्तु मैंने तुम्हें इतना कष्ट पहुँचाया है। निस्सन्देह, मैंने अपने पतिव्रता व्रत को भी ताक पर रख दिया, जिसका सर्वोच्च भद्र महिलाएँ पालन करती हैं। हाय! यद्यपि वह इस समय मेरी उपेक्षा कर रहे हैं, मैं इतनी पापिन हूँ कि अभी भी जीवित हूँ। इसलिए मुझे अपने तथाकथित धैर्य को धिक्कारना चाहिए।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमती राधारानी अपनी घनिष्ठ सखी विशाखा देवी से कह रही हैं (विदग्ध माधव 2.41)।

गृहान्तः खेलन्त्यो निज-सहज-बाल्यस्य बलनाद्

अभद्र भद्र वा किमपि हि न जानीमहि मनाक् ।

वयं नेतुं युक्ताः कथमशरणां कामपि दशां कथं वा

न्याय्या ते प्रथयितुमुदासीन-पदवी ॥153॥

शब्दार्थ

गृह-अन्तः खेलन्त्यः-जो अपने घर में बाल्य क्रीड़ाओं में व्यस्त थीं, निज-अपनी; सहज-सरल; बाल्यस्य-बचपन के; बलनात्या-प्रभाव से; अभद्रम्-बुरा; भद्रम्-अच्छा; वा-या; किम् अपि-कुछ भी; हि-अवश्य ही; न-नहीं, जानीमहि-हम जान पाई, मनाक्-थोड़ा भी; वयम्-हम; नेतुम्-आकृष्ट करके; युक्ताः-उचित; कथम्-कैसे; अशरणाम्-समर्पण के

बिना; काम् अपि-इस प्रकार की; दशाम्-दशा को; कथम्-किस प्रकार, वा-या; न्याय्या-उचित; ते-आपके; प्रथयितुम्-प्रकट होने के लिए, उदासीन-उदासीनता की; पदवी-अवस्था।

अनुवाद

“मैं अपने घर में क्रीड़ाओं में व्यस्त थी और बचपन की अबोधता के कारण अच्छा-बुरा नहीं जानती थी। इसलिए क्या आपके लिए यह उचित है कि आपने पहले हमें अपनी ओर इस तरह आकृष्ट किया और फिर हमारी उपेक्षा की? अब आप हमसे उदासीन हो। क्या आप सोचते हो कि यह उचित है?”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमती राधारानी द्वारा कृष्ण से कहा गया है (विदग्ध माधव 2.46)।

अन्तः-क्लेश-कलङ्किताः किल वयं यामोऽद्य याम्यां पुरीं

नायं वञ्चन-सञ्चय-प्रणयिनं हासं तथाप्युज्झति ।

अस्मिन्सम्पुटिते गभीर-कपटैराभीर-पल्ली-विटे

हा मेधाविनि राधिके तव कथं प्रेमा गरीयानभूत् ॥ 154 ॥

शब्दार्थ

अन्तः-क्लेश-कलङ्किताः-मन की ऐसी कष्टदायक परिस्थितियों से दूषित जो मृत्यु के बाद भी चालु रहती हैं; किल-निश्चित रूप से, वयम्-हम सभी; यामः-जा रही हैं; अद्य-अब; याम्याम्-यमराज के; पुरीम्-लोक में, न-नहीं, अयम्-यह; वचन सञ्चय-कपटपूर्ण क्रियाएं; प्रणयिनम्-की ओर निर्देशित; हासम्-मुस्कान; तथापि-फिर भी, उज्झति-त्याग देती है; अस्मिन्-इसमें; सम्पुटिते-परिपूर्ण; गभीर-गहरे; कपटैः- धोखे से; आभीर-पल्ली-गवालों के गाँव से; विटे-एक धोखेबाज में, हा-हाय; मेधाविनि-हे बुद्धिमति, राधिके-श्रीमती राधारानी; तव-तुमको; कथम्-कैसे; प्रेमाप्रेम; गरीयान्-अत्यन्त महान्; अभूत्-हो गया।

अनुवाद

“हमारे हृदय दुःखमय परिस्थितियों से इतने दूषित हैं कि हम निश्चित रूप से यमराज के लोक जा रही हैं। फिर भी, कृष्ण अपनी सुन्दर प्रेममयी मुस्कान नहीं त्यागते, जो ठगी की चालों से पूर्ण है। हे श्रीमती

राधारानी, तुम बड़ी बुद्धिमान हो। तुमने किस तरह पड़ोस के ग्वालों के धोखेबाज लम्पट के प्रति इतना अधिक प्रेम विकसित कर लिया ?”

तात्पर्य

यह श्लोक राधारानी से उनकी एक अन्य विश्वासपात्र सखी ललिता कहती है (विदग्ध माधव 2.37)।

हित्वा दूरे पथि धव-तरोरन्तिकं धर्म-सेतोर्

भङ्गोदग्रा गुरु-शिखरिणं रंहसा लङ्घयन्ती ।

लेभे कृष्णार्णव नव-रसा राधिका-वाहिनी त्वां

वाग्वीचीभिः किमिव विमुखी-भावमस्यास्तनोषि ॥155॥

शब्दार्थ

हित्वा-त्यागकर; दूरे-दूर; पथि-मार्ग मे; धव-तरो:-पति रूपी वृक्ष का; अन्तिकम् -निकटता, धर्म-सेतो:-धर्म रूपी सेतु को; भङ्ग-उदग्रा-तोड़ने के लिए अत्यन्त दृढ़ होकर, गुरु-शिखरिणम्-गुरुजनों (सम्बन्धियों) रूपी पर्वतों को, रंहसा-तीव्र वेग से; लङ्घयन्ती-पार करती हुई; लेभे-प्राप्त कर ली है; कृष्ण-अर्नव—कृष्ण रूपी समुद्र को; नव-रसा-नवीन प्रेमभावों से प्रभावित, राधिका-श्रीमती राधिका; वाहिनी-नदी की तरह, त्वाम्-तुमको; वाक्-वीचिभिः-केवल वाणि की लहरों द्वारा; किम्-कैसे; इव-इस प्रकार; विमुखी-भावम्-विमुखता, अस्या:-उसके प्रति; तनोषि-तुम फैला रही हो।

अनुवाद

“हे कृष्ण, तुम समुद्र के तुल्य हो। श्रीमती राधारानी रूपी नदी काफी दूर से-अपने पति रूपी वृक्ष को पीछे छोड़ती, सामाजिक बन्धन के पुल को तोड़ती और वरिष्ठ जनों रूपी शिखरों को बलपूर्वक पार करती हुईतुम तक पहुँची है। तुम्हारे प्रेम की नई उमंगों के कारण यहाँ आकर उस नदी ने अब तुम्हारी शरण प्राप्त की है, किन्तु तुम हो कि उसे प्रतिकूल शब्दों की लहरों से वापस करने का प्रयास कर रहे हो। यह कैसा है कि तुम ऐसा विमुख मनोभाव फैला रहे हो?”

तात्पर्य

यह श्लोक भगवान् कृष्ण से श्रीमती पौर्णमासी ने कहा है (विदग्ध माधव3.9)।

राय कहे,—“वृन्दावन, मुरली-निःस्वन ।

कृष्ण, राधिकार कैछे करियाछ वर्णन?” ॥ 156॥

शब्दार्थ

राय कहे-रामानन्द राय कहते हैं, वृन्दावन-वृन्दावन नामक स्थान; मुरली-निःस्वनकृष्ण की मुरली की ध्वनि, कृष्ण-भगवान् कृष्ण, राधिकार-श्रीमती राधारानी के; कैछेकिस प्रकार; करियाछ वर्णन-तुमने वर्णन किया है।

अनुवाद

श्रील रामानन्द राय ने आगे पूछा, “तुमने वृन्दावन, दिव्य वंशी की ध्वनि तथा कृष्ण एवं राधिका के सम्बन्ध का वर्णन किस तरह किया है?”

“कह, तोमार कवित्व शुनि’ हय चमत्कार” ।

क्रमे रूप-गोसाजि कहे करि’ नमस्कार ॥ 157 ॥

शब्दार्थ

कह-कृपया मुझे बताओ; तोमार कवित्व शुनि’-तुम्हारी कवित्व की योग्यता सुनकर; हय-होता है; चमत्कार-अत्यन्त विस्मय; क्रमे-धीरे-धीरे; रूप-गोसाजि-श्रील रूप गोस्वामी, कहे-कहना प्रारम्भ करते हैं; करि’ नमस्कार-प्रणाम करके।

अनुवाद

“कृपया मुझे यह सब बतलाओ, क्योंकि तुम्हारी कवित्व-शक्ति अदभुत है।” रूप गोस्वामी रामानन्द राय को नमस्कार करके उनके प्रश्नों का क्रमशः उत्तर देने लगे।

सु-गन्धौ माकन्द-प्रकर-मकरन्दस्य मथुरे

विनिस्यन्दे वन्दी-कृत-मधुप-वृन्दं मुहुरिदम् ।

कृतान्दोलं मन्दोन्नतिभिरनिलैश्चन्दन-गिरेर् ममानन्दं

वृन्दा-विपिनमतुलं तुन्दिलयति ॥ 158 ॥

शब्दार्थ

सु-गन्धौ-सुगन्ध में, माकन्द-प्रकर-आम की मंजरियों के गुच्छों की; मकरन्दस्यशहद की; मधुरे-मधुर, विनिस्यन्दे-का टपकना; वन्दी-कृत-एकत्रित हुए; मधुपवृन्दम्-भौर; मुहु-बारम्बार; इदम्-यह; कृत-अन्दोलम्-हिलते हुए; मन्द-उन्नतिभिः-मन्द गति से हिलते; अनिलैः-वायु द्वारा, चन्दन-गिरेः-मलय पर्वत से; मम-मेरा; आनन्दम्-आनन्द, वृन्दा-विपिनम्-वृन्दावन; अतुलम्-अतुलनीय; तुन्दिलयति-और अधिक वर्धित करता है।

अनुवाद

“नव विकसित आम्र की मंजरियों से रिसती हुई मीठी सुगन्धित मधु पुनः पुनः भौरों के समूहों को आकृष्ट कर रही है और यह वन चन्दन-वृक्षों से पूर्ण मलय पर्वत से आने वाली मन्द गतिमान वायु से कम्पित हो रहा है। इस तरह यह वृन्दावन विपिन मेरे दिव्य आनन्द को वर्धित कर रहा है।”

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (1.23) का है, जिसे स्वयं कृष्ण ने कहा है।

वृन्दावनं दिव्य-लता-परीतं

लताश्च पुष्प-स्फुरिताग्र-भाजः ।

पुष्पाणि च स्फीत-मधु-व्रतानि

मधु-व्रताश्च श्रुति-हारि-गीताः ॥ 159 ॥

शब्दार्थ

वृन्दावनम्-वृन्दावन का जंगल, दिव्य-लता-परीतम्-दिव्य लताओं से घिरा हुआ; लताः च-और लताएँ, पुष्प-फूलों द्वारा; स्फुरित-लदे हुए; अग्र-भाजः-अग्र भाग से युक्त, पुष्पाणि-फूल; च-और; स्फीत-मधु-व्रतानि-अनेक उन्मत्त भौरों से युक्त; मधुव्रताः-तथा; च-और; श्रुति-हारि-गीताः-जिनके गीत वैदिक स्तोत्रों को पराजित करते हैं तथा कानों को आनन्द प्रदान करते हैं।

अनुवाद

“हे प्रिय मित्र, देखो तो, यह वृन्दावन का जंगल किस तरह दिव्य लताओं तथा वृक्षों से परिपूर्ण है। लताओं के सिरों पर फूल लदे हैं और उन्मत्त भौर उनके चारों ओर गुनगुना रहे हैं-ऐसे गुनगुनाते गीत कान को अच्छे लगते हैं और वैदिक स्तोत्रों को भी मात कर जाते हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (1.24) का है, जिसे बलराम ने अपने मित्र श्रीदामा से कहा है।

क्वचिद्भङ्गी-गीतं क्वचिदनिल-भङ्गी-शिशिरता

क्वचिद्वल्ली-लास्यं क्वचिदमल-मल्ली-परिमलः ।

क्वचिद्भारा-शाली करक-फल-पाली-रस-भरो

हृषीकाणां वृन्दं प्रमदयति वृन्दावनमिदम् ॥ 160 ॥

शब्दार्थ

क्वचित्-कहीं, भूङ्गी-गीतम्-भौरों की गुंजन, क्वचित्-कहीं; अनिल-भङ्गीशिशिरता-मन्द पवन की लहरों की शीतलता, क्वचित्-कहीं; वल्ली-लास्यम्-लताओं का नृत्य; क्वचित्-कहीं, अमल-मल्ली-परिमलः-मल्लिका पुष्प की शुद्ध सुगन्ध, क्वचित्-कहीं, धारा-शाली-धारा प्रवाह; करक-फल-पाली-अनार के फलों के; रसभरः-रस से परिपूर्ण, हृषीकाणाम् -इन्द्रियों के, वृन्दम्-समूह को; प्रमदयति-आनन्द दे रहा है; वृन्दावनम्-वृन्दावन का जंगल; इदम्-यह।

अनुवाद

“हे प्रिय मित्र, यह वृन्दावन का वन हमारी इन्द्रियों को विविध रूपों से बड़ा आनन्द प्रदान करता है। कहीं भौरों के झुण्ड गा रहे हैं, तो कहीं मन्द वायु सारे वातावरण को शीतल कर रही है। कहीं लताएँ एवं वृक्षों की टहनियाँ नाच रही हैं, मल्लिका पुष्प अपनी सुगन्ध बिखेर रहे हैं और अनार के फल निरन्तर प्रचुर रस की धार बहा रहे हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (1.31) का है, जिसे भगवान् कृष्ण ने अपने ग्वालमित्र मधुमंगल से कहा है।

परामृष्टाङ्गुष्ठ-त्रयमसित-रत्नैरुभयतो

वहन्ती सङ्कीर्णो मणिभिरुणौस्तत्परिसरौ ।

तयोर्मध्ये हीरोजवल-विमल-जाम्बूनद-मयी

करे कल्याणीयं विहरति हरेः केलि-मुरली ॥161॥

शब्दार्थ

परामृष्ट-माप; अंगुष्ठ-त्रयम्-तीन अंगुलियों की लम्बाई; असित-रत्नैः-अति मूल्यवान् इन्द्रनील रत्नों से; उभयतः-दोनों किनारों से; वहन्ती-युक्त; सङ्गीर्णो-सुसज्जित; मणिभिः-रत्नों द्वारा; अरुणैः-अरुण; तत्-परिसरौ-वंशी के दोनों छोर; तयोः मध्ये-उनके बीच; हीर-हीरों से; उज्ज्वल-चमकते; विमल-शुद्ध, जाम्बूनद-मयी-स्वर्ण की परत से ढकी; करे-हाथ में, कल्याणी-अति शुभ, इयम्-यह; विहरति-चमकती है; हरेः-कृष्ण की; केलि-मुरली-लीलाओं की वंशी।

अनुवाद

“कृष्ण की लीला वंशी तीन अंगुल लम्बी है और यह इन्द्रनील रत्नों से जटित है। वंशी के छोरों पर अरुण रत्न (पन्ना) लगे हैं, जो सुन्दर ढंग से चमक रहा है, दोनों छोरों के बीच वंशी सोने के पत्तर से मढ़ी है तथा हीरों से दमक रही है। यह शुभ वंशी, कृष्ण को सुहावनी लगती है तथा उनके हाथ में दिव्य आभा से दमक रही है।”

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (3.1) से है, जिसे पौर्णमासी ने ललितादेवी से कहा है।

सद्वंशतस्तव जनिः पुरुषोत्तमस्य

पाणी स्थितिर्मुर्लिके सरलासि जात्या ।

कस्मात्त्वया सखि गुरोर्विषमा गृहीता

गोपाङ्गना-गण-विमोहन-मन्त्र-दीक्षा ॥ 162॥

शब्दार्थ

सत्-वंशतिः-अति सम्मानित कुल; तव-तुम्हारा; जनिः-जन्म; पुरुषोत्तमस्य-भगवान् श्रीकृष्ण के; पाणौ-हाथों में, स्थितिः-निवास, मुरलिके-हे शुभ मुरली, सरलासरल; असि-तुम हो; जात्या—जन्म से; कस्मात्-क्यों; त्वया-तुम्हारे द्वारा; सखि-हे मेरी प्रिय सखी; गुरोः-गुरु से; विषमा-खतरनाक; गृहीता-ली है; गोप-अङ्गना-गणविमोहन-गोपियों के समूह को विमोहित करने के लिए, मन्त्र-दीक्षा-मन्त्र दीक्षा।

अनुवाद

“हे मेरी प्रिय सखी मुरली, ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अत्यन्त उत्तम परिवार में उत्पन्न हुई हो, क्योंकि तुम्हारा निवासस्थान श्रीकृष्ण के हाथों में है। जन्म से तुम सीधी-सादी हो और तनिक भी कुटिल नहीं हो। तो फिर तुमने इस खतरनाक मन्त्र में दीक्षा क्यों ली, जो एकत्र हुई गोपियों को मोहित करता है?”

तात्पर्य

यह श्लोक (विदग्ध माधव 5.17) श्रीमती राधारानी द्वारा कहा गया है।

सखि मुरलि विशाल-छिद्र-जालेन पूर्णा

लघुरति-कठिना त्वं ग्रन्थिला नीरसासि ।

तदपि भजसि शश्वच्चुम्बनानन्द-सान्द्रं

हरि-कर-परिरम्भं केन पुण्योदयेन ॥ 163॥

शब्दार्थ

सखि मुरलि-हे प्रिय सखि मुरली; विशाल-छिद्र-जालेन-तुम्हारे शरीर पर अनेक छिद्रों से (अन्य शब्दों में, छिद्रों से भरी हुई जिसका अर्थ “दोषों से भरी हुई” भी है); पूर्णापूर्ण, लघु-अति हल्की, अति-कठिना-बनावट में अत्यन्त कठोर; त्वम्-तुम, ग्रन्थिलागाँठों से भरी हुई, नीरसा-रस विहीन, असि-हो, तत् अपि-इसलिए, भजसि-तुम सेवा द्वारा प्राप्त करती हो; शश्वत्-निरन्तर; चुम्बन-आनन्द-भगवान् द्वारा निरन्तर चूमे जाने का दिव्य आनन्द, सान्द्रम्-प्रगाढ़; हरि-कर-परिरम्भम्-श्रीकृष्ण हाथों द्वारा आलिंगित, केनकौन से; पुण्य-उदयेन-पुण्यों के फलस्वरूप।

अनुवाद

“हे मेरी प्रिय सखी वंशी, तुम अनेक छिद्रों या दोषों से युक्त हो। तुम हल्की, कठोर, रसहीन तथा गाँठों से भरी हो। किन्तु किस तरह के पुण्यकर्मों ने तुम्हें भगवान् द्वारा चुम्बित होने तथा उनके हाथों द्वारा आलिंगित होने के लिए प्रवृत्त किया है?”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमती राधारानी की प्रतिद्वन्द्वी सखी चन्द्रावली द्वारा कहा गया ।

रुन्धन्नम्बु-भूतश्चमत्कृति-परं कुर्वन्मुहुस्तुम्बुरुं

ध्यानादन्तरयन्सनन्दन-मुखान्विस्मापयन्वेधसम् ।

औत्सुक्यावलिभिर्बलिं। चटुलयन्भोगीन्द्रमाघूर्णयन्

भिन्दन्त्रण्ड-कटाह-भित्तिमभितो बभ्राम वंशी-ध्वनिः ॥ 164 ॥

शब्दार्थ

रुन्धन्-रोक दी, अम्बु-भूतः-वर्षा के बादलों जैसे; चमत्कृति-परम्-आश्चर्य से पूर्ण, कुर्वन्-कर दिया; मुहु-प्रतिक्षण; तुम्बुरुम्-गन्धर्वों के राजा तुम्बरु को; ध्यानाध्यान की अवस्था से; अन्तरयन्-विचलित, सनन्दन-मुखान्-सनन्दन जैसे महान् सन्त पुरुषों को; विस्मापयन्-आश्चर्य उत्पन्न कर दिया; वेधसम्-ब्रह्माजी तक को भी; औत्सुक्यआवलिभिः-उत्सुकता के विचारों के साथ; बलिम्-राजा बलि को, चटुलयन्-चंचल कर दिया; भोगी-इन्द्रम्-नागों के राजा को; आघूर्णयन्-चकर कटवाये; भिन्दन्-भेदकर, अण्ड-कटाह-भित्तिम्-ब्रह्माण्ड की कठोर परतों को; अभितः-सर्वत्र; बभ्राम-फैल गई; वंशी-ध्वनिः-मुरली की दिव्य ध्वनि।

अनुवाद

“कृष्ण की वंशी की दिव्य ध्वनि ने वर्षा के बादलों की गति रोक दी, गन्धर्वों को आश्चर्यचकित कर दिया, और सनक तथा सनन्दन जैसे महान् सन्त पुरुषों के ध्यान को चलायमान कर दिया। इसने ब्रह्मा के भीतर आश्चर्य उत्पन्न कर दिया, इसने गहन उत्सुकता उत्पन्न कर दी जिससे बलि महाराज का मन चंचल हो उठा जो अन्यथा दृढ़ता से स्थित थे, लोकों को धारण करने वाले महाराज अनन्त को चारों ओर चक्कर लगावाया और यह ब्रह्माण्ड के कठिन आवरणों को भेद गई। इस तरह कृष्ण के हाथों की वंशी की ध्वनि ने अदभुत स्थिति उत्पन्न कर दी।”

तात्पर्य

यह श्लोक कृष्ण के ग्वालमित्र मधुमंगल द्वारा कहा गया है (विदग्ध माधव 1.27) ।

अयं नयन-दण्डित-प्रवर-पुण्डरीक-प्रभः

प्रभाति नव-जागुड़-द्युति-विडम्बि-पीताम्बरः ।

अरण्यज-परिष्क्रिया-दमित-दिव्य-वेशादरो

हरिन्मणि-मनोहर-द्युतिभिरुज्ज्वलाङ्गो हरिः ॥ 165 ॥

शब्दार्थ

अयम्-यह; नयन-जिसके सुन्दर नेत्रों द्वारा; दण्डित-पराजित; प्रवर-श्रेष्ठ; पुण्डरीक-प्रभ:- श्वेत कमल की आभा; प्रभाति-शोभायमान प्रतीत होती है; नव-जागृद्ध्युति-ताजे लगाये हुए कुंकुम की कान्ति; विडम्बि-तिरस्कृत करती है; पीत-अम्बर:- जिनके पीत वस्त्र; अरण्य-ज-वन से चुने गये; परिष्क्रिया-जिसके अलंकारों से; दमित-दमित; दिव्य-वेश-आदर:-अति उत्कृष्ट वेश की इच्छा; हरिन्-मणि-मरकत मणि; मन:-हर-मन को आकर्षित करनेवाली; द्युतिभि:-चमक द्वारा; उज्ज्वल-अङ्ग:-जिनका सुन्दर शरीर; हरि:-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

“कृष्ण की आँखों की सुन्दरता श्वेत कमल की सुन्दरता को मात कर जाती है। उनका पीताम्बर कुंकुम के नवीन अलंकरणों की चमक को मात करता है तथा उनके चुने हुए जंगली फूलों के गहने सर्वश्रेष्ठ वस्त्रों की लालसा को दमित कर देते हैं। उनका शारीरिक सौन्दर्य मरकत मणि से भी अधिक मन को आकृष्ट करने वाली द्युति से युक्त है।”

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (1.17) से है, जिसे पौर्णमासी ने कहा है।

जङ्घाधस्तट-सङ्गि-दक्षिण-पदं किञ्चिद्विभुग्न-त्रिकं
साचि-स्तम्भित-कन्धरं सखि तिर:-सञ्चारि-नेत्राञ्चलम् ।
वंशीं कुट्मलिते दधानमधरे लोलाङ्गुली-सङ्गतां
रिङ्गद्भ्रू-भ्रमरं वराङ्गि परमानन्दं पुरः स्वी-कुरु ॥ 166 ॥

शब्दार्थ

जङ्गा-जांघ के; अध:-तट-घुटने के नीचे; सङ्गि-जोड़कर; दक्षिण-पदम्-दायें पैर को; किञ्चित्-थोड़ा; विभुग्न-त्रिकम्-तीन जगह से मुड़ा हुआ शरीर का मध्य भाग; साचि-स्तम्भित-कन्धरम्-जिनकी गर्दन मुड़ी हुई स्थिति में है; सखि-हे सखी, तिर:- सद्धारि-तिरछी घूमती हुई, नेत्र-अक्चलम्-जिनकी आँखों के किनारे; वंशीम्-बांसुरी; कुट्मलिते-पुष्प अंकुर के समान बन्द; दधानम-रखकर, अधरे-होठों पर; लोलअङ्गुली-सङ्गताम्-इधर उधर घूमती हुई अङ्गुलियों से

युक्त; रिङ्गत्-भू-जिनकी धीमी घूमती भौंहें; भ्रमरम्-भौरों की तरह, वर-अङ्गि-हे परम सुन्दरी; परम-आनन्दम्-आनन्द मूर्ति को; पुर-सामने स्थित; स्वी-कुरु-कृपया स्वीकार करो।

अनुवाद

“हे अतीव सुन्दर सखी, तुम अपने समक्ष खड़े दिव्य आनन्द से पूर्ण परम भगवान् को स्वीकार करो। उनकी आँखों की कोरें इधर-उधर घूमती हैं और उनकी भौंहें उनके कमल-मुख पर भौरों के समान धीरे-धीरे गति करती हैं। वे अपने वामपद के घुटने के नीचे दक्षिण पद रखकर खड़े हैं, उनके शरीर का मध्य भाग तीन स्थानों से टेढ़ा (त्रिभंगी) है। उनकी ग्रीवा शालीनतापूर्ण ढंग से एक ओर झुकी हुई है। वे अपनी वंशी को अपने कली जैसे बन्द होठों पर रखे हैं और उनकी अँगुलियाँ उन पर इधरउधर चल रही हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक ललित माधव नाटक (4,27) से है। यह श्रील रूप गोस्वामी द्वारा रचित दस अंकों का नाटक है। इसे ललिता देवी ने राधारानी से कहा है।

कुल-वर-तनु-धर्म-ग्राव-वृन्दानि भिन्दन् सु-मुखि

निशित-दीर्घापाङ्ग-टङ्क-छटाभिः ।

युगपदयमपूर्वः कः पुरो विश्वकर्मा मरकत-

मणि-लक्षेगोष्ठ-कक्षां चिनोति ॥167॥

शब्दार्थ

कुल-वर-तनु-कुल की स्त्रियों का, धर्म-पति के प्रति समर्पण आदि रूपी; ग्राववृन्दानि-पत्थर; भिन्दन्-भेदते हुए; सु-मुखि-हे सुन्दर मुखवाली; निशित-तीक्ष्ण; दीर्घ-अपाङ्ग-आँखों के विशाल बाहरी किनारों के रूप में, टङ्क-छटाभिः-छेनियों द्वारा; युगपत्-एक साथ; अयम्-यह; अपूर्वः-अपूर्व; कः-कौन; पुरः-सामने; विश्वकर्मारचनाकार, मरकत-मणि-लक्षेः-अनगिनत मरकत मणियों के साथ; गोष्ठ-कक्षाम्-मिलने के एक गोपनीय कमरे में, चिनीति-वे निर्माण कर रहे हैं।

अनुवाद

“हे सुमुखी, हमारे समक्ष खड़ा यह कौन रचनाकार है? वह अपनी प्रेममयी चितवनों की तेज छैनियों से अनेक स्त्रियों के पतिव्रत धर्म रूपी कठोर पत्थरों को भेद रहा है और उसी के साथ वह अपने शरीर की कान्ति से, जो असंख्य मरकत मणियों की चमक का अतिक्रमण करने वाली है, अपनी लीलाओं के लिए गोपनीय मिलन-कक्ष का निर्माण कर रहा है।”

तात्पर्य

महेन्द्र-मणि-मण्डली-मद-विडम्बि-देह-द्युतिर्

ब्रजेन्द्र-कुल-चन्द्रमाः स्फुरति कोऽपि नव्यो युवा ।

सखि स्थिर-कुलाङ्गना-निकर-नीवि-बन्धार्गल

छिदा-करण-कौतुकी जयति यस्य वंशी-ध्वनिः ॥ 168 ॥

शब्दार्थ

महेन्द्र-मणि-महेन्द्र मणि नामक मणियों के; मण्डली-गुच्छों को, मद-विडम्बिगर्व को भंग करनेवाली; देह-द्युतिः- जिसके शरीर की कान्ति; ब्रजेन्द्र-कुल-चन्द्रमाः- ब्रजराज (नन्द महाराज) के परिवार का चन्द्रमा; स्फुरति-प्रकट होता है; कः अपि-कुछ; नव्यः युवा-नव युवा व्यक्ति; सखि-हे मेरी प्रिय सखी; स्थिर-स्थिर; कुल-अङ्गना-कुल की स्त्रियों के; निकर-समूहों का; नीवि-बन्ध-अर्गल-कसे हुए वस्त्रों तथा कर धानियों जैसे बाधाओं का; छिदा-करण-काटने के निमित्त; कौतुकी-अति चतुराईपूर्वक, जयति-जय हो, यस्य-जिसकी; वंशी-ध्वनिः-वंशी की ध्वनि को।

अनुवाद

“हे प्रिय सखी, यह नवयुवक श्रीकृष्ण, जोकि नन्द महाराज के कुल का चन्द्रमा है, इतना सुन्दर है कि वह मूल्यवान मणियों के गुच्छे के सौन्दर्य को भी परास्त करने वाला है। उसकी वंशी की ध्वनि की जय हो, क्योंकि यह चतुराईपूर्वक साध्वी स्त्रियों के धैर्य का भंग करता है और जिससे उनके कटिबन्ध तथा कसे हुए वस्त्र ढीले हो जाते हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक ललित माधव (1.49) का है, जिसे ललितादेवी ने राधारानी से कहा है।

बलादक्ष्णोर्लक्ष्मीः कवलयति नव्यं कुवलयं

मुखोल्लासः पुल्लिं कमल-वनमुल्लङ्घयति च ।

दशा कष्टामष्टापदमपि नयत्याङ्गिक-रुचिर्

विचित्रं राधायाः किमपि किल रूपं विलसति ॥ 169 ॥

शब्दार्थ

बलात्-बलपूर्वकः; अक्षणोः-दोनों नेत्रों का; लक्ष्मीः-सौन्दर्यः कवलयति-निगल जाता है; नव्यम्-नवीन जागृत, कुवलयम्-कमल पुष्प, मुख-उल्लासः-मुख की सुन्दरता; फुल्लम्-फलित, कमल-वनम्-कमल पुष्पों का वन; उल्लङ्घयति-पार करता है; च-भी; दशाम्-स्थिति को; कष्टाम्-कष्टदायक; अष्टा-पदम्-स्वर्ण; अपि-भी; नयतिलाता है; आङ्गिक-रुचिः-शरीर की कान्ति; विचित्रम्-आश्चर्यजनक; राधायाः-श्रीमती राधारानी का; किम् अपि-कुछ; किल-निश्चित रूप से; रूपम्-सौन्दर्य, विलसति-प्रकट होता है।

अनुवाद

“श्रीमती राधारानी की आँखों का सौन्दर्य नये खिले नीले कमलों के सौन्दर्य को बलपूर्वक निगल जाता है और उनके मुख की सुन्दरता, पूरी तरह खिले कमलों के समूचे वनों का भी अतिक्रमण कर जाती है। उनके शरीर की कान्ति स्वर्ण को भी कष्टप्रद स्थिति में डालती प्रतीत होती है। इस तरह श्रीमती राधारानी का अदभुत, अद्वितीय सौन्दर्य वृन्दावन में उदित हो रहा है।”

तात्पर्य

यह श्लोक विदग्ध माधव (1.32) का है। इसे पौर्णमासी ने कहा है।

विधुरेति दिवा विरूपतां

शत-पत्रं बत शर्वरी-मुखे ।

इति केन सदा श्रियोज्ज्वलं

तुलनामर्हति मत्प्रियाननम् ॥ 170 ॥

शब्दार्थ

विधुः -चन्द्रमा; एति-हो जाता है; दिवा-दिन में, विरूपताम्-मन्द; शत-पत्रम्कमल पुष्प, बत-हाय; शर्वरी-मुखे-
साँझ के आरम्भ में, इति-इस प्रकार, केन-किसके साथ; सदा-सदैव; श्रिया-उज्ज्वलम्-सुन्दरता से कान्तिमान; तुलनाम्-
तुलना; अर्हति-योग्य है; मत्-मेरा; प्रिया-अति प्रियतमा, आननम्-मुखा

अनुवाद

“यद्यपि चन्द्रमा का तेज रात्रि के प्रारम्भ में चमकीला रहता है, किन्तु दिन में वह मन्द पड़ जाता है।
इसी तरह यद्यपि दिन के समय कमल सुन्दर लगता है, किन्तु रात्रि में वह बन्द हो जाता है। किन्तु हे मित्र, मेरी
प्रियतमा श्रीमती राधारानी का मुख, चाहे दिन हो या रात, सदा सुन्दर तथा तेजयुक्त रहता है। इसलिए उसके
मुख की तुलना किससे की जा सकती है?”

तात्पर्य

यह श्लोक (विदग्ध माधव 5.20) कृष्ण द्वारा मधुमंगल से कहा गया है।

प्रमद-रस-तरङ्ग-स्मेर-गण्ड-स्थलायाः

स्मर-धनुरनुबन्धि-भ्रू-लता-लास्य-भाजः ।

मद-कल-चल-भूङ्गी-भ्रान्ति-भङ्गीं दधानो

हृदयमिदमदाङ्क्षीत्पक्ष्मलाक्ष्याः कटाक्षः ॥ 171 ॥

शब्दार्थ

प्रमद-प्रसन्नता का; रस-तरङ्ग-रस की निरन्तर लहरों के प्रवाह द्वारा; स्मेर-मन्द मुस्कुराती है; गण्ड-स्थलायाः-
जिसके गाल; स्मर-धनुः-कामदेव का धनुष, अनुबन्धिसम्बन्धित; भ्रू-लता-तिरछी भौंहों का; लास्य-नृत्य, भाजः-जिसका
है वह; मद-कलमदोन्मत्त; चल—अस्थिर, भूङ्गी-भ्रान्ति—भौरो का इधर उधर घूमना; भङ्गीम्—मुद्रा का; दधानः-
प्रदान करती है; हृदयम्। इदम्-इस हृदय को, अदाङ्क्षीत्-डस लिया है; पक्ष्मल-उत्कृष्ट पलकों वाली; अक्ष्याः-जिसकी
दो आँखों का; कट-अक्षः-तिरछी चितवना

अनुवाद

“जब श्रीमती राधारानी मुस्कराती है, तो प्रसन्नता की लहरें उसके गालों पर बहने लगती हैं और उसकी तिरछी भौंहें कामदेव के धनुष के समान नृत्य करने लगती हैं। उसकी चितवन इतनी मोहक है कि यह मदोन्मत्त चंचल नृत्य करते भौरों के तुल्य लगती है। उस भौरों ने मेरे हृदय रूपी कोश को डस लिया है।”

तात्पर्य

यह श्लोक (विदग्ध माधव 2.51) भी भगवान् कृष्ण द्वारा कहा गया है।

राय कहे,—“तोमार कवित्व अमृतेर धार ।

द्वितीय नाटकेर कह नान्दी-व्यवहार” ॥172॥

शब्दार्थ

राय कहे-रामानन्द राय कहते हैं; तोमार-आपकी; कवित्व-कवित्व प्रदर्शन की गुणवत्ता; अमृतेर धार-अमृत की निरन्तर वर्षा; द्वितीय नाटकेर-दूसरे नाटक का; कहकृपया कहो, नान्दी-व्यवहार-परिचायात्मक अंश।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी द्वारा सुनाए गये इन श्लोकों को सुनकर श्रील रामानन्द राय ने कहा, “तुम्हारी कविता की अभिव्यक्ति अमृत की निरन्तर वर्षा के तुल्य है। कृपया तुम मुझे अपने दूसरे नाटक का प्रस्तावनात्मक अंश सुनाओ।”

रूप कहे,—“काहाँ तुमि सूर्योपम भास ।

मुजि कोन् क्षुद्र,—येन खद्योत-प्रकाश” ॥ 173॥

शब्दार्थ

रूप कहे-रूप गोस्वामी कहते हैं, काहाँ-कहाँ, तुमि-आप, सूर्य-उपम-सर्प के समान; भास-तेजस्वी; मुजि-मैं; कोन्-कोई; क्षुद्र-तुच्छ; प्रेन-के समान; खद्योतप्रकाश-जुगनु के प्रकाश।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने कहा, “आपकी तेजस्वी सूर्य-प्रकाश के समान उपस्थिति में, मैं जुगनु के प्रकाश के समान नगण्य हूँ।”

“तोमार आगे धाष्ठर्य एडू मुख-व्यादान” ।

एत बलि’ नान्दी-श्लोक करिला व्याख्यान ॥174॥

शब्दार्थ

तोमार आगे-आपके सामने; धाष्ठर्य-धृष्टता, एडू-यह; मुख-व्यादान-मुख खोलना मात्र; एत बलि’-यह कहकर; नान्दी-श्लोक-प्रारम्भिक श्लोक; करिला व्याख्यान-सुनाया।

अनुवाद

“आपके समक्ष मुख खोलना तक मेरे लिए धृष्टता होगी।” यह कहकर उन्होंने ललित माधव का प्रारम्भिक श्लोक सुनाया।

सुर-रिपु-सुदृशामुरोज-कोकान्

मुख-कमलानि च खेदयन्नखण्डः ।

चिरमखिल-सुहृच्चकोर-नन्दी

दिशतु मुकुन्द-यशः-शशी मुदं वः ॥ 175 ॥

शब्दार्थ

कोकान्-चक्रवाक नामक पक्षी की भाँति; मुख-चेहरे; कमलानि-कमलों के समान; च-और; खेदयन्-पीड़ा पहुँचाती है; अखण्डः-पूर्णतया बिना अवरोध के; चिरम्दीर्घकाल तक; अखिल-सभी के; सुहृत्-मित्र; चकोर-नन्दी—चकोर पक्षी को आनन्द देनेवाले; दिशतु-इसे देने दो; मुकुन्द-श्रीकृष्ण की; यशः-महिमा, शशी-चन्द्रमा के समान; मुदम्-आनन्द; वः-आप सबको।

अनुवाद

“मुकुन्द की सुन्दर चन्द्रमा तुल्य महिमा असुरों की पत्नियों के कमल समान मुखों को तथा ज्योतिर्मान चक्रवाक पक्षियों के तुल्य उनके उठे स्तनों को पीड़ा पहुँचाती है। किन्तु यही महिमा उनके भक्तों को, जोकि चकोर पक्षियों के तुल्य हैं, आनन्द प्रदान करने वाली है। वह महिमा आप सबको सदैव आनन्द प्रदान करे।”

तात्पर्य

यह श्लोक ललित H7धव नाटक के प्रथम अंक का प्रथम श्लोक है।

“द्वितीय नान्दी कह देखि?”—राय पुछिला ।

सङ्कोच पाजा रूप पड़िते लागिला ॥ 176 ॥

शब्दार्थ

द्वितीय नान्दी-द्वितीय नान्दी श्लोक, कह-कहिये; देखि-ताकि हम देख सकें; राय पुछिला-श्रील रामानन्द राय ने पुनः पूछा, सङ्कोच पाजा-थोड़ा संकोच करके; रूप-श्रील रूप प स्वामी, पड़िते लागिला-पढ़ने लगे।

अनुवाद

जब श्रील रामानन्द राय ने द्वितीय नान्दी श्लोक के विषय में आगे पूछताछ की, तो श्रील रूप गोस्वामी थोड़ा हिचकिचाये, किन्तु तो भी उन्होंने पढ़ना शुरू किया।

निज-प्रणयितां सुधामुदयमाप्नुवन् यः क्षितौ

किरत्यलमुरी-कृत-द्विज-कुलाधिराज-स्थितिः ।

स लुञ्छित-तमस्ततिर्मम शची-सुताख्यः शशी

वशी-कृत-जगन्मनाः किमपि शर्म विन्यस्यतु ॥ 177॥

शब्दार्थ

निज-प्रणयिताम्-स्वयं अपनी प्रेम भक्ति; सुधाम्-अमृत; उदयम्-प्राकट्य; आप्नुवन्-प्राप्त करने के लिए; यः-जो; क्षितौ-पृथ्वी के तल पर; किरति-वर्धन करते हैं, अलम्-पर्याप्त रूप से, उरी-कृत-स्वीकृत; द्विज-कुल-अधिराज-स्थितिः-ब्राह्मण समुदाय के सर्वप्रमुख मुखिया की स्थिति; सः-वे; लुचित-दूर करते हैं; तमः-अन्धकार के; ततिः-समूह की; मम-मेरे; शची-सुत-आख्यः-शची सुत नाम से प्रसिद्ध, शती माता के पुत्र; शशी-चन्द्रमा, वशी-कृत-वश में किये हुए; जगत्-मनाः-समस्त जगत् के मन; किम् अपि-किसी प्रकार, शर्म-सौभाग्य; विन्यस्यतु-इसे प्रदान करें।

अनुवाद

“चन्द्रमा सदृश पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, जोकि शचीनन्दन कहलाते हैं, अपना भक्तिमय प्रेम वितरित करने के लिए अब पृथ्वी पर प्रकट हुए हैं। वे ब्राह्मण समुदाय के सम्राट हैं। वे अज्ञान के समस्त अन्धकार को

भगा सकते हैं और विश्व के हर एक व्यक्ति के मन को वश में कर सकते हैं। वह उदीयमान चन्द्रमा हम सबको सौभाग्य प्रदान करे।”

तात्पर्य

यह ललित माधव के प्रथम अंक का तीसरा श्लोक है।

शुनिया प्रभुर यदि अन्तरे उल्लास ।

बाहिरे कहेन किछु करि’ रोषाभास ॥ 178॥

शब्दार्थ

शुनिया-यह सुनकर; प्रभुर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के; यदि-यद्यपि, अन्तरे-अन्तर्मन में, उल्लास-अत्यन्त आनन्द नुभूति; बाहिरे-बाहर से; कहेन-कहते हैं; किछुकुछ; करि’-करते हुए, रोष-आभास-क्रोधित जैसे।

अनुवाद

यद्यपि इस श्लोक को सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु भीतर से अत्यन्त प्रसन्न थे, किन्तु बाहर से वे ऐसा बोले मानो कुद्ध हों।

“काँहा तोमार कृष्ण-रस-काव्य-सुधा-सिन्धु ।

तार मध्ये मिथ्या केने स्तुति-क्षार-बिन्दु” ॥179॥

शब्दार्थ

काँहा-कहाँ, तोमार-तुम्हारा; कृष्ण-रस-काव्य-भगवान् कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित उच्च कोटि का काव्यात्मक वर्णन; सुधा-सिन्धु-अमृत का समुद्र; तार मध्ये-उसके भीतर; मिथ्या-मिथ्या; केने-क्यों; स्तुति-प्रार्थना; क्षार-बिन्दु—अम्ल की एक बूँद के समान।

अनुवाद

“कृष्ण-लीला-रस विषयक तुम्हारे उच्च कोटि के काव्यात्मक वर्णन अमृत के सागर के समान हैं। किन्तु तुमने मेरे विषय में मिथ्या स्तुति क्यों रख दी है? यह अरुचिकर अम्ल की एक बूँद के समान है।”

राय कहे,—“रूपेर काव्य अमृतेर पूर ।

तार मध्ये एक बिन्दु दियाछे कपूर” ॥180॥

शब्दार्थ

102 श्रीचेतन्य-चरितामृत अन्त्य लीला, अध्याय 1 राय कहे-श्रील रामानन्द राय ने कहा; रूपेर काव्य-श्रील रूप गोस्वामी की काव्यात्मक अभिव्यक्ति; अमृतेर पूर-सम्पूर्ण अमृत से परिपूर्ण; तार मध्ये-जिसमें; एक बिन्दु-एक बूँद; दियाछे-उन्होंने डाली है; कर्पूर-कपूर की।

अनुवाद

श्रील रामानन्द राय ने आपत्ति की, “यह तो अम्ल नहीं है। यह तो वह कपूर का कण है, जिसे उसने अपनी उच्च काव्याभिव्यक्ति के अमृत में रख दिया है।”

प्रभु कहे,-“राय, तोमार इहाते उल्लास ।

शुनितेइ लजा, लोके करे उपहास” ॥181॥

शब्दार्थ

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; राय-रामानन्द राय; तोमार-तुम्हारा; इहातेइसमें, उल्लास-हर्ष, शुनितेइ-सुनकर; लजा-लजित हूँ, लोके-जन साधारण; करे-करेंगे; उपहास-मजाका

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “मेरे प्रिय रामानन्द राय, तुम इन काव्याभिव्यक्तियों को सुनकर हर्षित हो, किन्तु मैं इन्हें सुनकर लजित हूँ, क्योंकि सामान्य लोग इस श्लोक की विषय-वस्तु के बारे में हँसी उड़ायेंगे।”

राय कहे,-“लोकेर सुख इहार श्रवणे ।

अभीष्ट-देवेर स्मृति मङ्गलाचरणे” ॥182॥

शब्दार्थ

राय कहे-रामानन्द राय ने कहा; लोकेर-जन साधारण की; सुख-प्रसन्नता, इहार श्रवणे-ऐसी काव्यात्मक अभिव्यक्ति को सुनकर; अभीष्ट-देवेर-पूज्य देवविग्रह का; स्मृति-स्मरण, मङ्गल-आचरणे-आरम्भ में सौभाग्य प्रदान करती है।

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, “उपहास के स्थान पर सामान्य लोग ऐसी कविता सुनकर परम आनन्द का अनुभव करेंगे, क्योंकि आराध्य विग्रह की प्रारम्भिक स्मृति सौभाग्य प्रदान करती है।”

राय कहे,—“कोन् अङ्गे पात्रेर प्रवेश ?” ।

तबे रूप-गोसाजि कहे ताहार विशेष ॥183॥

शब्दार्थ

राय कहे-रामानन्द राय ने कहा; कोन्-किस; अङ्गे-उपविभाग शैली से; पात्रेर प्रवेश-पात्रों का प्रवेश, तबे-उस समय, रूप-गोसाजि-श्रील रूप गोस्वामी, कहेकहना प्रारम्भ किया; ताहार विशेष-विशिष्ट रूप से इस विषय पर।

अनुवाद

रामानन्द राय ने पूछा, “अभिनेता किस शैली उपविभाग (अंग) से प्रवेश करते हैं?” रूप गोस्वामी तब इसी विषय पर विशेष रूप से बोलने लगे।

नटता किरात-राजं

निहत्य रङ्ग-स्थले कला-निधिना ।

समये तेन विधेयं

गुणवति तारा-कर-ग्रहणम् ॥184॥

शब्दार्थ

नटता-रंगमंच पर नृत्य; किरात-राजम्-किरातों के राजा, कंस का; निहत्य-वध करके; रङ्ग-स्थले-मंच पर; कला-निधिना-सभी कलाओं के स्वामी द्वारा; समये-समय पर, तेन-उनके द्वारा; विधेयम्-किया जायेगा; गुण-वति-शुभ घड़ी में, तारा-करतारा (राधा) का हाथ; ग्रहणम्-ग्रहण किया जायेगा।

अनुवाद

“असभ्य लोगों के शासक (कंस) का वध करने के बाद मंच पर नृत्य करते हुए समस्त कलाओं के स्वामी भगवान् कृष्ण उपयुक्त समय पर श्रीमती राधारानी के साथ पाणिग्रहण स्वीकार करेंगे, जो सभी दिव्य गुणों से युक्त हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक ललित माधव (1.11) से उद्धृत है।

‘उद्धात्यक’ नाम एइ ‘आमुख’—‘वीथी’ अङ्गः ।

तोमार आगे कहि-इहा धाष्टर्ये तरङ्ग ॥ 185 ॥

शब्दार्थ

‘उद्धात्यक’ नाम-अभिनेता का नृत्य करते हुए प्रकट होना जिसे शास्त्रीय रीति से ‘उद्धात्यक’ कहते हैं; एङ्ग-आमुख-यह प्रस्तावना; वीथी अङ्ग-वह अंग वीथी कहलाता है; तोमार आगे-आपके समक्ष, कहि-मैं कहता हूँ, इहा-यह; धाष्टर्ये तरङ्ग-धृष्टता की एक लहर।

अनुवाद

“यह प्रस्तावना शास्त्रीय रीति से उद्धात्यक कहलाती है और सम्पूर्ण दृश्य वीथी कहलाता है। आप नाटकीय अभिव्यक्ति में इतने पटु हैं कि आपके समक्ष मेरा हर कथन धृष्टता के सागर से उठने वाली तरंग के समान है।”

तात्पर्य

इस प्रसंग में श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने साहित्य दपण का निम्नलिखित श्लोक (6.288) पुनः उद्धृत किया है :

उद्धात्यकः कथोद्धातः प्रयोगातिशयस्तथा ।

प्रवर्तकावलगिते पञ्च प्रस्तावनाभिदाः ॥

इस तरह नाटक के पाँच प्रकार के प्रस्तावना दृश्यों के पारिभाषिक नाम हैं-उद्धात्यक, कथोद्धात, प्रयोगातिशय, प्रवर्तक तथा अवलगित जब श्री रामानन्द राय ने यह पूछा कि श्रील रूप गोस्वामी ने इन पाँचों में से किसका प्रयोग अपने

ललित माधव नाटक की प्रस्तावना पूरी करने के लिए किया है, तो रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया कि उन्होंने उद्धात्यक प्रस्तावना का प्रयोग किया है। भारती वृत्ति के अनुसार तीन शास्त्रीय शब्द प्रयोग में आते हैं- प्ररोचना, वीथी तथा प्रहसना। इस तरह रूप गोस्वामी ने वीथी का भी उल्लेख किया, जो एक प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त होने वाला पारिभाषिक शब्द है। साहित्या दर्पण (6.520) के अनुसार :

वीथ्यामेको भवेदंकः कश्चिदेकोऽत्र कल्प्यते ।

आकाशभाषितैरुक्तैश्चित्रां प्रत्युक्तिमाश्रितः ॥

वीथी से प्रारम्भ होने वाले नाटक में केवल एक अंक होता है। उस दृश्य में नायकों में से एक मंच में प्रवेश करता है और आकाश से आने वाली वाणी द्वारा उच्चरित विरोधी कथनों के माध्यम से वह पर्याप्त माधुर्य रस तथा अन्य रस का परिचय देता है। परिचय के दौरान नाटक के सारे बीजों का आरोपण हो जाता है। यह प्रस्तावना उद्धात्यक कहलाती है, क्योंकि अभिनेता मंच पर नृत्य करता है। यह शब्द यह भी बताता है कि मंच पर पूर्ण चन्द्रमा प्रवेश कर रहा है। इस प्रसंग में, जब नटता ("मंच पर नृत्य करना") शब्द को चन्द्रमा से जोड़ा जाता है, तो इसका अर्थ स्पष्ट नहीं रहता, किन्तु जब नटता शब्द को कृष्ण से जोड़ दिया जाता है, तब अर्थ पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है। इस तरह की प्रस्तावना उद्धात्यक कहलाती है।

श्रील रामानन्द राय ने श्रील रूप गोस्वामी से विचार-विमर्श करते समय अत्यन्त शास्त्रीय शब्दों का व्यवहार किया। रूप गोस्वामी ने स्वीकार किया कि श्रील रामानन्द राय प्रामाणिक नाटक रचना के प्रकाण्ड विद्वान हैं। इस तरह श्रील रामानन्द राय के प्रश्न का उत्तर देने के लिए सर्वथा सक्षम होने पर भी श्रील रूप गोस्वामी ने अपनी वैष्णव विनयशीलता के कारण स्वीकार किया कि उनके शब्द धृष्ट थे। वस्तुतः रूप गोस्वामी तथा रामानन्द राय दोनों ही काव्य रचना में परम कुशल थे और साहित्य दर्पण तथा अन्य वैदिक ग्रन्थों के अनुसार ही उसे प्रस्तुत कर रहे थे।

पदानि त्वगतार्थानि तदर्थ-गतये नराः ।

योजयन्ति पदैरन्यैः स उद्धात्यक उच्यते ॥ 186 ॥

शब्दार्थ

पदानि-शब्द; तु-परन्तु अगत-अर्थानि-अस्पष्ट अर्थ वाले; तत्-वह; अर्थगतये-अर्थ को समझने के लिए, नराः-लोग; योजयन्ति-जोड़ते हैं; पदैः-शब्दों से, अन्यैः-दूसरे; सः-वह; उद्धात्यकः-उद्धात्यकः; उच्यते-कहलाता है।

अनुवाद

“किसी अस्पष्ट शब्द की व्याख्या करने के लिए लोग सामान्यतया इसे अन्य शब्दों से जोड़ते हैं। ऐसा प्रयास उद्घात्यक कहलाता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक साहित्य दपण (6.289) से है।

राय कहे,—“कह आगे अङ्गेर विशेष” ।

श्री-रूप कहेन किछु सङ्क्षेप-उद्देश ॥ 187॥

शब्दार्थ

राय कहे-श्रील रामानन्द राय ने कहा; कह-कृपया मुझे बताइये; आगे-आगे; अङ्गेर विशेष-विशिष्ट भाग; श्री-रूप कहेन-श्रील रूप गोस्वामी कहते हैं; किछु-कुछ; सङ्क्षेप-संक्षेप में; उद्देश-उदाहरण।

अनुवाद

जब रामानन्द राय ने श्रील रूप गोस्वामी से नाटक के विभिन्न अंगों के विषय में और अधिक बोलने के लिए कहा, तो श्रील रूप गोस्वामी ने संक्षेप में ललित माधव से उद्धरण दिये।

हरिमुद्दिशते रजो-भरः

पुरतः सङ्गमयत्यमुं तमः ।

व्रज-वाम-दृशां न पद्धतिः

प्रकटा सर्व-दृशः श्रुतेरपि ॥ 188॥

शब्दार्थ

हरिम्-कृष्ण; उद्दिशते-यह दर्शाता है; रजः-भरः-गौवों से उठी धूलि; पुरतः- समक्ष; सङ्गमयति-मिलने का कारण बनती है; अमुम्-कृष्ण से; तमः-अन्धकार; व्रजवाम-दृशाम्-वृन्दावन की गोपियों का, न-नहीं, पद्धतिः-कार्यों की विधि; प्रकटा-प्रकट हुई, सर्व-दृशः-जो सब कुछ जानते हैं; श्रुतेः-वेदों के; अपि-साथ ही साथ।

अनुवाद

“मार्ग पर गौवों तथा बछड़ों से उठी धूल एक तरह का अँधेरा उत्पन्न करती है, जो यह बताता है कि कृष्ण गोचारण-भूमि से घर लौट रहे हैं। यही नहीं, संध्याकालीन अँधेरा गोपियों को कृष्ण से मिलने के लिए उद्दीप्त करता है। इस तरह कृष्ण तथा गोपियों की लीलाएँ एक प्रकार के दिव्य औंधेरे से ढक जाती हैं, इसलिए वेदों के सामान्य विद्वानों के लिए देख पाना असम्भव हो जाता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक ललित माधव (1.23) का है, जिसे पौर्णमासी ने गार्गी से बातचीत के दौरान कहा।

भगवद्गीता (2.45) में श्रीकृष्ण ने कहा है- त्रेगुण्य-विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। इस तरह वे अर्जुन को भौतिक प्रकृति के तीन गुणों से ऊपर उठने को कहते हैं, क्योंकि सम्पूर्ण वैदिक प्रणाली सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण के वर्णनों से भरी पड़ी है। सामान्यतया लोग रजोगुण से आवृत रहते हैं, इसलिए वे ब्रज की गोपियों के साथ कृष्ण की लीलाएँ समझ पाने में असमर्थ रहते हैं। साथ ही तमोगुण उनके ज्ञान को और भी विचलित कर देता है। किन्तु वृन्दावन में यद्यपि कृष्ण धूल के धुंधले अन्धकार से आच्छादित रहते हैं, फिर भी गोपियाँ समझ सकती हैं कि धूल की आँधी के बीच कृष्ण हैं। चूँकि वे उनकी सर्वोच्च भक्त हैं, अतः वे हर बात में कृष्ण के हाथ होने का अनुभव करती हैं। इस तरह आँधेरे में या धूल की धुंधली आँधी में भी भक्त समझ सकते हैं कि कृष्ण क्या कर रहे हैं। इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि कृष्ण गोपियों जैसी उच्च भक्तों की दृष्टि से कभी भी अदृश्य नहीं होते।

ह्रियमवगृह्य गृहेभ्यः कर्षति

राधां वनाय या निपुणा ।

सा जयति निसृष्टार्था

वर-वंशज-काकली दूती ॥189॥

शब्दार्थ

ह्रियम्-लज्जा को; अवगृह्य-हरकर; गृहेभ्यः-अपने घर से; कर्षति-आकृष्ट करती है; राधाम-श्रीमती राधारानी को, वनाय-वन की ओर, या-जो; निपुणा-अत्यन्त निपुण; सा-उसकी; जयति-जय हो, निसृष्ट-अर्था-प्रामाणिक, वर-वंश-ज-बांस की बंशी की, काकली-मधुर ध्वनि, दूती-सन्देशवाहिनी।

अनुवाद

“भगवान् कृष्ण की प्रामाणिक दूती वंशी की मधुर ध्वनि की जय हो, क्योंकि वह कुशलतापूर्वक श्रीमती राधारानी की लजा को दूर करती है और उन्हें अपने घर से वन के लिए आकृष्ट करती है।”

तात्पर्य

यह श्लोक ललित माधव (1.24) से है, जिसे गर्गमुनि की कन्या गार्गी ने कहा है।

सह-चरि निरातङ्कः कोऽयं युवा मुदिर-द्युतिर्

व्रज-भुवि कुतः प्राप्तो माद्यन्मते-गज-विभ्रमः ।

अहह चटुलैरुत्सर्पद्रिङ्गञ्चल-तस्कैर्

मम धृति-धनं चेतः-कोषाद्विलुण्ठयतीह यः ॥ 190 ॥

शब्दार्थ

सह-चरि-हे मेरी प्रिय सखी; निरातङ्कः-निडर; कः-कौन; अयम्-यह; युवा— युवक, मुदिर-द्युतिः-चमकते हुए बादल के समान कान्तिमान; व्रज-भुवि-व्रज भूमि, वृन्दावन में, कुतः-कहाँ से; प्राप्तः-प्राप्त किया है; माद्यन्-मदोन्मत्त होकर, मतमगज-हाथी की तरह,; विभ्रमः-जिसकी लीलाएँ, अहह-हाय; चटुलैः-अत्यन्त अस्थिर, उत्सर्पद्भिः-सभी दिशाओं में विचरण करते; हक्-अश्वल-तस्कैः-चोर जैसी अपनी आँखों की चितवन से; मम-मेरे; धृति-धनम्-मेरे धैर्य के खजाने को; चेतः-हृदय की; कोषात्-तिजोरी से; विलुण्ठयति-चुरा रहा है; इह-इस वृन्दावन में, यः-वह व्यक्ति जो।

अनुवाद

“हे प्रिय सखी, यह निडर युवक कौन है? यह बिजली से युक्त बादल की तरह तेजवान है और अपनी लीलाओं में उन्मत्त हाथी की तरह विचरण करता है। यह वृन्दावन में कहाँ से आया है? हाय, यह अपने चंचल हावभावों तथा आकर्षक चितवनों से मेरे हृदय की तिजोरी से धैर्य रूपी खजाना लूट रहा है।”

तात्पर्य

यह श्लोक (ललित म78/व 2.11) श्रीमती राधारानी ने अपनी सखी ललिता देवी से कहा है।

विहार-सुर-दीर्घिका मम मनः-करीन्द्रस्य या

विलोचन-चकोरयोः शरदमन्द-चन्द्र-प्रभा ।

उरोऽम्बर-तटस्य चाभरण-चारु-तारावली

मयोन्नत-मनोरथैरियमलम्भि सा राधिका ॥ 191 ॥

शब्दार्थ

विहार-सुर-दीर्घिका-देव लोकों में बहने वाली गंगा, मम-मेरे; मनः-करिन्द्रस्य-हाथी के समान मन का, या-वह (स्त्री); विलोचन-दृष्टिपात, चकोरयोः-मेरे दो नेत्रों की, जो चकोर पक्षी के समान हैं, शरत्-अमन्द-चन्द्र-प्रभा-शरद ऋतु के पूर्ण चन्द्र की कान्ति के समान, उरः-मेरे वक्ष स्थल के; अम्बर-आकाश जैसे; तटस्य-किनारे पर; च-भी; आभरण-आभूषण, चारु-सुन्दर, तारा-आवली-तारों के समान, मया-मेरे द्वारा; उन्नत-अत्यन्त उन्नत; मनः-रथैः-मन की इच्छाओं द्वारा; इयम्-यह; अलम्भि-प्राप्त कर लिया है; सा-सा, राधिका-श्रीमती राधारानी को।

अनुवाद

“श्रीमती राधारानी गंगा है, जिसमें मेरा मन रूपी हाथी विहार करता है। वह मेरे नेत्र रूपी चकोरों के लिए शरदकालीन पूर्ण चन्द्रमा है। वह चमचमाता आभूषण मेरे वक्षस्थल रूपी आकाश के किनारे तारों की चमकीली तथा सुन्दर सजावट है। आज मैंने श्रीमती राधारानी को अपने मन की उन्नत अवस्था के कारण प्राप्त कर लिया है।”

तात्पर्य

यह श्लोक ललित माधव (2.10) से है, जिसमें श्रीमती राधारानी के विषय में श्रीकृष्ण के विचार व्यक्त हुए हैं।

एत शुनि' राय कहे प्रभुर चरणे ।

रूपेर कवित्व प्रशंसि' सहस्र-वदने ॥ 19.2 ॥

शब्दार्थ

एत शुनि'-यह सुनकर, राय-रामानन्द राय, कहे-कहते हैं; प्रभुर चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में, रूपेर-श्रील रूप गोस्वामी के, कवित्व-कवित्व कला की; प्रशंसि'-प्रशंसा करते हैं, सहस्र-वदने-मानो हजारों मुखों से।

अनुवाद

यह सुनकर श्रील रामानन्द राय ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणों पर श्रील रूप गोस्वामी के कवित्व की अति श्रेष्ठता का निवेदन किया और उसकी इस तरह प्रशंसा करने लगे मानो उनके हजार मुख हों।

“कवित्व ना हय एड़ अमृतेर धार ।

नाटक-लक्षणा सब सिद्धान्तेर सार” ॥ 193 ॥

शब्दार्थ

कवित्व-कवित्व कला; ना हय-नहीं है; एड़-यह; अमृतेर धार-अमृत की निरन्तर वर्षा है; नाटक-नाटक; लक्षण-प्रकट हो रहे हैं; सब-सभी; सिद्धान्तेरसार-सिद्धान्तों का सार ।

अनुवाद

श्रील रामानन्द राय ने कहा, “यह काव्य-प्रस्तुति नहीं, यह तो अमृत की निरन्तर वर्षा है। निस्सन्देह, यह समस्त सिद्धान्तों का सार है, जो नाटकों के रूप में प्रकट हुआ है।”

प्रेम-परिपाटी एड़ अद्भुत वर्णन ।

शुनि’ चित्त-कर्णेर हय आनन्द-घूर्णन ॥194॥

शब्दार्थ

प्रेम-परिपाटी-प्रेम व्यवहारों का वर्णन करने की प्रथम श्रेणी की व्यवस्था; एड़-यह; अद्भुत वर्णन-अद्भुत वर्णन, शुनि-सुनकर, चित्त-कर्ण-हृदय और कानों का, हयहोता है; आनन्द-घूर्णन-दिव्य आनन्द का भँवर।

अनुवाद

“रूप गोस्वामी द्वारा किये गये अदभुत वर्णन प्रेम-व्यवहारों को व्यक्त करने के लिए सर्वोत्तम व्यवस्था है। उन्हें सुनकर हर व्यक्ति के हृदय तथा कान दिव्य आनन्द के भँवर में निमग्न हो जायेंगे।

किं काव्येन कवेस्तस्य किं काण्डेन धनुष्मतः ।

परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः ॥ 195॥

शब्दार्थ

किम्-क्या लाभ है; काव्येन-काव्य से; कवेः-कवि के; तस्य-उस; किम्-क्या लाभ है; काण्डेन-बाण का, धनुः-मतः-धनुधारी के; परस्य-दूसरे के; हृदये-हृदय में, लग्नम-भेदते हैं; न घूर्णयति-चकराने का कारण नहीं बनते; यत्-जो; शिरः-सिर को।

अनुवाद

“धनुर्धर के तीर अथवा कवि की कविता का क्या लाभ, यदि वे हृदय में प्रवेश तो करते हैं, किन्तु सिर को चकरा नहीं देते?”

“तोमार शक्ति विना जीवेर नहे एइ वाणी ।

तुमि शक्ति दिया कहाओ,—हेन अनुमानि” ॥ 196॥

तोमार शक्ति विना-आपकी विशेष कृपा के बिना; जीवेर-सामान्य जीव के; नहेनहीं हो सकती; एइ वाणी-ये शब्द; तुमि-आप; शक्ति दिया-शक्ति देकर, कहाओइनसे कहलवा रहे हैं; हेन-ऐसा; अनुमानि-मेरा अनुमान है।

अनुवाद

“आपकी कृपा के बिना किसी सामान्य जीव के लिए इस तरह की काव्य रचना कर पाना असम्भव होगा। मेरा अनुमान है कि आपने उसे यह शक्ति प्रदान की है।”

प्रभु कहे,—“प्रयागे इहार हइल मिलन ।

इहार गुणे इहाते आमार तुष्ट हैल मन” ॥ 197॥

प्रभु कहे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; प्रयागे-प्रयाग में; इहार-इसका; हइल-हुआ था; मिलन-मिलन, भेंट, इहार गुणे-इसके दिव्य गुणों द्वारा, इहाते-इसमें, आमार-मेरा; तुष्ट-सन्तुष्ट, हैल-हुआ; मन-मन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, “मै श्रील रूप गोस्वामी से प्रयाग में मिला था। उसने अपने गुणों के कारण मुझे आकृष्ट और तुष्ट किया था।”

तात्पर्य

ऐसा नहीं है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् किसी का पक्ष लें और अन्यो से उदासीन रहें। वस्तुतः सेवा द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है। तब व्यक्ति को भगवान् द्वारा इस तरह से कार्य करने की शक्ति प्रदान की जाती है कि हर कोई उसकी सेवा की प्रशंसा करे। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (4.11) द्वारा होती है- ये यथा मां

प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भज/म्यहम्/ कृष्ण आदान-प्रदान करते हैं। यदि कोई भगवान् की सर्वोत्तम सेवा करने का प्रयास करता है, तो भगवान् उसे ऐसा करने की शक्ति प्रदान करते हैं। कृष्ण ने भगवद्गीता (10.10) में यह भी कहा है :

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

“जो लोग निरन्तर भक्ति करते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी सेवा के प्रति समर्पित हैं, उन्हें मैं वह बुद्धि देता हूँ जिससे वे मेरे पास आ सकें।” श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी पर विशेष कृपा की, क्योंकि श्रील रूप गोस्वामी अपनी शक्ति के अनुसार सर्वोत्तम रूप से भगवान् की सेवा करना चाहते थे। भक्तिमय कार्यों को सम्पन्न करने में भक्त और भगवान् में इस प्रकार का आदान-प्रदान होता है।

मधुर प्रसन्न इहार काव्य सालङ्कार ।

ऐछे कवित्व विनु नहे रसेर प्रचार ॥198॥

मधुर-मधुर, प्रसन्न-आनन्ददायक, इहार-इसका; काव्य-कवित्व, स-अलङ्काररूपक और अलंकारों से युक्त; ऐछे-ऐसे है कि, कवित्व-कवित्व गुण, विनु-विना; नहे-नहीं है; रसेर-रसों का; प्रचार-प्रचार। अनुवाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी की दिव्य कविता के रूपकों तथा अन्य साहित्यिक अलंकारों की प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि ऐसे काव्य लक्षणों (कवित्व) के बिना दिव्य रसों का प्रचार करने की सम्भावना नहीं है।

सबे कृपा करि' इँहारे देह' एड़ वर ।

ब्रज-लीला-प्रेम-रस येन वर्णे निरन्तर ॥ 199 ॥

सबे-आप सभी; कृपा करि'-कृपा करके; इँहारे-श्रील रूप गोस्वामी को; देह'- दीजिये; एड़ वर-यह वरदान; ब्रज-लीला-प्रेम-रस-वृन्दावन की लीलाओं के दिव्य रस; येन-ताकि, वर्ण-यह वर्णन कर सके; निरन्तर-बिना रूकावट के।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने समस्त निजी संगियों से रूप गोस्वामी को आशीर्वाद देने के लिए विनती की जिससे वे वृन्दावन-लीलाओं का निरन्तर वर्णन कर सकें, क्योंकि ये परम भगवान् के भावात्मक प्रेम से परिपूर्ण हैं।

इँहार ये ज्येष्ठ-भ्राता, नाम-'सनातन' ।

पृथिवीते विज्ञ-वर नाहि तारं सम ॥ 200 ॥

इँहार-श्रील रूप गोस्वामी का, ये-जो, ज्येष्ठ-भ्राता-बड़ा भाई है; नाम-नाम का, सनातन-सनातन गोस्वामी;
पृथिवीते-पृथ्वी पर; विज्ञ-वर-अत्यन्त ज्ञानी; नाहि-अन्य कोई नहीं है; तारं सम-उसके समान।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “श्रील रूप गोस्वामी का बड़ा भाई जिसका नाम सनातन गोस्वामी है,
इतना विवेकी तथा विद्वान पण्डित है कि उसकी समता कोई नहीं कर सकता।”

तोमार यैछे विषय-त्याग, तैछे तारं रीति ।

दैन्य-वैराग्य-पाण्डित्ये तारं हातेइ स्थिति ॥ 201 ॥

तोमार-तुम्हारी; यैछे-जैसा; विषय-त्याग-भौतिक सम्बन्धों से विरक्ति; तैछे-वैसा ही; तारं रीति-उसकी कार्यविधि;
दैन्य-विनम्रता; वैराग्य-वैराग्य भाव, पाण्डित्ये-विद्वता की; तारं हातेइ-उसमें; स्थिति-स्थिति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से कहा, “सनातन गोस्वामी का भौतिक सम्बन्धों से विच्छेद तुम्हारे
ही जैसा है। दीनता, वैराग्य तथा पाण्डित्य उसमें एकसाथ पाये जाते हैं।”

एइ दुइ भाइये आमि पाठाइलुँ वृन्दावने ।

शक्ति दिया भक्ति-शास्त्र करिते प्रवर्तने ॥ 202 ॥

एइ-इन, दुइ-दोनों, भाइये-भाइयों को, आमि-मैंने; पाठाइलुँ-भेज दिया; वृन्दावने-वृन्दावन, शक्ति दिया-इन्हें
शक्ति प्रदान करके; भक्ति-शास्त्र-भक्तिमयी सेवा से सम्बन्धित दिव्य साहित्य; करिते-करने के लिए, प्रवर्तने-प्रचार।

अनुवाद

“मैंने इन दोनों भाइयों को वृन्दावन जाकर भक्ति साहित्य का विस्तार करने के लिए शक्ति प्रदान की।”

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रामानन्द राय को बताया कि वे तथा सनातन गोस्वामी भौतिक कार्यकलाप से सम्बन्ध
त्याग देने के बाद समान रूप से भक्ति में लग गये थे। ऐसा वैराग्य पूरी तरह भौतिक कल्मष रहित भगवद्भक्ति में संलग्न

शुद्ध भक्त का लक्षण है। श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुसार यह तृणादपि सुनीचन तरोरिव सहिष्णुना जैसा पद है। शुद्ध भक्त, भौतिक गुणों के परिणामों से मुक्त होकर वृक्ष के ही समान सहिष्णु बनकर भक्ति करता है। वह अपने आपको घास से भी नीच मानता है। ऐसा भक्त निष्किंद्धन कहलाता है। वह सदैव ईश्वर के भावात्मक प्रेम में निमग्न रहता है। वह किसी भी तरह की इन्द्रियतृप्ति का भोग करने के लिए अनिच्छुक रहता है। दूसरे शब्दों में, ऐसा भक्त समस्त भौतिक बन्धन से मुक्त रहता है, किन्तु वह अपने आपको कृष्णभावनाभावित कार्यों में लगाता है। ऐसी दक्ष भक्ति कपटरहित होकर सम्पन्न की जाती है। दीनता, वैराग्य तथा पांडित्य-इन तीनों का संगम सनातन गोस्वामी में था, जो एक आदर्श शुद्ध भक्त थे और श्रील रामानन्द राय के समान ही ज्ञानवान थे। रामानन्द राय की ही तरह सनातन गोस्वामी भक्ति के सिद्धान्तों से पूर्णतया अवगत थे, अतएव ऐसे दिव्य ज्ञान का वर्णन करने में सक्षम थे।

राय कहे,--“ईश्वर तुमि ये चाह करिते ।

काछेर पुतली तुमि पार नाचाइते” ॥203॥

राय कहे-श्रील रामानन्द राय ने कहा; ईश्वर तुमि-आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, ये-जो कुछ भी; चाह-आप चाहते हैं; करिते-करना; काछेर-लकड़ी के; पुतलीपुतले, तुमि-आप; पार-समर्थ हैं, नाचाइते-नचाने में।

अनुवाद

श्रील रामानन्द राय ने श्री चैतन्य महाप्रभु को उत्तर दिया, “हे प्रभु, आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। आप चाहें तो एक काठ की पुतली को भी नचा सकते हैं।”

मोर मुखे ये सब रस करिला प्रचारणे ।

सेइ रस देखि एइ इहार लिखने ॥ 204 ॥

मोर मुखे-मेरे मुख से, ये-जो कुछ; सब रस-वे सभी दिव्य रस; करिला-आपने करवाये; प्रचारणे-प्रचारित, सेइ रस-बिल्कुल वही दिव्य रस, देखि-मैं देख रहा हूँ, एइ-यह; इहार लिखने-श्रील रूप गोस्वामी की रचनाओं में।

अनुवाद

“मैं देख रहा हूँ कि आपने मेरे मुख के माध्यम से जिस दिव्य रस से सम्बन्धित सत्य की स्थापना की है, वह सब श्रील रूप गोस्वामी की रचनाओं में विवेचित है।”

भक्ते कृपा-हेतु प्रकाशिते चाह ब्रज-रस ।

यारे कराओ, सेइ करिबे जगत् तोमार वश ॥ 205 ॥

भक्ते-भक्तों पर; कृपा-हेतु-कृपा के कारण; प्रकाशिते-प्रकट करवाना; चाहआप चाहते हैं; ब्रज-रस-वृन्दावन के दिव्य रस, यारे-जिस किसी को भी; कराओ-आप शक्ति प्रदान करें; सेइ-वही; करिबे-करेगा; जगत्-सम्पूर्ण विश्व को; तोमार वशआपके वश में।

अनुवाद

“अपने भक्तों पर अहेतुकी कृपा के कारण आप वृन्दावन की दिव्य लीलाओं का वर्णन कराना चाहते हैं। जिस किसी को भी ऐसा करने की शक्ति प्राप्त हो जाए, वह सारे जगत् को आपके वश में ला सकता है।”

तात्पर्य

यह कथन कृष्णशक्ति बिना नहे तार प्रवतन के ही समान है, जिसका अर्थ यह है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण से शक्ति प्राप्त किये बिना कोई व्यक्ति सारे जगत् में भगवान् के पवित्र नाम का प्रसार नहीं कर सकता। (चैतन्यचरितामृत, अन्त्य 7,11)। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के संरक्षण में शुद्ध भक्त भगवान् के पवित्र नाम का प्रचार कर सकता है, जिससे हर व्यक्ति इस सुविधा का लाभ उठाकर कृष्णभावनाभावित बन सकता है।

तबे महाप्रभु कैला रूपे आलिङ्गन ।

तारै कराइला सबार चरण वन्दन ॥ 206 ॥

तबे-उस समय; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभुने; कैला-किया; रूपे-रूप गोस्वामी को; आलिङ्गन-आलिङ्गन; तारै-उनसे; कराइला-करवाई; सबार-उन सभी के; चरण वन्दन-चरणकमलों की वन्दना ।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रूप गोस्वामी का आलिङ्गन किया और उनसे वहाँ उपस्थित सारे भक्तों के चरणकमलों की वन्दना करने के लिए कहा।

अद्वैत-नित्यानन्दादि सब भक्त-गण ।

कृपा करि' रूपे सबे कैला आलिङ्गन ॥ 207॥

अद्वैत-अद्वैत आचार्य; नित्यानन्द-आदि-श्री नित्यानन्द प्रभु और अन्य; सब-सभी, भक्त-गण-अन्तरंग भक्त; कृपा करि'-अति कृपा करके; रूपे-रूप गोस्वामी को; सबे-सभी ने; कैला आलिङ्गन-गले लगा लिया।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य, नित्यानन्द प्रभु तथा अन्य सारे भक्तों ने रूप गोस्वामी का आलिंगन करके उन पर अपनी अहैतुकी कृपा प्रदर्शित की।

प्रभु-कृपा रूपे, आर रूपेर सदगुण ।

देखि' चमत्कार हैल सबाकार मन ॥ 208 ॥

प्रभु-कृपा-चैतन्य महाप्रभु की कृपा; रूपे-रूप गोस्वामी के प्रति; आर-और; रूपेर सत्-गुण-श्रील रूप गोस्वामी के दिव्य गुण; देखि'-देखकर, चमत्कार हैल-आश्चर्य हो गया; सबाकार-उन सभी के; मन-मनों में।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी पर श्री चैतन्य महाप्रभु की विशेष कृपा तथा उनके व्यक्तिगत गुणों को देखकर सारे भक्त आश्चर्यचकित रह गये।

तबे महाप्रभु सब भक्त गेला ।

हरिदास-ठाकुर रूपे आलिङ्गन कैला ॥ 209 ॥

तबे-उस समय, महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, सब-सभी; भक्त-भक्तों के; लजा-साथ, गेला-उस स्थान से चले गये; हरिदास-ठाकुर-हरिदास ठाकुर, रूपे-रूप गोस्वामी की; आलिङ्गन कैला-आलिंगन किया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु अपने सारे भक्तों सहित चले गये, तो हरिदास ठाकुर ने भी श्रील रूप गोस्वामी का आलिंगन किया।

हरिदास कहे,—“तोमार भाग्येर नाहि सीमा ।

ये सब्ब वर्णिंला, इहार के जाने महिमा?” ॥ 210 ॥

हरिदास कहे-हरिदास ठाकुर ने कहा; तोमार-तुम्हारे; भाग्येर-भाग्य की; नाहि सीमा-सीमा नहीं है; ये-जो कुछ भी; सब-सब; वर्णिला-तुमने वर्णन किया है; इहारइसकी; के जाने-कौन समझ सकता है; महिमा-महिमा।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने उनसे कहा, “तुम्हारे सौभाग्य की कोई सीमा नहीं है। तुमने जो वर्णन किया है उसकी महिमा कोई नहीं समझ सकता।”

श्री-रूप कहेन,—“आमि किछुइ ना जानि ।

येह महाप्रभु कहान, सेह कहि वाणी” ॥ 211 ॥

श्री-रूप कहेन-श्रील रूप गोस्वामी ने उत्तर दिया; आमि-मैं; किछुइ-कुछ भी, ना जानि-नहीं जानता; येइ-जो कुछ; महाप्रभु कहान-श्री चैतन्य महाप्रभु मुझसे बुलवाते या लिखवाते हैं; सेइ-वही; कहि-मैं कहता हूँ; वाणी-दिव्य शब्द।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने कहा, “मैं कुछ नहीं जानता। मैं केवल वे ही दिव्य शब्द बोल सकता हूँ, जिन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु मुझसे कहलवाते हैं।”

तात्पर्य

दिव्य विषयों का लेखक या कवि सामान्य लेखक या अनुवादक नहीं होता। चूँकि वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा शक्तिप्रदत्त होता है, अतः वह जो कुछ लिखता है प्रभावशाली हो जाता है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा शक्तिप्रदत्त होने का नियम अनिवार्य है। जो भौतिकतावादी कवि अपनी कविता में स्त्री या पुरुष के भौतिक कार्यों का वर्णन करता है, वह भगवान् की दिव्य लीलाओं का या भक्ति के दिव्य सिद्धान्तों का वर्णन नहीं कर सकता। इसीलिए श्रील सनातन गोस्वामी ने सारे नये भक्तों को सावधान किया है कि वे अवैष्णवों के मुख से कुछ न सुनें।

अवैष्णवमुखोद्गीर्णं पूतं हरिकथामृतम् ।

श्रवणं नैव कर्तव्यं सर्पोच्छिष्टं यथा पयः ॥

(पद्म पुराण)

“कृष्ण के बारे में किसी अवैष्णव से कुछ भी नहीं सुनना चाहिए। सर्प के मुख के स्पर्श से दूध विषैला हो जाता है; इसी प्रकार किसी अवैष्णव द्वारा कृष्ण-सम्बन्धी की गई चर्चा भी विषैली होती है।”

जब तक मनुष्य भगवान् का पूर्ण शुद्ध भक्त न बन जाए, तब तक उसे कृष्ण की लीलाओं को कविताबद्ध करने का प्रयास नहीं करना चाहिए, क्योंकि तब तो यह केवल संसारी होगी। कृष्ण की भगवद्गीता को लेकर अनेक ऐसे व्यक्तियों ने वर्णन लिखे हैं, जिनकी चेतना संसारी है और जो शुद्ध भक्ति में योग्य नहीं हैं। यद्यपि उन्होंने दिव्य साहित्य लिखने का प्रयास किया है, किन्तु वे एक भी भक्त को कृष्ण की सेवा में पूर्णतः नहीं लगा पाये। ऐसा साहित्य संसारी होता है, अतएव इसका स्पर्श भी नहीं करना चाहिए, जैसाकि श्री सनातन गोस्वामी ने आग्रह किया है।

हृदि यस्य प्रेरणया

प्रवर्तितोऽहं वराक-रूपोऽपि ।

तस्य हरेः पद-कमलं

वन्दे चैतन्य-देवस्य ॥ 212 ॥

हृदि-हृदय में, यस्य-जिनकी (पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की, जो अपने भक्तों को कृष्णभावनामृत आन्दोलन फैलाने की बुद्धि प्रदान करते हैं); प्रेरणया-प्रेरणा से; प्रवर्तितः- प्रवृत्त हुआ हूँ; अहम्-मैं; वराक-तुच्छ एवं दीन; रूपः-रूप गोस्वामी; अपि-यद्यपि; तस्य-उनके; हरेः-परम भगवान् हरि के; पद-कमलम्-चरणकमलों में; वन्दे-मुझे अपनी प्रार्थनायें अर्पित करने दो; चैतन्य-देवस्य-श्री चैतन्य महाप्रभु के।

अनुवाद

“यद्यपि मैं सब से नीच व्यक्ति हूँ और मुझमें कुछ ज्ञान नहीं है, किन्तु महाप्रभु ने कृपा करके मुझे भक्ति के विषय में दिव्य ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा दी है। इसलिए मैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने मुझे इन ग्रन्थों को लिखने का अवसर प्रदान किया है।”

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (1.1.2) का है।

एङ्-मत दुङ्-जन कृष्ण-कथा-रङ्गे ।

सुखे काल गोडाय रूप हरिदास-सङ्गे ॥ 213 ॥

एह-मत-इस प्रकार; दुइ-जन-हरिदास ठाकुर और श्रील रूप गोस्वामी, कृष्णकथा-रङ्गे-कृष्ण के विषय में चर्चा करने के आनन्द में, सुखे-सुख में, काल-समय; गोडाय-व्यतीत करते हैं; रूप-श्रील रूप गोस्वामी, हरिदास-सङ्गे-हरिदास ठाकुर के संग में।

अनुवाद

इस तरह भगवान् कृष्ण की लीलाओं के विषय में विचार-विमर्श करते हुए श्रील रूप गोस्वामी ने हरिदास ठाकुर के संग परम सुख में अपना समय बिताया।

चारि मास रहि' सब प्रभुर भक्त-गण ।

गोसाजि विदाय दिला, गौडे करिला गमन ॥ 214 ॥

चारि मास-चार महिने; रहि'-रहकर; सब-सभी; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गण-भक्त जन; गोसाजि-चैतन्य महाप्रभु: विदाय दिला-विदाई देकर; गौडे-बंगाल की ओर; करिला गमन-वापस लौट गये।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों ने उनके साथ चार मास बिताये। तब महाप्रभु ने उन सबको विदा किया और वे बंगाल लौट गये।

श्री-रूप प्रभु-पदे नीलाचले रहिला ।

दोल-यात्रा प्रभु-सङ्गे आनन्दे देखिला ॥ 215॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी, प्रभु-पदे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणों में, नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में, रहिला-रहे; दोल-यात्रा-दोल यात्रा उत्सव; प्रभु-सङ्गे-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ, आनन्दे-अत्यन्त प्रसन्नता के साथ; देखिला-देखे।

अनुवाद

किन्तु श्रील रूप गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में रुके रहे और जब दोलयात्रा उत्सव मनाया गया, तो उन्होंने महाप्रभु के साथ इसे परम सुखपूर्वक देखा।

दोल अनन्तरे प्रभु रूपे विदाय दिला ।

अनेक प्रसाद करि' शक्ति सञ्चारिला ॥ 216 ॥

दोल अनन्तरे-दोल यात्रा के बाद; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; रूपे-रूप गोस्वामी को; विदाय दिला-विदाई देकर;
अनेक प्रसाद करि'-सब प्रकार की कृपा से युक्त करके; शक्ति सञ्चारिला-शक्ति प्रदान की।

अनुवाद

जब दोलयात्रा उत्सव समाप्त हो गया, तो श्री चैतन्य महाप्रभुने रूप गोस्वामी को भी विदा कर दिया।
महाप्रभु ने उन्हें शक्ति प्रदान की और उन पर सभी प्रकार की कृपा अर्पित की।

“वृन्दावने याह' तुमि, रहिह वृन्दावने ।

एकबार इहाँ पाठाइह सनातने” ॥217॥

वृन्दावने-वृन्दावन में, याह'-अब जाओ, तुमि-तुम, रहिह-रही; वृन्दावनेवृन्दावन में, एक-बार-एक बार, इहाँ-
यहाँ, पाठाइह-भेजो, सनातने-तुम्हारे बड़े भाई, सनातन गोस्वामी को।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, “अब तुम वृन्दावन जाओ और वहीं रुको। तुम अपने बड़े भाई सनातन को यहाँ भेज
सकते हो।”

ब्रजे याइ रस-शास्त्र करिह निरूपण ।

लुप्त-तीर्थ सब ताहाँ करिह प्रचारण ॥218॥

ब्रजे याइ-वृन्दावन जाकर; रस-शास्त्र-भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं से सम्बन्धित सभी दिव्य ग्रन्थों की;
करिह निरूपण-ध्यानपूर्वक रचना करो, लुप्त-तीर्थ-विलुप्त तीर्थ स्थल; सब-सभी; ताहाँ-वहाँ, करिह प्रचारण-प्रकाशित
करो।

अनुवाद

“जब तुम वृन्दावन जाओ तो वहाँ रुकना, दिव्य साहित्य का प्रचार करना और विलुप्त पवित्र स्थलों
को प्रकाशित करना।”

“कृष्ण-सेवा, रस-भक्ति करिह प्रचार ।

आमिह देखिते ताहाँ याइमु एकबार” ॥ 219 ॥

कृष्ण-सेवा-भगवान् कृष्ण की सेवा; रस-भक्ति-प्रेममयी सेवा; करिह प्रचारप्रचार करो; आमिह-मैं भी; देखिते-
देखने के लिए; ताहाँ-वहाँ वृन्दावन में; याइमु-मैं जाऊँगा; एक-बार-एक बार।

अनुवाद

“भगवान् कृष्ण की सेवा स्थापित करना और भगवान् कृष्ण की भक्ति के रसों का प्रचार करना। मैं भी
एक बार पुनः वृन्दावन जाऊँगा।”

एत बलि' प्रभु तारै कैला आलिङ्गन ।

रूप गोसाजि शिरे धरे प्रभुर चरण ॥ 220 ॥

एत बलि'-यह कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तारै-रूप गोस्वामी को; कैला आलिङ्गन-आलिंगन करते हैं;
रूप गोसाजि-श्रील रूप गोस्वामी, शिरे-सिर पर, धरेधारण करते हैं; प्रभुर चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

इस तरह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने रूप गोस्वामी का आलिंगन किया। तब उन्होंने अपने सिर पर
महाप्रभु के चरणकमल रखे।

प्रभुर भक्त-गण-पाशे विदाय लइला ।

पुनरपि गौड़-पथे वृन्दावने आइला ॥ 221 ॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गण-पाशे-भक्तों से; विदाय लइला-विदाई लेकर; पुनरपि-फिर; गौड़-पथे-
बंगाल के रास्ते से; वृन्दावने-वृन्दावन; आइला-लौट आये।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों से विदा ली और वे बंगाल के रास्ते होकर
वृन्दावन लौट आये।

एइ त' कहिलाड पुनः रूपेर मिलन ।

इहा येइ शुने, पाय चैतन्य-चरण ॥ 222॥

एइ त' कहिलाड-इस प्रकार मैंने कहा, पुनः-दोबारा, रूपेर मिलन-श्रील रूप गोस्वामी से भेंट, इहा-यह संवाद; येह शुने-जो कोई भी सुनता है; पाय-प्राप्त करता है; चैतन्य-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

इस तरह मैंने श्रील रूप गोस्वामी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की द्वितीय भेंट का वर्णन किया है। जो भी इस घटना को सुनता है, वह निश्चय ही श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण प्राप्त करेगा।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥223॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी के, रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे चरणकमलों में; यार-जिसकी; आश-आशा है; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णित कर रहे हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए और सदैव उनकी कृपा की आकांक्षा करते हुए, मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलकर, श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस तरह श्री चैतन्य-चरितामृत अन्त्य-लीला के “श्रील रूप गोस्वामी तथा चैतन्य महाप्रभु की द्वितीय भेंट” शीर्षक प्रथम अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय दो

छोटे हरिदास को दण्ड

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत प्रवाह भाष्य में इस अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है: श्री चैतन्य चरितामृत के लेखक कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रत्यक्ष भेटो, उनके द्वारा शक्त्याविष्ट लोगो

से भेंटों तथा उनके आविर्भाव की व्याख्या करनी चाहिए। इस तरह उन्होंने नृसिंहानन्द तथा अन्य भक्तों की महिमाओं का वर्णन किया। एक भक्त भगवान् आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में अत्यधिक श्रद्धा रखता था। तो भी उसके भाई गोपाल भट्ट आचार्य ने मायावाद भाष्य पर व्याख्यान दिये। श्री चैतन्य महाप्रभु के सचिव श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने भगवान् आचार्य को वह भाष्य सुनने से मना किया। बाद में जब भगवान् आचार्य के आदेश पर छोटा हरिदास माधवी देवी से भिक्षा माँगने गया, तो उसने संन्यासी होते हुए भी एक स्त्री से घुल-मिलकर बातें करने का अपराध किया। इसके कारण श्री चैतन्य महाप्रभु ने छोटे हरिदास का बहिष्कार किया और अपने बड़े से बड़े भक्तों के अनुरोध के बावजूद भी महाप्रभु ने उसे फिर से स्वीकार नहीं किया। इस घटना के एक वर्ष बाद छोटे हरिदास ने गंगा-यमुना के संगम में जाकर आत्महत्या कर ली। किन्तु वह अपने आध्यात्मिक देह में भक्ति-गीत गाता रहा और श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें सुना। जब बंगाल के वैष्णवजन श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने आये, तो यह घटना स्वरूप दामोदर तथा अन्यो को ज्ञात हुई।

वन्देऽहं श्री-गुरोः श्री-युत-पद-कमलं श्री-गुरुन्वैष्णवांश्च

श्री-रूपं साग्रजातं सह-गण-रघुनाथान्वितं तं स-जीवम् ।

साद्वैतं सावधूतं परिजन-सहितं कृष्ण-चैतन्य-देवं श्री-राधा-

कृष्णा-पादान्सह-गण-ललिता-श्री-विशाखान्वितांश्च ॥ 1 ॥

वन्दे-सादर प्रणाम करता हूँ, अहम्-मैं; श्री-गुरोः-अपने दीक्षा गुरु एवं शिक्षा गुरु के; श्री-युत-पद-कमलम्-सौभाग्य से युक्त चरणकमलों को, श्री-गुरुन्-गुरु परम्परा में, श्रील माधवेन्द्रपुरी से प्रारम्भ कर श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद तक सभी आध्यात्मिक गुरुजनों को, वैष्णवान्-सृष्टि के प्रारम्भ से ही आनेवाले, ब्रह्माजी से आरम्भ कर अन्य सभी वैष्णवों को; च-तथा; श्री-रूपम्-श्रील रूप गोस्वामी को, स-अग्रजातम्-उनके बड़े भाई, सनातन गोस्वामी सहित; सह-गण-रघुनाथ-अन्वितम्-रघुनाथ दास गोस्वामी और उनके परिकरों के साथ; तम्-उनको, स-जीवम्-जीव गोस्वामी सहित, स-अद्वैतम्-अद्वैत आचार्य सहित; स-अवधूतम्-नित्यानन्द प्रभु के साथ; परिजनसहितम्-तथा श्रीनिवास ठाकुर एवं अन्य सभी भक्तों से साथ; कृष्ण-चैतन्य-देवम्-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को; श्री-राधा-कृष्ण-पादान्-सर्वशुभ श्रीकृष्ण एवं श्रीमती राधारानी के चरणकमलों को, सह-गण-संगीगणों के साथ; ललिता-श्री-विशाखा-अन्विता-श्री ललिता और श्री विशाखा के संग में, च-और।

अनुवाद

मैं अपने गुरु तथा भक्ति-मार्ग के अन्य सारे उपदेशकों के चरणकमलों में सादर नमस्कार करता हूँ। मैं सारे वैष्णवों को तथा श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी, रघुनाथ दास गोस्वामी, जीव गोस्वामी तथा उनके साथियों ससेत छही गोस्वामियों को सादर नमस्कार करता हूँ। मैं श्री अद्वैत आचार्य प्रभु, श्री नित्यानन्द प्रभु, श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्रीवास ठाकुर आदि उनके सारे भक्तों को सादर नमस्कार करता हूँ। तत्पश्चात् मैं भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीमती राधारानी तथा ललिता, विशाखा आदि समस्त गोपियों को सादर नमस्कार करता हूँ।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ 2 ॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की, जय-जय हो; नित्यानन्दनित्यानन्द प्रभु की, जय अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की जय हो, जय-जय हो, गौरभक्त-वृन्द-चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो! तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

सर्व-लोक उद्धारिते गौर-अवतार ।

निस्तारेर हेतु तार त्रिविध प्रकार ॥ 3॥

सर्व-लोक-सभी लोकों का, उद्धारिते-उद्धार करने के लिए, गौर-अवतार-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का अवतार, निस्तारेर हेतु-सभी लोगों के उद्धार के कारण; तारउनका; त्रि-विध प्रकार-तीन प्रकार का है।

अनुवाद

अपने श्री चैतन्य महाप्रभु के अवतार में भगवान् श्रीकृष्ण तीनों लोक के-ब्रह्मलोक से लेकर पाताललोक तक के सारे जीवों का उद्धार करने के लिए अवतरित हुए। उन्होंने तीन प्रकार से उनका उद्धार किया।

साक्षात्दर्शन, आर योग्य-भक्त-जीवे ।

‘आवेश’ करये काहाँ, काहाँ ‘आविर्भावे’ ॥ 4॥

साक्षात्-दर्शन-प्रत्यक्ष मिलकर; आर-तथा; प्रोग्य-भक्त-शुद्ध भक्त; जीवे-जीवात्माओं को, आवेश करये-विशिष्ट आध्यात्मिक शक्तियों द्वारा समर्थ बनाकर, काहाँ-कहीं कहीं, काहाँ-कहीं अन्य; आविर्भाव-स्वयं प्रकट होकर।

अनुवाद

महाप्रभु ने कुछ स्थानों पर पतितात्माओं से प्रत्यक्ष मिलकर, अन्य स्थानों पर किसी शुद्ध भक्त में शक्ति संचार करके तथा और स्थानों पर उनके समक्ष प्रकट होकर उनका उद्धार किया।

‘साक्षात्दर्शने’ प्रायः सब निस्तारिला ।

नकुल-ब्रह्मचारीर देहे ‘आविष्ट’ हड़ला ॥5॥

प्रद्युम्न-नृसिंहानन्द आगे कैला ‘आविर्भाव’ ।

‘लोक निस्तारिब’,—एङ् ईश्वर-स्वभाव ॥ 6 ॥

साक्षात्-दर्शने-प्रत्यक्ष मिलकर; प्रायः-लगभग; सब-सभी का; निस्तारिला-उद्धार किया, नकुल-ब्रह्मचारीर-नकुल नामक ब्रह्मचारी की; देहे-देह में, आविष्ट हड़ला-प्रवेश किये; प्रद्युम्न-नृसिंहानन्द-प्रद्युम्न नृसिंहानन्द; आगे-के समक्ष; कैला-किये; आविर्भाव-प्रकट, लोक निस्तारिब-मैं सभी पतित जीवों का उद्धार करूँगा ; एङ्-यह; ईश्वर-स्वभाव-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का स्वभाव (है)।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रायः समस्त पतितात्माओं का उद्धार उनसे प्रत्यक्ष भेंट करके किया। उन्होंने नकुल ब्रह्मचारी जैसे महान् भक्तों के शरीर में प्रवेश करके तथा नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी जैसों के समक्ष प्रकट होकर अन्यो का उद्धार किया। “मैं पतितात्माओं का उद्धार करूँगा”- यह कथन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के स्वभाव का सूचक है।

तात्पर्य

महाप्रभु ने निम्नांकित चार स्थानों पर सदा आविर्भाव रूप प्रकट किया- (1) श्रीमती शचीमाता के घर में, (2) जहाँ-जहाँ नित्यानन्द प्रभु भावावेश में नाचते थे, वहाँ पर, (3) श्रीवास के घर में (जब कीर्तन होता था) तथा (4) राघव पण्डित के घर में। श्री चैतन्य महाप्रभु इन चार स्थानों में स्वयं प्रकट हुए (इस सन्दर्भ में देखें श्लोक 34)।

साक्षात्दर्शने सब जगत् तारिला ।

एक-बार ये देखिला, से कृतार्थ हइला ॥ 7॥

साक्षात्-दर्शने-प्रत्यक्ष मिलन द्वारा; सब-समस्त; जगत्-संसार; तारिला-उन्होंने उद्धार किया; एक-बार-एक बार; ये-जो कोई भी; देखिला-देखा; से-वह; कृत-अर्थ-पूर्णतया सन्तुष्ट; हइला-हो गया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् विद्यमान थे, तब संसार का जो भी व्यक्ति उनसे एक बार भी मिलता था, वह पूर्णतया सन्तुष्ट हो जाता था और आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत बन जाता था।

गौड़-देशेर भक्त-गण प्रत्यब्द आसिया ।

पुनः गौड़-देशे याय प्रभुरे मिलिया ॥ 8॥

गौड़-देशेर-बंगाल के; भक्त-गण-भक्त; प्रति-अब्द-प्रतिवर्ष, आसिया-आकर; पुनः-फिर; गौड़-देशे-बंगाल, याय-वापस जाते; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु से; मिलिया-मिलने के बाद।

अनुवाद

प्रतिवर्ष भक्तगण श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने के लिए बंगाल से जगन्नाथपुरी जाया करते थे और उनसे मिलने के बाद वे बंगाल लौट जाते थे।

आर नाना-देशेर लोक आसि' जगन्नाथ ।

चैतन्य-चरण देखि' हइल कृतार्थ ॥ 9॥

आर-फिर, नाना-देशेर-भिन्न भिन्न प्रान्तों के; लोक-लोग; आसि'-आकर; जगन्नाथ-जगन्नाथ पुरी में, चैतन्य-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल, देखि'-देखकर, हइल-हो गये; कृत-अर्थ-पूर्णतया सन्तुष्ट।

अनुवाद

इसी तरह भारत के विभिन्न प्रान्तों से जो लोग जगन्नाथ पुरी जाते, वे श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल का दर्शन करके पूर्णतया सन्तुष्ट हो जाते।

सप्त-द्वीपेर लोक आर नव-खण्ड-वासी ।

देव, गन्धर्व, किन्नर मनुष्य-वेशे आसि' ॥ 10॥

सप्त-द्वीपेर लोक-ब्रह्माण्ड के समस्त सात द्वीपों के लोग, आर-तथा; नव-खण्डवासी-नौ खण्डों के निवासी; देव-देवतागण, गन्धर्व-गन्धर्व लोक के निवासी, किन्नरकिन्नर लोक के निवासी; मनुष्य-वेशे-मनुष्य के रूप में, आसि'-आते थे।

अनुवाद

ब्रह्माण्ड-भर से, जिसमें सातों द्वीप, नवों खण्ड, देव-लोक, गन्धर्व लोक तथा किन्नर लोक सम्मिलित हैं, लोग मनुष्यों के रूप में वहाँ जाते।

तात्पर्य

सप्तद्वीप की व्याख्या के लिए देखें मध्य-लीला (20,218) तथा श्रीमद्भागवत (5.16 तथा 5.20)। सिद्धान्त शिरोमणि के अध्याय एक (गोलाध्याय) तथा भुवन कोश में नौ खण्डों का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

ऐन्द्रं कशेरु सकलं किल ताम्रपर्णम्

अन्यद् गभस्तिमदतश्च कुमारिकाख्यम् ।

नागं च सौम्यम् इह वारुणम् अन्त्यखण्डं

गान्धर्वसंज्ञमिति भारतवर्षमध्ये ॥

“भारत-वर्ष के अन्तर्गत नौ खण्ड हैं। ये हैं (1) ऐन्द्र, (2) कशेरु, (3) ताम्रपर्ण, (4) गभस्तिमत्, (5) कुमारिका, (6) नाग, (7) सौम्य, (8) वारुण तथा (9) गान्धर्व।”

प्रभुरे देखिया याय 'वैष्णव' हजा ।

कृष्ण बलि' नाचे सब प्रेमाविष्ट हजा ॥11॥

प्रभुरे देखिया-महाप्रभु को देखकर, याय-वे लौट गये, वैष्णव हजा-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के भक्त बनकर; कृष्ण बलि'-‘कृष्ण’ उच्चारण करते, नाचे-नाचते, सबवे सब, प्रेम-आविष्ट हजा-प्रेमभाव में आविष्ट होकर।

अनुवाद

वे सभी महाप्रभु के दर्शन पाकर वैष्णव बन गये। इस तरह भगवत्प्रेम में उन लोगों ने हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन किया और नृत्य किया।

एइ-मत दर्शने त्रिजगत् निस्तारि ।

ये केह आसिते नारे अनेक संसारी ॥ 12॥

एइ-मत-इस प्रकार, दर्शने-साक्षात् दर्शन द्वारा; त्रि-जगत्-तीनों लोक; निस्तारि-उद्धार; ये केह-जो कोई, आसिते नारे-नहीं आ सके; अनेक-अनेक; संसारी-भौतिक जगत् में व्यस्त लोग।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रत्यक्ष भेंट करके तीनों लोकों का उद्धार किया। किन्तु कुछ लोग नहीं जा सके क्योंकि वे भौतिक कार्यकलापों में फँसे हुए थे।

ता-सबा तारिते प्रभु सेइ सब देशे ।

.योग्य-भक्त जीव-देहे करेन 'आवेशे' ॥13॥

ता-सबा-उन सभी का, तारिते-उद्धार करने के लिए, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने, सेइ-उन, सब-सभी, देशे-देशों में, योग्य-भक्त-एक योग्य भक्त, जीव-देहे-ऐसे जीव की देह में; करेन-करते हैं, आवेशे-प्रवेश।

अनुवाद

ब्रह्माण्ड के उन भागों के लोगों का उद्धार करने के लिए, जो उनसे भेंट नहीं कर पाये, श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं शुद्ध भक्तों के शरीर में प्रवेश किया।

सेइ जीवे निज-भक्ति करेन प्रकाशे ।

ताहार दर्शने 'वैष्णव' हय सर्व-देशे ॥ 14॥

सेइ जीवे-उस जीव में, निज-भक्ति-स्वयं अपनी ही भक्ति; करेन प्रकाशे-सीधे ही प्रकट करते हैं; ताहार दर्शने-ऐसे कृपाप्राप्त भक्त को देखकर; वैष्णव-कृष्ण के भक्त; हय-हो गये; सर्व-देशे-अन्य सभी देशों में।

अनुवाद

इस तरह उन्होंने जीवों (अपने शुद्ध भक्तों) में अपनी इतनी भक्ति प्रकट करके उन्हें आविष्ट कर दिया कि अन्य सारे देशों के लोग उन्हें देखकर भक्त बन गये।

तात्पर्य

चैतन्य-चरितामृत (अन्त्य 7.11) में ही कहा गया है :

कलि-कालेर धर्म-कृष्ण-नाम-संदंकिता ।

कृष्ण-शक्ति विना नहे तार प्रवर्तन ॥

जब तक कोई व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा शक्ति प्राप्त नहीं करता, तब तक वह विश्वभर में हरे कृष्ण महामन्त्र के पवित्र नामों का विस्तार नहीं कर सकता। जो व्यक्ति ऐसा करते हैं, वे शक्त्याविष्ट हैं। इसलिए वे कभी-कभी आवेश अवतार कहलाते हैं, क्योंकि उन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु से शक्ति मिली रहती है।

एङ्ग-मत आवेशे तारिल त्रिभुवन ।

गौड़े यैछे आवेश, करि दिग्दर्शन ॥ 15॥

एङ्ग-मत-इस प्रकार, आवेश-शक्ति प्रदान करके; तारिल त्रि-भुवन-तीनों लोकों का उद्धार किया; गौड़े-बंगाल में, यैछे-कैसे, आवेश-शक्ति प्रदान की; करि दिक्-दर्शन-मैं संक्षेप में वर्णन करूँगा।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने न केवल अपनी निजी उपस्थिति से, अपितु अन्यो को शक्त्याविष्ट करके भी तीनों लोकों का उद्धार किया। मैं संक्षेप में वर्णन करूँगा कि किस तरह उन्होंने बंगाल में एक जीव को शक्त्याविष्ट किया।

आम्बुया-मुलुके हय नकुल-ब्रह्मचारी ।

परम-वैष्णव तेहो बड़ अधिकारी ॥ 16 ॥

आम्बुया-मुलुके-आम्बुया नामक प्रदेश में, हय-हैं; नकुल-ब्रह्मचारी-नकुल ब्रह्मचारी नामक व्यक्ति; परम-वैष्णव-पूर्णतया शुद्ध भक्त, तेहो-वे, बड़ अधिकारी प्रेममयी सेवा (भक्ति) में अत्यन्त उन्नत।

अनुवाद

आम्बुया प्रान्त में नकुल ब्रह्मचारी नाम के एक व्यक्ति थे, जो पूर्णतया शुद्ध भक्त थे और भक्ति में अत्यन्त उन्नत थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि आम्बुया-मुलुक वर्तमान अम्बिका नगर है, जो पश्चिमी बंगाल के वर्धमान जिले में है। पहले मुसलमान-शासन में यह आम्बुया मुलुक कहलाता था। इस नगर के पड़ोस में प्यारीगंज है, जहाँ नकुल ब्रह्मचारी रहते थे।

गौड़-देशेर लोक निस्तारिते मन हैल ।

नकुल-हृदये प्रभु 'आवेश' करिल ॥17॥

गौड़-देशेर लोक-बंगाल के लोगों का, निस्तारिते-उद्धार करने की; मन हैल-इच्छा हुई, नकुल-हृदये-नकुल ब्रह्मचारी के हृदय में, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, आवेश करिल-प्रवेश कर गए।

अनुवाद

बंगाल के सभी लोगों का उद्धार करने की इच्छा से श्री चैतन्य महाप्रभु ने नकुल ब्रह्मचारी के हृदय में प्रवेश किया।

ग्रह-ग्रस्त-प्राय नकुल प्रेमाविष्ट हवा ।

हासे, कान्दे, नाचे, गाय उन्मत्त हवा ॥ 18 ॥

ग्रह-ग्रस्त-प्राय-किसी प्रेत-ग्रस्त व्यक्ति के समान, नकुल-नकुल ब्रह्मचारी, प्रेमआविष्ट हवा-भगवान् के प्रेमभाव से अभिभूत होकर, हासे-हँसते, काण्डे-रोते; नाचेनाचते; गाय-गाते; उन्मत्त हवा-एक पागल व्यक्ति की तरह।

अनुवाद

नकुल ब्रह्मचारी भूतप्रेत से सताये हुए व्यक्ति के समान बन गये। इस तरह वे कभी हँसते, तो कभी रोते, कभी नाचते और कभी पागल व्यक्ति की तरह गाते।

अश्रु, कम्प, स्तम्भ, स्वेद, सात्त्विक विकार ।

निरन्तर प्रेमे नृत्य, सघन हुङ्कार ॥ 19 ॥

अश्रु-आँसु; कम्प-कम्पन; स्तम्भ-स्तब्ध होना, स्वेद-पसीना आना; सात्त्विक विकार-ऐसे सारे दिव्य विकार, निरन्तर-लगातार; प्रेमे नृत्य-प्रेमभाव में नाचना, स-घन हुङ्कार-एक बादल के समान गर्जन करना।

अनुवाद

वे निरन्तर दिव्य प्रेम के शारीरिक विकार प्रकट करते। इस तरह वे रोते, काँपते, स्तम्भित होते, पसीने से लथपथ होते, भगवत्प्रेम के वशीभूत होकर नाचते और बादल जैसी ध्वनि उत्पन्न करते।

तैछे गौर-कान्ति, तैछे सदा प्रेमावेश ।

ताहा देखिबारे आइसे सर्व गौड़-देश ॥ 20 ॥

तैछे-इस प्रकार, गौर-कान्ति-भगवान् चैतन्य महाप्रभु जैसी शारीरिक कान्ति; तैछे-ठीक वैसी ही, सदा-सदैव, प्रेम-आवेश-प्रेमभाव में आविष्ट, ताहा देखिबारे-वह देखने के लिए; आइसे-आते थे; सर्व-सभी, गौड़-देश-बंगाल प्रदेश के लोग।

अनुवाद

उनका शरीर श्री चैतन्य महाप्रभु जैसी कान्ति से चमकता था और वे भगवत्प्रेम में वैसी ही तल्लीनता प्रदर्शित करते थे। इन लक्षणों को देखने के लिए बंगाल के सारे प्रान्तों से लोग आते थे।

यारे देखे तारे कहे,— ‘कह कृष्ण-नाम’ ।

ताँहार दर्शने लोक हय प्रेमोद्दाम ॥ 21 ॥

प्यारे देखे-वे जिस किसी को भी देखते, तारे कहे-वे उसे कहते; कह कृष्ण-नाममें प्रिय मित्र, कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण करो, ताँहार दर्शने-उनको देखकर, लोक हय-लोग हो गये; प्रेम-उद्दाम-भगवत्प्रेम में अति उन्नत।

अनुवाद

जिससे भी वे मिलते, उससे हरे कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करने को कहते। इस तरह लोग उन्हें देखकर भगवत्प्रेम से अभिभूत हो जाते।

चैतन्येर आवेश हय नकुलेर देहे ।

शुनि’ शिवानन्द आइला करिया सन्देहे ॥ 22 ॥

चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु, आवेश-प्रविष्ट हुए; हय-हुए हैं, नकुलेर देहे-नकुल ब्रह्मचारी की देह में, शुनि’-सुनकर, शिवानन्द आइला-शिवानन्द सेन आ गये; करिया सन्देहे-सन्देह करते हुए।

अनुवाद

जब शिवानन्द सेन ने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु नकुल ब्रह्मचारी के शरीर में प्रविष्ट हुए हैं, तो वे अपने मन में शंकालु होकर वहाँ गये।

परीक्षा करिते तारं यबे इच्छा हैल ।

बाहिरे रहिया तबे विचार करिल ॥23॥

परीक्षा करिते-परीक्षा करने के लिए; तारं-शिवानन्द सेन की; यबे-जब; इच्छाइच्छा, हैल-हुई; बाहिरे रहिया-बाहर रहकर, तबे-उस समय, विचार करिल-विचार करने लगे।

अनुवाद

नकुल ब्रह्मचारी की प्रामाणिकता की परीक्षा करने की इच्छा से वे इस प्रकार सोचते हुए बाहर ही खड़े रहे।

‘आपने बोलान मोरे, इहा यदि जानि ।

आमार इष्ट-मन्त्र जानि’ कहेन आपनि ॥ 24 ॥

तबे जानि, ईहाते हय चैतन्य-आवेशे ।

एत चिन्ति’ शिवानन्द रहिला दूर-देशे ॥ 25 ॥

आपने-स्वयं, बोलान-बुलाता है; मोरे-मुझे; इहा-यह; यदि-यदि; जानि-मुझको; आमार-मेरा; इष्ट-मन्त्र-पूजा का मन्त्र; जानि’-जानकर; कहेन आपनि-वह स्वयं बताता है; तबे जानि-तब मैं मानूँगा; ईहाते-इसमें, हय-हुआ है; चैतन्य-आवेशे-चैतन्य महाप्रभु का आवेश; एत चिन्ति’-यह सोचकर; शिवानन्द-शिवानन्द सेन; रहिला-रह गये; दूर-देशे-थोड़ी दूरी पर।

अनुवाद

“यदि नकुल ब्रह्मचारी मुझे अपने आप बुलाता है और मेरा इष्ट मन्त्र जान लेता है, तो मैं समझूँगा कि वह श्री चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति से आवेशित है।” इस तरह सोचते हुए वे कुछ दूरी पर रुके रहे।

असङ्ख्य लोकेर घटा,-केह आइसे याय ।

लोकेर सहुद्धे केह दर्शन ना पाय ॥ 26॥

असङ्ख्य लोकेर घटा-लोगों की विशाल भीड़, केह-कुछ; आइसे-आते, याय-जाते; लोकेर सङ्कड़े-लोगों की बड़ी भीड़ में, केह-उनमें से कुछ; दर्शन ना पाय-नकुल ब्रह्मचारी को देख नहीं सके।

अनुवाद

वहाँ लोगों की बड़ी भीड़ थी। कुछ लोग आ रहे थे और कुछ जा रहे थे। निस्सन्देह, उस विशाल भीड़ में कुछ लोग नकुल ब्रह्मचारी का दर्शन तक नहीं कर सके।

आवेशे ब्रह्मचारी कहे,—“शिवानन्द आछे दूरे ।

जन दुइ चारि याह, बोलाह ताहारे” ॥ 27॥

आवेशे-उस आवेश की स्थिति में, ब्रह्मचारी कहे-नकुल ब्रह्मचारी बोले, शिवानन्द-शिवानन्द सेन, आछे दूरे-कुछ दूरी पर खड़ा है; जन-लोग; दुइ-दो; चारि-चार; याह-जाओ; बोलाह ताहारे-उसे बुलाओ।

अनुवाद

नकुल ब्रह्मचारी ने अपनी आवेशित अवस्था में कहा, “शिवानन्द कुछ दूरी पर रुका हुआ है। तुम में से दो-चार लोग जाकर उसे बुला लाओ।”

चारि-दिके धाय लोके ‘शिवानन्द’ बलि ।

शिवानन्द कोन्, तोमाय बोलाय ब्रह्मचारी ॥ 28 ॥

चारि-दिके-चारों दिशाओं में, धाय लोके-लोग भागने लगे; शिवानन्द बलि-शिवानन्द का नाम उच्च स्वर में पुकारते; शिवानन्द कोन्-जो कोई भी शिवानन्द है; तोमाय-तुम्हें; बोलाय-बुला रहे हैं; ब्रह्मचारी-नकुल ब्रह्मचारी।

अनुवाद

इस तरह लोग चारों दिशाओं में इस तरह पुकारते हुए इधर-उधर दौड़ने लगे, “शिवानन्द! जो भी शिवानन्द हो, कृपया आ जाओ। नकुल ब्रह्मचारी तुम्हें बुला रहे हैं।”

शुनि’, शिवानन्द सेन ताँहा शीघ्र आइल ।

नमस्कार करि’ ताँ निकटे वसिल ॥ 29 ॥

शुनि'-सुनकर, शिवानन्द सेन-शिवानन्द सेन, ताँहा-वहाँ पर; शीघ्र-जल्दी, आइल-आ गये; नमस्कार करि'-
प्रणाम करके; तारँ निकटे-उनके समीप; वसिल- बैठ गये।

अनुवाद

उनकी बुलाने की आवाज सुनकर शिवानन्द सेन तुरन्त वहाँ गये, उन्होंने नकुल ब्रह्मचारी को नमस्कार
किया और वे उनके निकट बैठ गये।

ब्रह्मचारी बले,—“तुमि करिला संशय ।

एक-मना हज्रा शुन ताहार निश्चय” ॥ 30॥

ब्रह्मचारी बले-नकुल ब्रह्मचारी ने कहा; तुमि-तुमने; करिला संशय-संशय किया; एक-मना हज्रा-सावधानीपूर्वक,
शुन-कृपया सुनो, ताहार-उसके लिए निश्चय-प्रमाण।

अनुवाद

नकुल ब्रह्मचारी ने कहा, “मैं जानता हूँ कि तुम्हें संशय है। अब इसका प्रमाण अत्यन्त ध्यान से सुनो।”

‘गौर-गोपाल मन्त्र’ तोमार चारि अक्षर ।

अविश्वास छाड़, येड़ करियाछ अन्तर ॥ 31॥

गौर-गोपाल मन्त्र-गौर गोपाल मन्त्र; तोमार-तुम्हारा; चारि अक्षर-चार अक्षरों से बना है; अविश्वास छाड़-अपना
सन्देह त्याग दो; येड़-जो; करियाछ अन्तर-तुमने अपने मन में रखा हुआ है।

अनुवाद

“तुम चार अक्षरों वाला गौर गोपाल मन्त्र का जप करते हो। अब तुम अपने मन के भीतर बसने वाले
संशय को त्याग दो।”

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत प्रवाह भाष्य में गौर गोपाल मन्त्र की व्याख्या दी है। श्री गौरसुन्दर के
उपासक गौ-र-अङ्-ग-इन चार अक्षरों को गौर मन्त्र मानते हैं, किन्तु राधा-कृष्ण के शुद्ध उपासक रा-धा-कृष्-ण- इन चार
अक्षरों को गौर मन्त्र मानते हैं। किन्तु वैष्णवजन श्री चैतन्य महाप्रभु को राधा-कृष्ण से अभिन्न (श्रीकृष्ण चैतन्य राधाकृष्ण

नहे अन्य) मानते हैं। इसलिए जो गौराङ्ग मन्त्र का जप करता है और जो राधा-कृष्ण के नामों का जप करता है, वे एक ही स्तर पर होते हैं।

तबे शिवानन्देर मने प्रतीति हड़ल ।

अनेक सम्मान करि' बहु भक्ति कैल ॥ 32॥

तबे-उसके बाद; शिवानन्देर-शिवानन्द सेन के; मने-मन में, प्रतीति हड़ल-विश्वास हो गया; अनेक सम्मान करि'-उनका अत्यधिक सम्मान करके; बहु भक्ति कैल-उनकी प्रेममयी सेवा करने लगे।

अनुवाद

इस पर शिवानन्द सेन ने अपने मन में पूर्ण विश्वास उत्पन्न कर लिया कि नकुल ब्रह्मचारी श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा आविष्ट है। तब शिवानन्द सेन ने उसका आदर किया तथा भक्तिमयी सेवा की।

एइ—मत महाप्रभुर अचिन्त्य प्रभाव ।

एबे शुन प्रभुर यैछे हय 'आविर्भाव' ॥33॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; अचिन्त्य प्रभाव-अकल्पनीय प्रभाव; एबे-अब; शुन-सुनो; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; यैछे-किस प्रकार; हय-हुआ; आविर्भाव-प्राकट्य।

अनुवाद

इस तरह से श्री चैतन्य महाप्रभु की अचिन्त्य शक्तियों को समझना चाहिए। अब जिस तरह से उनका आविर्भाव होता है, उसे सुनिये।

शचीर मन्दिरे, आर नित्यानन्द-नर्तने ।

श्रीवास-कीर्तने, आर राघव-भवने ॥ 34॥

एइ चारि ठाजि प्रभुर सदा 'आविर्भाव' ।

प्रेमाकृष्ट हय,—प्रभुर सहज स्वभाव ॥ 35॥

शचीर मन्दिरे-माता शची के घर के मन्दिर में, आर-तथा; नित्यानन्द-नर्तने-श्री नित्यानन्द प्रभु के नृत्य के समय, श्रीवास-कीर्तने-श्रीवास पण्डित नेतृत्व में हो रहे संकीर्तन के समय, आर-और; राघव-भवने-राघव के घर में, एइ चारि

ठाजि-इन चार स्थानों में, प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का, सदा-सदैव, आविर्भाव-प्राकट्य; प्रेम-आकृष्ट हयप्रेम से आकृष्ट होते हैं; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का, सहज स्वभाव-स्वाभाविक लक्षण है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु सदैव चार स्थानों में प्रकट हुए-ये हैं-माता शची के घरेलू मन्दिर में, श्री नित्यानन्द प्रभु के नृत्य करने के स्थानों में, सामूहिक कीर्तन के समय श्रीवास पण्डित के घर में तथा राघव पण्डित के घर में। वे अपने भक्तों के प्रेम के प्रति आकर्षित होने के कारण प्रकट हुए। यही उनका सहज स्वभाव है।

नृसिंहानन्देर आगे आविर्भूत हुआ ।

भोजन करिला, ताहा शुन मन दिया ॥ 36॥

नृसिंहानन्देर-नृसिंहानन्द नामक ब्रह्मचारी के; आगे-समक्ष, आविर्भूत हुआ-प्रकट हुए, भोजन करिला-उन्होंने (भोजन का) भोग स्वीकार किया; ताहा-वह; शुन-सुनो, मन दिया-ध्यानपूर्वक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी के समक्ष प्रकट हुए और उन्होंने उसका दिया भोजन ग्रहण किया। कृपया इसके विषय में ध्यान लगाकर सुनें।

शिवानन्देर भागिना श्रीकान्त-सेन नाम ।

प्रभुर कृपाते तेंहो बड़ भाग्यवान् ॥ 37॥

शिवानन्देर-शिवानन्द सेन का; भागिना-भाँजा, श्रीकान्त-सेन नाम-श्रीकान्त सेन नामक; प्रभुर कृपाते-श्री चैतन्य महाप्रभु की अहैतुकी कृपा द्वारा; तेंहो-वह; बड़-बहुत, भाग्यवान्-सौभाग्यशाली।

अनुवाद

शिवानन्द सेन का एक भाँजा था, जिसका नाम श्रीकान्त सेन था, जो श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से अत्यन्त भाग्यशाली था।

एक वत्सर तेंहो प्रथम एकेश्वर ।

प्रभु देखिबारे आइला उत्कण्ठा-अन्तर ॥ 38॥

एक वत्सर-एक वर्ष, तेंहो-श्रीकान्त सेन; प्रथम-पहले, एकेश्वर-अकेला; प्रभु देखिबारे-महाप्रभु के दर्शन के लिए;
आइला-आया; उत्कण्ठा-अन्तर-मन में अत्यन्त उत्सुकता के साथ।

अनुवाद

एक वर्ष श्रीकान्त सेन महाप्रभु का दर्शन करने की अतीव उत्सुकता से अकेले ही जगन्नाथ पुरी आया।

महाप्रभु तारे देखि' बड़ कृपा कैला ।

मास-दुइ तेंहो प्रभुर निकटे रहिला ॥ 39 ॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; तारे-उसे; देखि'-देखकर, बड़ कृपा कैला-अत्यन्त कृपा की; मास-दुइ-दो महीने
के लिए तेंहो-श्रीकान्त सेन; प्रभुर निकटे-चैतन्य महाप्रभु के निकट; रहिला-रहा।

अनुवाद

श्रीकान्त सेन को देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस पर अहैतुकी कृपा की। श्रीकान्त सेन जगन्नाथपुरी
में लगभग दो महीने तक श्री चैतन्य महाप्रभु के पास रहा।

तबे प्रभु तारै आज्ञा कैला गौड़े याइते।

भक्त-गणे निषेधिह एथाके आसिते ॥ 40 ॥

याइते-बंगाल लौटने का; भक्त-गणे-भक्तजनों को; निषेधिह-रोक दो; एथाके आसिते-इस स्थान पर आने से।

अनुवाद

जब वह बंगाल लौटने वाला था, तो महाप्रभु ने उससे कहा, “इस वर्ष बंगाल के भक्तों को जगन्नाथ
पुरी आने से मना कर देना।”

ए-वत्सर ताँहा आमि याइमु आपने ।

ताहाइ मिलिमु सब अद्वैतादि सने ॥ 41॥

ए-वत्सर-इस वर्ष, ताँहा-वहाँ (बंगाल में); आमि-मैं; याइमु-जाऊँगा; आपने-स्वयं, ताहाइ-वहाँ, मिलिमु-मैं
मिलेंगा; सब-सभी से; अद्वैत-आदि-अद्वैत आचार्य से लेकर, सने-साथ।

अनुवाद

“इस वर्ष मैं स्वयं बंगाल जाऊँगा और वहाँ अद्वैत आचार्य इत्यादि सारे भक्तों से मिलूँगा।”

शिवानन्दे कहिह,— आमि एइ पौष-मासे ।

आचम्बिते अवश्य आमि याइब तार पाशे ॥ 42।

शिवानन्दे कहिह-शिवानन्द सेन से कहो, आमि-मैं, एइ-यह; पौष-मासे-पौष (दिसम्बर-जनवरी) महीने में, आचम्बिते-अचानक ही, अवश्य-निश्चित रूप से, आमिमैं, याइब-जाऊँगा; तार पाशे-उसके स्थान पर।

अनुवाद

“तुम शिवानन्द सेन को यह बता देना कि इस पौष (दिसम्बर-जनवरी) मास में मैं अवश्य ही उसके घर जाऊँगा।”

जगदानन्द हय ताहाँ, तेंहो भिक्षा दिबे ।

सबारे कहिह,— ए वत्सर केह ना आसिबे ॥ 43 ॥

जगदानन्द-जगदानन्द, हय-है; ताहाँ-वहाँ, तेंहो-वे, भिक्षा दिबे-भोजन प्रदान करेंगे, सबारे कहिह-उन सभी को सूचित कर दो; ए वत्सर-इस वर्ष, केह ना आसिबे-कोई भी न आये।

अनुवाद

“वहाँ पर जगदानन्द हैं। वे मुझे भोजन की भिक्षा देंगे। उन सबसे कहना कि इस वर्ष कोई भी जगन्नाथ पुरी न आये।”

श्रीकान्त आसिया गौड़े सन्देश कहिल ।

शुनि' भक्त-गण-मने आनन्द हइल ॥ 44॥

श्रीकान्त-श्रीकान्त सेन, आसिया-वापस लौटकर, गौड़े-बंगाल में, सन्देशसन्देश, कहिल-कहा; शुनि'-सुनकर; भक्त-गण-मने-भक्तों के मनों में, आनन्द हइल-अत्यन्त आनन्द हुआ।

अनुवाद

जब श्रीकान्त सेन ने बंगाल लौटकर यह सन्देश दिया, तो सारे भक्तों के मन अतीव प्रसन्न हो गये।

चलितेछिला आचार्य, रहिला स्थिर हज्रा ।

शिवानन्द, जगदानन्द रहे प्रत्याशा करिया ॥45॥

चलितेछिला-जाने के लिए तैयार, आचार्य-अद्वैत आचार्य, रहिला-रुक गये; स्थिर हजा-स्थिर होकर, शिवानन्द-शिवानन्द सेन, जगदानन्द-जगदानन्द; रहे-रह गये; प्रत्याशा करिया-उम्मीद करके।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य अन्य भक्तों के साथ जगन्नाथ पुरी जाने ही वाले थे, किन्तु यह सन्देश सुनकर वे रुक गये। शिवानन्द सेन तथा जगदानन्द भी श्री चैतन्य महाप्रभु के आगमन की प्रतीक्षा करते रुके रहे।

पौष-मासे आइल दुँहे सामग्री करिया ।

सन्ध्या-पर्यन्त रहे अपेक्षा करिया ॥46॥

पौष-मासे-पौष मास (दिसम्बर-जनवरी) में, आइल-आये, दुँहे-शिवानन्द सेन तथा जगदानन्द, सामग्री करिया-सब तैयारियाँ करके; सन्ध्या-पर्यन्त-सायंकाल तक, रहे-रुके रहे; अपेक्षा करिया-प्रतीक्षा करते।

अनुवाद

जब पौष मास आया, तो शिवानन्द तथा जगदानन्द दोनों ने महाप्रभु के स्वागत के लिए सभी प्रकार की सामग्री एकत्र की। वे प्रतिदिन सन्ध्या समय तक महाप्रभु के आने की प्रतीक्षा किया करते।

एइ-मत मास गेल, गोसाजि ना आइला ।

जगदानन्द, शिवानन्द दुःखित हइला ॥ 47॥

एइ-मत-इस प्रकार; मास गेल-महीना बीत गया; गोसाजि ना आइला-श्री चैतन्य महाप्रभु नहीं आये, जगदानन्द-जगदानन्द, शिवानन्द-शिवानन्द; दुःखित ह-इला-अत्यन्त दुःखी हुए।

अनुवाद

जब महीना बीत गया, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु नहीं आये, तो जगदानन्द तथा शिवानन्द अत्यधिक दुःखी हुए।

आचम्बिते नृसिंहानन्द ताहाडि आइला ।

दुँहे तौरै मिलि' तबे स्थाने वसाइला ॥ 48॥

दुँहै दुःखी देखि' तबे कहे नृसिंहानन्द ।

‘तोमा दुँहाकारे केने देखि निरानन्द?’ ॥ 49॥

आचम्बिते-अचानक, नृसिंहानन्द-नृसिंहानन्द, ताहाडि आइला-वहाँ आ गये; दुँहै -शिवानन्द और जगदानन्द, तौरै-उनसे; मिलि'-मिलकर, तबे-तब, स्थाने वसाइला-आसन पर बिठाया; दुँहै-दोनों को; दुःखी-अप्रसन्न; देखि'-देखकर, तबेतब, कहे नृसिंहानन्द-नृसिंहानन्द ने कहा; तोमा दुँहाकारे-आप दोनों को; केने-क्यों, देखि-मैं देख रहा हूँ, निरानन्द-दुःखी।

अनुवाद

एकाएक नृसिंहानन्द आये। जगदानन्द तथा शिवानन्द ने उन्हें अपने निकट बैठाने का प्रबन्ध किया। उन दोनों को इतने दुःखी देखकर नृसिंहानन्द ने पूछा, “मैं आप दोनों को निराश क्यों देख रहा हूँ?”

तबे शिवानन्द तौरै सकल कहिला ।

‘आसिब आज्ञा दिला प्रभु केने ना आइला ?’ ॥ 50 ॥

तबे-इस पर; शिवानन्द-शिवानन्द ने; तौरै-नृसिंहानन्द को, सकल कहिला-सब कुछ बता दिया; आसिब-मैं आऊँगा; आज्ञा दिला-वचन दिया था; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने, केने-क्यों, ना आइला-वे नहीं आये।

अनुवाद

तब शिवानन्द सेन ने उनसे कहा, “श्री चैतन्य महाप्रभुने वचन दिया था कि वे आयेंगे। तो फिर वे क्यों नहीं आये?”

शुनि' ब्रह्मचारी कहे,-“करह सन्तोषे ।

आमि त' आनिब तौरै तृतीय दिवसे” ॥51॥

शुनि'-सुनकर; ब्रह्मचारी-नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी, कहे-बोले, करह सन्तोषे-प्रसन्न हो जाओ; आमि-मैं; त'—निश्चित रूप से; आनिब-लाऊँगा; तौरै-उन्हें (श्री चैतन्य महाप्रभु को); तृतीय दिवसे-तीसरे दिन।

अनुवाद

यह सुनकर नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, “तुम लोग सन्तोष रखो। मैं तुम दोनों को विश्वास दिलाता हूँ कि आज से तीसरे दिन मैं उन्हें यहाँ ले आऊँगा।”

ताँहार प्रभाव-प्रेम जाने दुड़-जने ।

आनिबे प्रभुरे एबे निश्चय कैला मने ॥ 52॥

ताँहार-उनका; प्रभाव-प्रभाव; प्रेम-भगवत्प्रेम, जाने-जानते थे; दुड़-जने-वे दोनों, आनिबे प्रभुरे-ये श्री चैतन्य महाप्रभु को ले आयेंगे; एबे-अब, निश्चय कैला मने-उन्हें अपने मनो में गहरा विश्वास हो गया।

अनुवाद

शिवानन्द तथा जगदानन्द नृसिंहानन्द के प्रभाव तथा भगवत्प्रेम को जानते थे। इसलिए अब वे आश्चस्त हो गये कि वे निश्चय ही श्री चैतन्य महाप्रभु को ले आयेंगे।

“प्रद्युम्न ब्रह्मचारी”-ताँर निज-नाम ।

“नृसिंहानन्द” नाम ताँर कैला गौर-धाम ॥53॥

प्रद्युम्न ब्रह्मचारी-प्रद्युम्न ब्रह्मचारी; ताँर-उनका; निज-नाम-असली नाम था; नृसिंहानन्द-नृसिंहानन्द; नाम-नाम, ताँर-उनका; कैला गौर-धाम-श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दिया गया था।

अनुवाद

उनका असली नाम प्रद्युम्न ब्रह्मचारी था। उनका नृसिंहानन्द नाम स्वयं भगवान् गौरसुन्दर ने रखा था।

दुड़ दिन ध्यान करि’ शिवानन्दे कहिल ।

“पाणिहाटि ग्रामे आमि प्रभुरे आनिल ॥54॥

दुड़ दिन-दो दिन तक, ध्यान करि’-ध्यान करके; शिवानन्दे कहिल-उन्होंने शिवानन्द सेन से कहा, पाणिहाटि ग्रामे-पाणिहाटि नामक गाँव में, आमि-मैं; प्रभुरे आनिल—श्री चैतन्य महाप्रभु को ले आया हूँ।

अनुवाद

दो दिनों तक ध्यान करने के बाद नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने शिवानन्द को बतलाया, “मैं अब श्री चैतन्य महाप्रभुको पाणिहाटि नामक गाँव तक ले आया हूँ।

कालि मध्याह्ने तेंहो आसिबेन तोमार घरे ।

पाक-सामग्री आनह, आमि भिक्षा दिमु तारै ॥ 55॥

कालि मध्याह्ने-कल दोपहर को; तेंहो-वे; आसिबेन-आयेंगे; तोमार घरे-आपके घर, पाक-सामग्री आनह-कृपया भोजन पकाने की आवश्यक सामग्री ले आयें, आमि-मैं, भिक्षा दिमु-भोजन पकाऊँगा और भोग लगाऊँगा; तारै-उनको।

अनुवाद

“वे कल दोपहर में आपके घर आयेंगे। इसलिए भोजन बनाने की सारी सामग्री ले आयें। मैं स्वयं भोजन बनाऊँगा और उन्हें भोजन दूँगा।

तबे तारै एथा आमि आनिब सत्वर।

निश्चय कहिलाड, किछु सन्देह ना कर ॥ 56॥

तबे-इस प्रकार; तारै-उन्हें, एथा-यहाँ, आमि-मैं; आनिब सत्वर-शीघ्र ही ले आऊँगा; निश्चय-निश्चित रूप से; कहिलाड-मैं कहता हूँ किछु सन्देह ना कर-सन्देह मत करो।

अनुवाद

“इस प्रकार से मैं उन्हें शीघ्र ही यहाँ ले आऊँगा। आप आश्वस्त रहो कि मैं सच कह रहा हूँ। आप सन्देह मत करो।

ये चाहिये, ताहा कर हजा तत्पर ।

अति त्वराय करिब पाक, शुन अतःपर ॥57॥

ये चाहिए-मैं जो भी चाहता हूँ, ताहा कर-वह सब व्यवस्था करो, हजा तत्पर-तत्पर होकर, अति त्वराय-शीघ्र ही; करिब पाक-मैं पकाना प्रारम्भ करूँगा; शुन अतःपर-आगे और सुनो।

अनुवाद

“आप तुरन्त सारी सामग्री लाओ, क्योंकि मैं तुरन्त रसोई पकाना शुरू करना चाहता हूँ। मैं जो कहता हूँ वह कृपया करें।”

पाक-सामग्री आनह, आमि याहा चाइ” ।

ये मागिल, शिवानन्द आनि” दिला ताई ॥ 58 ॥

पाक-सामग्री आनह-सभी पाक सामग्रियाँ ले आयें, आमि याहा चाइ-जो भी मैं चाहता हूँ, ये मागिल-उन्होंने जो भी माँगा; शिवानन्द-शिवानन्द सेन ने, आनि”-लाकर, दिला ताइ-सब कुछ दे दिया।

अनुवाद

नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने शिवानन्द से कहा, “मैं जो भी भोजन-सामग्री चाहता हूँ, कृपया आप ले आयें।” इस तरह उन्होंने जो भी माँगा, शिवानन्द सेन तुरन्त ले आये।

प्रातः-काल हैते पाक करिला अपार ।

नाना व्यञ्जन, पिष्टा, क्षीर नाना उपहार ॥ 59 ॥

प्रातः-काल हैते-सुबह से प्रारम्भ करके; पाक करिला अपार-अनेक प्रकार के व्यंजन पका दिये; नाना व्यञ्जन-अनेक प्रकार की सब्जियाँ, पिठा-मिठाईयाँ, क्षीर-खीर, नाना-अनेक, उपहार-व्यंजन थे।

अनुवाद

प्रातःकाल शीघ्र ही शुरू करके नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने अनेक प्रकार के भोजन तैयार किये, जिनमें सब्जियाँ, रोटियाँ, खीर तथा अन्य पकवान थे।

जगन्नाथेर भिन्न भोग पृथक्बाड़िल ।

चैतन्य प्रभुर लागि’ आर भोग कैल ॥ 60 ॥

जगन्नाथेर—भगवान् जगन्नाथ के लिए; भिन्न-भिन्न; भोग-व्यंजन; पृथक्-अलग से, बाड़िल-तैयार किये, चैतन्य प्रभुर लागि’-श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए, आर-अलग; भोग-व्यंजन, कैल-बनाये।

अनुवाद

भोजन पकाने के बाद वे जगन्नाथ तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए अलग-अलग भोग ले आये।

इष्ट-देव नृसिंह लागि’ पृथक्बाड़िल ।

तिन-जने समर्पिया बाहिरे ध्यान कैल ॥ 61 ॥

इष्ट-देव-आराध्य देव, नृसिंह-भगवान् नृसिंहदेव, लागि'-के लिए, पृथक्-अलग से, बाड़िल-व्यवस्था की, तिन-जने-तीन विग्रहों के लिए; समर्पिया-भोग अर्पित करके; बाहिरे-बाहर, ध्यान कैल-ध्यान करने लगे।

अनुवाद

उन्होंने अपने आराध्य देव नृसिंहदेव का भी अलग से भोग लगाया। इस तरह उन्होंने समस्त भोजन को तीन भोगों में बाँट दिया। तब मन्दिर के बाहर वे महाप्रभु का ध्यान करने लगे।

देखे, शीघ्र आसि' वसिला चैतन्य-गोसाजि ।

तिन भोग खाइला, किछु अवशिष्ट नाइ ॥ 62॥

देखे-वे देखते हैं; शीघ्र आसि'-तुरन्त आकर, वसिला-बैठ गये, चैतन्य-गोसाजि—श्री चैतन्य महाप्रभु; तिन भोग—तीन भिन्न भिन्न भोग; खाइला-वे खा गये; किछु अवशिष्ट नाइ-वहाँ कुछ भी अवशिष्ट नहीं बचा।

अनुवाद

उन्होंने ध्यान में देखा कि श्री चैतन्य महाप्रभु तेजी से आये, बैठ गये और तीनों भोग खा गये, कुछ भी शेष नहीं बचा।

आनन्दे विह्वल प्रद्युम्न, पड़े अश्रु-धारा।

“हाहा किबा कर” बलि'करये फुत्कार ॥63॥

आनन्दे विह्वल-दिव्य आनन्द द्वारा भावविभोर होकर; प्रद्युम्न-प्रद्युम्न ब्रह्मचारी; पड़े अश्रु-धार-उनकी आँखों से आँसू बहने लगे; हाहा-हाय; किबा कर-आप क्या कर रहे हैं; बलि'-कहकर, करये फुत्-कार-खेद प्रकट करने लगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को सारा भोजन खाते देखकर प्रद्युम्न ब्रह्मचारी दिव्य आनन्द से विभोर हो गये। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। फिर भी उन्होंने यह कहकर व्याकुलता व्यक्त की, “हाय हाय! मेरे प्रिय प्रभु, आप यह क्या कर रहे हैं? आप तो सबका भोजन खाये जा रहे हैं!

“जगन्नाथे-तोमाय ऐक्य, खाओ तारँ भोग ।

नृसिंहेर भोग केने कर उपयोग? ॥64॥

जगन्नाथ-भगवान् जगन्नाथ के साथ; तोमाय-आपका; ऐक्य-एकत्व, खाओ तौर भोग-आप उनका भोग खा सकते हैं; नृसिंहेर भोग-नृसिंहदेव का भोग, केने कर उपयोग-आप क्यों खा रहे हैं।

अनुवाद

“हे प्रभु, आप तथा जगन्नाथ एक हैं, इसलिए उनका भोग आप खायें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु आप भगवान् नृसिंहदेव के भोग को क्यों हाथ लगा रहे हैं?”

नृसिंहेर हैल जानि आजि उपवास ।

ठाकुर उपवासी रहे, जिये कैछे दास?” ॥65॥

नृसिंहेर-भगवान् नृसिंह का, हैल-हो गया; जानि-मैं मानता हूँ, आजि-आज, उपवास-उपवास; ठाकुर उपवासी रहे-स्वामी उपवास करके रहें; जिये कैछेदास-एक सेवक अपने प्राण कैसे धारण रख सकता है।

अनुवाद

“मैं सोचता हूँ कि नृसिंहदेव आज कुछ भी नहीं खा सके, इसलिए वे उपवास कर रहे हैं। यदि स्वामी उपवास करें, तो सेवक कैसे जीवित रह सकता है?”

भोजन देखि' यद्यपि तौर हृदये उल्लास ।

नृसिंह लक्ष्य करि' बाहो किछु करे दुःखाभास ॥ 66॥

भोजन देखि'-भोजन करते देखकर; यद्यपि-यद्यपि, तौर हृदये-उनके हृदय में, उल्लास-आनन्द हुआ; नृसिंह-भगवान् नृसिंहदेव, लक्ष्य करि'-के लिए; बाहो-बाहरी रूप से; किछु-कुछ; करे-करते हैं; दुःख-आभास-निराशा के भाव व्यक्त।

अनुवाद

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु को सारी वस्तुएँ खाते देखकर नृसिंह ब्रह्मचारी को अपने हृदय में प्रसन्नता हुई, किन्तु भगवान् नृसिंहदेव के लिए उन्होंने ऊपर से निराशा व्यक्त की।

स्वयं भगवान् कृष्ण-चैतन्य-गोसाजि ।

जगन्नाथ-नृसिंह-सह किछु भेद नाइ ॥ 67॥

स्वयम्—स्वयं; भगवान्—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; कृष्ण-चैतन्य-गोसाजि-भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु, जगन्नाथ-नृसिंह-सह-भगवान् जगन्नाथ और नृसिंहदेव के साथ, किछु भेद-कोई भेद; नाइ-नहीं है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। अतः उनमें, भगवान् जगन्नाथ तथा भगवान् नृसिंहदेव में कोई अन्तर नहीं है।

इहा जानिबारे प्रद्युम्नेर गूढ़ हैत मन ।

ताहा देखाइला प्रभु करिया भोजन ॥ 68॥

इहा-यह सत्य; जानिबारे-जानने के लिए; प्रद्युम्नेर-प्रद्युम्न ब्रह्मचारी का, गूढ़-अत्यन्त, हैत मन-मन उत्सुक था; ताहा-वह; देखाइला-प्रकट किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करिया भोजन-भोजन करके।

अनुवाद

प्रद्युम्न ब्रह्मचारी इस बात को जान लेने के लिए अत्यधिक उत्सुक थे। अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक प्रत्यक्ष निदर्शन द्वारा उनके समक्ष यह प्रकट किया।

भोजन करिया प्रभु गेला पाणिहाटि ।

सन्तोष पाइला देखि' व्यञ्जन-परिपाटी ॥ 69 ॥

भोजन करिया-सारा भोग खाने के बाद; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; गेला पाणिहाटि-पाणिहाटि जाने लगे; सन्तोष पाइला-वह अत्यन्त सन्तुष्ट हुए; देखि'-देखकर; व्यञ्जन-परिपाटी-व्यंजनों की तैयारी।

अनुवाद

सारा भोग खा लेने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु पाणिहाटि के लिए चल दिये। वहाँ पर राघव के घर में तैयार किये गये नाना प्रकार के व्यंजनों को देखकर वे अत्यधिक सन्तुष्ट हुए।

शिवानन्द कहे,-"केने करह फुत्कार?" ।

तेंह कहे,-"देख तोमार प्रभुर व्यवहार ॥ 70 ॥

शिवानन्द कहे-शिवानन्द सेन ने कहा; केने करह फुत्-कार-आप असन्तोष क्यों व्यक्त कर रहे हो, तेंह कहे-उन्होंने उत्तर दिया; देख-देखो; तोमार प्रभुर-आपके स्वामी का; व्ययहार-व्यवहार।

अनुवाद

शिवानन्द ने नृसिंहानन्द से कहा, “आप असन्तोष क्यों व्यक्त कर रहे हो ?” नृसिंहानन्द ने उत्तर दिया, “जरा अपने प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु का आचरण तो देखो!

तिन जनार भोग तेंहो एकेला खाइला ।

जगन्नाथ-नृसिंह उपवासी हइला” ॥71॥

तिन जनार-तीनों विग्रहों के भोग, भोग-भोग, तेंहो-उन्होंने; एकेला-अकेले; खाइला-खा लिए, जगन्नाथ-नृसिंह-भगवान् जगन्नाथ और भगवान् नृसिंहदेव, उपवासी हइला-उपवास करके रह गये।

अनुवाद

“उन्होंने अकेले ही तीनों विग्रहों के भोग खा लिए। इसके कारण जगन्नाथजी तथा नृसिंहदेव दोनों भूखे रहे।”

शुनि शिवानन्देर चित्ते हइल संशय।

किबा प्रेमावेशे कहे, किबा सत्य हय ॥72॥

शुनि-सुनकर, शिवानन्देर-शिवानन्द के; चित्ते-मन में, हइल संशय-कुछ संशय हुआ; किबा-क्या; प्रेम-आवेशे कहे-कुछ प्रेमभाव में कह रहे थे; किबा-अथवा; सत्य हय-यह एक सत्य था।

अनुवाद

जब शिवानन्द सेन ने यह कथन सुना, तो उन्हें सन्देह हुआ कि नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी जो कह रहे हैं, वह प्रेमाविष्ट होने के कारण कह रहे हैं या वास्तव में यह सच है।

तबे शिवानन्दे किछु कहे ब्रह्मचारी ।

“सामग्री आन नृसिंह लागि पुनः पाक करि” ॥73॥

तबे-इस पर; शिवानन्द-शिवानन्द को; किछु-कुछ; कहे-कहते हैं; ब्रह्मचारी-नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी; सामग्री आन-
और सामग्री लाओ; नृसिंह लागि'-भगवान् नृसिंहदेव के लिए, पुनः-दोबारा; पाक करि'-मुझे पकाने दो।

अनुवाद

जब शिवानन्द सेन इस तरह संशयग्रस्त थे, तो नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने उनसे कहा, “और भोजन-सामग्री
लाओ। मुझे भगवान् नृसिंहदेव के लिए फिर से भोजन पकाने दो।”

तबे शिवानन्द भोग—सामग्री आनिला ।

पाक करि'नृसिंहेर भोग लागाइला ॥74॥

तबे-तब, शिवानन्द-शिवानन्द सेन; भोग-सामग्री-भोजन पकाने की सामग्रियाँ, आनिला-ले आये, पाक करि'-
पकाकर; नृसिंहेर-भगवान् नृसिंहदेव को, भोग लागाइला-भोग अर्पित किया।

अनुवाद

तब शिवानन्द सेन पुनः भोजन बनाने की सामग्री ले आये और प्रद्युम्न ब्रह्मचारी ने पुनः भोजन पकाया
तथा नृसिंहदेव को भोजन अर्पित किया।

वर्षान्तरे शिवानन्द लजा भक्त-गण ।

नीलाचले देखे याजा प्रभुर चरण ॥75॥

वर्ष-अन्तरे-अगले साल; शिवानन्द-शिवानन्द सेन; लजा -लेकर, भक्त-गण-सारे भक्तों को, नीलाचले-जगन्नाथ
पुरी में, देखे-दर्शन के लिए, याजा-जाते हैं; प्रभुर चरण-महाप्रभु के चरणकमल ।

अनुवाद

अगले वर्ष शिवानन्द अन्य सारे भक्तों के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का दर्शन करने
जगन्नाथ पुरी गये।

एक-दिन सभाते प्रभु बात चालाइला ।

नृसिंहानन्देर गुणा कहिते लागिला ॥76॥

एक-दिन-एक दिन; सभाते-सभी भक्तों की उपस्थिति में, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; बात चालाइला-विषय में चर्चा उठाई (नृसिंहानन्द के घर में भोजन करने की); नृसिंहानन्द-नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी के; गुण-दिव्य गुणों, कहिते लागिला-को कहना प्रारम्भ किया।

अनुवाद

एक दिन समस्त भक्तों के सामने महाप्रभु ने नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी से सम्बन्धित ये बातें चलाई और उनके दिव्य गुणों की वे प्रशंसा करने लगे।

“गत-वर्ष पौषे मोरे कराइल भोजन ।

कभु नाहि खाइ ऐछे मिष्ठान्न-व्यञ्जन” ॥77॥

गत-वर्ष-पिछले साल; पौषे-पौष मास (दिसम्बर-जनवरी) में, मोरे-मुझे; कराइल भोजन-अनेक व्यंजन अर्पित किये थे; कभु नाहि खाइ-मैंने कभी नहीं आस्वादन किये; ऐछे-ऐसी; मिष्ठान्न-मिठाइयाँ, व्यञ्जन-सब्जियाँ।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, “पिछले साल पौष महीने में, जब नृसिंहानन्द ने मुझे खाने के लिए तरह-तरह की मिठाइयाँ तथा सब्जियाँ दीं, तो वे इतनी उत्तम थीं कि इसके पूर्व मैंने ऐसे व्यंजन कभी नहीं खाये थे।”

शुनि’ भक्त-गण मने आश्चर्य मानिल ।

शिवानन्दे मने तबे प्रत्यय जन्मिल ॥ 78 ॥

शुनि’-सुनकर; भक्त-गण-सभी भक्त; मने-मन में, आश्चर्य मानिल-आश्चर्य अनुभव करने लगे; शिवानन्दे-शिवानन्द सेन के; मने-मन में; तबे-तब, प्रत्यय जन्मिल-विश्वास जाग गया।

अनुवाद

यह सुनकर सारे भक्त आश्चर्यचकित रह गये और शिवानन्द को विश्वास हो गया कि यह घटना सही थी।

एइ-मत शची-गृहे सतत भोजन ।

श्रीवासेर गृहे करेन कीर्तन-दर्शन ॥ 79 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; शची-गृहे-शचीमाता के घर में; सतत-सदैव; भोजनभोजन करते, श्रीवासेर गृहे-श्रीवास ठाकुर के घर में, करेन-करते, कीर्तन-दर्शन-जब भी वहाँ कीर्तन होता।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु शचीमाता के मन्दिर में प्रतिदिन भोजन करते थे और श्रीवास ठाकुर के घर भी जाते थे, जब कीर्तन होता था।

नित्यानन्देर नृत्य देखेन आसि' बारे बारे ।

“निरन्तर आविर्भाव” राघवेर घरे ॥ 80 ॥

नित्यानन्देर नृत्य-श्री नित्यानन्द प्रभु का नृत्य, देखेन-वे देखते हैं; आसि'-आकर; बारे बारे-बारम्बार, निरन्तर आविर्भाव-निरन्तर प्राकट्य; राघवेर घरे-राघव के घर में।

अनुवाद

इसी तरह जब नित्यानन्द प्रभु नृत्य करते थे, तब वे सदैव उपस्थित रहते थे और वे नियमित रूप से राघव के घर में प्रकट होते थे।

प्रेम-वश गौर-प्रभु, याहाँ प्रेमोत्तम ।

प्रेम-वश हजा ताहा देन दरशन ॥ 81 ॥

प्रेम-वश-प्रेममयी सेवा के वशीभूत होकर, गौर-प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, गौर सुन्दर, याहाँ प्रेम-उत्तम-जहाँ भी शुद्ध प्रेम हो; प्रेम-वश हजा-ऐसे प्रेम के वशीभूत होकर, ताहा-वहाँ, देन दरशन-स्वयं प्रकट होते हैं।

अनुवाद

महाप्रभु गौरसुन्दर अपने भक्तों के प्रेम से अत्यधिक प्रभावित रहते हैं। इसलिए जहाँ भी भगवान् की शुद्ध भक्ति होती है, वहाँ महाप्रभु ऐसे प्रेम के वशीभूत होकर स्वयं प्रकट होते हैं और उनके भक्त उनका दर्शन करते हैं।

शिवानन्देर प्रेम-सीमा के कहिते पारे? ।

याँर प्रेमे वश प्रभु आइसे बारे बारे ॥ 82॥

शिवानन्द-शिवानन्द सेन के; प्रेम-सीमा-प्रेम की सीमा; के-कौन; कहिते पारेअनुमान लगा सकता है; याँ-जिनके; प्रेम-प्रेम विनिमयों द्वारा; वश-प्रभावित होकर, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, आइसे-आते हैं; बारे बारे-बारम्बार।

अनुवाद

शिवानन्द सेन के प्रेम व्यवहार से प्रभावित होकर श्री चैतन्य महाप्रभु बारम्बार आये। इसलिए उनके प्रेम की सीमा का अनुमान भला कौन लगा सकता है?

एइ त' कहिलु गौरैर “आविर्भाव” ।

इहा येइ शुने, जाने चैतन्य-प्रभाव ॥83॥

एइ त'-इस प्रकार; कहिलु-मैंने वर्णन किया है; गौरैर-श्री चैतन्य महाप्रभु के, आविर्भाव-प्राकट्य; इहा-यह घटना; येइ शुने-जो कोई सुनता है; जाने-जान जाता है; चैतन्य-प्रभाव-श्री चैतन्य महाप्रभु का ऐश्वर्य॥

अनुवाद

इस तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव का वर्णन किया है। जो भी इन घटनाओं के विषय में सुनता है, वह महाप्रभु के दिव्य ऐश्वर्य को समझ सकता है।

पुरुषोत्तमे प्रभु-पाशे भगवानाचार्य ।

परम वैष्णव तेंहो सुपण्डित आर्य ॥84॥

पुरुषोत्तमे-जगन्नाथ पुरी में, प्रभु-पाशे- श्री चैतन्य महाप्रभु के संग में, भगवान् आचार्य-भगवान् आचार्य; परम वैष्णव-शुद्ध भक्त; तेंहो-वह; सु-पण्डित-अत्यन्त विद्वान्, आर्य-सज्जन।

अनुवाद

जगन्नाथपुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु की संगति में भगवान् आचार्य रहते थे, जो निश्चय ही भद्र, विद्वान् तथा महान् भक्त थे।

तात्पर्य

भगवान् आचार्य के विवरण हेतु देखें आदि-लीला 10.136।

सख्य-भावाक्रान्त-चित्त, गोप-अवतार ।

स्वरूप-गोसाजि-सह सख्य-व्यवहार ॥ 85 ॥

सख्य-भाव-मित्रता के प्रेम से, आक्रान्त-भावविभोर; चित्त-हृदय, गोपअवतार—एक गोप बालक का अवतार, स्वरूप-गोसाजि-सह-स्वरूप दामोदर गोस्वामी के साथ, सख्य-व्यवहार-मित्र जैसे आदान प्रदान।

अनुवाद

वे ईश्वर के साथ सख्य भाव में निमग्न रहते थे। वे ग्वालबाल के अवतार थे और स्वरूप दामोदर गोस्वामी के साथ उनका व्यवहार अत्यन्त मैत्रीपूर्ण था।

एकान्त-भावे आश्रियाछेन चैतन्य-चरण ।

मध्ये मध्ये प्रभुर तेंही करेन निमन्त्रण ॥86॥

एकान्त-भावे-पूर्ण एकाग्रता के साथ; आश्रियाछेन-शरण ले ली है; चैतन्यचरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणों में, मध्ये मध्ये-कभी-कभी, प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; तेंहो-वे; करेन-करते; निमन्त्रण—निमन्त्रित ।

अनुवाद

उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की पूरी तरह से शरण ले रखी थी। कभी-कभी वे महाप्रभु को अपने घर पर भोजन करने के लिए निमन्त्रित करते थे।

घरे भात करि' करेन विविध व्यञ्जन ।

एकले गोसाजि लजा करान भोजन ॥ 87॥

घरे-घर पर, भात करि'-भात पकाकर, करेन-बनाते; विविध व्यञ्जन-विविध प्रकार की सब्जियाँ, एकले-अकेले, गोसाजि लजा-चैतन्य महाप्रभु को लेकर, करान भोजन-भोजन करवाते।

अनुवाद

भगवान् आचार्य अपने घर में नाना प्रकार के चावल तथा सब्जियाँ तैयार करते और महाप्रभु को अकेले खिलाने के लिए अपने घर पर ले आते।

तात्पर्य

सामान्यतया जो लोग श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन पर बुलाते, वे सर्वप्रथम भगवान् जगन्नाथ को भोजन अर्पित करते और उन्हें शेष प्रसाद खिलाते थे। किन्तु भगवान् आचार्य उन्हें जगन्नाथजी के भोजन का शेष प्रसाद देने के बदले अपने घर पर ही भोजन तैयार करते। उड़ीसा में भगवान् जगन्नाथ को अर्पित किया जाने वाला भोजन प्रसादी कहलाता है और जो भगवान् जगन्नाथ को अर्पित नहीं किया जाता, वह आमानी या घर-भात कहलाता है।

ताँर पिता 'विषयी' बड़ शतानन्द-खाँन ।

‘विषय-विमुख’ आचार्य-‘वैराग्य-प्रधान’ ॥४४॥

ताँर पिता-उनके पिता, विषयी-एक राजनीतिज्ञ, बड़-दक्ष, शतानन्द-खाँन-शतानन्द खान नामक; विषय-विमुख-राजनीति में रुचि नहीं रखते थे; आचार्य-भगवान् आचार्य; वैराग्य-प्रधान-वे प्रायः वैरागी ही थे।

अनुवाद

भगवान् आचार्य के पिता का नाम शतानन्द खान था, जो दक्ष राजनीतिज्ञ थे; जबकि भगवान् आचार्य की राजप्रबन्ध में तनिक भी रुचि नहीं थी। निस्सन्देह, वे प्रायः वैरागी थे।

‘गोपाल-भट्टाचार्य’ नाम ताँर छोट-भाइ ।

काशीते वेदान्त पड़ि’ गेला ताँर ठाजि ॥ ४५ ॥

गोपाल-भट्टाचार्य-गोपाल भट्टाचार्य, नाम-नामक; ताँर-उनका; छोट-भाइछोटा भाई था; काशीते-बनारस में, वेदान्त पड़ि-वेदान्त दर्शन पढ़कर; गेला-गया; ताँर ठाजि -उसके निवासस्थान में।

अनुवाद

भगवान् आचार्य के भाई ने, जिसका नाम गोपाल भट्टाचार्य था, बनारस में वेदान्त दर्शन का अध्ययन किया था और अब वह भगवान् आचार्य के घर लौट आया था।

तात्पर्य

उन दिनों और आज भी, वेदान्त दर्शन को शंकराचार्य के भाष्य से, जो शारीरिक भाष्य कहलाता है, समझा जाता था। इस तरह ऐसा लगता है कि भगवान् आचार्य के छोटे भाई गोपाल भट्टाचार्य ने वेदान्त का अध्ययन शारीरिक भाष्य के माध्यम से किया था, जो निर्विशेषवादियों के मायावादी दर्शन की स्थापना करता है।

आचार्य ताहारे प्रभु-पदे मिलाइला ।

अन्तर्यामी प्रभु चित्ते सुख ना पाइला ॥ 90 ॥

आचार्य-भगवान् आचार्य ने; ताहारे-उसे (अपने भाई को); प्रभु-पदे मिलाइला-श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलवाया;
अन्तर्यामी प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु, जो किसी का भी हृदय जान सकते थे; चित्ते-अन्तर्मन में, सुख-प्रसन्नता; ना
पाइला-प्राप्त नहीं कर सके।

अनुवाद

भगवान् आचार्य अपने भाई को श्री महाप्रभु से भेंट कराने ले गये, किन्तु महाप्रभु यह जानकर कि
गोपाल भट्टाचार्य मायावादी दार्शनिक है, उससे मिलकर अधिक प्रसन्न नहीं हुए।

आचार्य-सम्बन्धे बाहो करे प्रीत्याभास ।

कृष्ण-भक्ति विना प्रभुर ना हय उल्लास ॥ 91 ॥

आचार्य-सम्बन्धे—क्योंकि वह भगवान् आचार्य से सम्बन्धित था; बाह्ये—बाहरी रूप से; करे-करते; प्रीति-
आभास-आनन्द का प्राकट्य; कृष्ण-भक्ति-भगवान् कृष्ण के प्रति प्रेमभक्ति के; विना—बिना; प्रभुर—श्री चैतन्य महाप्रभु
को; ना हय—नहीं; उल्लास—आनन्दानुभूति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को ऐसे व्यक्ति से मिलकर कोई सुख नहीं मिलता है, जो कृष्ण का शुद्ध भक्त न हो।
अतएव महाप्रभुको गोपाल भट्टाचार्य से मिलकर कोई प्रसन्नता नहीं हुई, क्योंकि वह मायावादी पण्डित था।
तो भी वह भगवान् आचार्य से सम्बन्धित था, अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसे देखकर बाह्य रूप से प्रसन्नता
व्यक्त की।

स्वरूप गोसाजिरे आचार्य कहे आर दिने ।

“वेदान्त पड़िया गोपाल आइसाछे एखाने” ॥ 92 ॥

स्वरूप गोसाजिरे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी से; आचार्य-भगवान् आचार्य, कहे-कहते हैं; आर दिने-अगले दिन;
वेदान्त पड़िया-वेदान्त पढ़कर; गोपाल-गोपाल, आइसाछे-लौट आया है; एखाने-यहाँ।

अनुवाद

भगवान् आचार्य ने स्वरूप दामोदरसे कहा, “मेरा छोटा भाई गोपाल वेदान्त दर्शन का अध्ययन समाप्त करके मेरे घर लौट आया है।”

“सबे मेलि’ आइस, शुनि ‘भाष्य’ इहार स्थाने” ।

प्रेम-क्रोध करि’ स्वरूप बलय वचने ॥ 93 ॥

सबे मेलि’-सब मिलकर; आइस-आओ, शुनि-हम सभी सुनते हैं; भाष्य-टीका; इहार स्थाने-उससे ही; प्रेम-क्रोध करि’-प्रेम के क्रोधित भाव में, स्वरूप-स्वरूप दामोदर ने, बलय वचने-ये वचन कहे।

अनुवाद

भगवान् आचार्य ने स्वरूप दामोदर से गोपाल से वेदान्त पर भाष्य सुनने के लिए अनुरोध किया। किन्तु स्वरूप दामोदर प्रेमवश कुछ क्रुद्ध होकर इस तरह बोले।

“बुद्धि भ्रष्ट हैल तोमार गोपालेर सङ्गे ।

मायावाद शुनिबारे उपजिल रङ्गे” ॥94॥

बुद्धि-बुद्धि; भ्रष्ट-भ्रष्ट, दूषित; हैल-हो गई; तोमार-तुम्हारी; गोपालेर सङ्गे-गोपाल के संग में, मायावाद शुनिबारे-मायावादी टीका सुनने के लिए, उपजिल रङ्ग-प्रवृत्ति जागृत कर ली है।

अनुवाद

“तुमने गोपाल की संगति में अपनी बुद्धि खो दी है, अतएव तुम मायावाद दर्शन सुनने के लिए इच्छुक हो।”

वैष्णव हज्रा येबा शारीरक-भाष्य शुने ।

सेव्य-सेवक-भाव छाडि’ आपनारे ‘ईश्वर’ माने ॥ 95॥

वैष्णव हज्रा-एक वैष्णव होकर, येबा-जो कोई भी, शारीरक-भाष्य-मायावादी टीका, शारीरक भाष्य; शुने-सुनता है; सेव्य-सेवक-भाव-कृष्णभावनामय चेतना कि भगवान् ही स्वामी हैं और जीव उनके सेवक हैं; छाडि’-छोड़कर; आपनारे-स्वयं को, ईश्वर-परम भगवान्, माने-मानते हैं।

अनुवाद

“जब कोई वैष्णव वेदान्त-सूत्र पर शारीरिक भाष्य नामक मायावादी टीका सुनता है, तो वह इस कृष्णभावनाभावित प्रवृत्ति को त्याग देता है कि भगवान् स्वामी हैं और जीव उनका सेवक है। इसके स्थान पर वह अपने आपको ही भगवान् मानने लगता है।”

तात्पर्य

केवलाद्वैतवादी नामक दार्शनिक एकमात्र शारीरिक भाष्य सुनते हैं, जोकि शंकराचार्य द्वारा रचित टीका है और वह यह पक्ष प्रस्तुत करता है कि मनुष्य को स्वयं को परमेश्वर मानना चाहिए। वेदान्त पर ऐसी मायावाद दार्शनिक टीका केवल काल्पनिक हैं, किन्तु वेदान्त-सूत्र पर अन्य भाष्य भी हैं। श्रील रामानुजाचार्य का भाष्य श्री भाष्य कहलाता है, जो विशिष्टाद्वैतवाद दर्शन की स्थापना करने वाला है। इसी तरह ब्रह्म सम्प्रदाय में मध्वाचार्य कृत पूर्णप्रज्ञा भाष्य शुद्ध द्वैतवाद की स्थापना करता है। कुमार सम्प्रदाय या निम्बार्क सम्प्रदाय में श्री निम्बार्क कृत पारिजातसौरभ भाष्य में द्वैताद्वैतवाद की स्थापना हुई है और विष्णुस्वामी सम्प्रदाय या रुद्र सम्प्रदाय में, जो शिवजी से उद्भूत है, विष्णुस्वामी ने सवश भाष्य लिखा है, जो शुद्धाद्वैतवाद की स्थापना करता है।

वैष्णव को वेदान्त-सूत्र पर इन चारों सम्प्रदायों के आचार्यों अर्थात् श्री रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णु-स्वामी तथा निम्बार्क द्वारा लिखित भाष्यों का अध्ययन करना चाहिए, क्योंकि ये भाष्य इस दर्शन पर आधारित हैं कि भगवान् स्वामी हैं और सारे जीव उनके सनातन सेवक हैं। जो वेदान्त दर्शन के समुचित अध्ययन में रुचि रखता है, विशेषकर यदि वह वैष्णव है, तो उसे इन भाष्यों का अध्ययन करना चाहिए। इन भाष्यों की वैष्णवों द्वारा सदा से पूजा होती आई है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का भाष्य आदि-लीला (7,101) में विस्तार से दिया गया है। मायावादी भाष्य या शारीरिक भाष्य तो वैष्णव के लिए विषतुल्य है। इसका स्पर्श तक नहीं करना चाहिए। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर की टिप्पणी है कि महाभागवत तक, अर्थात् जिसने भगवान् कृष्ण के चरणकमलों पर आत्मसमर्पण कर रखा है, कभी-कभी शुद्ध भक्ति से नीचे गिर जाता है यदि वह शारीरिक भाष्य के मायावाद दर्शन को सुनता है। इसलिए सारे वैष्णवों को इस भाष्य से दूर रहना चाहिए।

महा-भागवत येइ, कृष्ण प्राण-धन यार।

मायावाद-श्रवणे चित्त अवश्य फिरे तॉर” ॥96॥

महा-भागवत येइ-जो अत्यन्त उच्च रूप से उन्नत भक्त है; कृष्ण-भगवान् कृष्ण, प्राण-धन ग्रार-जिसका प्राण और जीवन; मायावाद-श्रवणे-मायावाद दर्शन श्रवण करके; चित्त-हृदय, अवश्य-निश्चित रूप से; फिरे-बदल जाता है; तौर-उसका।

अनुवाद

“मायावाद दर्शन ऐसा वाक्जाल प्रस्तुत करता है कि बड़े से बड़ा भत जिसने कृष्ण को अपना जीवन तथा आत्मा के रूप में स्वीकार कर लिया है, अपना निर्णय बदल देता है जब वह वेदान्त-सूत्र पर मायावाद भाष्य पढ़ता है।”

आचार्य कहे,-“आमा सबार कृष्ण-निष्ठ-चित्ते ।

आमा सबार मन भाष्य नारे फिराइते” ॥97॥

आचार्य कहे-भगवान् आचार्य ने उत्तर दिया; आमा सबार-हम सभी का; कृष्णनिष्ठ-कृष्ण को समर्पित, चित्ते-हृदय, आमा सबार-हम सभी के; मन-मन; भाष्य-शारीरक भाष्य; नारे फिराइते-बदल नहीं सकता।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर की आपत्ति के बावजूद भगवान् आचार्य कहते रहे, “हम सभी अपने तन तथा मन से भगवान् कृष्ण के चरणकमलों पर स्थिर हैं। अतएव शारीरक भाष्य हमारे मनों को नहीं बदल सकता।”

स्वरूप कहे, “तथापि मायावाद-श्रवणे ।

“चित्, ब्रह्म, माया, मिथ्या”—एडू-मात्र शुने ॥98॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया; तथापि-फिर भी, मायावाद-श्रवणे-मायावादी टीका सुनकर; चित्-ज्ञान; ब्रह्म-परम सत्य, माया-बहिरंगा शक्ति; मिथ्या-मिथ्या; एडू-मात्र-केवल यहि; शुने-सुनते हैं।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया, “तो भी जब हम मायावाद दर्शन सुनते हैं, तो हम यही सुनते हैं कि ब्रह्म ज्ञान है और माया का ब्रह्माण्ड मिथ्या है, किन्तु हम कोई आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त नहीं करते।

जीवाज्ञान-कल्पित ईश्वरे, सकल-इ अज्ञान ।

याहार श्रवणे भक्तेर फाटे मन प्राण” ॥99॥

जीव-साधारण जीव; अज्ञान-अज्ञान द्वारा, कल्पित-कल्पना किया हुआ; ईश्वरे-परम भगवान् में, सकल-इ अज्ञान-समस्त अज्ञान; याहार श्रवणे-जिनका श्रवण करके; भक्तेर-भक्त का; फाटे-फटता है; मन प्राण-मन और प्राण।

अनुवाद

“मायावादी दार्शनिक यह स्थापना करने का प्रयास करता है कि जीव मात्र काल्पनिक है और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् माया के अधीन हैं। इस तरह की टीका सुनकर भक्त का हृदय तथा जीवन विदीर्ण हो जाता है।

तात्पर्य

श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामी भगवान् आचार्य को यह बताना चाह रहे थे कि भले ही कृष्ण की भक्ति में दृढ़ होते हुए भी कोई मायावादी टीका सुनने से विचलित न हो, किन्तु फिर भी वह टीका, ज्ञान का प्रतिनिधित्व करने वाले ब्रह्म जैसे निविशेष शब्दों तथा भावों से भरा रहता है। मायावादियों का कहना है कि माया द्वारा उत्पन्न यह जगत् मिथ्या है और वास्तव में कोई भी जीव नहीं है, केवल एक आध्यात्मिक तेज रहता है। वे यह भी कहते हैं कि ईश्वर काल्पनिक हैं और लोग ईश्वर के बारे में अज्ञानवश ही सोचते हैं, तथा जब परब्रह्म माया द्वारा मोहित हो जाता है, तो वह जीव बनता है। अभक्तों से इन व्यर्थ के विचारों को सुनकर भक्त को अत्यन्त पीड़ा होती है, मानो उसका हृदय तथा आत्मा विदीर्ण हो चुके हों।

लज्जा-भय पाजा आचार्य मौन हड़ला ।

आर दिन गोपालेरे देशे पाठाइला ॥ 100 ॥

लज्जा-भय-भय तथा शर्म; पाजा—प्राप्त कर; आचार्य-भगवान् आचार्य, मौन हड़ला-मौन हो गये; आर दिन-अगले दिन, गोपालेरे-गोपाल भट्टाचार्य, देशे-अपने राज्य में, पाठाइला-भिजवा दिया।

अनुवाद

इस प्रकार अत्यन्त लजित तथा भयभीत भगवान् आचार्य मौन रहे। अगले दिन उन्होंने गोपाल भट्टाचार्य से अपने जिले में लौट जाने के लिए कहा ।

एक-दिन आचार्य प्रभुरे कैला निमन्त्रण ।

घरे भात करि' करे विविध व्यञ्जन ॥ 101 ॥

एक-दिन-एक दिन; आचार्य—भगवान् आचार्य, प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कैला निमन्त्रण-भोजन के लिए आमन्त्रित करके, घरे-घर पर, भात करि'-भात पकाकर, करे-तैयार करते हैं; विविध व्यञ्जन-अनेक प्रकार के व्यंजन।

अनुवाद

एक दिन भगवान् आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने घर पर भोजन करने के लिए आमन्त्रित किया। इस तरह वे चावल तथा विविध प्रकार की सब्जियाँ तैयार करने लगे।

“छोट-हरिदास” नाम प्रभु कीर्तनीया ।

ताहारे कहेन आचार्य डाकिया अनिया ॥102॥

छोट-हरिदास नाम-छोटा हरिदास नामक एक भक्त; प्रभु कीर्तनीया—श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए गीत गाने वाला, ताहारे-उससे; कहेन-कहते हैं; आचार्य-आचार्य, डाकिया अनिया-उसे अपने स्थान पर बुलाकर।

अनुवाद

“छोटा हरिदास” नामक एक भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए गाना गाता था। भगवान् आचार्य ने उसे अपने घर बुलाया और उससे इस प्रकार कहा ।

“मोर नामे शिखि-माहितिर भगिनी-स्थाने गया ।

शुक्ल-चाउल एक मान आनह मागिया” ॥103॥

मोर नामे-मेरे नाम पर, शिखि-माहितिर-शिखिमाहिति की; भगिनी-स्थाने-बहन के घर; गया-जाकर; शुक्ल-चाउल-सफेद चावल; एक मान-एक मान परिमाण के (लगभग एक किलो); आनह-कृपया ले आओ, मागिया-माँगकर।

अनुवाद

“तुम शिखि माहिति की बहन के पास जाओ। मेरे नाम पर उससे एक मान सफेद चावल माँगकर यहाँ ले आओ।”

तात्पर्य

भारत में शुक्ल-चाउल को आतप-चाउल या कूटने के पहले न उबाला जाने वाला चावल कहते हैं। दूसरे प्रकार का चावल सिद्ध-चाउल (भूरा चावल) कहलाता है, जो कूटने के पहले उबाला जाता है। सामान्यतया श्री विग्रह के लिए उत्तम कोटि के सफेद चावल की आवश्यकता पड़ती है। इस तरह भगवान् आचार्य ने छोटा हरिदास से, जो कि श्री चैतन्य

महाप्रभु की सभा में गायक था, शिखि माहिती की बहन के यहाँ से यह चावल लाने के लिए कहा। मान उड़ीसा में चावल तथा अन्य अनार्यों के लिए प्रयुक्त प्रामाणिक माप है।

माहितीर भगिनी सेइ, नाम-माधवी-देवी ।

वृद्धा तपस्विनी आर परमा वैष्णवी ॥ 104॥

माहितीर भगिनी—शिखि माहिती की बहन; सेइ—वह; नाम—नामक; माधवी-देवी— माधवी देवी, वृद्धा-वह वृद्ध स्त्री, तपस्विनी-भगवद्सेवा के नियम पालन में अति वृद्ध, आर-और; परमा वैष्णवी-प्रथम कोटि की भक्तिनि।

अनुवाद

शिखि माहिती की बहन का नाम माधवीदेवी था। वह वृद्धा थी जो सदैव तपस्या करती थी। वह भक्ति में बहुत उन्नत थी।

प्रभु लेखा करे यारे-राधिकार 'गण' ।

जगतेर मध्ये 'पात्र'—साड़े तिन जन ॥ 105 ॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; लेखा करे-स्वीकार करते हैं; यारे-जिसे; राधिकार गण-श्रीमती राधारानी की परिकरों में से एक, जगतेर मध्ये-सम्पूर्ण जगत् में, पात्र-सर्वाधिक अन्तरंग भक्त; साड़े तिन-तीन और आधा; जन-लोग।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनका श्रीमती राधारानी की एक पूर्व संगिनी के रूप में स्वीकार किया था। सारे संसार में उनके कुल साढ़े तीन घनिष्ठ भक्त थे।

स्वरूप गोसाजि, आर राय रामानन्द ।

शिखि-माहिती—तिन, ताँर भगिनी-अर्ध-जन ॥ 106॥

स्वरूप गोसाजि-स्वरूप गोस्वामी; आर—तथा; राय रामानन्द-रामानन्द राय; शिखि-माहिती-शिखि माहिती; तिन-तीनों, ताँर भगिनी-उनकी बहन; अर्ध-जनआधा।

अनुवाद

ये तीन भक्त थे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी, रामानन्द राय तथा शिखि माहिती और आधा व्यक्ति था शिखिमाहिती की बहिना

ताँर ठाजि तण्डुल मागि' आनिल हरिदास ।

तण्डुल देखि' आचार्येर अधिक उल्लास ॥107॥

ताँर ठाजि-उनसे; तण्डुल मागि'-चावल भिक्षा माँगकर; आनिल हरिदास-हरिदास लाया; तण्डुल देखि'-चावल को देखकर, आचार्येर-भगवान् आचार्य को, अधिक उल्लास-अत्यन्त सन्तुष्टि हुई।

अनुवाद

जब छोटा हरिदास उससे चावल माँगकर भगवान् आचार्य के पास ले आया, तो वे इसकी गुणवत्ता देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

स्नेहे रान्धिल प्रभुर प्रिय ये व्यञ्जन ।

देउल प्रसाद, आदा-चाकि, लेम्बु-सलवण ॥108॥

स्नेहे—अत्यन्त स्नेहपूर्वक; रान्धिल—पकाया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; प्रिय—प्रिय; ये-जो भी; व्यञ्जन-सब्जियाँ, देउल प्रसाद-जगन्नाथ के मन्दिर से प्रसाद, आदा-चाकि-पिसा हुआ अदरक, लेम्बु-नींबू, स-लवण-नमक के साथ।

अनुवाद

भगवान् आचार्य ने बड़े ही स्नेह के साथ तरह-तरह की सब्जियाँ तथा अन्य पकवान पकाए, जो श्री चैतन्य महाप्रभु को प्रिय थे। उन्होंने जगन्नाथजी का प्रसाद तथा पिसी सोंठ तथा नींबू और नमक जैसे पाचक-व्यंजन भी प्राप्त किये।

मध्याह्ने आसिया प्रभु भोजने वसिला ।

शाल्यन्न देखि' प्रभु आचाये पुछिला ॥ 109॥

मध्याह्ने-दोपहर के समय; आसिया-आकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भोजने वसिला-भोजन करने बैठ गये;
शालि-अन्न-उत्तम श्रेणि के चावल, देखि'-देखकर, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने, आचार्य पुछिला-भगवान् आचार्य से
पूछा।

अनुवाद

दोपहर में जब श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् आचार्य की भिक्षा पाने आये, तो उन्होंने सर्वप्रथम उत्तम
चावल की प्रशंसा की और फलस्वरूप उनसे पूछा।

उत्तम अन्न एत तण्डुल काँहाते पाइला ? ।

आचार्य कहे,-माधवी-पाश मागिया आनिला ॥110॥

उत्तम अन्न-अच्छा चावल, एत-ऐसे; तण्डुल-चावल, काँहाते पाइला-तुम्हें कहाँ मिले; आचार्य कहे-भगवान्
आचार्य ने उत्तर दिया; माधवी-पाश-माधवीदेवी से; मागिया—भिक्षा माँगकर; आनिला—लाया हूँ।

अनुवाद

महाप्रभु ने पूछा, “तुमने ऐसा बढ़िया चावल कहाँ से प्राप्त किया?” भगवान् आचार्य ने उत्तर दिया,
“मैंने माधवीदेवी से माँगकर प्राप्त किया है।”

प्रभु कहे, —‘कोन् याइ’ मागिया आनिल?’ ।

छोट-हरिदासेर नाम आचार्य कहिल ॥111॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, कोन् याइ'-कौन जाकर, मागिया-भिक्षा, आनिल-लेकर आया; छोट-
हरिदासेर-छोटा हरिदास का; नाम-नाम; आचार्य कहिल-भगवान् आचार्य ने बताया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा कि चावल माँगकर कौन लाया है? तो भगवान् आचार्य ने छोटे हरिदास
के नाम का उल्लेख किया।

अन्न प्रशंसिया प्रभु भोजन करिला ।

निज-गृहे आसि' गोविन्देरे आज्ञा दिला ॥112॥

अन्न प्रशंसिया-अन्न की प्रशंसा करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने, भोजन करिला-प्रसाद ग्रहण किया; निज-
गृहे-अपने निवास पर, आसि'-लौटकर, गोविन्दे-गोविन्द को, आज्ञा दिला-उन्होंने एक आदेश दिया।

अनुवाद

चावल के गुण की प्रशंसा करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रसाद ग्रहण किया। फिर अपने निवासस्थान
लौटकर उन्होंने अपने निजी सहायक गोविन्द को यह आदेश दिया।

“आजि हैते एड़ मोर आज्ञा पालिबा ।

छोट हरिदासे इहाँ आसिते ना दिबा” ॥ 113 ॥

आजि हैते-आज से; एड़-यह; मोर-मेरा; आज्ञा-आदेश, पालिबा-तुम्हें पालन करना चाहिए, छोट हरिदासे-छोटे
हरिदास को; इहाँ-यहाँ, आसिते-आने की; ना दिबा-अनुमति मत दो।

अनुवाद

“आज के बाद छोटे हरिदास को यहाँ मत आने देना।”

द्वार माना हैल, हरिदास दुःखी हैल मने ।

कि लागिआ द्वार-माना केह नाहि जाने ॥114॥

द्वार माना—प्रवेश निषेध, हैल—हो गया; हरिदास—छोटा हरिदास; दुःखी-अत्यन्त दुःखी, हैल मने-अपने मन
में हो गया; कि लागिआ-किस कारण से; द्वार-माना-द्वार बन्द हो गया; केह नाहि जाने-कोई भी नहीं जान पाया।

अनुवाद

जब छोटे हरिदास ने सुना कि उसे श्री चैतन्य महाप्रभु के पास न जाने का आदेश हुआ है, तो वह
अत्यन्त दुःखी हुआ। कोई नहीं जान सका कि उसे न आने का आदेश क्यों दिया गया।

तिन-दिन हैल हरिदास करे उपवास ।

स्वरूपादि आसि, पुछिला महाप्रभुर पाश ॥ 115॥

तिन-दिन हैल-तीन दिन से; हरिदास-छोटा हरिदास, करे उपवास-उपवास कर रहा था; स्वरूप-आदि-स्वरूप
दामोदर और अन्य अन्तरंग भक्त, आसि-आकर; पुछिला-जिज्ञासा करने लगे; महाप्रभुर पाश-श्री चैतन्य महाप्रभु से।

अनुवाद

हरिदास ने लगातार तीन दिनों तक उपवास किया। तब स्वरूप दामोदरगोस्वामी तथा अन्य अन्तरंग भक्तगण श्री चैतन्य महाप्रभु के पास उनसे पूछने पहुँचे।

“कोनपराध, प्रभु, कैल हरिदास ? ।

कि लागिया द्वार-माना, करे उपवास?” ॥116॥

कोन् अपराध-कौन सा बड़ा अपराध; प्रभु-हे भगवान्, कैल हरिदास-हरिदास ने कर दिया; कि लागिया-किस कारण से; द्वार-माना-प्रवेश निषेध; करे उपवास-वह अब उपवास कर रहा है।

अनुवाद

“छोटे हरिदास ने कौन-सा महान् अपराध किया है? उसे आपके द्वार तक आने से मना क्यों किया गया है? अब वह तीन दिनों से उपवास कर रहा है।”

प्रभु कहे,—वैरागी करे प्रकृति सम्भाषण ।

देखिते ना पारों आमि ताहार वदन ॥ 117॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; वैरागी-वैरागी जीवन (आश्रम) में स्थित व्यक्ति; करे-करता है; प्रकृति सम्भाषण-एक स्त्री से अन्तरंग वार्ता; देखिते ना पारों-देख नहीं सकता; आमि-मैं; ताहार वदन-उसका मुँह।

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, “मैं उस व्यक्ति का मुँह नहीं देख सकता, जो वैराग्य स्वीकार करने पर भी एक स्त्री से घुल-मिलकर बातें करता हो।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि वैष्णव का पहला गुण सरलता है, जबकि कपटता या धूर्तता भक्ति के सिद्धान्तों के विरुद्ध बहुत बड़ा अपराध है। मनुष्य को चाहिए कि ज्यों-ज्यों कृष्णभावनामृत में आगे बढ़े, त्यों-त्यों वह भौतिक आसक्ति से विमुख होता जाए और इस तरह भगवान् की सेवा में अधिकाधिक अनुरत हो। यदि वह

वास्तव में भौतिक कार्यों से विरत नहीं है, किन्तु तब भी अपने आपको भक्ति में उन्नत घोषित करता है, तो वह धोखा देता है। ऐसे व्यवहार को देखकर कोई भी प्रसन्न नहीं होगा।

दुर्वार इन्द्रिय करे विषय-ग्रहण ।

दारवी प्रकृति हरे मुनेरपि मन ॥118॥

दुर्वार-अनियन्त्रित; इन्द्रिय-इन्द्रियाँ, करे—करके; विषय-ग्रहण-विषय भोगों को ग्रहण, दारवी प्रकृति-एक स्त्री की लकड़ी से बनी मूर्ति; हरे-आकर्षित कर लेती है; मुनेरपि—एक महान् साधु को भी; मन—मन को।

अनुवाद

“इन्द्रियाँ अपनी भोग-वस्तुओं से इतनी दृढ़ता से आकर्षित होती हैं कि स्त्री की काठ की मूर्ति भी निश्चित रूप से बड़े से बड़े सन्त पुरुष के मन को भी आकृष्ट कर लेती है।

तात्पर्य

इन्द्रियों तथा इन्द्रिय-विषयों में ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि बड़े से बड़े सन्त पुरुष का मन भी काठ की पुतली के प्रति आकृष्ट हो जाता है, यदि इसे तरुण स्त्री का आकर्षक रूप प्रदान किया गया हो। इन्द्रिय-विषय यथा रूप, ध्वनि, गन्ध, स्वाद तथा स्पर्श सदा ही आँखों, कानों, नाक, जीभ तथा त्वचा के लिए आकर्षक होते हैं। चूँकि इन्द्रियाँ तथा इन्द्रिय-विषय सहज रूप से घनिष्ठतापूर्वक सम्बन्धित हैं, इसलिए कभी-कभी इन्द्रियों पर वश रखने का दावा करने वाला व्यक्ति भी इन्द्रिय-विषयों के वशीभूत हो जाता है। इन्द्रियों को तब तक वश में करना कठिन है, जब तक वे शुद्ध न हो जाएँ तथा भगवान् की सेवा में न लगाई जाएँ। इस तरह भले ही सन्त पुरुष अपनी इन्द्रियों को वश में करने का व्रत ले, इन्द्रियाँ फिर भी इन्द्रिय-विषयों द्वारा विचलित हो जाती हैं।

मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा ना विविक्षासनो भवेत् ।

बलवानिन्द्रिय-ग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ 119 ॥

मात्रा-अपनी माता के साथ; स्वस्त्रा-अपनी बहन के साथ; दुहित्रा-अपनी पुत्री के साथ; वा-अथवा; ना-नहीं, विविक्ष-आसन:-एक साथ बैठना; भवेत्-चाहिए; बलवान्-अति बलवान्, इन्द्रिय-ग्राम:-इन्द्रियों का समूह; विद्वांसम्-मुक्ति के ज्ञान से युक्त व्यक्ति को ; अपि-भी, कर्षति-आकर्षित कर लेता है।

अनुवाद

“व्यक्ति को अपनी माता, बहन या पुत्री से सटकर नहीं बैठना चाहिए। क्योंकि इन्द्रियाँ इतनी बलवान होती हैं कि वे बड़े से बड़े ज्ञानी को भी आकृष्ट कर सकती हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक मनुसंहिता (2.215) तथा श्रीमद्भागवत (9.19.17) में आया है।

क्षुद्र-जीव सब मर्कट-वैराग्य करिया ।

इन्द्रिय चराजा बुले ‘प्रकृति’ सम्भाषिया ॥120॥

क्षुद्र-जीव-तुच्छ जीव; सब-सभी; मर्कट वैराग्य-एक बन्दर के समान वैरागी जीवन; करिया-स्वीकार करते हैं, इन्द्रिय चराजा-इन्द्रियों की सन्तुष्टि के लिए, बुले- इधर उधर भटकते हैं; प्रकृति सम्भाषिया-स्त्रियों से घनिष्ठ रूप से बात करते हैं।

अनुवाद

“ऐसे अनेक सम्पत्ति-रहित क्षुद्र व्यक्ति हैं, जो बन्दरों जैसा वैराग्य स्वीकार करते हैं। वे इन्द्रियतृप्ति में लगे रहने तथा स्त्रियों से घनिष्ठतापूर्वक बातें करने के लिए इधर उधर घूमते हैं।”

तात्पर्य

मनुष्य को अवैध यौन, मांसाहार, नशा तथा जुए के निषेध के विधि-विधानों का दृढ़ता से पालन करना चाहिए और इस तरह आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करनी चाहिए। यदि अयोग्य व्यक्ति भावनावश वैराग्य या संन्यास ग्रहण करता है, किन्तु साथ ही स्त्रियों के प्रति आसक्त रहता है, तो उसकी स्थिति बहुत खतरनाक हो जाती है। उसका वैराग्य मर्कट-वैराग्य कहलाता है। बन्दर जंगल में रहता है, फल खाता है और कपड़े भी नहीं पहनता। इस तरह वह एक वैरागी के समान है, किन्तु बन्दर सदैव बन्दरिया के विषय में सोचता है और कभी-कभी अपने संभोग के लिए दर्जनों बन्दरियाँ रखता है। यह मर्कट-वैराग्य कहलाता है। इसलिए अयोग्य व्यक्ति को वैराग्य नहीं धारण करना चाहिए जो संन्यास ग्रहण कर लेता है, किन्तु फिर भी कामवासना से विचलित होता है और एकान्त में स्त्रियों से बातें करता है, वह धर्मध्वजी या धर्म- कलंक कहलाता है-अर्थात् वह धर्म पर कलंक लगाता है। इसलिए मनुष्य को इस तात्पर्य सम्बन्ध में अत्यधिक सावधान रहने की आवश्यकता है। श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर मर्कट शब्द का अर्थ “चंचल” करते हैं। चंचल व्यक्ति स्थिर नहीं रह सकता, इसलिए वह अपनी इन्द्रियों की तृप्ति करते हुए केवल इधर-उधर भटकता है। कभी-कभी

ऐसा व्यक्ति अन्यो से प्रशंसित होने के लिए अपने अनुयायियों अथवा जनता से सस्ती श्रद्धा पाने के लिए संन्यासी या बाबाजी का वेश धारण करता है, किन्तु वह इन्द्रियतृप्ति की, विशेषतया स्त्रियों की संगति की इच्छाओं को त्याग नहीं पाता। ऐसा व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन में प्रगति नहीं कर सकता। स्त्रियों के साथ आठ प्रकार का इन्द्रिय भोग होता है, जिनमें स्त्रियों के साथ बातें करना और उनके विषय में सोचना सम्मिलित हैं। इस तरह संन्यासी के लिए स्त्री से घुल-मिलकर बातें करना महान् अपराध है। श्री रामानन्द राय तथा श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने वास्तव में वैराग्य का सर्वोच्च पद प्राप्त अनुवाद किया था, किन्तु जो उन्हें सामान्य व्यक्ति मानकर उनकी नकल करते हैं, वे भौतिक शक्ति के वश में हो जाते हैं, क्योंकि यह एक बड़ी गलतफहमी है।

एत कहि' महाप्रभु अभ्यन्तरे गेला ।

गोसाजिर आवेश देखि' सबे मौन हैला ॥ 121 ॥

एत कहि'—यह कहकर; महाप्रभु—श्री चैतन्य महाप्रभु; अभ्यन्तरे गेला-अपने कमरे में चले गये; गोसाजिर-श्री चैतन्य महाप्रभु का, आवेश-क्रोध में आवेश; देखि'-देखकर, सबे-सारे भक्त; मौन हैला-मौन हो गये।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु अपने कमरे में चले गये। उन्हें इस तरह क्रोध की मुद्रा में देखकर सारे भक्त मौन हो गये।

आर दिने सबे मेलि' प्रभुर चरणे ।

हरिदास लागि, किछु कैला निवेदने ॥ 122॥

आर दिने-अगले दिन, सबे मेलि'-सभी भक्त एकत्रित होकर; प्रभुर चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में, हरिदास लागि-छोटे हरिदास के लिए; किछु-कुछ; कैला निवेदने-निवेदन किया।

अनुवाद

अगले दिन सारे भक्त छोटे हरिदास की ओर से निवेदन करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में पहुँचे।

“अल्प अपराध, प्रभु करह प्रसाद ।

एबे शिक्षा हइल ना करिबे अपराध” ॥123॥

अल्प अपराध-अपराध बहुत बड़ा नहीं है; प्रभु-हे भगवन्, करह प्रसाद-कृपा कीजिये, एबे-अब, शिक्षा हइल-उसे पर्याप्त शिक्षा मिल गई है; ना करिबे-वह नहीं करेगा; अपराध-अपराध।

अनुवाद

उन्होंने कहा, “हरिदास ने छोटा-सा अपराध किया है, इसलिए हे प्रभु, उस पर कृपालु हों। अब उसे पर्याप्त शिक्षा मिल चुकी है। भविष्य में वह ऐसा अपराध नहीं करेगा।”

प्रभु कहे,-मोर वश नहे मोर मन ।

प्रकृति-सम्भाषी वैरागी ना करे दर्शन ॥124॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; मोर वश-मेरे वश में, नहे-नहीं है; मोर-मेरा, मन-मन, प्रकृति-सम्भाषी-जो स्त्री से बात करता है; वैरागी-संन्यास आश्रम में स्थित व्यक्ति; ना करे दर्शन-नहीं देखता।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “मेरा मन मेरे वश में नहीं है। यह मन ऐसे व्यक्ति को संन्यास आश्रम में नहीं देखना चाहता, जो स्त्रियों से घुलमिलकर बातें करता हो।

निज कार्ये याह सबे, छाड़ वृथा कथा ।

पुनः यदि कह आमा ना देखिबे हेथा” ॥125॥

निज कार्ये-अपने कार्यो में, याह सबे-आप सभी जा सकते हैं; छाड़-छोड़कर, वृथा कथा-व्यर्थ की बातें; पुनः-फिर, यदि कह-यदि आप बोलेंगे; आमा-मुझे; ना देखिबे-आप नहीं देखेंगे; हेथा-यहाँ।

अनुवाद

“तुम सभी अपने-अपने कार्य पर जाओ। इस व्यर्थ की बात को छोड़ो। यदि तुम लोगों ने फिर से इस तरह बात की, तो मैं चला जाऊँगा और तुम लोग मुझे और यहाँ नहीं देख पाओगे।”

एत शुनि’ सबे निज-कर्ण हस्त दिया ।

निज निज कार्ये सबे गेल त’ उठिया ॥ 126 ॥

एत शुनि'-यह सुनकर; सबे-सभी भक्त; निज-कर्ण-अपने कानों पर; हस्त दिया-हाथ रखकर, निज निज कार्ये-
अपने अपने कार्यों में, सबे-वे सभी; गेल-चले गये; त'-निश्चित रूप से; उठिया-उठकर।

अनुवाद

यह सुनकर सारे भक्तों ने अपने हाथों से अपने कान बन्द कर लिए और उठकर वे अपने-अपने कार्यों
पर चले गये।

महाप्रभु मध्याह्न करिते चलि, गेला ।

बुझन ना याय एइ महाप्रभुर लीला ॥127॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, मध्याह्न करिते-अपनी मध्याह्न कालीन कृत्यों को करने के लिए, चलि-चले; गेला-
गये, बुझन ना याय-कोई भी समझ नहीं पाया; एइ-यह; महाप्रभुर लीला-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीला।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी अपना दोपहर का कृत्य करने के लिए वह स्थान छोड़ दिया। कोई उनकी
लीलाओं को समझ नहीं सका।

आर दिन सबे परमानन्द-पुरी-स्थाने ।

‘प्रभुके प्रसन्न कर’-कैला निवेदने ॥ 128 ॥

आर दिन-अगले दिन; सबे-सारे भक्तों ने, परमानन्द-पुरी-स्थाने-परमानन्द पुरी के स्थान पर; प्रभुके-श्री चैतन्य
महाप्रभु को; प्रसन्न कर-कृपया शान्त कीजिये; कैला निवेदने-निवेदन करने लगे।

अनुवाद

अगले दिन सारे भक्त श्री परमानन्द पुरी के पास गये और उन्होंने उनसे प्रार्थना की कि वे महाप्रभु को
शान्त करें।

तबे पुरी-गोसाजि एका प्रभु-स्थाने आइला ।

नमस्करि' प्रभु तारै सम्भ्रमे वसाइला ॥ 129॥

तबे-तब; पुरी-गोसाजि-परमानन्द पुरी, एका-अकेले; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर; आइला—
आये; नमस्करि'-प्रणाम करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; तौर-उन्हें; सम्भ्रमे-अत्यन्त आदर के साथ; वसाइला-बैठाया।

अनुवाद

इसके बाद परमानन्द पुरी अकेले ही श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर गये। महाप्रभु ने नमस्कार करने
के बाद उन्हें अपनी बगल में बड़े ही आदर से बैठाया।

पुछिला,-कि आज्ञा, केने हैल आगमन? ।

‘हरिदासे प्रसाद लागि’ कैला निवेदन ॥ 130 ॥

पुछिला-महाप्रभु ने पूछा, कि आज्ञा-आपका आदेश क्या है; केने हैल आगमन-आप किस उद्देश्य से आये हैं,
हरिदासे प्रसाद लागि'-छोटा हरिदास पर कृपा करने के लिए, कैला निवेदन-उन्होंने निवेदन किया।

अनुवाद

महाप्रभु ने पूछा, “आपका क्या आदेश है? आप यहाँ किस कार्य से आये हैं?” तब परमानन्द पुरी ने
अपनी विनती निवेदित की कि महाप्रभु छोटे हरिदास पर कृपा करें।

शुनिया कहेन प्रभु,—“शुनह, गोसाजि ।

सब वैष्णव लजा तुमि रह एइ ठाजि” ॥ 131 ॥

शुनिया-सुनकर, कहेन प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; शुनह-कृपया सुनिये, गोसाजि-मेरे प्रभु, सब वैष्णव-सभी
वैष्णवों को; लजा-लेकर, तुमि-आप; रह-रहिये; एइ ठाजि-इस स्थान में।

अनुवाद

यह विनती सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, “हे प्रभु, कृपया आप मेरी बात सुनें। आपके लिए
अच्छा होगा कि आप सारे वैष्णवों समेत यहीं रहें।

मोरे आज्ञा हय, मुजि याइ आलालनाथ ।

एकले रहिब ताहाँ, गोविन्द-मात्र साथ” ॥ 132॥

मोरे-मुझे; आज्ञा हय-कृपया अनुमति दीजिये; मुजि -मैं; याइ-जाकर; आलालनाथ-आलालनाथ नामक स्थान में, एकले रहिब-मैं अकेला रहूँगा; ताहाँ-वहाँ; गोविन्द-मात्र साथ-केवल गोविन्द के साथ।

अनुवाद

“कृपया आप मुझे आलालनाथ जाने की अनुमति दें। मैं वहाँ अकेला रहूँगा, केवल गोविन्द मेरे साथ जायेगा।”

एत बलि' प्रभु यदि गोविन्दे बोलाइला ।

पुरीरि नमस्कार करि' उठिया चलिला ॥133॥

एत बलि'-ऐसा कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; यदि-जब; गोविन्दे बोलाइला-गोविन्द को बुलाया; पुरीरि-परमानन्द पुरी को; नमस्कार करि'-प्रणाम करके; उठिया चलिला-उठकर जाने लगे।

अनुवाद

यह कहकर महाप्रभु ने गोविन्द को बुलाया। परमानन्द पुरी को नमस्कार करके वे उठे और जाने लगे।

आस्ते-व्यस्ते पुरी-गोसाजि प्रभु आगे गेला ।

अनुनय करि' प्रभुरे घरे वसाइला ॥134॥

आस्ते-व्यस्ते-अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक; पुरी-गोसाजि-परमानन्द पुरी; प्रभु आगे-श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने, गेला-गये; अनुनय करि'-अत्यन्त विनम्रता के साथ; प्रभुरेश्री चैतन्य महाप्रभु को; घरे-कमरे में, वसाइला-बिठाया।

अनुवाद

परमानन्द पुरी अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक उनके सामने गये और अत्यन्त दीनतापूर्वक उन्हें अपने कमरे में बैठने के लिए मनाया।

“तोमार ये इच्छा, कर, स्वतन्त्र ईश्वर ।

केबा कि बलिते पारे तोमार उपर? ॥135॥

तोमार ये इच्छा-आपकी जो भी इच्छा है; कर-आप कर सकते हैं; स्वतन्त्र ईश्वर-स्वतन्त्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, केबा-कौन; कि बलिते पारे-बोल सकता है; तोमार उपर-आपके ऊपर।

अनुवाद

परमानन्द पुरी ने कहा, “हे चैतन्य महाप्रभु, आप स्वतन्त्र पुरुषोत्तम भगवान् हैं। आप जो चाहें सो कर सकते हैं। आपके ऊपर कौन कुछ कह सकता है?

लोक-हित लागि’ तोमार सब व्यवहार ।

आमि सब ना जानि गम्भीर हृदय तोमार” ॥ 136 ॥

लोक-हित लागि’-जनसामान्य के कल्याण के लिए; तोमार-आपके; सब-सभी, व्यवहार-कार्यकलाप, आमि सब-हम सब, ना जानि-समझ नहीं सकते; गम्भीर-अत्यन्त गम्भीर और गहन, हृदय-हृदय; तोमार-आपका।

अनुवाद

“आपके सारे कार्य जनसामान्य के लाभ हेतु हैं। हम उन्हें नहीं समझ सकते, क्योंकि आपके मनोभाव अत्यन्त गहरे तथा गम्भीर हैं।”

एत बलि’ पुरी-गोसाजि गेला निज-स्थाने ।

हरिदास-स्थाने गेला सब भक्त-गणे ॥ 137॥

एत बलि’-यह कहकर, पुरी-गोसाजि-परमानन्द गोस्वामी, गेला-चले गये; निज-स्थाने-अपने निवासस्थान की ओर, हरिदास-स्थाने-छोटे हरिदास के निवासस्थान पर, गेला-चले गये; सब भक्त-गणे-अन्य सभी भक्त।

अनुवाद

यह कहकर परमानन्द पुरी अपने घर चले गये। तब सारे भक्त छोटे हरिदास को मिलने गये।

स्वरूप-गोसाजि कहे,—“शुन, हरिदास ।

सबे तोमार हित वाञ्छि, करह विश्वास” ॥ 138 ॥

स्वरूप-गोसाजि कहे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने कहा; शुन हरिदास-हरिदास, सुनो, सबे-हम सब, तोमार हित वाञ्छि-तुम्हारा भला चाहते हैं, करह विश्वास-यह विश्वास करो।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोसांइ ने कहा, “हरिदास, हमारी बात सुनो, क्योंकि हम सब तुम्हारा भला चाहते हैं। इस पर विश्वास करो।”

प्रभु हठे पड़ियाछे स्वतन्त्र ईश्वर ।

कभु कृपा करिबेन याते दयालु अन्तर ॥139॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, हठे पड़ियाछे-अत्यन्त हठपूर्व क्रोध के भाव में, स्वतन्त्र ईश्वर—स्वतन्त्र परम भगवान्; कभु-किसी समय; कृपा करिबेन-वे (तुम पर) कृपा करेंगे; याते-क्योंकि; दयालु-दयावान, अन्तर-हृदय से।

अनुवाद

“इस समय श्री चैतन्य महाप्रभु रुष्ट हैं। वे स्वतन्त्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। किन्तु कभी न कभी वे अवश्य कृपालु होंगे, क्योंकि वे हृदय से अत्यन्त दयालु हैं।”

तुमि हठ कैले ताँर हठ से बाड़िबे ।

स्नान भोजन कर, आपने क्रोध याबे” ॥ 140 ॥

तुमि हठ कैले-यदि तुम हठ करना जारी रखोगे; ताँर-(तो) उनका; हठ-हठ; से-वह; बाड़िबे-बढ़ता जायेगा; स्नान भोजन कर-स्नान करो और भोजन करो, आपने क्रोध याबे-उनका क्रोध स्वतः ही शान्त हो जायेगा।

अनुवाद

“महाप्रभु हठ कर रहे हैं और यदि तुम भी हठ करोगे, तो उनका हठ बढ़ेगा। तुम्हारे लिए अच्छा होगा कि तुम स्नान करो और प्रसाद पाओ। समय आने पर उनका क्रोध स्वतः दमित हो जायेगा।”

एत बलि तारे स्नान भोजन कराजा ।

आपन भवन आइला तारे आश्वासिया ॥ 141 ॥

एत बलि-यह कहकर, तारे-उसे; स्नान भोजन कराजा-स्नान करने एवं प्रसाद ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया; आपन भवन-अपने स्थान पर; आइला-वापस लौट गये, तारे आश्वासिया-उसे आश्वासन देकर।

अनुवाद

यह कहकर स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने हरिदास को स्नान करने तथा प्रसाद लेने के लिए राजी कर लिया। इस तरह उसे आश्वस्त करके वे अपने घर लौट आये।

प्रभु यदि यान जगन्नाथ-दर्शने ।

दूरे रहि' हरिदास करेन दर्शने ॥142॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; यदि-जब; यान-जाते; जगन्नाथ-दर्शने-भगवान् जगन्नाथ के दर्शन करने; दूरे रहि'-दूर रहकर, हरिदास-छोटा हरिदास, करेन दर्शने-दर्शन करता।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु मन्दिर में भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने जाते, तो हरिदास दूर ही रहता और वहीं से उनका दर्शन करता।

महाप्रभु-कृपा-सिन्धु, के पारे बुझिते? ।

प्रिय भक्ते दण्ड करेन धर्म बुझाइते ॥143॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कृपा-सिन्धु-कृपा के सागर; के पारे बुझिते-कौन समझ सकता है; प्रिय भक्ते-अपने प्रिय भक्त को; दण्ड करेन-दण्डित करते हैं; धर्म बुझाइते-धर्म अथवा कर्तव्य के सिद्धान्त स्थापित करने के लिए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कृपा के सागर हैं। उन्हें कौन समझ सकता है? जब वे अपने भक्तों को दण्ड देते हैं, तो वे ऐसा जान-बूझकर धर्म के सिद्धान्तों या कर्तव्य की पुनर्स्थापना करने के लिए करते हैं।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि छोटा हरिदास, कृपासिन्धु श्री चैतन्य महाप्रभु का प्रिय भक्त था, फिर भी यह स्थापित करने के लिए महाप्रभु ने उसे दण्ड दिया कि शुद्ध भक्ति में लगे व्यक्ति को पाखण्डी नहीं होना चाहिए। भक्ति में लगे संन्यासी द्वारा स्त्रियों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखना निश्चित रूप से पाखण्ड है। छोटे हरिदास को यह दण्ड उन भावी सहजियों के लिए उदाहरणरूप था, जो रूप गोस्वामी तथा अन्य प्रामाणिक संन्यासियों की नकल करके संन्यासी का वेश धारण करेंगे, किन्तु भीतर ही भीतर स्त्रियों से अवैध सम्बन्ध रख सकते हैं। ऐसे लोगों को शिक्षा देने के लिए ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने प्रिय भक्त हरिदास को नियमों से थोड़े-से विचलन के लिए दण्डित किया।

श्रीमती माधवीदेवी अत्यन्त उच्च कोटि की भक्त थीं, इसलिए उनके पास जाकर श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए थोड़ा-सा चावल माँगना निश्चय ही बहुत बड़ा अपराध नहीं था। फिर भी भविष्य में नियमों की रक्षा करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह कठोर नियम स्थापित किया कि किसी भी संन्यासी को स्त्रियों से घनिष्ठ रूप से मिलना-जुलना नहीं चाहिए। यदि श्री चैतन्य महाप्रभु ने छोटे हरिदास को इस छोटे-से विचलन के लिए दण्ड न दिया होता, तो महाप्रभु के तथाकथित भक्त छोटे हरिदास के दृष्टान्त का लाभ उठाकर अनियन्त्रित रूप से स्त्रियों के साथ अवैध सम्बन्ध बनाने की आदत बनाये रखते। निस्सन्देह, वे अब भी प्रचार करते हैं कि वैष्णव के लिए ऐसे आचरण की अनुमति है। किन्तु इसकी बिलकुल अनुमति ही नहीं दी जाती। श्री चैतन्य महाप्रभु सारे जगत् के गुरु हैं, इसलिए उन्होंने इस उदाहरण रूप दण्ड-विधान को यह स्थापित करने के लिए लागू किया कि वैष्णव दर्शन में अवैध सम्बन्धों की अनुमति कभी नहीं दी जाती। छोटे हरिदास को दण्ड देने के पीछे उनका यही उद्देश्य था। श्री चैतन्य महाप्रभु वास्तव में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सर्वाधिक दयालु अवतार हैं, किन्तु उन्होंने अवैध सम्बन्ध का कड़ाई से निषेध किया।

देखि' त्रास उपजिल सब भक्त-गणे ।

स्वप्ने-ह छाड़िल सबे स्त्री-सम्भाषणे ॥ 144॥

देखि'-देखकर; त्रास-भय का वातावरण; उपजिल-उत्पन्न हो गया; सब भक्त-गणे-सारे भक्तों के बीच; स्वप्ने-ह-स्वप्न में भी; छाड़िल-छोड़ दिया; सबे-सब ने, स्त्री-सम्भाषणे-स्त्रियों से बात करना।

अनुवाद

जब सब भक्तों ने इस उदाहरण को देख लिया, तो उनके मन में भय उत्पन्न हो गया। इसलिए उन सबने स्वप्न में भी स्त्रियों से बातें करना त्याग दिया।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर स्त्री-सम्भाषण अर्थात् स्त्रियों से बातें करने के विषय में कहते हैं कि स्त्रियों से इन्द्रियतृप्ति के लिए मेल-जोल बढ़ाने के लिए, चाहे वह सूक्ष्म हो या स्थूल, बातें करना निषिद्ध है। महान् नैतिक शिक्षक चाणक्य पण्डित कहते हैं-मातृवत् परदारेषु / इस तरह न केवल संन्यासी या भक्त अपितु हर व्यक्ति को स्त्रियों से मिलने-जुलने से बचना चाहिए। मनुष्य को दूसरे की पत्नी को अपनी माता मानना चाहिए।

एङ्-मते हरिदासेर एक वत्सर गेल ।

तबु महाप्रभुर मने प्रसाद नहिल ॥145॥

एइ-मते—इस प्रकार; हरिदासेर-छोटे हरिदास का; एक वत्सर-एक वर्ष; गेल— बीत गया; तबु-फिर भी; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; मने-मन में; प्रसाद नहिल-कृपा के कोई लक्षण नहीं दिखे।

अनुवाद

इस तरह छोटे हरिदास का पूरा एक वर्ष बीत गया, फिर भी उसके प्रति श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा का कोई नामोनिशान न था।

रात्रि अवशेषे प्रभुरे दण्डवत् हजा ।

प्रयागेते गेल कारेह किछु ना बलिया ॥ 146॥

रात्रि अवशेषे-एक रात के अन्त में; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; दण्डवत् हजा-दण्डवत् प्रणाम करके; प्रयागेते-प्रयाग (अलाहाबाद) नामक तीर्थ स्थल को; गेल-गया; कारेह-किसी को; किछु-कुछ; ना बलिया-बताये बिना।

अनुवाद

इस तरह एक रात के अन्त में, छोटे हरिदास ने श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करके किसी से कुछ कहे बिना ही प्रयाग के लिए प्रस्थान किया।

प्रभु-पद-प्राप्ति लागि' सङ्कल्प करिल ।

त्रिवेणी प्रवेश करि' प्राण छाड़िल ॥ 147॥

प्रभु-पद-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; प्राप्ति लागि'-प्राप्ति की इच्छा से; सङ्कल्प करिल-अन्ततः संकल्प किया; त्रिवेणी प्रवेश करि'-प्रयाग में गंगा और यमुना के संगम के जल में प्रवेश करके; प्राण छाड़िल-अपने प्राण त्याग दिये।

अनुवाद

छोटे हरिदास ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में शरण पाने के लिए संकल्प किया। इस तरह प्रयाग में गंगा-यमुना के संगम त्रिवेणी में गहरे जल में प्रवेश करके उसने अपने प्राण त्याग दिये।

सेइ-क्षणे दिव्य-देहे प्रभु-स्थाने आइला ।

प्रभु-कृपा पाजा अन्तर्धानेइ रहिला ॥ 148॥

सेइ-क्षणे-तुरन्त उसी समय; दिव्य-देहे-दिव्य देह में; प्रभु-स्थाने आइला-श्री चैतन्य महाप्रभु के पास आया; प्रभु-कृपा-श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा; पाजा-प्राप्त कर; अन्तर्धानेइ रहिला-अदृश्य ही रहा।

अनुवाद

इस तरह आत्महत्या करने के तुरन्त बाद वह अपने आध्यात्मिक शरीर में श्री चैतन्य महाप्रभु के पास गया और उनकी कृपा प्राप्त की। किन्तु वह तब भी अदृश्य रहा।

गन्धर्व-देहे गान करेन अन्तर्धाने ।

रात्र्ये प्रभुरे शुनाय गीत, अन्ये नाहि जाने ॥149॥

गन्धर्व-देहे-एक गन्धर्व की देह में; गान करेन-वह गाता; अन्तर्धाने-अदृश्य रहकर; रात्र्ये -रात्रि के समय, प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए; शुनाय गीत-वह गीत सुनाता; अन्ये-अन्य कोई भी; नाहि जाने-जान नहीं पाते।

अनुवाद

गन्धर्व जैसी दिव्य देह में छोटा हरिदास अदृश्य होते हुए भी रात में श्री चैतन्य महाप्रभुको गीत गाकर सुनाता था, किन्तु महाप्रभु के अतिरिक्त अन्य कोई यह नहीं जानता था।

एक-दिन महाप्रभु पुछिला भक्त-गणे ।

‘हरिदास काँहा? तारे आनह एखाने’ ॥ 150 ॥

एक-दिन-एक दिन; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; पुछिला भक्त-गणे-भक्तों से पूछा; हरिदास काँहा-हरिदास कहाँ है; तारे-उसे; आनह एखाने-यहाँ लाओ।

अनुवाद

एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने भक्तों से पूछा, “हरिदास कहाँ है? अब तुम उसे यहाँ ला सकते हो।”

सबे कहे,—“हरिदास वर्ष-पूर्ण दिने ।

रात्रे उठि काँहा गेला, केह नाहि जाने” ॥151॥

सबे कहे-सभी ने कहा; हरिदास-हरिदास; वर्ष-पूर्ण दिने-एक वर्ष के अन्त में, रात्रे-रात की; उठि-उठकर, काँहा गेला-कहाँ चला गया; केह नाहि जाने-कोई नहीं जानता।

अनुवाद

सभी भक्तों ने उत्तर दिया, “एक वर्ष पूरा होने पर एक रात को छोटा हरिदास उठा और चला गया। कोई नहीं जानता कि वह कहाँ गया।”

शुनि’ महाप्रभु ईषत् हासिया रहिला ।

सब भक्त-गण मने विस्मय हइला ॥ 152 ॥

शुनि’-सुनकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; ईषत्-कुछ; हासिया रहिला- मुस्कराते रहे; सब भक्त-गण-सभी भक्त; मने-मनो में; विस्मय हइला-आश्चर्यचकित हुए।

अनुवाद

भक्तों को शोक करते हुए देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु मंद मंद मुस्कुरा रहे थे। इस तरह सारे भक्त अत्यन्त विस्मित थे।

एक-दिन जगदानन्द, स्वरूप, गोविन्द ।

काशीश्वर, शङ्कर, दामोदर, मुकुन्द ॥ 153॥

समुद्र-स्नाने गेला सबे, शुने कथो दूरे ।

हरिदास गायेन, येन डाकि’ कण्ठ-स्वरे ॥154॥

एक-दिन-एक दिन; जगदानन्द-जगदानन्द; स्वरूप-स्वरूप; गोविन्द-गोविन्द; काशीश्वर-काशीश्वर; शङ्कर-शंकर; दामोदर-दामोदर; मुकुन्द-मुकुन्द; समुद्र-स्नाने-समुद्र में स्नान करने; गेला-गये; सबे-वे सब; शुने-सुन सके; कथो दूरे-कुछ दूरी से; हरिदास गायेन-छोटा हरिदास गा रहा था; येन-जैसे; डाकि’-बुला रहा हो; कण्ठ-स्वरे-अपनी मूल आवाज में।

अनुवाद

एक दिन जगदानन्द, स्वरूप, गोविन्द, काशीश्वर, शंकर, दामोदर तथा मुकुन्द-सभी समुद्र में स्नान करने गये। वे दूर से हरिदास को गाते हुए सुन सके, मानो वह उन्हें अपनी मूल आवाज से बुला रहा हो।

मनुष्य ना देखे-मधुर गीत-मात्र शुने ।

गोविन्दादि सबे मेलि' कैल अनुमाने ॥ 155॥

मनुष्य-व्यक्ति को; ना देखे-देख नहीं पाये; मधुर-अत्यन्त मधुर; गीत-गाना; मात्र-केवल; शुने-सुन पा रहे थे; गोविन्द-आदि सबे-गोविन्द आदि सभी भक्तगण, मेलि'-मिलकर, कैल अनुमाने-अनुमान करने लगे।

अनुवाद

कोई उसे देख नहीं सका, किन्तु वे सब उसे मधुर स्वर में गाते सुन सके। इसलिए गोविन्द इत्यादि सभी भक्तों ने यह अनुमान लगाया।

‘विषादि खात्रा हरिदास आत्म-घात कैल ।

सेइ पापे जानि ‘ब्रह्म-राक्षस’ हैल ॥ 156॥

विष-आदि खात्रा-विष पीकर; हरिदास-छोटे हरिदास ने; आत्म-घात कैल-आत्महत्या कर ली; सेइ पापे-उस पापकृत्य के कारण; जानि-हम समझते हैं; ब्रह्म-राक्षस-एक ब्रह्म राक्षस; हैल-वह बन गया है।

अनुवाद

“हरिदास ने विष पीकर आत्महत्या कर ली होगी और इस पापकर्म के कारण ही अब वह ब्रह्म-राक्षस बन गया है।

आकार ना देखि, मात्र शुनि तार गान’ ।

स्वरूप कहेन,—“एइ मिथ्या अनुमान ॥157॥

आकार-रूप; ना देखि-हम नहीं देख सकते; मात्र-केवल; शुनि-हम सुन रहे हैं; तार-उसका; गान-गायन; स्वरूप कहेन-स्वरूप दामोदर ने कहा; एइ-यह; मिथ्या-गलत, अनुमान-अनुमान है।

अनुवाद

उन्होंने कहा, “हम उसका भौतिक रूप नहीं देख पा रहे हैं, किन्तु फिर भी उसका मधुर गाना सुन रहे हैं।
अतएव वह प्रेत बन गया होगा।” किन्तु स्वरूप दामोदर ने आपत्ति की, “यह झूठा अनुमान है।

आजन्म कृष्ण-कीर्तन, प्रभुर सेवन ।

प्रभु-कृपा-पात्र, आर क्षेत्रे मरण ॥158॥

आजन्म-सम्पूर्ण जीवन; कृष्ण-कीर्तन-हरे कृष्ण महामन्त्र का जप; प्रभुर सेवन-श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा; प्रभु-
कृपा-पात्र—महाप्रभु को अति प्रिय; आर—और; क्षेत्रे मरण-तीर्थस्थान में उसका देहान्त।

अनुवाद

“छोटे हरिदास ने आजीवन हरे कृष्ण मन्त्र का जप किया और परम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की
सेवा की। इतना ही नहीं, वह महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय था और उसका तीर्थस्थान में देहान्त हुआ है।

दुर्गति ना हय तार, सद्गति से हय ।

प्रभु-भङ्गी एड़, पाछे जानिबा निश्चय ॥ 159 ॥

दुर्गति-बुरा परिणाम; ना हय तार-उसका नहीं हुआ है; सद्-गति से हय-उसे मुक्ति मिल गई होगी; प्रभु-भङ्गी-श्री
चैतन्य महाप्रभु की लीला है; एड़-यह; पाछे-बाद में; जानिबा-आपको समझ आयेगा; निश्चय-वास्तविक हकीकत।

अनुवाद

“हरिदास का पतन नहीं हुआ होगा। उसे अवश्य ही मुक्ति मिली होगी। यह तो श्री चैतन्य महाप्रभु की
लीला है। इसे तुम सब बाद में समझोगे।”

प्रयाग हड़ते एक वैष्णव नवद्वीप आइल ।

हरिदासेर वार्ता तेंहो सबारे कहिल ॥ 160 ॥

प्रयाग हड़ते-प्रयाग से; एक-एक; वैष्णव-भगवान् कृष्ण का भक्त; नवद्वीप आइल-नवद्वीप आया; हरिदासेर वार्ता-
हरिदास का समाचार; तेंहो-उसने; सबारे कहिल-सभी को बताया।

अनुवाद

एक भक्त प्रयाग से नवद्वीप लौटा और उसने हर एक को छोटे हरिदास की आत्महत्या का विस्तृत विवरण दिया।

यैछे सङ्कल्प, यैछे त्रिवेणी प्रवेशिल ।

शुनि', श्रीवासादिर मने विस्मय ह-ल ॥ 161 ॥

यैछे सङ्कल्प—किस प्रकार उसने संकल्प लिया; यैछे—किस प्रकार; त्रिवेणी प्रवेशिल-उसने त्रिवेणी में प्रवेश किया; शुनि'-सुनकर; श्रीवास-आदिर-श्रीवास ठाकुर और दूसरों के; मने-मनों में, विस्मय हइल-आश्चर्य हुआ।

अनुवाद

उसने बताया कि किस तरह हरिदास ने संकल्प किया और फिर वह गंगा-यमुना के संगम में जल में प्रविष्ट हुआ। ये बातें विस्तार से सुनकर श्रीवास ठाकुर तथा अन्य भक्त अत्यधिक चकित हुए।

वर्षान्तरे शिवानन्द सब भक्त लजा ।

प्रभुरे मिलिला आसि' आनन्दित हजा ॥ 162 ॥

वर्ष-अन्तरे-वर्ष के अन्त में; शिवानन्द-शिवानन्द सेन; सब-सब; भक्त लजा-भक्तों को लेकर; प्रभुरे मिलिला-श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले; आसि'-आकर; आनन्दित हजा-अत्यन्त आनन्दित होकर।

अनुवाद

वर्ष के अन्त में शिवानन्द सेन पहले की तरह अन्य भक्तों के साथ जगन्नाथ पुरी आये और परम सुख का अनुभव करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले।

‘हरिदास काँहा?’ यदि श्रीवास पुछिला ।

“स्व-कर्म-फल-भुक्पुमान्”—प्रभु उत्तर दिला ॥ 163॥

हरिदास काँहा-छोटा हरिदास कहाँ है; यदि-जब, श्रीवास पुछिला-श्रीवास ठाकुर ने पूछा; स्व-कर्म-फल-भुक्-अपने कर्मों का प्रतिफल भोगना निश्चित है; पुमान्-व्यक्ति को; प्रभु—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; उत्तर दिला-उत्तर दिया।

अनुवाद

जब श्रीवास ठाकुर ने श्री चैतन्य महाप्रभु से पूछा, “छोटा हरिदास कहाँ है?” तो महाप्रभु ने उत्तर दिया,
“मनुष्य को अपने सकाम कर्मों का फल अवश्य मिलता है।”

तबे श्रीवास तार वृत्तान्त कहिल ।

यैछे सङ्कल्प, यैछे त्रिवेणी प्रवेशिल ॥ 164॥

तबे—उस समय; श्रीवास-श्रीवास ठाकुर ने; तार—छोटा हरिदास का; वृत्तान्त-वृत्तान्त; कहिल-कहा; यैछे—किस प्रकार; सङ्कल्प-उसने निश्चय किया; यैछे—किस प्रकार; त्रिवेणी प्रवेशिल-वह गंगा और यमुना के मिलन स्थान पर जल में प्रवेश कर गया।

अनुवाद

तब श्रीवास ठाकुर ने हरिदास के निर्णय तथा गंगा-यमुना के संगम में उसके जल में प्रवेश करने का विस्तार से वर्णन किया।

शुनि’ प्रभु हासि’ कहे सुप्रसन्न चित्त ।

‘प्रकृति दर्शन कैले एइ प्रायश्चित्त’ ॥ 165 ॥

शुनि’-सुनकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हासि’-हँसकर; कहे—उत्तर दिया; सुप्रसन्न चित्त-प्रसन्न चित्त से; प्रकृति दर्शन कैले-यदि कोई इन्द्रिय भोग भावना से स्त्रियों को देखता है; एइ प्रायश्चित्त-यही प्रायश्चित्त है।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने विस्तारपूर्वक बातें सुनीं, तो वे प्रसन्न मुद्रा में हँसे और बोले, “यदि कोई स्त्रियों को वासनापूर्ण दृष्टि से देखता है, तो प्रायश्चित्त की यही एकमात्र विधि है।”

स्वरूपादि मिलि’ तबे विचार करिला ।

त्रिवेणी-प्रभावे हरिदास प्रभु-पद पाइला ॥166॥

स्वरूप-आदि-स्वरूप दामोदर आदि भक्तों ने; मिलि’-मिलकर; तबे-तब; विचार करिला-विचार किया, त्रिवेणी-प्रभावे-गंगा और यमुना के संगम के पवित्र स्थान के प्रभाव से; हरिदास-छोटे हरिदास ने; प्रभु-पद पाइला—श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल प्राप्त कर लिये।

अनुवाद

तब स्वरूप दामोदर गोस्वामी इत्यादि सारे भक्तों ने यह निष्कर्ष निकाला कि चूँकि हरिदास ने गंगा तथा यमुना नदियों के संगम पर आत्महत्या की है, अतः उसे अन्ततोगत्वा श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण प्राप्त हुई होगी।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर की टिप्पणी है कि संन्यास धारण करने और संन्यासी या बाबाजी का वेश धारण करने के बाद यदि कोई अपने मन में इन्द्रियतृप्ति का भाव, विशेषतया स्त्री से सम्बन्ध करने का विचार लाता है, तो उसका एकमात्र प्रायश्चित्त गंगा-यमुना के संगम पर आत्महत्या करना है। केवल ऐसे प्रायश्चित्त से ही उसका पापी जीवन शुद्ध हो सकता है। यदि ऐसा व्यक्ति इस तरह दण्डित होता है, तो वह श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण पा सकता है। किन्तु ऐसे दण्ड के बिना श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण पुनः प्राप्त कर पाना बहुत कठिन है।

एइ-मत लीला करे शचीर नन्दन ।

याहा शुनि' भक्त-गणेर युड़ाय कर्ण-मन ॥167॥

एइ-मत-इस प्रकार; लीला करे-निरन्तर लीलाएँ करते हैं; शचीर नन्दन-माता शची के पुत्र, याहा शुनि'-जिन्हें सुनकर, भक्त-गणेर-भक्तों के; युड़ाय-सन्तुष्ट होते हैं, कर्ण-मन-कान और मन।

अनुवाद

इस तरह शचीनन्दन श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी लीलाएँ करते हैं, जो कि शुद्ध भक्तों के कर्णों और मनों को महान् सन्तोष देती हैं।

आपन कारुण्य, लोके वैराग्य-शिक्षण ।

स्व-भक्तेर गाढ़-अनुराग-प्रकटी-करण ॥168॥

आपन-अपनी; कारुण्य-करुणा; लोके-जनसाधारण के लिए; वैराग्य-शिक्षण-संन्यास आश्रम के विषय में शिक्षा देते; स्व-भक्तेर-अपने भक्तों की; गाढ़-गहरी; अनुराग-आसक्ति; प्रकटी-प्रकट; करण-करवाते हैं।

अनुवाद

यह घटना श्री चैतन्य महाप्रभु की करुणा, उनकी यह शिक्षा कि संन्यासी को अपने संन्यास आश्रम में ही रहना चाहिए तथा उनके श्रद्धालु भक्तों द्वारा उनके प्रति अनुभव किये जाने वाले अगाध अनुराग को प्रकट करती है।

तीर्थेर महिमा, निज भक्ते आत्मसात् ।

एक लीलाय करेन प्रभु कार्य पाँच-सात ॥169॥

तीर्थेर महिमा—तीर्थ स्थान की महिमा; निज भक्ते आत्मसात्—अपने भक्त को पुनः स्वीकार करना; एक लीलाय-एक लीला द्वारा; करेन-करते हैं; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, कार्य पाँच-सात-पाँच से सात विभिन्न उद्देश्य की पूर्ति।

अनुवाद

यह तीर्थस्थानों की महिमा को भी प्रदर्शित करती है तथा दिखलाती है कि किस तरह महाप्रभु अपने श्रद्धालु भक्त को स्वीकार करते हैं। इस तरह महाप्रभु ने एक लीला करके पाँच-सात उद्देश्यों को पूरा किया।

मधुर चैतन्य-लीला-समुद्र-गम्भीर।

लोके नाहि बुझे, बुझे येइ 'भक्त' 'धीर' ॥170॥

मधुर—मधुर; चैतन्य-लीला—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; समुद्र-गम्भीर-समुद्र के समान गम्भीर; लोके नाहि बुझे-सामान्य लोग नहीं समझ सकते; बुझे-समझ सकता है; येइ-जो; भक्त-भक्त, धीर-धीर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अमृत तुल्य हैं और समुद्र के समान गहरी हैं। सामान्य लोग उन्हें नहीं समझ सकते, किन्तु धीर भक्त इन्हें समझ सकता है।

विश्वास करिया शुन चैतन्य-चरित ।

तर्क ना करिह, तर्के हबे विपरीत ॥171॥

विश्वास करिया-श्रद्धा और निश्चय के साथ; शुन-सुनो; चैतन्य-चरित-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; तर्क ना करिह-व्यर्थ के तर्क मत करो; तर्के-तर्क द्वारा; हबे विपरीत-विपरीत फल प्राप्त होगा।

अनुवाद

कृपया श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं को श्रद्धा तथा विश्वासपूर्वक सुनिये। तर्क मत कीजिये, क्योंकि तर्क से विपरीत फल प्राप्त होगा।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥172॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ- श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों में, यार-जिसकी; आश-आशा है; चैतन्य-चरितामृत- चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णित करते हैं; कृष्ण-दास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके पदचिह्नों पर चलकर श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस अध्याय की शिक्षाएँ

इस अध्याय का सारांश देते हुए श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि इससे निम्नलिखित शिक्षाएँ प्राप्त करनी चाहिए : (1) यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु कृपा के अवतार हैं, किन्तु उन्होंने अपने निजी संगियों में से एक, यथा छोटे हरिदास की संगति त्याग दी, क्योंकि यदि वे ऐसा न करते तो छद्म भक्त, भक्तों के रूप में रहने तथा साथ ही साथ अवैध यौन सम्बन्ध रखने के लिए छोटा हरिदास के दोष का लाभ उठाते। ऐसे कार्यों से श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का नैतिक पतन होता और इस तरह भक्तगण श्री चैतन्य महाप्रभु के नाम पर नारकीय जीवन में चले जाते।

(2) छोटे हरिदास को दण्ड देकर महाप्रभु ने आचार्यों या चैतन्य सम्प्रदाय का प्रसार करने वाली संस्थाओं के मुखियाओं तथा समस्त भक्तों के लिए आदर्श स्थापित किया। श्री चैतन्य महाप्रभु सर्वोच्च आदर्श बनाये रखना चाहते थे।

(3) श्री चैतन्य महाप्रभु ने शिक्षा दी कि शुद्ध भक्त सरल हों तथा पापकर्मों से रहित हों, क्योंकि तभी कोई उनका प्रामाणिक दास हो सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने अनुयायियों को शिक्षा दी कि किस तरह संन्यास आश्रम का दृढ़ता से पालन किया जाए।

(4) श्री चैतन्य महाप्रभु यह बताना चाहते थे कि उनके भक्त उन्नत हैं तथा उनका चरित्र आदर्श है। वे अपने श्रद्धालु भक्तों को कृपापूर्वक स्वीकार करते हैं और उन्हें शिक्षा देते हैं कि भक्ति के कठोर नियमों से थोड़ा-सा भी विचलित होने से कितना कष्ट तथा उत्पात उत्पन्न हो सकता है।

(5) छोटे हरिदास को दण्ड देकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस पर कृपा प्रदर्शित की और इस तरह प्रदर्शित किया कि उनके प्रति हरिदास की भक्ति कितनी उच्च थी। इसी दिव्य सम्बन्ध के कारण उन्होंने अपने शुद्ध भक्त के तुच्छ अपराध को भी सुधारा। इसलिए जो कोई श्री चैतन्य महाप्रभु का शुद्ध भक्त बनना चाहता है, उसे समस्त भौतिक इन्द्रियतृप्ति का परित्याग कर देना चाहिए, अन्यथा श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों को प्राप्त कर पाना दुष्कर होगा।

(6) यदि कोई प्रयाग, मथुरा अथवा वृन्दावन जैसे सुविख्यात तीर्थस्थान में शरीर त्यागता है, तो वह अपने पापकर्म के फलों से छुटकारा पा लेता है और तब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण प्राप्त करता है।

(7) यद्यपि शुद्ध भक्त का पतन हो सकता है, फिर भी महाप्रभु की कृपा से उसे भगवद्धाम लौट जाने का अवसर प्राप्त होता है।

इस प्रकार श्री चैतन्य-चरितामृत के अन्त्य-लीला के अन्तर्गत छोटे हरिदास को दण्ड शीर्षक वाले द्वितीय अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय तीन

श्रील हरिदास ठाकुर की महिमा

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अन्त्य-लीला के तृतीय अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है : जगन्नाथ पुरी में एक सुन्दर ब्राह्मण युवती का एक अत्यन्त सुन्दर पुत्र था, जो प्रतिदिन श्री चैतन्य महाप्रभु के पास आया करता था। यह दामोदर पण्डित को अच्छा नहीं लगता था, अतः उसने महाप्रभु से कहा, “यदि आप इस लड़के से इतना प्रेम प्रदर्शित करेंगे, तो लोग आपके चरित्र के बारे में सन्देह करेंगे।” दामोदर पण्डित के ये शब्द सुनकर महाप्रभु ने उसे अपनी माता शचीदेवी के कामकाज की देखभाल करने के लिए नवद्वीप भेज दिया। उन्होंने दामोदर पण्डित से अपनी माता से विशेष रूप से यह स्मरण दिलाने के लिए भी कहा कि वे कभी-कभी उनके घर उनका अर्पित किया हुआ भोग ग्रहण करने जाते हैं। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु का आदेश पाकर दामोदर पण्डित नवद्वीप गये और अपने साथ भगवान जगन्नाथ के कई प्रकार के प्रसाद लेते गये।

एक अन्य अवसर पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर से, जो कि ब्रह्म हरिदास कहलाते थे, यह पूछा कि वैदिक संस्कृति से विहीन व्यक्तियों अर्थात् यवनों का कलियुग में उद्धार किस तरह होगा। हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया

कि उनका उद्धार तो तभी सम्भव है, जब वे उच्च स्वर से हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करें, क्योंकि उच्च स्वर से हो रहे हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन सुनकर वे लाभान्वित हो सकेंगे, चाहे वह अल्प अनुभूति (नामाभास) से ही क्यों न हो।

इस घटना का वर्णन करने के बाद चैतन्य-चरितामृत के रचयिता ने शान्तिपुर के निकट के गाँव बेनापोल में हरिदास ठाकुर की परीक्षा का वर्णन किया है। हरिदास ठाकुर से ईर्ष्या रखने वाले एक व्यक्ति रामचन्द्र खान ने उन्हें बदनाम करने के लिए उनके पास एक पेशेवर वेश्या भेजी, किन्तु हरिदास ठाकुर की कृपा से उस वेश्या का भी उद्धार हो गया। शुद्ध वैष्णव का अपमान करने के कारण रामचन्द्र खान को बाद में नित्यानन्द प्रभु ने शाप दिया जिससे वह विनष्ट हो गया।

हरिदास ठाकुर बेनापोल से चाँदपुर नामक गाँव चले गये, जहाँ वे बलराम आचार्य के घर में रहने लगे। तत्पश्चात् हरिदास ठाकुर का स्वागत दो भाइयों ने किया, जिनके नाम हिरण्य तथा गोवर्धन मजुमदार थे, किन्तु वार्ता के दौरान गोपाल चक्रवर्ती नामक एक जात ब्राह्मण ने उनका अपमान किया। इस अपराध के कारण गोपाल चक्रवर्ती को कुछ रोग से पीड़ित होने का दण्ड मिला।

बाद में हरिदास चाँदपुर छोड़कर अद्वैत आचार्य के घर चले गये, जहाँ मायादेवी ने उनकी परीक्षा ली, जो बहिरंगा शक्ति का प्रतीक थी। उसे भी उन्होंने हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने का आशीर्वाद दिया।

वन्देऽहं श्री-गुरोः श्री-युत-पद-कमलं श्री-गुरुन्वैष्णवांश्च

श्री-रूपं साग्रजातं सह-गण-रघुनाथान्वितं तं स-जीवम् ।

साद्वैतं सावधूतं परिजन-सहितं कृष्ण-चैतन्य-देवं

श्री-राध्या-कृष्ण-पादान्सह-गण-ललिता-श्री-विशाखान्वितांश्च ॥ 1 ॥

वन्दे-सादर प्रणाम करता हूँ; अहम्-मैं; श्री-गुरोः-अपने दीक्षा गुरु एवं शिक्षा गुरु के; श्री-युत-पद-कमलम्-सौभाग्य से युक्त चरणकमलों को; श्री-गुरुन्-गुरु परम्परा में, श्रील माधवेन्द्रपुरी से प्रारम्भ करके श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद तक आने वाले सभी आध्यात्मिक गुरुजनों को; वैष्णवान्-सृष्टि के प्रारम्भ से ही आने वाले, ब्रह्माजी से आरम्भ करके अन्य सभी वैष्णवों को; च-तथा; श्री-रूपम्-श्रील रूप गोस्वामी को; स-अग्र-जातम्-उनके बड़े भाई, सनातन गोस्वामी सहित; सह-गण-रघुनाथ-अन्वितम्-रघुनाथ दास गोस्वामी और उनके परिकरों के साथ; तम्-उनको, स-जीवम्-जीव गोस्वामी सहित; स-अद्वैतम्-अद्वैत आचार्य सहित; स-अवधूतम्--नित्यानन्द प्रभु के साथ;

परिजनसहितम्-तथा श्रीनिवास ठाकुर एवं अन्य सभी भक्तों से साथ; कृष्ण-चैतन्य-देवम्भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को;
श्री-राधा-कृष्ण-पादान्-सर्वशुभ श्रीकृष्ण एवं श्रीमती राधारानी के चरणकमलों को; सह-गण-पार्षदों के साथ; ललिता-
श्री-विशाखाअन्वितान्-श्री ललिता और श्री विशाखा के संग में; च-और।

अनुवाद

मैं अपने गुरु तथा भक्ति-मार्ग के अन्य सारे उपदेशकों के चरणकमलों में सादर नमस्कार करता हूँ। मैं
सारे वैष्णवों, श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी, श्री रघुनाथ दास गोस्वामी, श्री जीव गोस्वामी
समेत छहों गोस्वामियों तथा उनके संगियों को सादर नमस्कार करता हूँ। मैं श्री अद्वैत आचार्य प्रभु, श्री
नित्यानन्द प्रभु, श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्रीवास ठाकुर आदि उनके सारे भक्तों को सादर नमस्कार करता हूँ।
तत्पश्चात् मैं भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीमती राधारानी तथा ललिता, विशाखा आदि समस्त गोपियों को सादर
नमस्कार करता हूँ।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ 2 ॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु की; जय अद्वैत-
चन्द्र-अद्वैत आचार्य की जय हो; जय-जय हो; गौरभक्त-वृन्द-चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो! तथा
श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

पुरुषोत्तमे एक उड़िया-ब्राह्मण-कुमार ।

पितृ-शून्य, महा-सुन्दर, मृदु-व्यवहार ॥ 3॥

पुरुषोत्तमे-जगन्नाथ पुरी में; एक-एक; उड़िया-ब्राह्मण-कुमार-उड़ीसा के ब्राह्मण का युवा पुत्र; पितृ-शून्य-पितृ
विहीन; महा-सुन्दर-अत्यन्त सुन्दर शरीर युक्त; मृदुव्यवहार-अति भद्र व्यवहार पूर्ण।

अनुवाद

जगन्नाथपुरी में एक बालक था, जो उड़ीसा के निवासी एक ब्राह्मण का पुत्र था, किन्तु बाद में उसका पिता नहीं रहा। इस बालक के शारीरिक लक्षण अत्यन्त सुन्दर थे और उसका आचरण अत्यन्त शालीन था।

प्रभु-स्थाने नित्य आइसे, करे नमस्कार ।

प्रभु-सने बात् कहे प्रभु-‘प्राण’ तार ॥ 4॥

प्रभुते ताहार प्रीति, प्रभु दया करे ।

दामोदर तार प्रीति सहिते ना पारे ॥5॥

प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के निवासस्थान पर; नित्य-प्रतिदिन; आइसे-आता था; करे नमस्कार-सादर प्रणाम करता था; प्रभु-सने-महाप्रभु के साथ; बात् कहे-बात करता था; प्रभु-प्राण तार—श्री चैतन्य महाप्रभु उसके जीवन तथा प्राण थे; प्रभुते-महाप्रभु के प्रति; ताहार प्रीति-उसका स्नेह; प्रभु-महाप्रभु दया करे-अपनी कृपा दर्शाते; दामोदर-दामोदर पण्डित; तार-उसका; प्रीति-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रेम; सहिते ना पारे-सहन नहीं कर पा रहे थे।

अनुवाद

यह बालक नित्य ही श्री चैतन्य महाप्रभु के पास आता और उन्हें सादर नमस्कार करता। वह श्री चैतन्य महाप्रभु से खुलकर बातें करता, क्योंकि महाप्रभु उसके प्राणस्वरूप थे, किन्तु महाप्रभु के साथ इस बालक की घनिष्ठता तथा उसके प्रति महाप्रभु की दया दामोदर पण्डित को असह्य हो रही थी।

बार बार निषेध करे ब्राह्मण-कुमारे ।

प्रभुरे ना देखिले सेइ रहिते ना पारे ॥ 6॥

बार बार-बारम्बार; निषेध करे-मना करते; ब्राह्मण-कुमारे-ब्राह्मण के पुत्र को; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; ना देखिले-देखे बिना; सेइ-वह बालक; रहिते ना पारे-रह नहीं पाता था।

अनुवाद

दामोदर पण्डित इस ब्राह्मण बालक को महाप्रभु के पास जाने से बार-बार मना करते, किन्तु वह बालक श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन किये बिना घर पर रहना बरदाश्त नहीं कर सकता था।

नित्य आइसे, प्रभु तारे करे महा-प्रीत ।

याँहा प्रीति ताँहा आइसे,-बालकेर रीत ॥ 7 ॥

नित्य आइसे-वह प्रतिदिन आता; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तारे-उसके प्रति; करे-करते; महा-प्रीत-अत्यन्त स्नेहपूर्ण व्यवहार; याँहा प्रीति-जहाँ भी प्रेम है; ताँहा आइसे-वहीं आता है; बालकेर रीत-एक छोटे बालक का स्वभाव है।

अनुवाद

यह बालक नित्य ही महाप्रभु के पास आता और वे उसके साथ बहुत स्नेह का व्यवहार करते। यह किसी भी बालक का स्वभाव है कि वह उस व्यक्ति से मिलने जाता है, जो उसे स्नेह करता है।

ताहा देखि' दामोदर दुःख पाय मने ।

बलिते ना पारे, बालक निषेध ना माने ॥ 8 ॥

ताहा देखि'-वह देखकर; दामोदर-दामोदर पण्डित; दुःख पाय-अप्रसन्न हो गये; मने-अपने मन में; बलिते ना पारे-कुछ भी कह नहीं सके; बालक-बालक; निषेध-निषेध; ना माने-परवाह नहीं करता था।

अनुवाद

यह दामोदर पण्डित के लिए असह्य था। वे अत्यधिक दुःखी हुए, किन्तु वे कुछ कह नहीं पा रहे थे, क्योंकि बालक उनके निषेधों की अनदेखी कर देता।

आर दिन सेइ बालक प्रभु-स्थाने आइला ।

गोसाजि तारे प्रीति करि' वार्ता पुछिला ॥ 9 ॥

आर दिन-एक दिन; सेइ बालक-वही बालक; प्रभु-स्थाने आइला-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर आया; गोसाजि-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; तारे-उससे; प्रीति करि'-अत्यन्त प्रेमपूर्वक; वार्ता-समाचार; पुछिला-पूछे।

अनुवाद

एक दिन जब वह बालक श्री चैतन्य महाप्रभु के पास आया, तो महाप्रभु ने बड़े ही स्नेह के साथ उससे सभी प्रकार के समाचार पूछे।

कत-क्षणे से बालक उठि' यबे गेला ।

सहिते ना पारे, दामोदर कहिते लागिला ॥ 10 ॥

कत-क्षणे-कुछ समय के बाद; से बालक-वह बालक, उठि'-उठकर; यबे-जब; गेला-चला गया; सहिते ना पारे-सहन न कर सके; दामोदर-दामोदर पण्डित, कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

कुछ समय बाद जब वह बालक उठकर चला गया, तो दामोदर पण्डित जो यह सह नहीं पा रहे थे, कहने लगे।

अन्योपदेशे पण्डित—कहे गोसाजिर ठाजि।

‘गोसाजि’ ‘गोसाजि’ एबे जानिमु ‘गोसाजि’ ॥ 11 ॥

अन्य-उपदेशे-अन्यों को उपदेश देकर; पण्डित-विद्वान शिक्षक; कहे-कहते हैं; गोसाजिर ठाजि-श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष; गोसाजि गोसाजि-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु, सर्वोपरि शिक्षक, एबे-अब; जानिमु-हम जानेंगे; गोसाजि-किस प्रकार के शिक्षक हैं।

अनुवाद

दामोदर पण्डित ने धृष्टतापूर्वक महाप्रभु से कहा, “सारे लोग आपको महान् शिक्षक कहते हैं, क्योंकि आप अन्यों को उपदेश देते हैं, किन्तु अब हम देखेंगे कि आप किस तरह के शिक्षक हैं।

तात्पर्य

दामोदर पण्डित श्री चैतन्य महाप्रभु के महान् भक्त थे। किन्तु कभी-कभी ऐसे पद पर स्थित व्यक्ति बहिरंगा शक्ति तथा भौतिक कारणों से धृष्ट बन जाता है। इस तरह एक भक्त भूल से अपने गुरु या पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के कार्यों की आलोचना करने लगता है। किन्तु इस तर्क के बाद कि, “सीजर की पत्नी सन्देह से परे है,” भक्त को अपने गुरु के कार्यों से उद्धेलित होकर उसकी बुराई नहीं करनी चाहिए। भक्त को यह दृढ़ निश्चय होना चाहिए कि गुरु की आलोचना नहीं की जा सकती और उसे सामान्य व्यक्ति नहीं माना जा सकता। यदि किसी अपूर्ण भक्त के अनुमान के अनुसार कुछ त्रुटि भी दिखे, तो भी भक्त में यह दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि यदि गुरु शराब की दुकान पर भी जाता है, तो भी वह शराबी नहीं है, प्रत्युत वह किसी अन्य कार्य से वहाँ जाता होगा। एक बाँग्ला कविता में कहा गया है :

यद्यपि नित्यानन्द सुरा-बाड़ि याय।

तथापिओ हय नित्यानन्द राय ॥

“भले ही नित्यानन्द प्रभु किसी शराब की दुकान में प्रवेश करते दिखाई दिये हों, किन्तु मैं अपने इस विश्वास से विचलित नहीं हूँगा कि नित्यानन्द राय पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।”

एबे गोसाजिर गुण-यश सब लोके गाइबे ।

तबे गोसाजिर प्रतिष्ठा पुरुषोत्तमे हइबे ॥ 12॥

एबे-अब; गोसाजिर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के; गुण-यश-गुणों और यश की; सब लोके-सब लोग; गाइबे-बात करेंगे; तबे-उस समय; गोसाजिर-भगवान् की; प्रतिष्ठा-स्थिति; पुरुषोत्तमे-पुरुषोत्तम (जगन्नाथ पुरी) में; हइबे-होगी।

अनुवाद

“आप गोसांड़ (गुरु या आचार्य) के नाम से विख्यात हैं, किन्तु अब आपके गुण तथा यश की बात सारे पुरुषोत्तम नगर में व्याप्त होगी। आपके पद को कैसा धक्का लगेगा!”

शुनि' प्रभु कहे,—‘क्या कह, दामोदर?’ ।

दामोदर कहे,—तुमि स्वतन्त्र ईश्वर' ॥ 13॥

शुनि'-सुनकर; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; क्या कह-तुम क्या व्यर्थ की बात कर रहे हो; दामोदर-मेरे प्रिय दामोदर; दामोदर कहे-दामोदर ने उत्तर दिया; तुमि-आप; स्वतन्त्र-स्वतन्त्र; ईश्वर-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

अनुवाद

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु जानते थे कि दामोदर पण्डित शुद्ध तथा सरल भक्त थे, किन्तु यह प्रगल्भ बात सुनकर महाप्रभु ने कहा, “हे दामोदर, तुम यह क्या ऊटपटाँग बात कह रहे हो?” दामोदर पण्डित ने उत्तर दिया, “आप तो स्वतन्त्र परमेश्वर हैं, समस्त आलोचनाओं के परे हैं।

स्वच्छन्दे आचार कर, के पारे बलिते ? ।

मुखर जगतेर मुख पार आच्छादिते? ॥14॥

स्वच्छन्दे-बिना रोक-टोक; आचार कर-आप आचरण करते हैं; के पारे बलिते-कौन कह सकता है; मुखर-वाचाल; जगतेर-समस्त जगत् का; मुख-मुख, पार आच्छादिते-आप बन्द कर सकते हैं।

अनुवाद

“हे प्रभु, आप जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं। आपको रोकने के लिए कोई कुछ नहीं कर सकता। फिर भी सम्पूर्ण संसार बातूनी है। लोग कुछ भी कह सकते हैं। आप उन्हें कैसे रोक सकते हैं?”

पण्डित हजा मने केने विचार ना कर? ।

राण्डी ब्राह्मणीर बालके प्रीति केने कर? ॥15॥

पण्डित हजा-एक विद्वान शिक्षक होते हुए; मने-मन में; केने-क्यों; विचार ना कर-आप विचार नहीं करते; राण्डी ब्राह्मणीर-एक ब्राह्मण की विधवा पत्नी के; बालके-पुत्र के प्रति; प्रीति-स्नेह; केने कर-आप क्यों बरसा रहे हैं ।

अनुवाद

“हे प्रभु, आप विद्वान शिक्षक हैं। आप यह विचार क्यों नहीं करते कि यह बालक एक विधवा ब्राह्मणी का पुत्र है? आप इसके प्रति इतने स्नेहिल क्यों हैं?”

यद्यपि ब्राह्मणी सेइ तपस्विनी सती ।

तथापि ताहार दोष-सुन्दरी युवती ॥16॥

यद्यपि-यद्यपि; ब्राह्मणी-ब्राह्मण की पत्नी; सेइ-वह; तपस्विनी-तपस्या करने वाली; सती-सती; तथापि—फिर भी; ताहार-उसका; दोष-दोष; सुन्दरी—अत्यन्त सुन्दर; युवती-युवा स्त्री है।

अनुवाद

“यद्यपि इस बालक की माता पूर्णतया तपस्विनी तथा सती है, किन्तु उसमें एक सहज दोष है कि वह अत्यन्त सुन्दर युवती है।

तुमि-ह—परम युवा, परम सुन्दर ।

लोकेर काणाकाणि-बाते देह अवसर” ॥17॥

तुमि-ह-आप भी; परम युवा-युवा पुरुष; परम सुन्दर-अत्यन्त सुन्दर; लोकेर—जन साधारण को; काणाकाणि-कानाफूसी; बाते-बातों के; देह अवसर-आप अवसर प्रदान कर रहे हैं।

अनुवाद

“और हे प्रभु, आप सुन्दर आकर्षक तरुण व्यक्ति हैं। अतएव निश्चित रूप से लोग आपके बारे में कानाफूसी करेंगे। आप उन्हें ऐसा अवसर क्यों प्रदान करें ?”

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु का सरल तथा पक्का भक्त होने के कारण दामोदर पण्डित महाप्रभु की आलोचना होते सह नहीं सकते थे, किन्तु दुर्भाग्यवश वे खुद ही श्री चैतन्य महाप्रभु की आलोचना कर रहे थे। महाप्रभु यह समझ गये कि यह दामोदर पण्डित की सरलता है, जिसके कारण वह उनकी आलोचना करने का दुस्साहस कर रहा है। फिर भी, भक्त का ऐसा आचरण बहुत अच्छा नहीं होता।

एत बलि' दामोदर मौन हड़ला ।

अन्तरे सन्तोष प्रभु हासि' विचारिला ॥ 18॥

एत बलि'-यह कहकर; दामोदर-दामोदर पण्डित; मौन हड़ला-मौन हो गया; अन्तरे-अपने मन में; सन्तोष-आनन्दित; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हासि'-हँसकर; विचारिला-विचार करने लगे।

अनुवाद

यह कहकर दामोदर पण्डित मौन हो गये। श्री चैतन्य महाप्रभु अपने अन्तर में प्रसन्न होकर मुसकाये और दामोदर पण्डित की धृष्टता पर विचार करने लगे।

“इहारे कहिये शुद्ध-प्रेमे तरङ्ग ।

दामोदर-सम मोर नाहि “अन्तरङ्ग” ॥ 19 ॥

इहारे-ऐसे व्यवहार की; कहिये-मैं कह सकता हूँ; शुद्ध-प्रेमे तरङ्ग-शुद्ध प्रेममयी सेवा की लहरें; दामोदर-सम-दामोदर के समान; मोर-मेरा; नाहि-नहीं है; अन्तरङ्ग-अन्तरंग मित्र।

अनुवाद

(श्री चैतन्य महाप्रभु ने सोचा :) “यह धृष्टता मेरे प्रति शुद्ध प्रेम का संकेत भी है। दामोदर पण्डित जैसा मेरा कोई अन्य घनिष्ठ मित्र नहीं है।”

एतेक विचारि' प्रभु मध्याह्ने चलिला ।

आर दिने दामोदरे निभृते बोलाइला ॥ 20 ॥

एतेक विचारि’-इस प्रकार विचार करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मध्याह्ने चलिला-अपने दोपहर के कृत्य करने चले गये; आर दिने-अगले दिन; दामोदरे-दामोदर पण्डित को; निभृते-एक एकान्त स्थान में; बोलाइला-बुलाया।

अनुवाद

इस तरह सोचते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु दोपहर के कृत्य सम्पन्न करने चले गये। अगले दिन उन्होंने दामोदर पण्डित को एकान्त में बुलाया।

प्रभु कहे,-“दामोदर, चलह नदीया ।

मातार समीपे तुमि रह ताँहा याजा ॥ 21 ॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; दामोदर-मेरे प्रिय सखा दामोदर; चलह नदीया-अच्छा होगा कि तुम नदिया (नवद्वीप) चले जाओ; मातार समीपे-मेरी माता के पास; तुमि-तुम; रह-रही; ताँहा-वहाँ; याजा-जाकर।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, “हे मित्र दामोदर, अच्छा होगा कि तुम नदिया जाओ और मेरी माता के साथ रहो।”

तोमा विना ताँहार रक्षक नाहि देखि आन ।

आमाके-ह याते तुमि कैला सावधान ॥ 22॥

तोमा विना-आपके सिवाय; ताँहार-माता शचीदेवी का; रक्षक-रक्षक; नाहि-नहीं; देखि-मैं देखता; आन-कोई अन्य; आमाके-ह-मुझे भी; याते-जिसके द्वारा; तुमि-तुमने; कैला-कर दिया; सावधान-सावधान।

अनुवाद

“मैं तुम्हारे अतिरिक्त उसका कोई दूसरा रक्षक नहीं देख रहा हूँ, क्योंकि तुम इतने सतर्क रहते हो कि तुम मुझे भी सावधान कर सकते हो।”

तोमा सम ‘निरपेक्ष’ नाहि मोर गणे ।

‘निरपेक्ष’ नहिले ‘धर्म’ ना याय रक्षणे ॥ 23 ॥

तोमा सम-तुम्हारे जैसा; निरपेक्ष-समभाव; नाहि-नहीं है; मोर गणे-मेरे अनुयायियों में; निरपेक्ष-निष्पक्ष; नहिले-हुए बिना; धर्म-धर्म के सिद्धान्त; ना याय रक्षणे-रक्षा नहीं किये जा सकते।

अनुवाद

“तुम मेरे संगियों में सर्वाधिक निष्पक्ष हो। यह बहुत अच्छी बात है, क्योंकि निष्पक्ष हुए बिना मनुष्य धर्म की रक्षा नहीं कर सकता।”

आमा हैते ये ना हय, से तोमा हैते हय ।

आमारे करिला दण्ड, आन केबा हय ॥ 24॥

आमा हैते-मेरे द्वारा; ये-जो; ना हय-नहीं हो सकता; से-वह; तोमा हैते-तुम्हारे द्वारा; हय-सम्भव होता है; आमारे-मुझे; करिला दण्ड-दण्ड देना; आन-अन्यों की; केबा हय-बात ही क्या करें।

अनुवाद

“जो मैं नहीं कर सकता, वह तुम कर सकते हो। निस्सन्देह, तुम मुझे भी दण्डित कर सकते हो, अन्यो की बात जाने दो।

मातार गृहे रह याइ मातार चरणे ।

तोमार आगे नहिबे कारो स्वच्छन्दाचरणे ॥ 25 ॥

मातार-मेरी माता के; गृहे-घर पर; रह-रही; याइ-जाकर; मातार चरणे-मेरी माता के चरणकमलों की शरण में; तोमार आगे-तुम्हारे सामने, नहिबे-नहीं होगी; कारो-किसी का भी, स्वच्छन्द-आचरणे-स्वेच्छापूर्ण आचरण।

अनुवाद

“तुम्हारे लिए सबसे अच्छी बात यही होगी कि तुम मेरी माता के चरणकमलों की शरण में जाओ, क्योंकि तुम्हारे सामने कोई भी स्वतन्त्रतापूर्वक आचरण नहीं कर सकेगा।

मध्ये मध्ये आसिबा कभु आमार दरशने ।

शीघ्र करि’ पुनः ताहाँ करह गमने ॥ 26 ॥

मध्ये मध्ये-बीच-बीच में; आसिबा-तुम आ सकते हो; कभु-कभी; आमार दरशने-मेरे दर्शन करने; शीघ्र करि'-
जल्दी ही; पुनः-फिर; ताहाँ-वहाँ; करह गमने-चले जाना।

अनुवाद

“बीच-बीच में तुम यहाँ मुझे देखने आ सकते हो और शीघ्र ही फिर से वहाँ जा सकते हो।

मातारे कहिह मोर कोटी नमस्कारे ।

मोर सुख-कथा कहि' सुख दिह' तारै ॥ 27॥

मातारे-मेरी माता को; कहिह-कहना; मोर-मेरे; कोटी-करोड़ों; नमस्कारे-नमस्कार; मोर-मेरी; सुख-प्रसन्नता की;
कथा-कथा; कहि'-कहकर; सुख-सुख; दिह' तारै-उन्हें देना।

अनुवाद

“मेरी माता से मेरा कोटि-कोटि नमस्कार कहना। कृपा करके उनसे यहाँ के मेरे सुख के विषय में कहना
और इस तरह उन्हें सुख पहुँचाना।

‘निरन्तर निज-कथा तोमारे शुनाइते।

एइ लागि' प्रभु मोरे पाठाइला इहाँते' ॥28॥

निरन्तर-निरन्तर; निज-कथा-अपने कार्यकलाप; तोमारे शुनाइते-आपको सुनाने के लिए; एइ लागि'—इस कारण
से; प्रभु—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; मोरे—मुझे; पाठाइला—भेजा है; इहाँते-यहाँ।

अनुवाद

“उनसे कहना कि मैंने अपने निजी कार्यकलापों की सूचना देने के लिए तुम्हें भेजा है, जिससे वे मेरे
सुख में भाग ले सकें।

एत कहि' मातार मने सन्तोष जन्माइह।

आर गुह्य-कथा तारै स्मरण कराइह ॥ 29॥

एत कहि'-यह कहकर; मातार मने-मेरी माता के मन में; सन्तोष जन्माइह-सन्तोष जगाकर; आर-अन्य; गुह्य-
कथा-अत्यन्त गुह्य सन्देश; तरै-उन्हें; स्मरण कराइह-स्मरण कराना।

अनुवाद

“इस तरह बोलकर माता शची के मन को तुष्ट करना। उन्हें मेरे इस सन्देश के साथ एक अत्यन्त गोपनीय
घटना के सम्बन्ध में स्मरण दिलाना।

‘बारे बारे आसि’ आमि तोमार भवने ।

मिष्ठान्न व्यञ्जन सब करिये भोजने ॥ 30 ॥

बारे बारे-बारम्बार; आसि'-आकर; आमि-मैं; तोमार भवने-आपके घर में; मिष्ठान्न-मिठाईयाँ; व्यञ्जन-
सब्जियाँ; सब-सब; करिये-करता हूँ; भोजने-भोजना

अनुवाद

“मैं आपके घर आपके द्वारा अर्पण की जाने वाली उन सारी मिठाइयों तथा तरकारियों को खाने के
लिए बारम्बार आता हूँ।”

भोजन करिये आमि, तुमि ताहा जान ।

बाह्य विरहे ताहा स्वप्न करि मान ॥ 31॥

भोजन-भोजन; करिये-करता हूँ; आमि-मैं; तुमि-आप; ताहा-वह; जान-जानती हो; बाह्य-बाहरी रूप से; विरहे-
विरह में; ताहा-वह; स्वप्न-स्वप्न; करि-जैसा; मान-आप मानती हो।

अनुवाद

“आप जानती हो कि मैं आता हूँ और भोजन करता हूँ, किन्तु बाह्य विरह के कारण आप इसे स्वप्न
मानती हो।

तात्पर्य

शचीमाता श्री चैतन्य महाप्रभु से विरह का अनुभव करने के कारण सोचती थीं कि वे स्वप्न देख रही हैं कि उनका पुत्र आया हुआ है। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हें यह बताना चाहते थे कि वास्तव में यह स्वप्न नहीं है। वे सचमुच वहाँ आते थे और उनकी माँ उन्हें जो भी देतीं उसे वे खाते थे। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ उन्नत भक्तों के ऐसे ही व्यवहार होते हैं। ब्रह्म-सहिता (5.38) में कहा गया है :

प्रेमा प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन

सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति ।

यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

“मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ जिनका वे भक्त सदैव दर्शन करते हैं, जिसकी आँखें प्रेम के अंजन से लेपित रहती हैं। वे भक्त के हृदय में स्थित अपने श्यामसुन्दर के सनातन रूप में देखे जाते हैं।” शुद्ध भक्त भगवान् के साथ इन व्यवहारों को दिव्य स्तर पर अनुभव करते हैं, किन्तु चूँकि भक्त भौतिक जगत् में होते हैं, अतएव वे इन्हें स्वप्न के रूप में समझते हैं। किन्तु भगवान् उन्नत भक्त से बातें करते हैं और ऐसे उन्नत भक्त भी उनका दर्शन करते हैं। यह सच्चाई है, स्वप्न नहीं।

एइ माघ-सङ्क्रान्त्ये तुमि रन्धन करिला ।

नाना व्यञ्जन, क्षीर, पिठा, पायस रान्धिला ॥ 32 ॥

एइ-इस; माघ-सङ्क्रान्त्ये-माघ संक्रान्ति उत्सव पर; तुमि-आपने; रन्धन करिला-पकाये; नाना व्यञ्जन-अनेक व्यंजन; क्षीर-(दुग्ध की) खीर; पिठा-मिठाई; पायस-मीठे भात; रान्धिला-पकाये।

अनुवाद

“पिछले माघ संक्रान्ति उत्सव के समय आपने मेरे लिए अनेक प्रकार की सब्जियाँ, गाढ़ा दूध, रोटियाँ तथा खीर बनाई थी।”

कृष्ण भोग लागाजा यबे कैला ध्यान ।

आमार स्फूर्ति हैल, अश्रु भरिल नयन ॥ 33 ॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण को; भोग-भोग; लागाजा-लगाकर; यबे-जब; कैला ध्यान-आपने ध्यान किया; आमार-मेरा; स्फूर्ति-अचानक प्राकट्य; हैल-हो गया; अश्रु-आँसु; भरिल-भर गये, नयन-आपकी आँखों में।

अनुवाद

“आपने भगवान् कृष्ण को भोजन अर्पित किया और अभी तुम ध्यान में ही थीं कि मैं सहसा प्रकट हुआ और आपकी आँखें आँसूओं से भर गईं।”

आस्ते-व्यस्ते आमि गिया सकलि खाइल ।

आमि खाइ,—देखि’ तोमार सुख उपजिल ॥34॥

आस्ते-व्यस्ते-अत्यन्त शीघ्रता से; आमि-मैंने; गिया-जाकर; सकलि खाइल-सब कुछ खा लिया; आमि खाइ-मुझे खाता हुआ; देखि’-देखकर; तोमार-आपकी; सुख-प्रसन्नता; उपजिल-बढ़ गई।

अनुवाद

“मैं वहाँ अत्यन्त हड़बड़ी में गया और सब कुछ खा गया। जब आपने मुझे खाते देखा, तो आपको महान् सुख का अनुभव हुआ।”

क्षणके अश्रु मुछिया शून्य देखि’ पात ।

स्वपन देखिलुँ, ‘येन निमाजि खाइल भात’ ॥ 35॥

क्षणके-एक क्षण में; अश्रु-आँसु; मुछिया-पोंछकर; शून्य-खाली; देखि’-देखकर, पात-थाली, स्वपन देखिलुँ-मैंने एक स्वप्न देखा; येन-जैसे; निमाजि-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; खाइल भात-भोजन खाया।

अनुवाद

“जब आपने अपनी आँखें पोंछ डालीं, तो क्षण-भर में तुमने देखा कि तुमने जो कुछ मुझे पत्तल में दिया था, वह खाली है। तब तुमने सोचा, “मैंने सपना देखा कि मानो निमाइ सब कुछ खा रहा है।”

बाह्य-विरह-दशाय पुनः भ्रान्ति हैल ।

‘भोग ना लागाइलुँ,—एइ ज्ञान हैल ॥ 36॥

बाह्य-विरह-बाहरी विरह की; दशाय-अवस्था द्वारा; पुनः-फिर; भ्रान्ति हैल-भ्रम हो गया; भोग-विग्रह को भोग,
ना लागाइलुँ-मैंने नहीं अर्पित किया; एइ-यह; ज्ञान हैल-आपने सोचा।

अनुवाद

“बाह्य विरह की दशा में आप यह सोचकर पुनः भ्रम में थीं कि आपने वह भोजन भगवान् विष्णु को
अर्पित नहीं किया है।

पाक-पात्रे देखिला सब अन्न आछे भरि’ ।

पुनः भोग लागाइला स्थान-संस्कार करि’ ॥ 37 ॥

पाक-पात्रे-भोजन पकाने के बर्तन; देखिला-आपने देखे; सब-सब; अन्न-अन्न, आछे भरि’-भरे हुए थे; पुनः-
फिर; भोग लागाइला-भोग अर्पित किया; स्थान-भोग लगाने के स्थान को; संस्कार करि’-स्वच्छ करके।

अनुवाद

“तब आप भोजन पकाने के बर्तन देखने गई और देखा कि हर बर्तन भोजन से भरा है। अतएव आपने
भोग लगाने के स्थान को साफ करके फिर से भोग लगाया।

एइ-मत बार बार करिये भोजन ।

तोमार शुद्ध-प्रेमे मोरे करे आकर्षण ॥ 38 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; बार बार-बारम्बार; करिये भोजन-मैं भोजन करता हूँ, तोमार-आपका; शुद्ध-प्रेमे-शुद्ध प्रेम;
मोरे-मुझे; करे आकर्षण-आकर्षित करता है।

अनुवाद

“इस तरह आपके द्वारा भेंट की जाने वाली हर वस्तु मैं पुनः पुनः खाता हूँ, क्योंकि मैं आपके शुद्ध प्रेम
द्वारा आकृष्ट होता हूँ।

तोमार आज्ञाते आमि आछि नीलाचले ।

निकटे लजा याओ आमा तोमार प्रेम-बले’ ॥ 39 ॥

तोमार आज्ञाते-आपके आदेश पर; आमि-मैं; आछि-रह रहा हूँ; नीलाचले-नीलाचल (जगन्नाथ पुरी में); निकटे-समीप; लजा याओ-आप ले जाती हैं; आमा-मुझे; तोमार-आपके; प्रेम-दिव्य प्रेम; बले-के बल पर।

अनुवाद

“एकमात्र आपके आदेश से मैं नीलाचल (जगन्नाथपुरी) में रह रहा हूँ। फिर भी आप मेरे प्रति अपने गहन प्रेम के कारण मुझे अपने निकट खींचती रहती हो।”

एङ-मत बार बार कराइह स्मरण ।

मोर नाम लजा तौर वन्दिह चरण” ॥ 40 ॥

एङ-मत-इस प्रकार; बार बार-बारम्बार; कराइह-करवाते हुए; स्मरण-स्मरण; मोर-मेरा; नाम-नाम; लजा-लेकर; तौर-उनकी; वन्दिह-वन्दना करना; चरण-चरण ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने दामोदर पण्डित से कहा, “मेरी माता को इस तरह से बारम्बार स्मरण कराना और मेरा नाम लेकर उनके चरणकमलों की पूजा करना।”

एत कहि’ जगन्नाथेर प्रसाद आनाइल ।

माताके वैष्णवे दिते पृथक् पृथक् दिल ॥ 41 ॥

एत कहि’-यह कहकर; जगन्नाथेर-जगन्नाथ के; प्रसाद-भोजन का शेष, आनाइल-लाने का आदेश दिया; माताके-अपनी माता को; वैष्णवे-और सभी वैष्णवों को; दिते-देने के लिए; पृथक्-पृथक्-अलग अलग; दिल-उन्होंने दिया।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह आदेश दिया कि भगवान् जगन्नाथ को अर्पित किये जाने वाले तरह-तरह के प्रसाद लाये जाएँ। तब महाप्रभु ने उसे अलग-अलग बँधा प्रसाद विभिन्न वैष्णवों तथा अपनी माता को देने के लिए दिया।

तबे दामोदर चलि' नदीया आइला ।

मातारे मिलिया तार चरणे रहिला ॥42॥

तबे-तब; दामोदर-दामोदर पण्डित; चलि'-चलकर; नदीया आइला-नदिया (नवद्वीप) पहुँच गये; मातारे मिलिया-शचीमाता से मिलकर; तार चरणे-उनके चरणकमलों में; रहिला-रह गये।

अनुवाद

इस तरह दामोदर पण्डित नदिया (नवद्वीप) गये। माता शची से मिलने के बाद वे उनके चरणकमलों के संरक्षण में रहे।

आचार्यादि वैष्णवरे महा-प्रसाद दिला ।

प्रभुर येछे आज्ञा, पण्डित ताहा आचरिला ॥ 43॥

आचार्य-आदि-अद्वैत आचार्य आदि; वैष्णवरे-सभी वैष्णवों को; महा-प्रसाद दिला-भगवान् जगन्नाथ का सारा प्रसाद दिया; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; येछे-जैसा; आज्ञा-आदेश था; पण्डित-दामोदर पण्डित ने; ताहा-वैसा ही; आचरिला-कार्य किया।

अनुवाद

उन्होंने सारा प्रसाद अद्वैत आचार्य जैसे महान् वैष्णवों को दे दिया। इस तरह वे वहाँ रहे और श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश के अनुसार व्यवहार करते रहे।

दामोदर आगे स्वातन्त्र्य ना हय काहार ।

तार भये सबे करे सङ्कोच व्यवहार ॥44॥

दामोदर आगे-दामोदर पण्डित के सामने; स्वातन्त्र्य-स्वतन्त्र व्यवहार; ना हय काहार-किसी का भी करने का साहस नहीं होता; तार भये-उनके भय से; सबे-वे सब; करे-करते; सङ्कोच व्यवहार-अत्यन्त सावधानीपूर्ण व्यवहार।

अनुवाद

सभी जानते थे कि दामोदर पण्डित व्यावहारिक बर्ताव में अत्यन्त कठोर हैं। अतएव सारे लोग उनसे भयभीत थे और स्वतन्त्र रूप से कुछ भी करने का साहस नहीं करते थे।

प्रभु-गणे याँ देखे अल्प-मर्यादा-लङ्घन ।

वाक्य-दण्ड करि' करे मर्यादा स्थापन ॥ 45 ॥

प्रभु-गणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों में; याँ-जिसका; देखे-देखते; अल्प-मर्यादा-लङ्घन-आदर्श आचरण तथा व्यवहार से अल्प मात्र भी भटकना; वाक्य-दण्ड करि'-शब्दों से डाँटकर; करे-करते; मर्यादा-सदाचार; स्थापन-स्थापित।

अनुवाद

दामोदर पण्डित श्री चैतन्य महाप्रभु के हर भक्त को जिसे वे उचित आचरण से थोड़ा भी विचलित हुआ पाते, मौखिक रूप से दण्ड देते। इस तरह उन्होंने आदर्श शिष्टाचार स्थापित किया।

एइ-त कहिल दामोदरेर वाक्य-दण्ड ।

याहार श्रवणे भागे 'अज्ञान पाषण्ड' ॥46॥

एइ-त-इस प्रकार; कहिल-मैंने वर्णन किया है; दामोदरेर-दामोदर पण्डित का; वाक्य-दण्ड-शब्दों द्वारा दण्ड देना; याहार श्रवणे-जिसे सुनकर; भागे-दूर हो जाता है; अज्ञान पाषण्ड -नास्तिक अज्ञान।

अनुवाद

इस तरह मैंने दामोदर पण्डित के शाब्दिक दण्ड का वर्णन किया है। जब कोई इसके विषय में सुनता है, तो नास्तिक सिद्धान्त तथा अज्ञान भाग जाते हैं।

चैतन्ये लीला-गम्भीर, कोटि-समुद्र हैते ।

कि लागि' कि करे, केह ना पारे बुझिते ॥ 47॥

चैतन्ये लीला-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; गम्भीर—अत्यन्त गहरी; कोटि-समुद्र हैते-लाखों समुद्रों से भी अधिक; कि लागि'-किस कारण से; कि करे-वे क्या करते हैं; केह-कोई भी; ना-नहीं, पारे बुझिते-समझ सकता।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ करोड़ों समुद्रों से भी अधिक गहरी हैं। अतएव कोई नहीं समझ सकता कि वे क्या करते हैं अथवा क्यों ऐसा करते हैं।

अतएव गूढ़ अर्थ किछुइ ना जानि ।

बाह्य अर्थ करिबारे करि टानाटानि ॥ 48 ॥

अतएव-अतः; गूढ़ अर्थ-गहन अर्थ; किछुइ-कुछ भी; ना जानि-मैं नहीं जानता; बाह्य अर्थ करिबारे-बाहरी अर्थ करने का; करि-मैं करता हूँ; टानाटानि-दृढ़ प्रयास।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों का गहन अर्थ नहीं जानता। मैं यथासम्भव उनकी बाह्य व्याख्या करने का प्रयास करूँगा।

एक-दिन प्रभु हरिदासेरे मिलिला ।

ताँहा लजा गोष्ठी करि' ताँहारे पुछिला ॥ 49॥

एक-दिन-एक दिन; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु, हरिदासेरे-हरिदास ठाकुर से; मिलिला-मिले; ताँहा लजा-उन्हें लेकर; गोष्ठी करि'-एक चर्चा करते हुए; ताँहारे पुछिला-महाप्रभु ने उनसे पूछा।

अनुवाद

एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु हमेशा की तरह हरिदास ठाकुर से मिले और विचार-विमर्श के दौरान उन्होंने यह पूछा।

“हरिदास, कलि-काले यवन अपार ।

गो-ब्राह्मणे हिंसा करे महा दुराचार ॥50॥

हरिदास-मेरे प्रिय हरिदास; कलि-काले-इस कलियुग में; यवन-वैदिक सिद्धान्तों के विरोधी असुर; अपार-असंख्य; गो-ब्राह्मणे-गायों और ब्राह्मण संस्कृति; हिंसा करे-के विरुद्ध हिंसा करने वाले; महा दुराचार-अत्यन्त अधम हैं।

अनुवाद

“हे हरिदास ठाकुर, इस कलियुग में अधिकांश लोग वैदिक संस्कृति से विहीन हैं, अतएव वे यवन कहलाते हैं। वे केवल गौवों तथा ब्राह्मण संस्कृति की हत्या करने में ही लगे रहते हैं। इस तरह ये सभी यवन पापकर्मों में लगे रहते हैं।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के इस कथन से हम स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं कि यवन शब्द किसी जातिविशेष के लोगों का सूचक नहीं है। जो भी व्यक्ति वैदिक सिद्धान्तों के आचरण के विरुद्ध है, वह यवन कहलाता है। ऐसा यवन भारतीय हो सकता है, अथवा भारत के बाहर का हो सकता है। जैसाकि यहाँ वर्णन हुआ है, यवनों का लक्षण यह है कि वे गौवों तथा ब्राह्मण संस्कृति की हिंसक रूप से हत्या करते हैं। हम भगवान् की स्तुति इस प्रकार करते हैं-नमो-ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च / भगवान् ब्राह्मण संस्कृति के पालक हैं। उनका पहला कार्य है गौवों तथा ब्राह्मणों का हित देखना। ज्योंही मानव सभ्यता ब्राह्मण संस्कृति के विरुद्ध हो जाती है और अनियन्त्रित गोवध की अनुमति देने लगती है, तो यह समझ लेना चाहिए कि लोग वैदिक संस्कृति के नियन्त्रण में नहीं हैं, अपितु वे सभी यवन तथा म्लेच्छ हैं। कहा गया है कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन अगले दस हजार वर्षों के भीतर महत्वपूर्ण रहेगा, किन्तु इसके बाद सभी लोग म्लेच्छ तथा यवन बन जायेंगे। इस तरह इस युग के अन्त में कृष्ण कल्कि अवतार के रूप में प्रकट होंगे और बिना विचार उनका वध करेंगे।

इहा-सबार कोन् मते हइबे निस्तार? ।

ताहार हेतु ना देखिये,—ए दुःख अपार” ॥51॥

इहा-सबार-इन सभी यवनों का; कोन् मते-किस विधि से; हइबे निस्तार-उद्धार होगा; ताहार हेतु-ऐसे उद्धार का कारण; ना देखिये-मैं नहीं देख पा रहा हूँ; ए दुःख अपार-यह मेरा महान् दुःख है।

अनुवाद

“इन यवनों का उद्धार किस तरह होगा? मुझे महान् दुःख है कि मुझे इसका कोई रास्ता नहीं दिखाई देता।”

तात्पर्य

यह श्लोक पतित-पावन के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु के प्राकट्य की महत्ता को प्रकट करने वाला है। श्रील नरोत्तम दास ठाकुर का गीत है-पतितपावन-हेतु तव अवतार-“हे प्रभु, आप सारे पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए प्रकट हुए हैं।” मो-सम पतित प्रभु ना पाइबे आर- “और इन समस्त पतितात्माओं में मैं सबसे अधम हूँ।” श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु किस तरह पतितात्माओं के उद्धार के बारे में सदैव चिन्तित रहते थे, यह इस कथन से प्रदर्शित होता है- ए दुःख अपार (“यही मेरा महान् दुःख है”)। यह कथन बतलाता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु जो साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं, किस तरह भौतिक जगत् में पतितात्माओं को देखकर सदैव दुःखी रहते हैं। इसलिए वे अपने मूल रूप में या श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में भक्त बनकर पतितात्माओं को प्रत्यक्ष रूप से कृष्ण-प्रेम प्रदान करने आते हैं। नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते / श्री चैतन्य महाप्रभु इतने कृपालु हैं कि वे न केवल कृष्ण का ज्ञान प्रदान करते हैं, अपितु अपने व्यावहारिक आचरण से हर एक को कृष्ण से प्रेम करना भी सिखाते हैं (कृष्णप्रेमप्रदाय ते)।

जो लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के चरण-चिह्नों का अनुगमन कर रहे हैं, उन्हें महाप्रभु के आन्दोलन को गम्भीरता से लेना चाहिए। इस कलियुग में लोग क्रमशः पशुओं से भी बदतर होते जा रहे हैं। यद्यपि वे गौवों का मांस खा रहे हैं तथा ब्राह्मण संस्कृति से द्वेष रखते हैं, फिर भी श्री चैतन्य महाप्रभु यह विचार कर रहे हैं कि उन्हें जीवन की भयावह स्थिति से किस प्रकार उबारा जाए। इस तरह वे सारे भारतीयों को अपने आन्दोलन को ग्रहण करने का आदेश देते हैं :

भारत-भूमिते हैल मनुष्य-जन्म यार ।

जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार ॥

“जिसने भारत-वर्ष में मनुष्य रूप में जन्म लिया है, उसे अपना जीवन सफल करना चाहिए और अन्य लोगों के लाभ हेतु कार्य करना चाहिए।” (चैतन्यचरितामृत, अदिलीला 9.41) इसलिए प्रत्येक उन्नत तथा सभ्य भारतीय का धर्म है कि वह इस कार्य को गम्भीरता से ले। सारे भारतीयों को कृष्णभावनामृत आन्दोलन की प्रगति में यथाशक्ति सहायता करनी चाहिए। तभी वे श्री चैतन्य महाप्रभु के सच्चे अनुयायी माने जायेंगे। दुर्भाग्यवश, कुछ तथाकथित वैष्णव तक ईर्ष्यावश इस आन्दोलन के साथ सहयोग करने से मना तो करते ही हैं, साथ ही अनेक प्रकार से इसकी निन्दा भी करते हैं। हमें खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि ये लोग हममें दोष निकालते हैं, क्योंकि वे हमारे कार्यों से अनावश्यक ईर्ष्या करते हैं, यद्यपि हम यवनों तथा म्लेच्छों के देशों में कृष्णभावनामृत आन्दोलन का सूत्रपात करने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसे यवन तथा म्लेच्छ हमारे पास आते हैं और शुद्ध वैष्णव बनकर श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुगमन करते हैं। स्वयं को श्री चैतन्य महाप्रभु का अनुयायी मानने वाले व्यक्ति को श्री चैतन्य महाप्रभु की तरह विचार करना चाहिए। महाप्रभु

ने कहा है- इहा-सबार कोन मते हडूबे निस्तार-’इन सारे यवनों का उद्धार किस तरह होगा?’ श्री चैतन्य महाप्रभु पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए सदैव चिन्तित रहते थे, क्योंकि उनकी पतित अवस्था से उन्हें महान् दुःख होता था। इसी स्तर पर श्री चैतन्य महाप्रभु के आन्दोलन का प्रचार किया जा सकता है।

हरिदास कहे,—”प्रभु, चिन्ता ना करिह ।

यवनेर संसार देखि’ दुःख ना भाविह ॥52॥

हरिदास कहे-हरिदास ने उत्तर दिया; प्रभु-मेरे प्रिय भगवान्; चिन्ता ना करिह-चिन्ता मत कीजिये; यवनेर संसार-यवनों की भौतिक अवस्था; देखि’-देखकर; दुःख ना भाविह-दुःखी मत होइये।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया, “हे प्रिय प्रभु, आप चिन्ता न करें। आप भौतिक संसार में यवनों की दशा देखकर दुःखी न हों।

तात्पर्य

हरिदास ठाकुर के ये शब्द उस भक्त के सर्वथा उपयुक्त हैं, जिसने भगवान् की सेवा में अपने जीवन और प्राण अर्पित कर दिये हो। जब भगवान् पतितात्माओं की दशा पर दुःखी होते हैं, तब भक्त यह कहकर उन्हें सान्त्वना देता है कि, “हे प्रभु, आप चिन्तित न हों।” यह सेवा है। श्री चैतन्य महाप्रभु को इस चिन्ता से छुटकारा दिलाने का प्रयास करने के लिए हर एक को उनके कार्य में लग जाना चाहिए। यही महाप्रभु की वास्तविक सेवा है। जो कोई श्री चैतन्य महाप्रभु की पतितात्माओं के प्रति चिन्ता को दूर करने का प्रयास करता है, वह निश्चित रूप से महाप्रभु का अत्यन्त प्रिय एवं विश्वसनीय भक्त है। ऐसे भक्त की निन्दा करना, जो श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का विस्तार करने का भरसक प्रयत्न कर रहा हो, सबसे बड़ा अपराध है जो ऐसा करता है, उसे उसके द्वेष का दण्ड अवश्य मिलेगा।

यवन-सकलेर ‘मुक्ति’ हबे अनायासे ।

‘हा राम, हा राम’ बलि’ कहे नामाभासे ॥53॥

यवन-सकलेर-सभी यवनों की; मुक्ति-मुक्ति; हबे-हो जायेगी; अनायासे-बहुत सरलता से; हा राम हा राम-“हे भगवान् राम, हे भगवान् राम”; बलि’-कहकर, कहे-वे बोलते हैं, नाम-आभासे-भगवान् के पवित्र नाम का लगभग निरपराध जप।

अनुवाद

“चूँकि सारे यवन ‘हा राम, हा राम’ कहने के अभ्यस्त हैं, इसलिए वे इस नामाभास द्वारा सरलतापूर्वक उबार लिए जायेंगे।

महा-प्रेमे भक्त कहे,-‘हा राम, हा राम’ ।

यवनेर भाग्य देख, लय सेइ नाम ॥ 54॥

महा-प्रेमे-अत्यन्त प्रेम भाव में; भक्त कहे-एक भत कहता है; हा राम हा राम-“हे भगवान् रामचन्द्र, हे भगवान् रामचन्द्र”; यवनेर-यवनों का; भाग्य-सौभाग्य; देख-जरा देखिए; लय सेइ नाम-वे भी वही पवित्र नाम जप रहे हैं।

अनुवाद

“एक भक्त अत्यधिक प्रेमवश पुकारता है-‘हे मेरे भगवान् रामचन्द्र! हे मेरे भगवान् रामचन्द्र!’ किन्तु यवन भी जप करते हैं ‘हा राम, हा राम!’ जरा उनका सौभाग्य तो देखें!”

तात्पर्य

यदि छोटा-सा बालक आग को छू लेता है, तो आग उसे जला देती है और यदि कोई वयस्क व्यक्ति आग को छूता है, तो वह उसे भी जला देगी। हरिदास ठाकुर कहते हैं कि भगवान् का उन्नत भक्त पुकारता है, “हा राम, हा राम,” यद्यपि यवन लोग ‘हा राम, हा राम’ का दिव्य अर्थ नहीं जानते, किन्तु सामान्य जीवन में वे भी इन शब्दों को बोलते हैं। यवनों के लिए ‘हा राम’ शब्द का अर्थ है, “निन्दनीय,” जबकि भक्त ‘हा राम’ का उच्चारण प्रेमवश करता है। फिर भी चूँकि ‘हा राम’ शब्द आध्यात्मिक सार स्वरूप हैं, इसलिए बात तो वही रहती है चाहे वे शब्द यवनों द्वारा बोले जाएँ अथवा महान भक्तों द्वारा। यह बिल्कुल अग्नि की तरह है जो बच्चों तथा वयस्कों के लिए एक समान होती है। दूसरे शब्दों में, यदि भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण परमेश्वर के सन्दर्भ में न भी किया जाए, तो भी भगवान् का पवित्र नाम ‘हा राम’ सदैव प्रभाव दिखाता है। यवन लोग पवित्र नाम का उच्चारण भक्तों की अपेक्षा सर्वथा भिन्न भाव से करते हैं, किन्तु पवित्र नाम ‘हा राम’ आध्यात्मिकता की दृष्टि से इतना शक्तिशाली है कि यह सर्वत्र प्रभाव डालता है, चाहे कोई इसे जानता हो अथवा नहीं। इसकी व्याख्या आगे की गई है।

यद्यपि अन्य सङ्केते अन्य हय नामाभास ।

तथापि नामेर तेज ना हय विनाश ॥55॥

यद्यपि-यद्यपि; अन्य-अन्य; सङ्केते-संकेत से; अन्य-वह अन्य;हय-है; नाम-आभास-शुद्ध नाम के लगभग समान; तथापि-फिर भी; नामेर तेज-पवित्र नाम की दिव्य शक्ति का; ना हय विनाश-विनाश नहीं होता।

अनुवाद

नामाचार्य हरिदास ठाकुर ने, जो कि नाम-कीर्तन के प्रामाणिक आचार्य हैं, कहा, “भगवान् के पवित्र नाम के उच्चारण द्वारा भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का संकेत करना नामाभास का उदाहरण है। जब नाम का इस तरह से उच्चारण किया जाता है, तो भी उसकी दिव्य शक्ति विनष्ट नहीं होती।

दंष्ट्रि-दंष्ट्राहतो म्लेच्छो हा रामेति पुनः पुनः ।

उक्त्वापि मुक्तिमाप्नोति किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥56॥

दंष्ट्रि -एक सुअर के; दंष्ट्र-दाँतों द्वारा; आहत:-मारा गया; म्लेच्छ:-एक माँसाहारी; हा राम—“हे मेरे प्रभु राम”; इति—ऐसा; पुनः पुनः—बारम्बार, उक्त्वा—कहकर; अपि— भी, मुक्तिम्-मुक्ति; आप्नोति-प्राप्त करता है; किम्-क्या; पुनः-फिर; श्रद्धया-विश्वास और आदर के साथ; गृणन्-जप करने वालों का।

अनुवाद

“सुअर के दाँत से मारा जा रहा और व्यथित होकर बारम्बार ‘हा राम, हा राम’ चिल्लाने वाला म्लेच्छ भी मुक्ति प्राप्त करता है। तो फिर उन लोगों के विषय में क्या कहा जाए, जो आदर तथा श्रद्धा से पवित्र नाम का उच्चारण करते हैं?”

तात्पर्य

यह प्रसंग उस घटना का है, जिसमें सुअर द्वारा मारे जा रहे एक म्लेच्छ ने अपनी मृत्यु के समय बारम्बार ‘हा राम, हा राम’ शब्दों का उच्चारण किया। चूँकि यह उद्धरण नृसिंह पुराण का है, अतएव इससे सूचित होता है कि पौराणिक युग में भी म्लेच्छ तथा यवन रहे होंगे और “हा राम” शब्द जिसका अर्थ “निन्दनीय” था, उन दिनों भी बोले जाते थे। इस तरह हरिदास ठाकुर साक्ष्य देते हैं कि एक म्लेच्छ भी जो ‘हा राम’ शब्दों का उच्चारण करके किसी वस्तु की निन्दा करता है, एक भक्त द्वारा पवित्र नाम के उच्चारण का लाभ उठाता है, जिसका अर्थ है “हे मेरे भगवान् राम?”

अजामिल पुत्रे बोलाय बलि ‘नारायण’ ।

विष्णु-दूत आसि’ छाड़ाय ताहार बन्धन ॥57॥

अजामिल-अजामिल ने; पुत्रे-अपने पुत्र को; बोलाय-पुकारा; बलि-कहकर; नारायण-नारायण का पवित्र नाम;
विष्णु-दूत-भगवान् विष्णु के पार्षद; आसि'-आकर; छाड़ाय-छुड़ा देते हैं; ताहार-उसके; बन्धन-बन्धन।

अनुवाद

“अजामिल जीवन-भर महान् पापी था, किन्तु अपनी मृत्यु के समय उसने अचानक अपने सबसे छोटे
पुत्र को पुकारा, जिसका नाम नारायण था, तो विष्णु के दूत यमराज के बन्धन से उसे छुड़ाने आ गये।

‘राम’ दुइ अक्षर इहा नहे व्यवहित ।

प्रेम-वाची ‘हा’-शब्द ताहाते भूषित ॥58॥

राम-भगवान् के पवित्र नाम के; दुइ-दो; अक्षर-अक्षर; इहा-ये; नहे-नहीं हैं; व्यवहित-अलग; प्रेम-वाची-
प्रेमवाचक एक शब्द; हा-हे; शब्द-शब्द; ताहाते-उसके द्वारा; भूषित-सुशोभित है।

अनुवाद

“राम” शब्द में दो अक्षर ‘रा’ तथा ‘म’ हैं। ये विलग नहीं किये जा सकते और प्रेमवाची शब्द ‘हा’ से
अलंकृत हैं, जिसका अर्थ है ‘हे’।

नामेर अक्षर-सबेर एइ त’ स्वभाव ।

व्यवहित हैले ना छाड़े आपन-प्रभाव ॥ 59 ॥

नामेर-पवित्र नाम के; अक्षर-अक्षर; सबेर-सभी का; एइ-यह; त’-निश्चित रूप से; स्वभाव-लक्षण; व्यवहित हैले-
वृत्तिपूर्वक पुकारे जाने पर भी; ना-नहीं; छाड़े-छोड़ते; आपन-प्रभाव-अपना आध्यात्मिक प्रभाव।

अनुवाद

“पवित्र नाम के अक्षरों की इतनी आध्यात्मिक शक्ति है कि अनुचित ढंग से बोले जाने पर भी अपना
प्रभाव दिखाते हैं।

तात्पर्य

श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि व्यवहित शब्द यहाँ पर शब्द के अक्षरों की भौतिक ध्वनि के
लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है। भौतिकतावादी व्यक्तियों की इन्द्रियतृप्ति के लिए उपेक्षापूर्ण नाम उच्चारण दिव्य ध्वनि नहीं है।

इन्द्रियतृप्ति में लगे रहकर नामोच्चारण करना कृष्ण-प्रेम प्राप्त करने में अवरोधक है। दूसरी ओर, जो व्यक्ति भक्ति का इच्छुक होता है, यदि वह अनुचित रीति से या अधूरा ही नामोच्चारण करता है, तो पवित्र नाम, जो कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से अभिन्न है, अपनी आध्यात्मिक शक्ति प्रकट करता है, क्योंकि यह उच्चारण अपराधरहित होता है। इस तरह मनुष्य को सारे अवांछनीय कार्यों से मुक्ति मिल जाती है और मनुष्य अपने सुप्त कृष्ण-प्रेम को क्रमशः जागृत कर लेता है।

नामैकं यस्य वाचि स्मरण-पथ-गतं श्रोत्र-मूलं गतं वा

शुद्धं वाशुद्ध-वर्णं व्यवहित-रहितं तारयत्येव सत्यम् ।

तच्चेदेह-द्रविण-जनता-लोभ-पाषण्ड-मध्ये

निक्षिप्तं स्यान्न फल-जनकं शीघ्रमेवात्र विप्र ॥ 60॥

नाम-पवित्र नाम; एकम्-एक बार; यस्य-जिसके; वाचि-मुख में; स्मरण-पथ-गतम्-स्मरण के मार्ग में प्रवेश कर गया; श्रोत्र-मूलम्-गतम्-कानों के मूल में चला गया; वा-या; शुद्धम्-शुद्ध; वा-या; अशुद्ध-वर्णम्-अशुद्ध रूप से उच्चारित; व्यवहित-रहितम्-अपराध रहित या अलग किये बिना; तारयति-उद्धार कर देता है; एव-निश्चित रूप से; सत्यम्-सच में; तत्-वह नाम; चेत्-यदि; देह-भौतिक शरीर; द्रविण-भौतिक ऐश्वर्य; जनता-जन सहयोग; लोभ-लालच; पाषण्ड-नास्तिकता; मध्ये-की ओर; निक्षिप्तम्-निर्देशित; स्यात्-हो; न-नहीं; फल-जनकम्-परिणाम उत्पन्न करनेवाला; शीघ्रम्-शीघ्र; एव-अवश्य; अत्र-इस विषय में; विप्र-हे ब्राह्मण।

अनुवाद

“यदि भक्त एक बार भी भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण करता है अथवा यह उसके मन में या श्रवण करने के माध्यम रूपी कान में प्रवेश करता है, तो यह पवित्र नाम निश्चय ही उसे भवबन्धन से उबार लेगा, चाहे नामोच्चारण व्याकरण के अनुसार सही ढंग से किया गया हो या गलत ढंग से किया गया हो, चाहे मिलाकर अथवा अलग-अलग खण्डों में किया गया हो। इसलिए हे ब्राह्मण, पवित्र नाम की शक्ति निश्चित रूप से महान् है। किन्तु यदि कोई पवित्र नाम के उच्चारण का उपयोग भौतिक शरीर, भौतिक सम्पत्ति तथा अनुयायियों के लिए अथवा लोभ या नास्तिकता के प्रभाव में आकर करता है-अर्थात् अपराधसहित

नामोच्चारण किया जाता है तो ऐसे उच्चारण से तुरन्त वांछित फल नहीं मिलेगा। अतएव भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण करते समय सावधानीपूर्वक अपराधों से बचना चाहिए।”

तात्पर्य

यह श्लोक पद्म पुराण का है, जो सनातन गोस्वामी कृत हरिभक्तिविलास (11.289) में सम्मिलित है। उसमें सनातन गोस्वामी ने निम्नलिखित व्याख्या दी है :

वाचि गतं प्रसङ्गाद् वामध्ये प्रवृत्तम् अपि, स्मरणपथगतं कथञ्चिन् मनःस्पृष्टं अपि, श्रोत्र-मूलं गतं किञ्चित् श्रुतम् अपि; शुद्धवर्णं वा अशुद्धवर्णं अपि वा, व्यवहितं शब्दान्तरेण यद्व्यवधानं वक्ष्यमाणनारायणशब्दस्य किञ्चिद् उच्चारणानन्तरं प्रसङ्गाद् आपतितं शब्दान्तरं तेन रहितं सत् ।

इसका अर्थ यह है कि यदि कोई किसी तरह से पवित्र नाम सुनता, उच्चारण करता या स्मरण करता है या उसके कान के निकट आने पर वह उसके मन में प्रवेश कर जाता है, तो वह पवित्र नाम भले ही पृथक् शब्दों में क्यों न कहा गया हो, वह अपना प्रभाव दिखायेगा। ऐसे पृथक्करण का उदाहरण इस प्रकार दिया हुआ है :

यद्वा, यद्यपि ‘हलं रिक्तम्’ इत्य् आद्युक्तौ हकार-रिकारयोः वृत्त्या हरीतिनामास्त्येव, तथा ‘राजमहिषी’ इत्यत्र रामनामापि, एवमन्यद्यप्यूह्यम्; तथापि तत्-तन्नाममध्ये व्यवधायकम् अक्षरान्तरम् अस्तीत्येतादृशव्यवधानरहितम् इत्यर्थः, यद्वा, व्यवहितं च तद्रहितं चापि वा, तत्र ‘व्यवहितम्’-नाम्नः किञ्चिदुच्चारणानन्तरं कथञ्चिद् आपतितं शब्दान्तरं समाधाय पश्चान् नामावशिष्टा-क्षरग्रहणं इत्येवं रूपं, मध्ये शब्दान्तरेणान्तरितम् इत्यर्थः, ‘रहितं’, पश्चाद् अवशिष्टाक्षरग्रहणवर्जितम्, केनचिदंशेन हीनम् इत्यर्थः, तथापि तारयत्येव।

मान लीजिये कि कोई हलं रिक्तम् दो शब्दों का प्रयोग करता है। हलम् शब्द का ह अक्षर तथा रिक्तम् का रि अक्षर अलग-अलग उच्चरित होते हैं, किन्तु तो भी पवित्र नाम का प्रभाव होगा, क्योंकि मनुष्य किसी न किसी रूप में हरि शब्द का उच्चारण करता है। इसी तरह राज-महिषी शब्द में रा तथा म अक्षर अलग-अलग शब्दों में आते हैं, किन्तु वे किसी न किसी तरह एकसाथ प्रकट होते हैं, इसलिए पवित्र नाम राम अपना प्रभाव दिखायेगा, यदि वह अपराध रहित हो।

सर्वेभ्यः पापेभ्योऽपराधेभ्यश्च संसारादप्युद्धारयत्येवेति सत्यमेव; किन्तु नामसेवनस्य मुख्यं यत् फलं, तन्न सद्यः सम्पद्यते। तथा देहभरणाद्यर्थमपि नामसेवनेन मुख्यं फलमाशु न सिध्यतीत्याह-तच्चेद् इति॥

पवित्र नाम में इतनी आध्यात्मिक शक्ति होती है कि यह मनुष्य को सारे पापों के फलों तथा भौतिक बन्धनों से उबार सकता है, किन्तु पवित्र नाम का उच्चारण तुरन्त फलदायक नहीं होगा, यदि इसका उच्चारण पाप करने की सुविधा के लिए किया जाता है।

तन् नाम चेद्यदि देहादिमध्ये निक्षिप्तं-देहभरणाद्यर्थमेव विन्यस्तम्, तदापि फलजनकं न भवति किम् ? अपितु भवत्येव, किन्तु अत्र इह लोके शीघ्रं न भवति, किन्तु विलम्बेनैव भवतीत्यर्थः ।

पवित्र नाम इतना शक्तिशाली होता है कि यह प्रभाव दिखायेगा, किन्तु जब कोई व्यक्ति अपराध-सहित पवित्र नाम का उच्चारण करता है, तो इसका प्रभाव विलम्ब से होगा, तुरन्त नहीं, यद्यपि अनुकूल परिस्थितियों में पवित्र भगवन्नाम तुरन्त प्रभाव दिखाता है।

नामाभास हैते ह्य सर्व-पाप-क्षय ॥ 61॥

नाम-आभास हैते-नामाभास के उच्चारण से; हय-हो जाते हैं; सर्व-पाप-पापों के सारे फलों का; क्षय-विनाश।

अनुवाद

नामाचार्य हरिदास ठाकुर ने कहा, “यदि कोई अपराधरहित होकर अपूर्ण रीति से भी पवित्र नाम का उच्चारण करता है, तो वह पापमय जीवन के सारे फलों से मुक्त हो सकता है।

तं निर्व्याजं भज गुण-निधे पावनं पावनानां

श्रद्धा-रज्यन्मतिरतिरामुत्तमः-श्लोक-मौलिम् ।

प्रोद्यन्नन्तःकरण-कुहरे हन्त यन्नाम-भानोर्

आभासोऽपि क्षपयति महा-पातक-ध्वान्त-राशिम् ॥ 62 ॥

तम्-उन्हें; निर्व्याजम्-बिना कपट के; भज-भजो; गुण-निधे-हे सभी सद्गुणों के निधि; पावनम्-शुद्ध करने वाले; पावनानाम्-सभी शुद्ध करने वालों में श्रद्धा-विश्वास के साथ; रज्यन्-उत्साहित; मतिः-मन; अतितराम्-बहुत अधिक; उत्तमः-श्लोक-मौलिम्-वे परम पुरुष जिनकी उत्तम श्लोकों से उपासना की जाती है या जो सभी भौतिक अवस्थाओं से परे हैं; प्रोद्यन्-प्रकट करके; अन्तःकरण-कुहरे-हृदय की गहराई में; हन्त-हाय; यत्-नाम-जिनका पवित्र नाम; भानोः-सूर्य का; आभासः-मन्द प्राकट्य; अपि-भी; क्षपयति-नाश कर देता है; महा-पातक-महान् पापकर्मों के फलस्वरूप कर्मों के; ध्वान्त-अज्ञान के; राशिम्-भण्डार का।

अनुवाद

“हे सभी सद्गुणों की खान, आप समस्त पावन करने वालों को भी पावन करने वाले, उत्तमश्लोक शिरोमणि श्रीकृष्ण की पूजा करें। आप श्रद्धायुक्त, अविचलित मन से, निष्कपट होकर तथा अत्युच्च रीति से उनकी पूजा करें। इस प्रकार उन भगवान् की पूजा करें, जिनका नाम सूर्य के समान है, क्योंकि जिस तरह सूर्य के किंचित प्रकट होने पर भी रात्रि का अन्धकार दूर हो जाता है, उसी तरह कृष्ण के पवित्र नाम का थोड़ा-सा भी प्राकट्य अज्ञान के सारे अन्धकार को, जो विगत जन्मों में सम्पन्न बड़े-बड़े पापों के कारण हृदय में उत्पन्न होता है, दूर भगा सकता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक भक्तिरसामृतसिन्धु (2.1.103) में आया है।

नामाभास हैते हय संसारेर क्षय ॥ 63 ॥

नाम-आभास हैते-मात्र नामाभास के बल पर ही; हय-हो जाता है; संसारेर क्षय-भौतिक बन्धन से उद्धार।

अनुवाद

भगवान् के पवित्र नाम का क्षीण प्रकाश भी पापमय जीवन के सारे फलों को दूर कर सकता है।

प्रियमाणो हरेर्नाम गृणन्पुत्रोपचारितम् ।

अजामिलोऽप्यगाद्धाम किमुत श्रद्धया गृणन् ॥ 64॥

प्रियमाणः-मरते हुए; हरेः नाम-परम भगवान् के पवित्र नाम का; गृणन्-उच्चारण; पुत्र-उपचारितम्-यद्यपि अपने पुत्र के लिए कहा; अजामिलः-अजामिल ने; अपि- भी; अगात्-प्राप्त किया; धाम-आध्यात्मिक जगत्; किम् उत-तो क्या कहना; श्रद्धया-श्रद्धा और आदर के साथ; गृणन्-जपना।

अनुवाद

मरणासन्न अजामिल ने अपने पुत्र नारायण को बुलाने के उद्देश्य से भगवान् के नाम का उच्चारण किया, फिर भी उसे वैकुण्ठ प्राप्त हुआ। तो फिर उनके विषय में क्या कहा जाए, जो श्रद्धा तथा आदरपूर्वक पवित्र नाम का उच्चारण करते हैं?’

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (6.2.49) से लिया गया है।

नामाभासे ‘मुक्ति’ हय सर्व-शास्त्रे देखि ।

श्री-भागवते ताते अजामिल-साक्षी" ॥65॥

नाम-आभासे-पवित्र हरिनाम की किरणों की झलक मात्र से; मुक्ति-मुक्ति; हय-हो जाती है; सर्व-शास्त्रे-सभी शास्त्रों में; देखि-मैं देखता हूँ; श्री-भागवते- श्रीमद्भागवत; ताते इसका; अजामिल-अजामिल; साक्षी-साक्षी है।

अनुवाद

“भगवान् के पवित्र नाम के तेज की हल्की-सी किरणों से भी (नामाभास) मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इसे हम समस्त प्रामाणिक शास्त्रों में देख सकते हैं। इसका साक्ष्य श्रीमद्भागवत में अजामिल की कथा में मिलता है।”

शुनिया प्रभुर सुख बाड़ये अन्तरे ।

पुनरपि भङ्गी करि’ पुछये ताँहारे ॥66॥

शुनिया-सुनकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु की; सुख-प्रसन्नता; बाढ़ये-बढ़ गई; अन्तरे हृदय के भीतर; पुनरपि फिर भी; भङ्गी करि'-स्वभावतः; पुछये ताँहारे हरिदास ठाकुर से पूछा।

अनुवाद

जब हरिदास ठाकुर से श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह सुना, तो उनके हृदय में सुख बढ़ गया, किन्तु स्वभावतः उन्होंने और आगे पूछा।

“पृथिवीते बहु-जीव—स्थावर-जङ्गम ।

इहा-सबार कि प्रकारे हइबे मोचन?” ॥ 67॥

पृथिवीते-इस पृथ्वी पर; बहु-जीव-अनेक जीव; स्थावर-अचल; जङ्गम-चल; इहा-सबार-इन सबका; कि प्रकारे-किस प्रकार; हइबे मोचन-उद्धार हो पाएगा।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "इस पृथ्वी पर अनेक जीव हैं-कुछ अचर हैं और कुछ चर। वृक्षों, लताओं, कीड़ों तथा अन्य जीवों का क्या होगा? वे कैसे भवबन्धन से छूट सकेंगे?"

हरिदास कहे,—“प्रभु, से कृपा तोमार।

स्थावर-जङ्गम आगे करियाछ निस्तार ॥68॥

हरिदास कहे-हरिदास ने उत्तर दिया; प्रभु-मेरे प्रिय प्रभु; से—उस; कृपा-कृपा से; तोमार-आपकी; स्थावर-जङ्गम-अचर और चर जीवों का; आगे-पहले से ही; करियाछ निस्तार—आपने उद्धार कर दिया है।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया, “हे प्रिय प्रभु, सारे चर तथा अचर प्राणियों का उद्धार तो आपकी कृपा से होता है। आपने पहले ही यह कृपा करके उनका उद्धार किया है।

तुमि ये करियाछ एइ उच्च सङ्कीर्तन ।

स्थावर-जङ्गमेर सेइ हयत' श्रवण ॥ 69॥

तुमि-आपने; ये-जो; करियाछ-किया है; एइ-यह; उच्च-उच्च स्वर में; सङ्कीर्तन-हरिनाम संकीर्तन; स्थावर-जमेर-सभी जीवात्माओं का, अचर और चर; सेइ-वे; हयत'-हुए हैं; श्रवण-सुनकर।

अनुवाद

आपने उच्च स्वर से हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन किया है और हर चर या अचर प्राणी ने उसे सुनकर लाभ उठाया है।

शुनिया जङ्गमेर हय संसार-क्षय ।

स्थावरे से शब्द लागे, प्रतिध्वनि हय ॥ 70 ॥

शुनिया-सुनकर; जङ्गमेर-उन जीवों का जो चल सकते हैं; हय-हुआ है; संसार-क्षय-भौतिक जगत् के बन्धन का नाश; स्थावरे-अचर जीवों का; से शब्द-उस दिव्य ध्वनि से; लागे-स्पर्श कर; प्रति-ध्वनि-प्रति ध्वनि; हय-हो गई।

अनुवाद

“हे प्रभु, जिन चर प्राणियों ने आपके उच्च संकीर्तन को सुना है, वे पहले ही भवबन्धन से छूट चुके हैं, और जब वृक्ष जैसे अचर जीव उसे सुनते हैं, तो एक प्रतिध्वनि होती है।

‘प्रतिध्वनि’ नहे, सेइ करये 'कीर्तन' ।

तोमार कृपार एइ अकथ्य कथन ॥79॥

प्रति-ध्वनि नहे-वह ध्वनि तरंग प्रतिध्वनि नहीं है; सेइ-वे; करये कीर्तन-कीर्तन गा रहे हैं; तोमार कृपार-आपकी कृपा की; एइ-यह; अकथ्य कथन-अचिन्त्य घटना है।

अनुवाद

किन्तु, वास्तव में यह प्रतिध्वनि नहीं, यह तो अचर जीवों का कीर्तन है। यद्यपि यह अचिन्त्य है, किन्तु आपकी कृपा से यह सब सम्भव है।

सकल जगते हय उच्च सङ्कीर्तन ॥

शुनिया प्रेमावेशे नाचे स्थावर-जङ्गम ॥72॥

सकल जगते-समस्त ब्रह्माण्ड में; हय-हो रहा है; उच्च सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण मन्त्र का उच्च संकीर्तन; शुनिया-सुनकर; प्रेम-आवेशे दिव्य प्रेमभाव में; नाचे-नाच रहे हैं; स्थावर-जङ्गम-अचर तथा चर, सभी जीव।

अनुवाद

जब आपके अनुयायियों द्वारा विश्वभर में हरे कृष्ण मन्त्र का उच्च स्वर से कीर्तन होता है, तो सारे अचर तथा चर जीव भक्तिमय प्रेम में नृत्य करते हैं।

येछे कैला झारिखण्डे वृन्दावन याइते ।

बलभद्र-भट्टाचार्य कहियाछेन आमाते ॥73॥

येछे-जैसे; कैला-आपने किया; झारिखण्डे-झारखण्ड नामक जंगल में; वृन्दावन याइते-वृन्दावन जाते हुए; बलभद्र-भट्टाचार्य-आपके सेवक बलभद्र भट्टाचार्य ने; कहियाछेन आमाते-मुझे बताया है।

अनुवाद

हे प्रभु, जब आप झारखंड जंगल से होते हुए वृन्दावन जा रहे थे, तब जितनी सारी घटनाएँ घटीं, उनका वर्णन आपके सेवक बलभद्र भट्टाचार्य ने मुझसे किया है।

वासुदेव जीव लागि' कैल निवेदन ।

तबे अङ्गीकार कैला जीवेर मोचन ॥74॥

वासुदेव-वासुदेव नामक भगवद्भक्त; जीव लागि'—सभी जीवों के लिए; कैल निवेदन-अपना निवेदन अर्पित किया; तबे-उस समय; अङ्गीकार कैला-आपने स्वीकार किया; जीवेर मोचन-सभी जीवों का उद्धार।

अनुवाद

“जब आपके भक्त वासुदेव दत्त ने आपके चरणकमलों पर सारे जीवों के उद्धार के लिए निवेदन किया, तो आपने वह प्रार्थना स्वीकार कर ली।

जगत् निस्तारिते एइ तोमार अवतार ।

भक्त-भाव आगे ताते कैला अङ्गीकार ॥75॥

जगत् निस्तारिते-समस्त जगत् का उद्धार करने के लिए; एइ-यह; तोमार अवतार-आपका अवतार; भक्त-भाव-एक भक्त का भाव; आगे-पहले से; ताते-अतः; कैला अङ्गीकार-आपने स्वीकार किया है।

अनुवाद

“हे प्रभु, आपने इस संसार के सारे पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए ही भक्त का रूप स्वीकार किया है।

उच्च सङ्कीर्तन ताते करिला प्रचार ।

स्थिर-चर जीवेर सब खण्डाइला संसार" ॥76॥

उच्च सङ्कीर्तन-हेरे कृष्ण मन्त्र का उच्च स्वर में कीर्तन; ताते-अतः; करिला प्रचार-आपने फैलाया है; स्थिर-चर-अचर और चर; जीवेर-जीवों का; सब-सब; खण्डाइला-आपने समाप्त कर दिया है; संसार-भौतिक अस्तित्व का बन्धन।

अनुवाद

“आपने हेरे कृष्ण महामन्त्र के उच्च कीर्तन का प्रचार किया है और इस तरह से सारे चर तथा अचर प्राणियों को भव-बन्धन से मुक्त किया है।”

प्रभु कहे,—“सब जीव मुक्ति यबे पाबे ।

एइ त’ ब्रह्माण्ड तबे जीव-शून्य हवे!" ॥77॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने उत्तर दिया; सब जीव-सभी जीव; मुक्ति-मुक्ति; यबे-जब; पाबे—प्राप्त करेंगे; एइ-यह; त’—निश्चय ही; ब्रह्माण्ड-ब्रह्माण्ड; तबे-तब; जीव-शून्य-जीवों से रहित; हबे-हो जायेगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, “यदि सारे जीवों को मुक्ति मिल जाए, तो सारा ब्रह्माण्ड जीवों से विहीन हो जायेगा।”

हरिदास बले, तोमार यावत्मर्त्ये स्थिति ।

तावत् स्थावर-जङ्गम, सर्व जीव-जाति ॥ 78॥

सब मुक्त करि’ तुमि वैकुण्ठे पाठाइबा ।

सूक्ष्म-जीवे पुनः कर्म उद्बुद्ध करिबा ॥79॥

हरिदास बले-हरिदास ठाकुर ने कहा; तोमार-आपकी; यावत्-जब तक; मर्त्ये-इस भौतिक जगत् में; स्थिति-स्थिति है; तावत्-उस काल तक; स्थावर-जङ्गम-अचर और चर; सर्व-सभी; जीव-जाति-जीव प्रजातियों को; सब-सभी; मुक्त करि’-मुक्त करके; तुमि-आप; वैकुण्ठे-आध्यात्मिक जगत् में; पाठाइबा-भेज देंगे; सूक्ष्म-जीवे-अविकसित चेतना वाले जीवात्मा; पुनः-फिर; कर्म-अपने कर्मों में; उद्बुद्ध करिबा-आप जागृत कर देंगे।

अनुवाद

हरिदास ने कहा, “हे प्रभु, जब तक आप इस भौतिक जगत् में स्थित हैं, तब तक आप विभिन्न योनियों के समस्त विकसित चर तथा अचर जीवों को वैकुण्ठ लोक भेजते रहेंगे। तब आप पुनः उन जीवों को जागृत करेंगे, जो अब भी विकसित नहीं हैं और उन्हें कार्यों में लगायेंगे।”

सेइ जीव हबे इहाँ स्थावर-जङ्गम ।

ताहाते भरिबे ब्रह्माण्ड येन पूर्व-सम ॥80॥

सेइ जीव-ऐसे जीवात्मा; हबे-हो जायेंगे; इहाँ-इस भौतिक जगत् में; स्थावर-जङ्गम-अचर और चर जीव; ताहाते-उस प्रकार; भरिबे-आप भर देंगे; ब्रह्माण्ड-सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को; येन-जैसे; पूर्व-सम-पहले के समान ही।

अनुवाद

“इस तरह सारे चर तथा अचर जीव अस्तित्व को प्राप्त होंगे और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पहले की तरह पूरित हो जायेगा।”

तात्पर्य

जब हम प्रचार कार्य करते हैं, तब कुछ विरोधी तत्त्व यह तर्क करते हैं, "यदि सारे जीवों का कृष्णभावनामृत आन्दोलन के द्वारा उद्धार हो गया, तो फिर क्या होगा? तब तो सारा ब्रह्माण्ड जीवों से विहीन हो जायेगा।" इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि जेल में बहुत से कैदी होते हैं, किन्तु यदि कोई यह सोचे कि यदि सारे कैदी अच्छा आचरण करने लगे, तो जेल खाली हो जायेगा, तो वह सही नहीं होगा। यदि जेल के सारे कैदी छोड़ दिये जाएँ, तो अन्य अपराधी आकर इसे भर देंगे। जेल कभी खाली नहीं होगा, क्योंकि ऐसे अनेक भावी अपराधी हैं, जो जेल की कोठरियों को भरते रहेंगे, चाहे सरकार सारे वर्तमान अपराधियों को भी छोड़ दे। जैसाकि भगवद्गीता (13.22) में पुष्टि हुई है—कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु—“भौतिक प्रकृति के साथ जीव की संगति होने से वह विभिन्न योनियों में अच्छी तथा बुरी योनियाँ पाता है।” ऐसे अनेक अप्रकट जीव हैं, जो तमोगुण से आच्छादित हैं। वे क्रमशः रजोगुण को प्राप्त होंगे। उनमें से अधिकांश अपने सकाम कर्मों के कारण अपराधी बनकर जेलों को फिर से भरेंगे।

पूर्वे येन रघुनाथ सब अयोध्या लाजा ।

वैकुण्ठके गेला, अन्य-जीवे अयोध्या भराजा ॥81॥

पूर्वे-पूर्व में; येन-जैसे; रघुनाथ-रामचन्द्र; सब-सभी; अयोध्या-अयोध्या के निवासियों को; लाजा-अपने साथ लेकर; वैकुण्ठके गेला-वैकुण्ठ लोक लौट गये; अन्य-जीवे-अन्य जीवात्माओं से; अयोध्या-अयोध्या; भराजा-भरकर।

अनुवाद

“पूर्वकाल में जब भगवान् रामचन्द्र ने यह जगत् छोड़ा, तो वे अयोध्या के सारे जीवों को अपने साथ लेते गये। तत्पश्चात् उन्होंने अयोध्या को पुनः अन्य जीवों से भर दिया।”

अवतरि' तुमि ऐछे पातियाछ हाट ।

केह ना बुझिते पारे तोमार गूढ़ नाट ॥82॥

अवतरि'—अवतरित होकर; तुमि-आपने; ऐ-इस प्रकार; पातियाछ हाट-एक बाजार लगा दिया है; केह ना बुझिते पारे-कोई समझ नहीं सकता; तोमार-आपके; गूढ नाट-गहन कार्यकलाप।

अनुवाद

“हे प्रभु, आपने इस भौतिक जगत् में अवतरित होकर एक योजना प्रारम्भ कर दी है, किन्तु कोई यह नहीं जानता कि आप किस तरह कार्य करते हैं।”

पूर्वे येन ब्रजे कृष्ण करि' अवतार ।

सकल ब्रह्माण्ड-जीवेर खण्डाइला संसार ॥83॥

पूर्वे-पहले; येन-जैसे; ब्रजे-वृन्दावन में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; करि' अवतार-अवतरित होकर; सकल-सभी; ब्रह्माण्ड-जीवेर-इस ब्रह्माण्ड जीवों का; खण्डाइला-नाश किया; संसार-भौतिक अस्तित्व।

अनुवाद

“पूर्वकाल में, जब भगवान् कृष्ण वृन्दावन में अवतरित हुए, तो उन्होंने ब्रह्माण्ड के सारे जीवों को भौतिक स्थिति से इसी तरह मुक्त कर दिया था।”

न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे ।

योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद्विमुच्यते ॥84॥

न-नहीं; च-भी; एवम्-अतः; विस्मयः-आश्चर्य; कार्यः-करना चाहिए; भवता-आपके द्वारा; भगवति-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में; अजे-जो अजन्मा हैं; योग-ईश्वर-ईश्वरे-योग शक्तियों के स्वामियों के स्वामी; कृष्णे-भगवान् कृष्ण में; यतः-जिनके द्वारा; एतत्-सारे जीव; विमुच्यते-मुक्त कर दिये गये।

अनुवाद

“अजन्मा, योगेश्वरों के भी ईश्वर, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण समस्त चर तथा अचर प्राणियों का उद्धार करते हैं। भगवान् के कार्यकलाप तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है।”

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.29.16) से है।

“अयं हि भगवान्दृष्टः कीर्तितः संस्मृतश्च

द्वेषानुबन्धेनाप्यखिल-सुरासुरादि-दुर्लभं फलं

प्रयच्छति, किमुत सम्यग्भक्तिमताम्” इति ॥85॥

अयम्-यह; हि-निश्चित रूप से; भगवान्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; दृष्टः-देखे जाएँ; कीर्तितः-गुणगान किये जाएँ; संस्मृतः-स्मरण किये जाएँ; च-और; द्वेष-द्वेष के; अनुबन्धेन-भाव से; अपि-यद्यपि; अखिल-सुर-असुर-आदि-सभी देवताओं और असुरों द्वारा; दुर्लभम्-दुर्लभतापूर्वक प्राप्त; फलम्-फल; प्रयच्छति-प्रदान करते हैं; किम् उत—क्या कहना; सम्यक् पूर्णतया; भक्ति-मताम्-जो प्रेममयी सेवा में लगे हुए हैं; इति-अतः ।

अनुवाद

“भले ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को ईर्ष्या की दृष्टि से देखा जाये, उनका महिमागान किया जाये या उनका स्मरण किया जाये, तो भी वे अत्यन्त गुह्य मुक्ति प्रदान करते हैं, जो देवताओं तथा असुरों को विरले ही प्राप्त हो पाती है। तो फिर उनके विषय में क्या कहा जाए, जो पहले से भगवान् की भक्तिमयी सेवा में पूरी तरह से लगे हुए हैं?”

तात्पर्य

यह उद्धरण विष्णु पुराण (4.15.17) से है।

तैछे तुमि नवद्वीपे करि' अवतार ।

सकल-ब्रह्माण्ड-जीवेर करिला निस्तार ॥86॥

तैछे-उसी प्रकार; तुमि-आपने; नवद्वीपे-नवद्वीप में; करि' अवतार-अवतार रूप में प्रकट होकर; सकल-सभी; ब्रह्माण्ड-ब्रह्माण्ड के; जीवेर-जीवों का; करिला निस्तार-उद्धार कर दिया है।

अनुवाद

“आपने नवद्वीप में अवतरित होकर, कृष्ण की ही तरह, ब्रह्माण्ड के सारे जीवों का पहले से ही उद्धार कर दिया है।

ये कहे,—‘चैतन्य-महिमा मोर गोचर हय’ ।

से जानुक, मोर पुनः एइ त’ निश्चय ॥८७॥

ये कहे-जो भी कहता है; चैतन्य-महिमा-श्री चैतन्य महाप्रभु की महिमा; मोर गोचर-मैं जानता हूँ; हय-होगा; से जानुक-वह जानता होगा; मोर-मेरा; पुनः—फिर से; एइ त निश्चय-यह निष्कर्ष है।

अनुवाद

“कोई कह सकता है कि वह श्री चैतन्य महाप्रभु की महिमा को समझता है। वह जो भी जान सके जाने, किन्तु जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मेरा तो यही निर्णय है।

तोमार ये लीला महा-अमृतेर सिन्धु ।

मोर मनो-गोचर नहे तार एक बिन्दु ॥८८॥

तोमार-आपकी; ये-जो भी; लीला-लीलाएँ हैं; महा-अमृतेर सिन्धु-अमृत का एक विशाल समुद्र; मोर-मेरे लिए; मनः-गोचर नहे-समझना सम्भव नहीं है; तार-इसकी; एक बिन्दु-एक बूँद।

अनुवाद

“हे प्रिय प्रभु, आपकी लीलाएँ अमृत के सागर के समान हैं। मेरे लिए उस सागर की महिमा की कल्पना कर पाना या उसकी एक बूँद तकको समझ पाना भी सम्भव नहीं है।”

एत शुनि’ प्रभुर मने चमत्कार हैल ।

‘मोर गूढ़-लीला हरिदास केमने जानिल?’ ॥८९॥

एत शुनि’-यह सुनकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; मने-मन में; चमत्कार हैल-आश्चर्य हो गया; मोर-मेरी; गूढ़-लीला-गुह्य लीलाएँ; हरिदास-हरिदास; केमने-कैसे; जानिल-समझ गया।

अनुवाद

यह सब सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु आश्चर्यचकित हुए। उन्होंने सोचा, “ये तो वास्तव में मेरी गुह्य लीलाएँ हैं। हरिदास उन्हें कैसे समझ गया?”

मनेर सन्तोषे तारै कैला आलिङ्गन ।

बाह्ये प्रकाशिते ए-सब करिला वर्जन ॥90॥

मनेर सन्तोषे—मन के सम्पूर्ण सन्तोष के साथ; तारै—उन्हें; कैला आलिङ्गन—उन्होंने आलिंगन किया; बाह्ये—बाहरी रूप से; प्रकाशिते—प्रकाशित करने को; ए—सब—यह सब; करिला वर्जन—उन्होंने वर्जन किया।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर के कथनों से अत्यधिक सन्तुष्ट होकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनका आलिंगन किया। किन्तु बाह्य रूप से इन विषयों पर उन्होंने अधिक विचार-विमर्श नहीं किया।

ईश्वर-स्वभाव, ऐश्वर्य चाहे आच्छादिते ।

भक्त-ठाजि लुकाइते नारे, हय त' विदिते ॥91॥

ईश्वर-स्वभाव—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का स्वभाव; ऐश्वर्य—महिमा; चाहे—चाहते हैं; आच्छादिते—छुपाना; भक्त-ठाजि—अपने भक्त के सामने; लुकाइते नारे—वे छुपा नहीं सकते; हय त' विदिते—यह सर्वविदित है।

अनुवाद

यह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का स्वभाव है। यद्यपि वे अपने ऐश्वर्य को छिपाना चाहते हैं, किन्तु वे अपने भक्तों के समक्ष ऐसा नहीं कर पाते। यह सर्वविदित है।

उल्लङ्गित-त्रिविध-सीम-समातिशायि-

सम्भावनं तव परिव्रद्धिम्-स्वभावम् ।

माया-बलेन भवतापि निगुह्यमानं

पश्यन्ति केचिदनिशं त्वदनन्य-भावाः ॥ 92॥

उल्लङ्घित-पार कर गया; त्रि-विध-तीन प्रकार की; सीम-सीमाएँ, सम-समान का; अतिशायि-और बढ़ने की सम्भावनम्-सम्भावना; तव-आपकी; परिव्रद्धिम-भगवत्ता का; स्वभावम्-वास्तविक स्वभाव; माया-बलेन-माया शक्ति के बल से; भवता-आपका; अपि-यद्यपि; निगुह्यमानम्-छुपा हुआ; पश्यन्ति-वे देखते हैं; केचित्-कुछ; अनिशम्-सदैव; त्वत्-आपके प्रति; अनन्य-भावाः-वे जो पूर्ण रूप से शरणागत हैं।

अनुवाद

"हे प्रभु, भौतिक प्रकृति में हर वस्तु काल, देश तथा विचार से सीमित होती है। किन्तु आपके गुण अतुलनीय तथा अद्वितीय होने के कारण सदैव ऐसी सीमाओं से परे होते हैं। आप कभी-कभी ऐसे गुणों को अपनी शक्ति से छिपा लेते हैं, किन्तु तो भी आपके अनन्य भक्त आपको सभी परिस्थितियों में देख सकने में सदा समर्थ होते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक यामुनाचार्य कृत स्तोत्र-रत्न (13) से है।

तबे महाप्रभु निज-भक्त-पाशे यात्रा ।

हरिदासेर गुण कहे शत-मुख हज्रा ॥93 ॥

तबे-इसके बाद; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; निज-भक्त-पाशे-अपने अन्तरंग भक्तों के पास; यात्रा-जाकर; हरिदासेर गुण-हरिदास के दिव्य गुण; कहे-वर्णित करते हैं; शत-मुख-जैसे सौ मुखों से युक्त; हज्रा-होकर।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निजी भक्तों के पास गये और उनसे हरिदास ठाकुर के दिव्य गुणों के बारे में इस प्रकार बतलाने लगे मानो उनके सैकड़ों मुख हों।

भक्तेर गुण कहिते प्रभुर बाड़ये उल्लास ।

भक्त-गण-श्रेष्ठ ताते श्री-हरिदास ॥ 94॥

भक्तेर-भक्तों के; गुण-गुणों को; कहिते-कहकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; बाड़ये-बढ़ जाता है; उल्लास-
आनन्द; भक्त-गण-सभी भक्तों में; श्रेष्ठ-सर्वश्रेष्ठ; ताते-उनमें; श्री-हरिदास-हरिदास ठाकुर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने भक्तों का गुणगान करने में बड़ी प्रसन्नता होती है और इन भक्तों में हरिदास
ठाकुर सर्वोपरि हैं।

हरिदासेर गुण-गण—असङ्ख्य, अपार ।

केह कोन अंशे वर्णो, नाहि पाय पार ॥ 95 ॥

हरिदासेर गुण-गण-हरिदास ठाकुर के दिव्य गुणों का भण्डार; असङ्ख्य-असंख्य; अपार-अगाध; केह-कोई;
कोन अंशे-कुछ भाग; वर्ण-वर्णन करता है; नाहि पाय पार-सीमा तक नहीं पहुँच सकता।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर के दिव्य गुण असंख्य तथा अगाध हैं। कोई उनके एक अंश का वर्णन भले कर ले,
किन्तु उन सबकी गणना कर पाना असम्भव है।

चैतन्य-मङ्गले श्री-वृन्दावन-दास ।

हरिदासेर गुण किछु करियाछेन प्रकाश ॥ 96 ॥

चैतन्य-मङ्गले-चैतन्य मंगल (चैतन्य भागवत) नामक ग्रन्थ में; श्री-वृन्दावन-दास-श्री वृन्दावन दास ठाकुर ने;
हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; गुण-गुण; किछु-कुछ; करियाछेन प्रकाश-प्रकाशित किये हैं।

अनुवाद

चैतन्य मंगल में श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने कुछ सीमा तक हरिदास ठाकुर के गुणों का वर्णन किया
है।

सब कहा ना याय हरिदासेर चरित्र ।

केह किछु कहे करिते आपना पवित्र ॥ 97॥

सब-सभी; कहा-कहना; ना याय-सम्भव नहीं है; हरिदासेर चरित्र-हरिदास ठाकुर का चरित्र; केह किछु कहे-कोई कुछ वहता है; करिते-केवल बनाने के लिए; आपना-स्वयं को; पवित्र-पवित्र, शुद्ध।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर के सभी गुणों का वर्णन कोई नहीं कर सकता। अपने आप को पवित्र बनाने के लिए उनके विषय में कोई कुछ कह सकता है।

वृन्दावन-दास याहा ना कैल वर्णन ।

हरिदासेर गुण किछु शुन, भक्त-गण ॥98॥

वृन्दावन-दास-श्रील वृन्दावन दास ठाकुर; याहा-जो कुछ; ना-नहीं; कैल वर्णन-वर्णन किया; हरिदासेर गुण-हरिदास ठाकुर के गुण; किछु-कुछ; शुन-सुनो; भक्त-गण-हे श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों॥

अनुवाद

हे श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों, अब हरिदास ठाकुर के उन गुणों के विषय में थोड़ा सुनो, जिनका वर्णन वृन्दावनदास ठाकुर ने विस्तार से नहीं किया है।

हरिदास यबे निज-गृह त्याग कैला ।

बेनापोलेर वन-मध्ये कत-दिन रहिला ॥ 99॥

हरिदास-हरिदास ठाकुर ने; यबे-जब; निज-गृह-अपना घर; त्याग कैला-त्याग दिया; बेनापोलेर-बेनापोल नामक गाँव के; वन-मध्ये-वन में; कत-दिन-कुछ समय तक; रहिला-रहे, निवास किया॥

अनुवाद

अपना घर छोड़ने के बाद हरिदास ठाकुर कुछ समय तक बेनापोल के जंगल में रहे।

निर्जन-वने कुटिर करि' तुलसी सेवन ।

रात्रि-दिने तिन लक्ष नाम-सङ्कीर्तन ॥100॥

निर्जन-वने-एकान्त जंगल में; कुटिर-एक कुटिया; करि'—बनाकर; तुलसी-तुलसी का पौधा; सेवन-पूजकर; रात्रि-दिने सम्पूर्ण दिन और रात; तिन-तीन; लक्ष-लाख; नाम-सङ्कीर्तन-पवित्र नाम का जप किया करते थे।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने एकान्त जंगल में एक कुटिया बनाई। वहाँ उन्होंने तुलसी का पौधा लगाया और तुलसी के समक्ष वे प्रतिदिन तीन लाख बार भगवान् के नाम का जप किया करते थे। वे दिन-रात निरन्तर जप किया करते थे।

तात्पर्य ।

बेनापोल गाँव यशोहर (जेस्सोर) जिले में स्थित है, जो अब बांग्लादेश में है। यह गाँव बनगाँव स्टेशन के पास है, जो कि बांग्लादेश की सीमा पर है। और जहाँ कलकत्ता के सियालदह स्टेशन से पूर्वी रेलवे द्वारा पहुँचा जा सकता है। हरिदास ठाकुर हरे कृष्ण महामन्त्र के जप के आचार्य होने के कारण नामाचार्य हरिदास ठाकुर कहलाते हैं। उनके निजी दृष्टान्त से हम समझ सकते हैं कि हरे कृष्ण मन्त्र का जप तथा कृष्णभावनामृत में अत्यधिक प्रगति करना अत्यन्त सरल है। बिना कठिनाई के कोई कहीं भी बैठ सकता है, विशेष रूप से गंगा, यमुना या किसी अन्य पवित्र नदी के किनारे बैठने के लिए स्थान या कुटिया बनाकर, तुलसी का पौधा लगाकर तथा तुलसी के सामने अविचल भाव से हरे कृष्ण महामन्त्र का जप कर सकता है।

हरिदास ठाकुर नित्य प्रतिदिन अपनी माला में तीन लाख बार नाम जप करते थे। वे दिन-रात हरे कृष्ण महामन्त्र के सोलह नामों का जप किया करते थे। किन्तु किसी को हरिदास ठाकुर की नकल नहीं करनी चाहिए, क्योंकि अन्य कोई भी एक दिन में तीन लाख नाम जप नहीं कर सकता। ऐसा जप मुक्त पुरुष के लिए है। हाँ, हम उनके दृष्टान्त का पालन नित्यप्रति सोलह माला हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करके तथा तुलसी के पौधे को आदर प्रदान करके कर सकते हैं। यह किसी के लिए कोई कठिन कार्य नहीं है और तुलसी के पौधे के समक्ष व्रत लेकर नाम जप करने में ऐसी आध्यात्मिक शक्ति होती है कि ऐसा करने से ही मनुष्य आध्यात्मिक रूप से सशक्त बन जाता है। इसलिए हम हरे कृष्ण आन्दोलन के सदस्यों से अनुरोध करते हैं कि वे हरिदास ठाकुर के दृष्टान्त का दृढ़ता से पालन करें। सोलह माला जप करने में अधिक समय नहीं लगता, न ही तुलसी को नमस्कार करना कठिन है। इस विधि में अत्यधिक आध्यात्मिक शक्ति है। इस अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए।

ब्राह्मणेर घरे करे भिक्षा निर्वाहण ॥

प्रभावे सकल लोक करये पूजन ॥101॥

ब्राह्मणेर घरे—एक ब्राह्मण के घर में; करे-करते; भिक्षा निर्वाहण-भिक्षा अन्न माँगते; प्रभावे-आध्यात्मिक बल द्वारा; सकल लोक-सभी लोग; करये पूजन-पूजा करते।

अनुवाद

शारीरिक पालन-पोषण के लिए वे एक ब्राह्मण के घर जाकर कुछ भोजन माँग लाते। वे आध्यात्मिक रूप से इतने प्रभावशाली थे कि आसपास के सारे लोग उनकी पूजा करते थे।

तात्पर्य

हरिदास ठाकुर के दिनों में सारे ब्राह्मण भगवान् नारायण की पूजा शालग्राम शिला के रूप में करते थे। इसलिए ब्राह्मण के घर से भिक्षा माँगने का अर्थ था कृष्ण प्रसाद लेना जो कि दिव्य (निर्गुण) होता है। यदि हम अन्यो के, यथा कर्मियों के घर से भोजन लें, तो हम जिनसे भिक्षा लेते हैं, उनके गुणों में भागीदार बनेंगे। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु वैष्णवों के घरों से प्रसाद लिया करते थे। यही सामान्य विधि है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों को परामर्श दिया जाता है कि वे किसी अन्य स्थान से भोजन न माँगकर केवल वैष्णव या ब्राह्मण के घर से भिक्षा लें, जहाँ अर्चाविग्रह की पूजा की जाती है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है, विषयीर अन्न खाइले दुष्ट हय मन—यदि कोई भक्त किसी ऐसे कर्मी के घर से भिक्षा लेता है, जो केवल धन में रुचि रखता है, तो उसका मन अशुद्ध हो जायेगा। हमें यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि भक्त का जीवन वैराग्यविद्या अर्थात् वैराग्य और ज्ञान का जीवन है। इसलिए सारे भक्तों को आगाह किया जाता है कि वे अन्यो के बल पर विलासमय जीवन न बितायें। विशेषकर मन्दिर के क्षेत्र में रहने वाले गृहस्थों को चाहिए कि वे मूल्यवान् वस्त्र, भोजन तथा वाहन प्राप्त करके कर्मियों का अनुकरण न करें। जहाँ तक सम्भव हो, इनसे बचना चाहिए। मन्दिर के हर सदस्य को, चाहे वह गृहस्थ हो, ब्रह्मचारी या संन्यासी हो, उसे हरिदास ठाकुर तथा छः गोस्वामियों के चरणचिह्नों का अनुगमन करते हुए वैराग्य से परिपूर्ण जीवन बिताना चाहिए। अन्यथा माया अतीव प्रबल है, जिससे कोई भी व्यक्ति किसी भी समय माया का शिकार बनकर अपने आध्यात्मिक जीवन से पतित हो सकता है।

सेइ देशाध्यक्ष नाम—रामचन्द्र खाँन ।

वैष्णव-विद्वेषी सेइ पाषण्ड-प्रधान ॥ 102॥

सेइ-उस; देश-अध्यक्ष-जमींदार; नाम-जिसका नाम; रामचन्द्र खान-रामचन्द्र खान; वैष्णव-विद्वेषी-वैष्णवों से द्वेष रखनेवाला; सेइ-वह; पाषण्ड-प्रधान-नास्तिकों में सर्वप्रमुख।

अनुवाद

रामचन्द्र खान नामक एक व्यक्ति उस जिले का जमींदार था। वह वैष्णवों से द्वेष रखता था, अतएव वह बहुत बड़ा नास्तिक था।

हरिदासे लोके पूजे, सहिते ना पारे ।

ताँर अपमान करिते नाना उपाय करे ॥ 103॥

हरिदासे-हरिदास ठाकुर का; लोके-लोग; पूजे-सम्मान करते; सहिते ना पारे-वह सहन नहीं कर पाता था; ताँर-उनका; अपमान-अपमान; करिते-करने का; नाना-अनेक; उपाय-उपाय; करे-रचने लगा।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर को जिस तरह से सम्मान प्रदान किया जाता था, उसे न सह सकने के कारण रामचन्द्र खान ने उनका अपमान करने के लिए नाना प्रकार की योजनाएँ बनाई।

कोन-प्रकारे हरिदासेर छिद्र नाहि पाय ॥

वेश्या-गणे आनि' करे छिद्रेर उपाय ॥ 104॥

कोन-प्रकारे-किसी भी तरह; हरिदासेर-हरिदास ठाकुर का; छिद्र-दोष; नाहि-नहीं; पाय-पाकर; वेश्या-गणे-वेश्याओं को; आनि'-लाकर; करे-करता है; छिद्रेर उपाय-दोष ढूँढने का उपाय।

अनुवाद

किन्तु उसे किसी भी उपाय से हरिदास ठाकुर के चरित्र में कोई दोष नहीं मिल सका। अतएव उसने स्थानीय वेश्याएँ बुलाई और वह हरिदास की पवित्रता को श्रेयहीन करने की योजना बनाने लगा।

तात्पर्य

यह तो नास्तिक पुरुषों की विशेषता है, किन्तु तथाकथित धर्मविदों, साधुओं, फकीरों, संन्यासियों तथा ब्रह्मचारियों में भी कृष्णभावनामृत आन्दोलन के अनेक शत्रु हैं, जो सदैव उसमें दोष निकालने का प्रयास करते रहते हैं। वे इस पर विचार नहीं करते कि श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से यह आन्दोलन स्वयमेव अग्रसर हो रहा है, क्योंकि महाप्रभु चाहते थे कि इसका प्रसार विश्व के नगर-नगर तथा गाँव-गाँव में हो। हम महाप्रभु की इच्छा को पूरा करने का प्रयास कर रहे हैं और हमारा प्रयास काफी सफल रहा है, किन्तु इस आन्दोलन के शत्रु इसमें उसी तरह दोष निकालने का व्यर्थ ही प्रयास कर रहे हैं, जिस तरह धूर्त रामचन्द्र खान ने हरिदास ठाकुर का विरोध किया था।

वेश्या-गणे कहे, “एइ वैरागी हरिदास ।

तुमि-सब कर इहार वैराग्य-धर्म नाश” ॥105॥

वेश्या-गणे-वेश्याओं से; कहे-कहा; एइ-यह; वैरागी-संन्यासी है; हरिदास-हरिदास ठाकुर; तुमि-सब-तुम सब; कर-कारण बनो; इहार—उसका; वैराग्य-धर्म-संन्यास जीवन से; नाश-पतन।

अनुवाद

रामचन्द्र खान ने वेश्याओं से कहा, “हरिदास ठाकुर नाम का एक वैरागी है। तुम सब उसे तपस्या के व्रत से विचलित करने की कोई युक्ति निकालो।”

तात्पर्य

भक्ति तो वैराग्यविद्या (वैराग्य तथा ज्ञान) का मार्ग है। हरिदास ठाकुर इस मार्ग पर चल रहे थे, किन्तु रामचन्द्र खान ने उनके व्रत को खंडित करने की योजना बनाई। वैराग्य का अर्थ है, इन्द्रिय भोग, विशेष करके यौन सुख का परित्याग। इसलिए ब्रह्मचारी, संन्यासी या वानप्रस्थ को स्त्रियों से सम्बन्ध रखने का कड़ा निषेध है। हरिदास ठाकुर कठोर वैरागी थे। इसलिए रामचन्द्र खान ने वेश्याओं को बुलाया, क्योंकि वे अपने स्त्री सुलभ प्रभाव से ब्रह्मचर्य व्रत को भंग करने और भक्ति में लगे वैरागी या पुरुष को दूषित करने की विधि जानती हैं। रामचन्द्र खान द्वारा हरिदास ठाकुर का व्रत भंग कराने के लिए अन्य स्त्रियों को फुसला पाना असम्भव था। इसीलिए उसने वेश्याओं को बुलाया। भारत में स्त्रियों के साथ स्वतन्त्र रूप से मिल-जुल पाना कभी सम्भव नहीं रहा, किन्तु यदि कोई वेश्याओं से संगति करना चाहता था, तो उसके लिए वेश्याओं के क्षेत्र में वेश्याएँ मिलती थीं। भगवान् कृष्ण के काल में भी वेश्याएँ थीं, क्योंकि यह कहा जाता है कि भगवान् की अगवानी करने द्वारकापुरी की वेश्याएँ भी आई थीं। यद्यपि वे वेश्याएँ थीं, किन्तु वे भी कृष्ण-भक्त थीं।

वेश्या-गण-मध्ये एक सुन्दरी युवती ।

से कहे,—“तिन-दिने हरिब तार मति” ॥106॥

वेश्या-गण-मध्ये-वेश्याओं में; एक-एक; सुन्दरी-आकर्षक; युवती-युवती; से-वह; कहे-बोली; तिन-दिने-तीन दिनों में; हरिब-मैं आकर्षित कर लूँगी; ता-उसका; मति-मन।

अनुवाद

इन वेश्याओं में से एक आकर्षक युवती को चुना गया। उसने वादा किया, “मैं तीन दिनों के भीतर हरिदास ठाकुर के मन को आकृष्ट कर लूँगी।”

खाँन कहे,— “मोर पाइक याउक तोमार सने ।

तोमार सहित एकत्र तारे धरि’ येन आने” ॥ 107॥

खाँन कहे-रामचन्द्र खान ने कहा; मोर पाइक-मेरा सैनिक; याउक-उसे जाने दो; तोमार सने-तुम्हारे साथ; तोमार सहित-तुम्हारे संग; एकत्र-साथ मिलकर; तारे-उसे; धरि’-बन्दी बनाकर; येन-ताकि; आने-ला सकें।

अनुवाद

रामचन्द्र खान ने उस वेश्या से कहा, “मेरा सिपाही तुम्हारे साथ जायेगा, जिससे वह तुम्हें हरिदास ठाकुर के साथ देखते ही तुरन्त उसे बन्दी बना ले और तुम दोनों को मेरे पास ले आये।”

वेश्या कहे,— “मोर सङ्ग हउक एक-बार ।

द्वितीय-बारे धरिते पाइक लइमु तोमार” ॥ 108॥

वेश्या कहे-वेश्या ने कहा; मोर सङ्ग-मेरे साथ संगम; हउक-होने दो; एक-बार-एक बार; द्वितीय-बारे-दूसरी बार; धरिते-बन्दी बनाने के लिए; पाइक-सिपाही; लइमु-मैं ले जाऊँगी; तोमार-तुम्हारा।

अनुवाद

वेश्या ने उत्तर दिया, “पहले मुझे उससे एक बार उनके साथ संग कर लेने दीजिये, तब दूसरी बार मैं अपने साथ आपके सिपाही को उन्हें बन्दी बनाने के लिए ले जाऊँगी।”

रात्रि-काले सेइ वेश्या सुवेश धरिया ।

हरिदासेर वासाय गेल उल्लसित हजा ॥109॥

रात्रि-काले-रात को; सेइ-वह; वेश्या--वेश्या; सु-वेश धरिया-आकर्षक वेश धारण करके; हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; वासाय-निवासस्थान पर; गेल-गई; उल्लसित हजा-अत्यन्त आनन्दित होकर॥

अनुवाद

रात में वह वेश्या खूब सज-धजकर हरिदास ठाकुर की कुटिया में अत्यन्त हर्षपूर्वक गई।

तुलसी नमस्करि' हरिदासेर द्वारे याजा ।

गोसाजिरे नमस्करि' रहिला दाण्डाजा ॥ 110॥

तुलसी नमस्करि'-तुलसी के पौधे को नमस्कार करके; हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; द्वारे-द्वार पर; याजा-जाकर; गोसाजिरे-आचार्य को; नमस्करि'-प्रणाम करके; रहिला दाण्डाजा-खड़ी रही।

अनुवाद

तुलसी के पौधे को नमस्कार करने के बाद वह हरिदास ठाकुर के द्वार पर गई और उन्हें नमस्कार करके वहाँ खड़ी हो गई।

अङ्ग उघाड़िया देखाइ वसिला दुयारे ।

कहिते लागिला किछु सुमधुर स्वरे ॥ 111॥

अङ्ग उघाड़िया-अपने शरीर के अंग प्रदर्शित करके; देखाइ-दिखाकर; वसिला-बैठ गई; दुयारे द्वार की देहली पर; कहिते लागिला-कहने लगी; किछु-कुछ; सु-मधुर स्वरे-अत्यन्त मधुर भाषा में।

अनुवाद

वह उनकी दृष्टि के सामने अपने शरीर को प्रदर्शित करते हुए दरवाजे की देहली पर बैठ गई और उनसे अत्यन्त मधुर शब्दों में बोली।

“ठाकुर, तुमि-परम-सुन्दर, प्रथम यौवन ।

तोमा देखि' कोन् नारी धरिते पारे मन? ॥112॥

ठाकुर-हे महान् भक्त आचार्य; तुमि-आप; परम-सुन्दर-अति सुन्दर; प्रथम यौवन-युवावस्था का आरम्भ; तोमा देखि'-आपको देखकर; कोन् नारी-कौन स्त्री; धरिते पारे-संयम रख सकती है; मन-अपना मन।

अनुवाद

हे ठाकुर, हे महान् उपदेशक, महान् भक्त, आपका शरीर अतीव सुगठित है और आपके यौवन का शुभारम्भ अभी हो ही रहा है। आपको देखने के बाद ऐसी कौन-सी स्त्री होगी, जो अपने मन को वश में रख सके?

तोमार सङ्गम लागि' लुब्ध मोर मन ।

तोमा ना पाइले प्राण ना याय धारण" ॥113 ॥

तोमार सङ्गम-आपके साथ संगम; लागि'-करने के लिए; लुब्ध-लोभित है; मोर मन-मेरा मन; तोमा-आपको; ना पाइले-यदि मैं प्राप्त नहीं करती; प्राण-मेरा जीवन; ना-नहीं; याय-रह सकता; धारण-धारण।

अनुवाद

“मैं आपके संग की इच्छुक हूँ। मेरा मन इसके लिए ललचाया हुआ है। यदि मैं आपको नहीं पाती, तो मैं अपने प्राण धारण नहीं कर सकेंगी।”

हरिदास कहे,—“तोमा करिमु अङ्गीकार ।

सङ्ख्या -नाम-समाप्ति यावत् ना हय आमार ॥ 114॥

तावत् तुमि वसि' शुन नाम-सङ्कीर्तन ।

नाम-समाप्ति हैले करिमु ये तोमार मन” ॥ 115॥

हरिदास कहे-हरिदास ठाकुर ने कहा; तोमा-तुम्हें; करिमु अङ्गीकार-मैं स्वीकार करूँगा; सङ्ख्या-नाम-पवित्र नाम की संख्या; समाप्ति-समाप्त; यावत्-जब तक; ना-नहीं; हय होती; आमार-मेरा; ताम्ब-तब तक; तुमि-तुम; वसि'-

बैठकर; शून-सुनो; नाम-सङ्कीर्तन-पवित्र नाम का जप; नाम-नाम जप की समाप्ति-समाप्ति; हैले-जब हो जायेगी; करिमु-
मैं करूँगा; ये-जो; तोमार-तुम्हारे; मन-मन में है।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया, “मैं तुम्हें अवश्य अपना लूँगा, किन्तु तुम्हें तब तक प्रतीक्षा करनी होगी,
जब तक मैं अपनी जप माला में अपने निर्धारित जप समाप्त न कर लूँ। उस समय तक कृपया बैठो और पवित्र
नाम के जप का श्रवण करो। ज्योंही मैं नाम जप समाप्त कर लूँगा, मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा।”

एत शुनि' सेइ वेश्या वसिया रहिला ।

कीर्तन करे हरिदास प्रातः काल हैला ॥116॥

एत शुनि'-यह सुनकर; सेइ वेश्या-वह वेश्या; वसिया रहिला-वहीं बैठी रही; कीर्तन-जप; करे-करते हैं; हरिदास-
हरिदास ठाकुर; प्रातः काल हैला-प्रातः का प्रकाश (उदय) हो गया।

अनुवाद

यह सुनकर वह वेश्या वहीं बैठी रही और हरिदास ठाकुर भोर होने तक जपमाला पर जप करते रहे।

प्रातःकाल देखि' वेश्या उठिया चलिला ।

सब समाचार याइ खाँनैरे कहिला ॥ 117॥

प्रातः काल देखि'-सवेरा देखकर; वेश्या-वेश्या; उठिया चलिला-खड़ी हो गई और चली गई; सब समाचार-सब
समाचार; याइ-जाकर; खाँनैरे कहिला-रामचन्द्र खान को बताई।

अनुवाद

जब उस वेश्या ने देखा कि सुबह हो गई, तो वह उठी और चली गई। रामचन्द्र खान के पास आकर
उसने सारे समाचार बतलाए।

‘आजि आमा अङ्गीकार करियाछे वचने ।

कालि अवश्य ताहार सङ्गे हइवे सङ्गमे’ ॥118॥

आजि-आज; आमा-मुझे; अङ्गीकार-स्वीकार; करियाछे-उन्होंने किया है; वचने-वचन देकर; कालि-कल;
अवश्य-जरूर; ताहार सङ्गे-उनके साथ; हइबे-होगा; सङ्गमे-संगम॥

अनुवाद

“आज हरिदास ठाकुर ने मेरे साथ भोग करने का वचन दिया है। कल निश्चय ही मेरा उसके साथ संग
होगा॥”

आर दिन रात्रि हैले वेश्या आइल ।

हरिदास तारे बहु आश्वास करिल ॥ 119॥

आर दिन-अगले दिन; रात्रि-रात; हैले-जब हो गई; वेश्या-वेश्या; आइल-आई; हरिदास-हरिदास ठाकुर ने; तारे-
उसे; बहु-कई; आश्वास करिल-आश्वासन दिये।

अनुवाद

अगली रात को जब वह वेश्या फिर से आई, तो हरिदास ठाकुर ने उसे अनेक आश्वासन दिये।

‘कालि दुःख पाइला, अपराध ना लइबा मोर ।

अवश्य करिमु आमि तोमाय अङ्गीकार ॥120॥

कालि-कल; दुःख पाइला-तुम निराश हुई; अपराध-अपराध; ना लइबा-कृपया मत मानना; मोर-मेरा; अवश्य
निश्चित ही; करिमु-करूँगा; आमि-मैं; तोमाय-तुम्हें; अङ्गीकार-स्वीकार।

अनुवाद

कल रात को तुम्हें निराश होना पड़ा। कृपया मेरा अपराध क्षमा कर दो। मैं अवश्य ही तुम्हें स्वीकार
करूँगा॥

तावत् इहाँ वसि’ शुन नाम-सङ्कीर्तन ।

नाम पूर्ण हैले, पूर्ण हबे तोमार मन’ ॥121॥

तावत्-उस समय तक; इहाँ-यहाँ; वसि'—बैठकर; शुन-सुनो; नाम-सङ्कीर्तन-भगवान् के पवित्र नामों का जप; नाम पूर्ण हैले-जैसी ही नियमित नाम जप समाप्त हो जायेगा; पूर्ण—सन्तुष्ट; हबे हो जायेगा; तोमार मन तुम्हारा मन॥

अनुवाद

कृपया बैठो और तब तक हरे कृष्ण महामन्त्र का जप सुनो, जब तक मेरा नियमित जप पूरा नहीं हो जाता। तब तुम्हारी इच्छा अवश्यमेव पूरी हो जायेगी।”

तुलसीरे ताङ्के वेश्या नमस्कार करि' ।

द्वारे वसि' नाम शुने बले 'हरि' 'हरि' ॥122॥

तुलसीरे—तुलसी के पौधे को; ताङ्के-हरिदास ठाकुर को; वेश्या-वेश्या; नमस्कार करि'-प्रणाम करके; द्वारे वसि'-द्वार पर बैठकर; नाम-पवित्र नाम; शुने-सुनकर; बले—कहने लगी; हरि हरि-“हे मेरे प्रभु हरि, हे मेरे प्रभु हरि।”

अनुवाद

तुलसी के पौधे को तथा हरिदास ठाकुर को नमस्कार करके वह द्वार पर बैठ गई। हरिदास ठाकुर को हरे कृष्ण मन्त्र का जप करते सुनकर वह भी “हे मेरे प्रभु हरि, हे मेरे प्रभु हरि” का उच्चारण करने लगी।

तात्पर्य

यहाँ स्पष्ट देखा जा सकता है कि एक वैष्णव किस तरह दिव्य युक्ति से पतितात्मा का उद्धार करता है। यह वेश्या हरिदास ठाकुर को दूषित करने आई थी, किन्तु उन्होंने इस वेश्या का उद्धार करना अपना कर्तव्य समझा। जैसाकि स्पष्ट दिखलाया गया है, उद्धार की विधि अत्यन्त सरल है। वह वेश्या श्रद्धा तथा आदरपूर्वक हरिदास ठाकुर के सान्निध्य में आई, जिन्होंने स्वयं हरे कृष्ण महामन्त्र के जप द्वारा उसके भौतिक रोग को दूर कर दिया। यद्यपि उस वेश्या का कुछ और ही निकृष्ट उद्देश्य था, किन्तु वह किसी तरह वैष्णव के सान्निध्य में आई और “हरि हरि” उच्चारण का अनुकरण करके उसने उन्हें तुष्ट कर लिया। निष्कर्ष यह है कि वैष्णव की संगति, भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन तथा तुलसी अथवा वैष्णव को नमस्कार करने से मनुष्य दिव्य भक्त बन सकता है। इस तरह उसका भौतिक कल्मष पूर्णतया धुल जाता है।

रात्रि-शेष हैल, वेश्या उसिमिसि करे ।

तार रीति देखि' हरिदास कहेन ताहारे ॥123॥

रात्रि-रात; शेष हैल-समाप्त होने को आई; वेश्या-वेश्या; उसिमिसि-व्याकुल; करे-हो गई; तार-उसके; रीति-कार्यकलाप; देखि'-देखकर; हरिदास-हरिदास ठाकुर: कहने-कहते हैं; ताहारे-उससे।

अनुवाद

जब रात समाप्त हो गई, तो वेश्या व्याकुल हो उठी। यह देखकर हरिदास ठाकुर उससे इस तरह बोले।

कोटि-नाम-ग्रहण-यज्ञ करि एक-मासे ।

एइ दीक्षा करियाछि, हैल आसि' शेषे ॥ 124॥

कोटि-नाम-ग्रहण-1 करोड़ नाम जप; यज्ञ-ऐसा यज्ञ; करि-मैं करता हूँ; एक-मासे-एक महीने में; एइ-यह; दीक्षा-प्रण; करियाछि-मैंने किया है; हैल-यह; आसि-पास है; शेषे-समाप्ति के।

अनुवाद

मैंने एक मास में एक करोड़ नाम जप करने का व्रत ले रखा है। किन्तु अब यह समाप्ति पर है।

तात्पर्य

यदि कोई नित्य प्रतिदिन एक मास तक 333,333 नाम नियमित रूप से जपे, तो उस संख्या में दस और मिलाकर 100 लाख बार जप हो जाये। भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा इसी प्रकार करता है। ऐसी पूजा यज्ञ कहलाती है। यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैः यजन्ति हि सुमेधसः—जिनकी बुद्धि तीव्र होती है, वे हरिनाम यज्ञ को स्वीकार करते हैं। इस यज्ञ को सम्पन्न करने से मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को तुष्ट करता है और आध्यात्मिक जीवन में पूर्णता प्राप्त करता है। बाहरी दृष्टि से हरिदास ठाकुर मुसलमान परिवार के थे। फिर भी चूंकि वे हरे कृष्ण महामन्त्र कीर्तन के यज्ञ में लगे रहते थे, अतः वे नियमित रूप से दीक्षाप्राप्त ब्राह्मण बन गये। जैसाकि श्रीमद्भागवत (3.33.6) में कहा गया है :

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्

यत्प्रह्वणाद् यत्स्मरणादपि क्वचित् ।

श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते

कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥

भक्त चाहे चांडाल परिवार का क्यों न हो, यदि वह भगवान् की शरण ग्रहण कर लेता है, तो वह तुरन्त योग्य ब्राह्मण बन जाता है और यज्ञ करने के लिए उपयुक्त हो जाता है, किन्तु ब्राह्मण परिवार में जन्में व्यक्ति को संस्कार पूरा होने तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। तब जाकर वह संस्कृत या शुद्ध कहलाता है। श्रीमद्भागवत (12.1.40) में यह भी कहा गया है :

असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसावृताः।

प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजान्यरूपिणः ॥

“कलियुग में निम्न जाति के लोग जिनका संस्कार नहीं होता, अर्थात् म्लेच्छगण, जो वास्तविक जीवन में संस्कार का प्रयोग नहीं जानते तथा जो रजो तथा तमो गुणों से आवृत रहते हैं, वे प्रशासकों के पदों पर होंगे। वे अपने नास्तिक कार्यों से नागरिकों का भक्षण करेंगे।” जो व्यक्ति संस्कार विधि से शुद्ध नहीं हुआ रहता, वह असंस्कृत कहलाता है, किन्तु यदि कोई दीक्षा द्वारा शुद्ध बनने के बाद भी क्रियाहीन बना रहता है-अर्थात् दूसरे शब्दों में, यदि कोई अपने जीवन में शुद्धता के सिद्धान्तों को लागू नहीं करता तो वह अशुद्ध म्लेच्छ या यवन ही बना रहता है। दूसरी ओर हम देखते हैं कि यद्यपि हरिदास ठाकुर म्लेच्छ या यवन परिवार में जन्मे थे, किन्तु प्रतिदिन कम-से-कम तीन लाख नाम जप करके नाम यज्ञ करने से वे नामाचार्य हरिदास ठाकुर बन गये।

यहाँ हम पाते हैं कि हरिदास ठाकुर कड़ाई से तीन लाख नाम जप करने के विधान का पालन करते रहे। अतएव जब वेश्या बेचैन होने लगी, तो उन्होंने उसे सूचित किया कि वे पहले अपना जप पूरा कर लें, बाद में वे उसे तुष्ट कर पायेंगे। वस्तुतः हरिदास ठाकुर ने लगातार तीन रात नाम जप किया और उस वेश्या को श्रवण करने का अवसर प्रदान किया। इस तरह वह शुद्ध बन गई, जैसाकि अगले श्लोकों से विदित होगा।

आजि समाप्त हइबे,—हेन ज्ञान छिल ।

समस्त रात्रि निलुँ नाम समाप्त ना हैल ॥125॥

आजि-आज; समाप्त हइबे-समाप्त हो जायेगा; हेन ज्ञान छिल-मैंने सोचा; समस्त रात्रि-सारी रात; निलुँ-मैंने लिया; नाम-भगवान् का पवित्र नाम; समाप्त-समाप्त; ना हैल-नहीं हुआ।

अनुवाद

“मैंने सोचा था कि मैं हरे कृष्ण मन्त्र जपने का अपना यज्ञ आज समाप्त कर सकूँगा। मैंने सारी रात नाम जप करने का भरसक प्रयास किया, किन्तु अब भी उसे समाप्त नहीं कर सका।”

“कालि समाप्त हबे, तबे हबे व्रत-भङ्ग ।

स्वच्छन्दे तोमार सङ्गे हइबेक सङ्ग” ॥ 126॥

कालि-कल; समाप्त हबे—यह पूरा हो जायेगा; तबे-उस समय; हबे-होगा; व्रत-भङ्ग-मेरे व्रत का अन्त; स्वच्छन्दे-पूर्ण स्वतन्त्रतापूर्वक; तोमार सङ्गे-तुम्हारे साथ; हइबेकहोगा; सङ्ग-संगम।

अनुवाद

“कल मैं अवश्य ही समाप्त कर लूँगा और मेरा व्रत पूरा हो जायेगा। तब मेरे लिए सम्भव हो सकेगा कि पूरी स्वतन्त्रता से तुम्हारे साथ रमण कर सकूँगा।”

तात्पर्य

हरिदास ठाकुर उस वेश्या के साथ कभी भी भोग करना नहीं चाहते थे, किन्तु उन्होंने युक्ति से उसको अपने द्वारा जप किये जा रहे भगवान् के पवित्र नाम सुनने का अवसर देकर उसका उद्धार किया। शुद्ध भक्त हरे कृष्ण मन्त्र का जप करते हैं और इस जप को शुद्ध दिव्य व्यक्ति से सुनकर ही मनुष्य सारे पापकर्मों से शुद्ध हो जाता है, चाहे वह कितना ही निम्न कुल का या पतित क्यों न हो। ज्योंही कोई इस प्रकार पापकर्मों के फल से पूरी तरह मुक्त हो जाता है, त्योंही वह भगवान् की भक्तिमय सेवा करने का पात्र बन जाता है। पतितात्माओं को भक्ति में लगाने की यही विधि है। भगवद्गीता (7.28) में भगवान् कृष्ण कहते हैं :

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

“जिन मनुष्यों ने पूर्वजन्मों में तथा इस जन्म में पुण्यकर्म किये हैं और जिनके पापकर्म पूर्णतया नष्ट हो चुके हैं, वे मोह के द्वन्द्वों से मुक्त हो जाते हैं और वे संकल्पपूर्वक मेरी सेवा में तत्पर होते हैं।”

वेश्या गया समाचार खाँनेरे कहिल ।

आर दिन सन्ध्या हड़ते ठाकुर-ठाजि आइल ॥127॥

वेश्या-वेश्या; गया-लौटकर; समाचार-सूचना; खाँनेरे कहिल-रामचन्द्र खान से कही; आर दिन-अगले दिन; सन्ध्या हड़ते-साँय होने पर; ठाकुर-ठाजि आइल-वह आकर ठाकुर हरिदास के निवास पर रह गई।

अनुवाद

वह वेश्या रामचन्द्र खान के पास लौट गई और जो कुछ हुआ था, उसे बतलाया। अगले दिन वह शीघ्र ही, सन्ध्या होते आ गई और हरिदास ठाकुर के पास रुकी रही।

तुलसीके, ठाकुरके नमस्कार करि' ।

द्वारे वसि' नाम शुने, बले 'हरि' 'हरि' ॥ 128॥

तुलसीके-तुलसी को; ठाकुरके-और हरिदास ठाकुर को; नमस्कार करि'—प्रणाम करके; द्वारे वसि-द्वार पर बैठकर; नाम शुने पवित्र नाम सुनती है; बले-बोलती है; हरि हरि-भगवान् का पवित्र नाम।

अनुवाद

तुलसी वृक्ष को तथा हरिदास ठाकुर को नमस्कार करने के बाद वह कमरे की दहलीज पर बैठ गई। इस तरह वह हरिदास ठाकुर का कीर्तन सुनने लगी और स्वयं भी उसने 'हरि' 'हरि' अर्थात् भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण किया।

'नाम पूर्ण हबे आजि',—बले हरिदास ॥

'तबे पूर्ण करिमु आजि तोमार अभिलाष' ॥129॥

नाम-पवित्र नाम का जप; पूर्ण-पूर्ण; हबे-हो जायेगा; अजि-आज; बले हरिदास-हरिदास ठाकुर ने कहा; तबे-तब; पूर्ण करिमु-मैं सन्तुष्ट करूँगा; आजि-आज; तोमार अभिलाष—तुम्हारी इच्छाएँ।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने उसे बतलाया, “आज मेरा नाम जप पूरा हो जायेगा। तब मैं तुम्हारी सारी इच्छाएँ तुष्ट करूँगा।”

कीर्तन करिते ऐछे रात्रि-शेष हैल ।

ठाकुरेर सने वेश्यार मन फिरि' गेल ॥ 130॥

कीर्तन करिते-जप करते हुए; ऐछे—उस प्रकार; रात्रि-शेष हैल-रात समाप्त हो गई; ठाकुरेर सने-हरिदास ठाकुर के संग के कारण; वेश्यार-वेश्या का; मन-मन; फिरि' गेल-बदल गया।

अनुवाद

जप करते-करते रात बीत गई, किन्तु हरिदास ठाकुर की संगति के कारण वेश्या का मन बदल चुका था।

दण्डवत् हजा पड़े ठाकुर-चरणे ॥

रामचन्द्र-खाँनैर कथा कैल निवेदने ॥131॥

दण्डवत् हजा-प्रणाम करते हुए; पड़े-वह गिर पड़ी; ठाकुर-चरणे-हरिदास ठाकुर के चरणकमलों में; रामचन्द्र-खाँनैर-रामचन्द्र खान की; कथा-योजना; कैल-की; निवेदने-उद्घाटित ।

अनुवाद

वह वेश्या अब शुद्ध हो गई थी। वह हरिदास ठाकुर के चरणकमलों पर गिर पड़ी और उसने स्वीकार किया कि रामचन्द्र खान ने उन्हें दूषित करने के लिए उसे नियुक्त किया था।

“वेश्या हजा मुजि पाप करियाछों अपार ॥

कृपा करि' कर मो-अधमे निस्तार" ॥132॥

वेश्या हजा-वेश्या होकर; मुजि-मैंने; पाप-पाप कार्य; करियाछों-किये हैं; अपार-असीमित; कृपा करि'-कृपा करके; कर-कीजिए; मो-अधर्म-मुझ सबसे अधम का; निस्तार-उद्धार।

अनुवाद

उसने कहा, “चूँकि मैंने वेश्या का पेशा अपनाया है, अतएव मैंने असंख्य पापकर्म किये हैं। हे प्रभु, मुझ पर कृपालु हों। मुझ पतिता का उद्धार करें।”

ठाकुर कहे,—खाँनैर कथा सब आमि जानि ।

अज्ञ मूर्ख सेइ, तारे दुःख नाहि मानि ॥ 133 ॥

ठाकुर कहे-हरिदास ठाकुर ने कहा; खानैर कथा-रामचन्द्र खान की योजनाएँ; सब-सारी; आमि जानि-मैं जानता हूँ; अज्ञ मूर्ख सेइ-वह एक अज्ञानी मूर्ख है; तारे-उससे; दुःख नाहि मानि-मैं दुःखी नहीं हूँ।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया, “मैं रामचन्द्र खान के षड्यंत्र के बारे में सब कुछ जानता हूँ वह एक निपट अज्ञानी मूर्ख है। इसलिए उसके कार्यों से मैं दुःखी नहीं हूँ।

सेइ-दिन याइताम ए-स्थान छाड़िया ॥

तिन दिन रहिलाड तोमा निस्तार लागिया ॥ 134॥

सेइ-दिन-उसी दिन; याइताम-मैं चला जाता; ए-स्थान-यह स्थान; छाड़िया-छोड़कर; तिन दिन-तीन दिन के लिए; रहिलाड-मैं रहा; तोमा-तुम्हारे; निस्तार लागिया-उद्धार के लिए।

अनुवाद

“जिस दिन रामचन्द्र खान मेरे विरुद्ध षड्यंत्र रच रहा था, उसी दिन मैंने यह स्थान छोड़ दिया होता, किन्तु तुम मेरे पास आई, इसलिए मैं तुम्हारा उद्धार करने के लिए तीन दिनों तक यहाँ रुका रहा।”

वेश्या कहे, – “कृपा करि’ करह उपदेश ।

कि मोर कर्तव्य, याते याय भव-क्लेश" ॥135॥

वेश्या कहे-वेश्या ने कहा; कृपा करि’-कृपा करके; करह उपदेश-कृपया उपदेश दीजिए; कि-क्या; मोर कर्तव्य-मेरा कर्तव्य है; याते-जिससे; याय-दूर हो जाएँ; भव-क्लेश-सारे सांसारिक दुःखा।

अनुवाद

वेश्या ने कहा, “कृपया मेरे आध्यात्मिक गुरु बनिये। मेरे कर्तव्य के बारे में उपदेश दीजिये, जिससे मुझे भौतिक अस्तित्व से छुटकारा मिल सके।”

ठाकुर कहे,—“घरेर द्रव्य ब्राह्मणे कर दान ।

एइ घरे आसि' तुमि करह विश्राम ॥136॥

ठाकुर कहे-श्री हरिदास ठाकुर ने कहा; घरेर-घर की; द्रव्य-वस्तुएँ; ब्राह्मणे-ब्राह्मणों को; कर दान-दान देकर; एइ घरे-इस घर में; आसि'-लौटकर; तुमि-तुम; करह विश्राम-रहो।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया, “तुम तुरन्त अपने घर जाओ और तुम्हारी जितनी सम्पत्ति हो, उसे ब्राह्मणों में बाँट दो। तब इस कुटिया में लौट आओ और सदा के लिए कृष्णभावना में यहाँ रहो।

तात्पर्य

हरिदास ठाकुर का यह उपदेश कि वेश्या अपनी सारी सम्पत्ति ब्राह्मणों को बाँट दे, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हरिदास ठाकुर ने वेश्या को कभी यह उपदेश नहीं दिया कि वह तथाकथित दरिद्रनारायण को या अन्य ऐसे ही व्यक्तियों को दान दे। वैदिक सभ्यता के अनुसार दान केवल योग्य ब्राह्मणों को दिया जाना चाहिए, जैसाकि भगवद्गीता (18.42) में कहा गया है :

शमोदमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥

ब्राह्मणों के गुण हैं-सत्यता, इन्द्रियों तथा मन पर संयम, सहिष्णुता, सरलता, ज्ञान, दिव्य ज्ञान का जीवन में व्यावहारिक उपयोग तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में पूर्ण श्रद्धा। जो व्यक्ति आध्यात्मिक ज्ञान की खोज में लगे रहते हैं, उन्हें अपनी आजीविका कमाने के लिए समय नहीं मिलता। वे भगवान् की कृपा पर ही पूरी तरह आश्रित रहते हैं। भगवद्गीता (9.22) में भगवान् कहते हैं कि वे उन लोगों की सारी आवश्यकताओं का वहन स्वयं करते हैं (योगक्षेमं वहाम्यहम्) ।

वैदिक सभ्यता की संस्तुति है कि ब्राह्मणों तथा संन्यासियों को दान दिया जाए, तथाकथित दरिद्रनारायण को नहीं। नारायण कभी दरिद्र नहीं हो सकते न ही दरिद्र कभी नारायण हो सकता है, क्योंकि ये दोनों एक दूसरे के विरोधी शब्द हैं। नास्तिक लोग ऐसी मनगढ़ंत बातों की खोज करते हैं और उन्हें मूर्खा को सिखाते हैं। किन्तु दान वस्तुतः ब्राह्मणों

तथा संन्यासियों को दिया जाना चाहिए, क्योंकि उन्हें जो भी धन इस तरह मिलता है, उसे वे कृष्ण के लिए खर्च करते हैं। ब्राह्मण को दिया जाने वाला दान कृष्ण के पास चला जाता है। भगवद्गीता (9.27) में कृष्ण कहते हैं :

यत्करोषि यदश्रासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

“हे कुन्तीपुत्र, तुम जो कुछ करते हो, जो कुछ खाते हो, जो कुछ अर्पित करते हो या दान देते हो और जो भी तपस्या करते हो, उसे मुझे अर्पित करते हुए करो।” वास्तव में हर वस्तु कृष्ण की है, किन्तु तथाकथित सभ्य लोग दुर्भाग्यवश सोचते हैं कि हर वस्तु उनकी है। यही भौतिकतावादी सभ्यता की त्रुटि है। उस वेश्या ने गलत उपायों से धन कमाया था, इसलिए हरिदास ठाकुर ने उसे परामर्श दिया कि उसके पास जो भी हो, वह ब्राह्मणों में बाँट दे। जब श्रील रूप गोस्वामी ने गृहस्थ जीवन से अवकाश लिया, तो उन्होंने अपनी पचास प्रतिशत आय ब्राह्मणों तथा वैष्णवों में बाँट दी। ब्राह्मण जानता है कि परम सत्य क्या है और एक वैष्णव परम सत्य को जानते हुए परम सत्य, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की ओर से कार्य करता है। सामान्यतया लोग अनेक गलत उपायों से धन कमाते हैं। इसलिए कभी न कभी मनुष्य को अवकाश ग्रहण करके अपने पास जो कुछ हो, उसे ब्राह्मणों तथा वैष्णवों में बाँट देना चाहिए, क्योंकि वे लोग पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की महिमा के प्रचार द्वारा भक्ति में लगे रहते हैं।

निरन्तर नाम लओ, कर तुलसी सेवन ।

अचिरात् पाबे तबे कृष्णेर चरण ॥137॥

निरन्तर—एक दिन में 24 घण्टे; नाम लओ—हरे कृष्ण मन्त्र जप करो; कर-करो; तुलसी सेवन—तुलसी के पौधे की पूजा; अचिरात्—बहुत शीघ्र; पाबे—तुम प्राप्त करोगी; तबे-तब; कृष्णेर चरण-भगवान् कृष्ण के चरणकमल।

अनुवाद

“निरन्तर हरे कृष्ण मन्त्र का जप करो और जल से सींचकर तथा स्तुति करके तुलसी की सेवा करो। इस तरह तुम तुरन्त ही कृष्ण के चरणकमलों की शरण पाने का अवसर प्राप्त कर सकोगी।”

तात्पर्य

कम-से-कम पाँच हजार वर्ष पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण ने इच्छा व्यक्त की थी कि हर व्यक्ति उनकी शरण में जाये। (सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज)। तो लोग ऐसा क्यों नहीं कर सकते ? कृष्ण आश्चर्य करते हैं- अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः-“मैं तुम्हें सारे पापकर्मों के फलों से मुक्त कर दूंगा। डरो मत।” हर व्यक्ति अपने पापकर्मों का फल भोग रहा है, किन्तु कृष्ण कहते हैं कि यदि आप उनकी शरण में जाते हैं, तो वे पापकर्मों के फलों से आपको सुरक्षा प्रदान करेंगे। किन्तु आधुनिक सभ्यता न तो कृष्ण में रुचि रखती है, न पापमय कर्मों से छुटकारा पाने में। इसीलिए लोग कष्ट भोग रहे हैं। शरणागति ही भगवद्गीता का आखरी उपदेश है, किन्तु जो व्यक्ति भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण नहीं कर सकता, उसके लिए श्रेयस्कर होगा कि हरिदास ठाकुर के उपदेशानुसार हरे कृष्ण मन्त्र का निरन्तर जप करे।

हम कृष्णभावनामृत आन्दोलन में अपने अनुयायियों को माला पर हरे कृष्ण मन्त्र का लगातार जप करते रहने की शिक्षा देते हैं। जो लोग इसके अभ्यस्त नहीं हैं, उनको माला पर कम से कम सोलह माला जप करने का उपदेश दिया जाता है, जिससे वे प्रशिक्षित हो जाएँ। अन्यथा श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा है कि :

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।

अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

“अपने आपको तिनके से भी क्षुद्र समझते हुए विनीत भाव से भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना चाहिए। भक्त को वृक्ष से भी अधिक सहनशील, मिथ्या प्रतिष्ठा के भाव से रहित तथा अन्यो का आदर करने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। ऐसी मनोदशा में मनुष्य भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन निरन्तर कर सकता है।” सदा का अर्थ है सर्वदा। हरिदास ठाकुर कहते हैं- निरन्तर नाम लओ—“हरे कृष्ण मन्त्र का जप बिना रुके करते रहो।”

यद्यपि कृष्ण चाहते हैं कि हर व्यक्ति उनके चरणकमलों में शरण ले, किन्तु लोग अपने पापकर्मों के कारण ऐसा नहीं कर पाते। न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः-पाप करने वाले धूर्त तथा मूर्ख, अधम जन अचानक कृष्ण के चरणकमलों पर आत्म-समर्पण नहीं कर सकते। तो भी यदि वे हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करना शुरू कर दें और तुलसी की सेवा करें, तो शीघ्र ही समर्पण करने में समर्थ हो सकते हैं। मनुष्य का वास्तविक कर्तव्य कृष्ण के चरणकमलों में आत्म-समर्पण करना है, किन्तु यदि वह ऐसा नहीं कर सके, तो उसे इसी विधि को अपनाना चाहिए जिसका सूत्रपात श्री

चैतन्य महाप्रभु तथा उनके परम विश्वस्त सेवक नामाचार्य हरिदास ठाकुर ने किया। कृष्णभावनामृत में सफलता पाने की यही विधि है।

एत बलि' तारे 'नाम' उपदेश करि' ।

उठिया चलिला ठाकुर बलि' 'हरि' 'हरि' ॥ 138॥

एत बलि'—ऐसा कहकर; तारे-उसे; नाम उपदेश करि'—हरे कृष्ण महामन्त्र के जप की विधि का उपदेश देकर; उठिया-उठकर; चलिला—चले गये; ठाकुर-हरिदास ठाकुर; बलि'—जपते हुए; हरि हरि-हरे कृष्ण महामन्त्र।

अनुवाद

इस तरह वेश्या को हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन की विधि के विषय में उपदेश देकर हरिदास ठाकुर उठे और लगातार हरि हरि कीर्तन करते हुए चले गये।

तबे सेइ वेश्या गुरु आज़ा लइल ।

गृह-वित्त येबा छिल, ब्राह्मणेरे दिल ॥139॥

तबे-उसके बाद; सेइ-वह; वेश्या-वेश्या; गुरु—आध्यात्मिक गुरु का; आज़ा-आदेश; लइल प्राप्त कर; गृह-वित्त-सभी घरेलू सम्पत्तियों को; येबा-जो भी; छिल-थीं; ब्राह्मणेरे—ब्राह्मणों को दिल दे आई।

अनुवाद

तत्पश्चात् उस वेश्या ने अपने पास जो भी घरेलू सम्पत्ति थी, उसे अपने गुरु की आज्ञानुसार ब्राह्मणों में वितरित कर दिया।

तात्पर्य

कहीं कहीं गृहवित्त के स्थान पर गृहवृत्ति शब्द पाया जाता है। वृत्ति का अर्थ “पेशा” है। वेश्या की गृहवृत्ति तो मूर्ख लोगों को मोहित करके उन्हें संभोग के लिए प्रवृत्त करना था। किन्तु यहाँ पर गृहवृत्ति शब्द उपयुक्त शब्द नहीं है। उचित शब्द तो गृहवित्त ही है, जिसका अर्थ है “उसके पास जो भी घर पर था। उसने जो कुछ भी वेश्यावृत्ति से कमाया था, वह पापमय जीवन की कमाई थी। जब ऐसी सम्पत्ति ब्राह्मणों तथा वैष्णवों को दी जाती है, जो उसे अपने आध्यात्मिक

जीवन में प्रगति के फलस्वरूप, भगवान् की सेवा में लगा सकते हैं, तो इससे दान देने वाले को अप्रत्यक्ष रूप से लाभ पहुँचता है, क्योंकि वह इस प्रकार पापकर्मों के फल से छुटकारा पा लेता है। जैसाकि कृष्ण वचन देते हैं-अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि-“मैं तुम्हें सारे पापकर्मों के फलों से बचा लूँगा।” जब हमारे कृष्णभावनाभावित भक्त दान माँगने या सदस्यता शुल्क एकत्र करने जाते हैं, तो इस तरह से जो धन प्राप्त होता है, उसका उपयोग कृष्णभावनामृत को सारे संसार में प्रसारित करने के लिए ही किया जाता है। कृष्णभावनाभावित भक्त दूसरों का धन कृष्ण-सेवा के लिए एकत्र करते हैं और वे कृष्णप्रसाद खाकर तथा कृष्ण जो कुछ भी उनके जीवन-निर्वाह के लिए देते हैं, उसीसे तुष्ट होते हैं। वे भौतिक सुविधाओं की इच्छा नहीं करते। किन्तु वे वेश्याओं या इसी तरह के लोगों की सम्पत्ति को भगवान् की सेवा में लगाने के लिए कष्ट सहते हैं और इस तरह उन्हें पापों के फलों से मुक्त कराते हैं। एक वैष्णव-गुरु धन या अन्य भेटें स्वीकार करता है, किन्तु वह इनका उपयोग इन्द्रियतृप्ति के लिए नहीं करता। एक शुद्ध वैष्णव अपने आपको एक भी व्यक्ति को पाप के फल से छुड़ा पाने में असमर्थ मानता है, किन्तु किसी की गाढ़ी कमाई को भगवान् की सेवा में लगाकर वह उसे पाप के फलों से मुक्त कराता है। एक वैष्णव-गुरु कभी भी अपने शिष्यों के उपहारों पर आश्रित नहीं रहता। हरिदास ठाकुर के उपदेशों का पालन करके शुद्ध वैष्णव अपने लिए किसी से एक पैसा भी नहीं लेता, अपितु वह अपने अनुयायियों को प्रेरित करता है कि उनके पास जो भी हो, उसे भगवान् की सेवा में खर्च करें।

माथा मुड़ि' एक-वस्त्रे रहिल सेइ घरे ।

रात्रि-दिने तिन-लक्ष नाम ग्रहण करे ॥140॥

माथा मुड़ि'-सिर मुँडाकर; एक-वस्त्रे-एक वस्त्र पहनकर; रहिल-रहने लगी; सेइ घरे-उसी कक्ष में; रात्रि-दिने-दिन-रात; तिन-लक्ष-3,00,000; नाम-पवित्र नाम; ग्रहण करे-जपती थी।

अनुवाद

वैष्णव-नियमों के अनुसार उस वेश्या ने अपना सिर मुँडा लिया और केवल एक वस्त्र पहने उसी कमरे में रहने लगी। वह अपने गुरु के पदचिह्नों पर चलकर प्रतिदिन तीन लाख नाम का जप करने लगी। वह दिन-रात जप करती रहती थी।

तुलसी सेवन करे, चर्वण, उपवास ।

इन्द्रिय-दमन हैल, प्रेमेर प्रकाश ॥ 141॥

तुलसी-तुलसी के पौधे की; सेवन करे-वह पूजा करती थी; चर्वण-चबाकर; उपवास-उपवास; इन्द्रिय-दमन-इन्द्रियों को वश में करके; हैल-हुआ; प्रेमेर प्रकाश-भगवत्प्रेम के लक्षण का प्राकट्य।

अनुवाद

वह अपने गुरु के पदचिह्नों पर चलकर तुलसी की पूजा करने लगी। वह नियमित भोजन न खाकर, भिक्षा में जो मिलता उसे खाती और यदि कुछ न मिलता तो उपवास करती। इस तरह बहुत कम खाकर तथा उपवास करके उसने इन्द्रियों को वश में कर लिया और ज्योंही उसकी इन्द्रियाँ वश में हो गईं, त्योंही उसमें ईश्वर-प्रेम के लक्षण प्रकट होने लगे।

प्रसिद्धा वैष्णवी हैल परम-महान्ती ।

बड़ बड़ वैष्णव तारं दर्शनेते यान्ति ॥142॥

प्रसिद्धा-विख्यात; वैष्णवी-भगवान् की भक्त; हैल-हो गई; परम-महान्ती-अत्यन्त उन्नत; बड़ बड़ वैष्णव-अनेक मान्य, उच्च भक्त; तारं-उसको; दर्शनेते-मिलने; यान्ति-जाते थे।

अनुवाद

इस तरह वह वेश्या विख्यात भक्ति बन गई। वह आध्यात्मिक जीवन में अत्यन्त उन्नत हो गई और अनेक बड़े-बड़े वैष्णव उसके दर्शन के लिए आने लगे।

तात्पर्य

बड़े-बड़े वैष्णव भक्त वेश्याओं को मिलने में रुचि नहीं रखते, किन्तु जब कोई वेश्या या अन्य पतितात्मा वैष्णव बन जाते हैं, तो बड़े-बड़े वैष्णव उसके दर्शन में रुचि लेते हैं। यदि वैष्णव सिद्धान्तों का पालन किया जाए, तो कोई भी व्यक्ति वैष्णव बन सकता है। जो भक्त इन सिद्धान्तों का पालन करता है, वह भौतिक स्तर पर नहीं रहता। इसलिए किसी के जन्मस्थान का नहीं, अपितु सिद्धान्तों का कड़ाई से पालन करने पर विचार करना चाहिए। अनेक भक्त यूरोप तथा अमरीका से आकर हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में सम्मिलित होते हैं, किन्तु उन्हें यूरोपियन वैष्णव या अमेरिकी वैष्णव नहीं मानना चाहिए। वैष्णव तो वैष्णव होता है, इसलिए उसे वैष्णव को प्राप्त होने वाला समस्त सम्मान दिया जाना चाहिए।

वेश्यार चरित्र देखि' लोके चमत्कार ।

हरिदासेर महिमा कहे करि' नमस्कार ॥143॥

वेश्यार-वेश्या का; चरित्र-चरित्र; देखि'-देखकर; लोके-सभी लोग; चमत्कार-आश्चर्यचकित थे; हरिदासेर-हरिदास ठाकुर की; महिमा-महिमा; कहे-कहते; करि' नमस्कार-प्रणाम करके।

अनुवाद

वेश्या का उन्नत चरित्र देखकर सारे लोग चकित थे। सारे लोगों ने हरिदास ठाकुर के प्रभाव का गुणगान किया और उन्हें नमस्कार किया।

तात्पर्य

कहा गया है कि फलेन परिचीयते—मनुष्य अपने कर्मों के फल से पहचाना जाता है। वैष्णव-समाज में कई प्रकार के वैष्णव हैं। उनमें से कुछ गोस्वामी कहलाते हैं, कुछ स्वामी, कुछ प्रभु तथा कुछ प्रभुपाद। किन्तु कोई भी मात्र ऐसे नाम से नहीं पहचाना जाता। जब कोई गुरु अपने शिष्यों के चरित्र को बदल देता है, तब उसे सच्चा गुरु माना जाता है। हरिदास ठाकुर ने सचमुच ही पेशेवर वेश्या के चरित्र को बदल दिया। लोगों ने इसकी बहुत प्रशंसा की और इसीलिए उन्होंने हरिदास ठाकुर को नमस्कार किया और उनकी महिमा का गुणगान किया।

रामचन्द्र खाँन अपराध-बीज कैल ।

सेइ बीज वृक्ष हजा आगेते फलिल ॥144॥

रामचन्द्र खाँन-रामचन्द्र खान ने; अपराध-अपराध का; बीज-बीज; कैल-बोया; सेइ बीज-वही बीज; वृक्ष ज्ञा-वृक्ष बनकर; आगेते-बाद में; फलिल-फलित हुआ।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर को विचलित करने के लिए वेश्या को प्रेरित करके रामचन्द्र खान ने उनके चरणों में अपराध के बीज को उगने दिया। बाद में यही बीज एक वृक्ष बन गया और जब यह फला, तो रामचन्द्र खान ने इसके फल खाये।

महदपराधेर फल अद्भुत कथन ।

प्रस्ताव पाजा कहि, शुन, भक्त-गण ॥ 145 ॥

महत्-अपराधेर-महान् भक्त के चरणों में महान् अपराध का; फल-परिणाम; अद्भुत-उद्भूत; कथन-वर्णन के;
प्रस्ताव-अवसर का; पाजा-लाभ उठाकर; कहि-मैं कहता हूँ; शुन-सुनो; भक्त-गण-हे भक्तों।

अनुवाद

उच्च भक्त के चरणों पर इस अपराध से एक अद्भुत कथा का जन्म हुआ। इन घटनाओं से प्राप्त अवसर
का लाभ उठाकर मैं वह सब बतलाऊँगा, जो घटित हुआ। हे भक्तों, इसे सुनो।

सहजेइ अवैष्णव रामचन्द्र-खाँन ।

हरिदासेर अपराधे हैल असुर-समान ॥146॥

सहजेइ-स्वाभाविक रूप से; अवैष्णव-अभक्त; रामचन्द्र-खाँन-रामचन्द्र खान; हरिदासेर-हरिदास के चरणकमलों
में; अपराधे-अपराध द्वारा; हैल-हो गया; असुर-समान-एक असुर के समान।

अनुवाद

रामचन्द्र खान स्वभावतः अभक्त था। अब, हरिदास ठाकुर के चरणों पर अपराध करके वह पूरा आसुरी
नास्तिक जैसा बन गया।

वैष्णव-धर्म निन्दा करे, वैष्णव-अपमान ।

बहु-दिनेर अपराधे पाइल परिणाम ॥147॥

वैष्णव-धर्म-वैष्णव धर्म; निन्दा करे-निन्दा करके; वैष्णव अपमान-भक्तों का अपमान करके; बहु-दिनेर-चिर
काल तक; अपराधे-अपराध कृत्यों द्वारा; पाइल-प्राप्त किया; परिणाम-परिणाम।

अनुवाद

वैष्णव धर्म की निन्दा करने तथा दीर्घकाल तक भक्तों का अपमान करने के कारण अब उसे अपने
अपराध-कर्मों का फल मिला।

तात्पर्य

रामचन्द्र खान विष्णु तथा वैष्णवों के चरणों का बड़ा अपराधी था। जिस तरह ब्राह्मण पिता विश्वश्रवा से उत्पन्न होने पर भी रावण को असुर या राक्षस इसीलिए कहा गया, क्योंकि उसने भगवान् रामचन्द्र (विष्णु) तथा हनुमान (वैष्णव) के प्रति अपराध किये थे, उसी तरह रामचन्द्र खान भी ऐसा असुर बना, क्योंकि उसने हरिदास ठाकुर तथा अन्यो के प्रति अपराध किये थे।

नित्यानन्द-गोसाजि गौड़े यबे आइला ।

प्रेम प्रचारिते तबे भ्रमिते लागिला ॥ 148 ॥

नित्यानन्द-गोसाजि-नित्यानन्द प्रभु; गौड़े-बंगाल में; यबे-जब; आइला-वापस आये; प्रेम प्रचारिते-प्रेम भक्ति का प्रचार करने के लिए; तबे-उस समय; भ्रमिते लागिला-यात्रा करने लगे।

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करने बंगाल लौट आये, तो वे सारे देश में भ्रमण करने लगे।

प्रेम-प्रचारण आर पाषण्ड-दलन ।

दुइ-कार्ये अवधूत करेन भ्रमण ॥ 149॥

प्रेम-प्रचारण-भक्ति का प्रचार; आर-और; पाषण्ड-दलन-नास्तिक लोगों का दमन; दुइ-कार्ये-दो प्रकार के कार्यो करने के लिए; अवधूत-महान् भक्त और साधु; करेन-करते थे; भ्रमण-भ्रमण।

अनुवाद

भगवान् के सर्वाधिक समर्पित भक्त नित्यानन्द प्रभु दो कार्यो से-भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करने तथा नास्तिकों को परास्त और दमन करने के उद्देश्य से-देश-भर में भ्रमण करने लगे।

तात्पर्य

भगवद्गीता (4.8) में कहा गया है कि :

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

भगवान् कृष्ण दो कारणों से प्रत्येक युग में प्रकट होते हैं—भक्तों का उद्धार करने तथा अभक्तों का विनाश करने। उनके भक्तों के भी उसी तरह के दो कार्य होते हैं—कृष्ण-भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करना तथा सभी प्रकार के नास्तिक असुरों को परास्त करना। नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश का इस तरह पालन कर रहे थे जो लोग नित्यानन्द प्रभु का दृढ़ता से अनुगमन करते हैं, वे वैसा ही कार्य करते हैं। भक्तों की दो श्रेणियाँ हैं। एक गोठ्यानन्दी कहलाती है और दूसरी भजनानन्दी । जो भक्त प्रचार नहीं करता, किन्तु भक्ति-कार्यों में सदा लगा रहता है, वह भजनानन्दी कहलाता है; जबकि भक्ति में कुशल होने के साथ ही जो भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार भी करता है तथा सभी प्रकार के नास्तिकों को परास्त करता है, वह गोठ्यानन्दी कहलाता है।

सर्वज्ञ नित्यानन्द आइला तार घरे ।

आसिया वसिला दुर्गा-मण्डप-उपरे ॥150 ॥

सर्व-ज्ञ-सब जानने वाले; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द; आइला-आये; तार घरे-उसके घर; आसिया-आकर; वसिला-बैठ गये; दुर्गा-मण्डप-उपरे—दुर्गा मण्डप के ऊपर।

अनुवाद

भगवान् नित्यानन्द, जो कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होने के कारण सर्वज्ञ हैं, रामचन्द्र खान के घर आये और दुर्गामण्डप की वेदी पर बैठ गये।

तात्पर्य ।

धनी हिन्दू भद्रजन अपने घरों में देवी दुर्गा की पूजा के लिए दुर्गामण्डप बनवाते थे। इस तरह प्रतिवर्ष वे आश्विन (सितम्बर-अक्टूबर) मास में देवी पूजा करते थे। रामचन्द्र खान के घर में भी ऐसा ही दुर्गामण्डप था।

अनेक लोक-जन सङ्गे अङ्गन भरिल ।

भितर हैते रामचन्द्र सेवक पाठाइल ॥151॥

अनेक-अनेक; लोक-जन-लोगों की भीड़; सड़गे-साथ में; अङ्गन-आँगन; भरिल-भर गया; भितर हैते-अन्दर से; रामचन्द्र-रामचन्द्र खान ने; सेवक-सेवक; पाठाइल-भेजा।

अनुवाद

जब दुर्गामण्डप तथा आँगन लोगों की भीड़ से भर गया, तो रामचन्द्र खान ने घर के भीतर से अपने नौकर को नित्यानन्द प्रभु के पास भेजा।

तात्पर्य

उन दिनों और आज भी सम्मानित व्यक्तियों के महल समान मकान, विशेषतया बंगाल के गाँवों में, दो भागों में बँटे होते थे। भीतरी भाग विशेष रूप से परिवार के लिए होता था, जहाँ स्त्रियाँ पर्दे में रहती थीं। यह भाग भितर-बाड़ी कहलाता था। बाहरी भाग या बहिर-बाड़ी में सम्मानित व्यक्ति आगन्तुकों का सत्कार करते और अपना कार्यालय रखते थे। दुर्गामण्डप बहिर-बाड़ी का ही अंग होता था। इस तरह जब नित्यानन्द प्रभु बहिर-बाड़ी में प्रविष्ट हुए, तो रामचन्द्र खान अपने पारिवारिक जनों के साथ भितर-बाड़ी में था। जब नित्यानन्द प्रभु आये, तो रामचन्द्र खान ने स्वयं उनका स्वागत नहीं किया, अपितु एक नौकर को अप्रत्यक्ष रूप से यह सूचित करने के लिए भेजा कि वे चले जाएँ।

सेवक बले-“गोसाजि, मोरे पाठाइल खाँन ।

गृहस्थेर घरे तोमाय दिब वासा-स्थान” ॥152॥

सेवक बले-सेवक ने कहा; गोसाजि-मेरे प्रिय स्वामी; मोरे-मुझे; पाठाइल-भेजा है; खाँन-रामचन्द्र खान ने; गृहस्थेर घरे-किसी साधारण व्यक्ति के घर में; तोमाय-आपको; दिब-मैं हूँ; वासा-स्थान-वास स्थान ।

अनुवाद

उस नौकर ने नित्यानन्द प्रभु को सूचित किया, “हे महाशय, रामचन्द्र खान ने मुझे भेजा है कि मैं आपको किसी सामान्य व्यक्ति के घर में रहने का स्थान दूँ।”

गोयालार गोशाला हय अत्यन्त विस्तार ।

इहाँ सङ्कीर्ण-स्थल, तोमार मनुष्य अपार” ॥153॥

गोयालार—एक ग्वाले की; गो-शाला—गोशाला; हय-है; अत्यन्त-बहुत; विस्तार-विशाल; इहाँ—यहाँ; सङ्कीर्ण-स्थल-बहुत कम जगह; तोमार-आपके; मनुष्य-अनुयायी; अपार-असंख्य हैं।

अनुवाद

“आप किसी ग्वाले के घर जा सकते हैं, क्योंकि गोशाला विस्तृत होती है, जबकि यहाँ दुर्गमण्डप में स्थान अपर्याप्त है, क्योंकि आपके साथ अनेक अनुयायी हैं।”

भितरे आछिला, शुनि' क्रोधे बाहिरिला ।

अट्ट अट्ट हासि' गोसाजि कहिते लागिला ॥154॥

भितरे आछिला-अन्दर थे; शुनि'-सुनकर; क्रोधे-क्रोध में; बाहिरिला-बाहर आ गये; अट्ट अट्ट-अति उच्च स्वर में; हासि-हँसते हुए; गोसाजि-भगवान् नित्यानन्द प्रभु: कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु ने रामचन्द्र खान के नौकर का यह आदेश सुना, तो वे अत्यधिक क्रुद्ध हुए और बाहर आ गये। उच्च स्वर से हँसते हुए वे इस प्रकार बोले।

“सत्य कहे,—एइ घर मोर योग्य नय ।

म्लेच्छ गो-वध करे, तार योग्य हय" ॥ 155॥

सत्य कहे-रामचन्द्र खान ठीक कहता है; एइ घर-यह घर; मोर-मेरे; योग्य नय-योग्य नहीं है; म्लेच्छ-माँस खाने वाले; गो-वध करे—जो गो हत्या करते हैं; तार-उनके लिए; योग्य हय-योग्य है।

अनुवाद

“रामचन्द्र खान ने ठीक ही कहा है। यह स्थान मेरे लिए अनुपयुक्त है। यह गोवध करने वाले मांसाहारियों के लिए उपयुक्त है।”

एत बलि' क्रोधे गोसाजि उठिया चलिला ।

तारे दण्ड दिते से ग्रामे ना रहिला ॥156॥

एत बलि'—यह कहकर; क्रोधे-क्रोध में; गोसाजि-नित्यानन्द प्रभु; उठिया चलिला-उठकर चल दिये; तारे-उसे;
दण्ड दिते-दण्ड देने के लिए; से—उस; ग्रामे-गाँव में; ना रहिला-नहीं रहे।

अनुवाद

यह कहकर नित्यानन्द प्रभु उठे और क्रुद्ध होकर चले गये। रामचन्द्र खान को दण्ड देने के लिए वे उस
गाँव में भी नहीं रुके।

इहाँ रामचन्द्र खान सेवके आज्ञा दिल ।

गोसाजि याहाँ वसिला, तार माटी खोदाइल ॥157॥

इहाँ-यहाँ; रामचन्द्र खान-रामचन्द्र खान ने; सेवके-सेवक को; आज्ञा दिल-आज्ञा दी; गोसाजि- भगवान्
नित्यानन्द प्रभु; याहाँ-जहाँ; वसिला-बैठे थे; तार-उस स्थान की; माटी-मिट्टी; खोदाइल-खोदने की।

अनुवाद

रामचन्द्र खान ने नौकर को आज्ञा दी कि जहाँ पर नित्यानन्द प्रभु बैठे थे, उस स्थान की मिट्टी खोद
डाले।

गोमय-जले लेपिला सब मन्दिर-प्राङ्गण ।

तबु रामचन्द्रेर मन ना हैल परसन्न ॥158॥

गो-मय-जले-गोबर मिश्रित जल से; लेपिला-लेप किया; सब-सब; मन्दिर-दुर्गा मण्डप मन्दिर; प्राङ्गण-आँगन;
तबु-फिर भी; रामचन्द्रेर मन-रामचन्द्र खान का मन; ना हैल परसन्न-प्रसन्न नहीं हुआ।

अनुवाद

दुर्गामंडप मन्दिर तथा आँगन को शुद्ध करने के लिए रामचन्द्र खान ने इन्हें गोबर मिले जल से छिड़काया
और लिपवाया, फिर भी उसका मन प्रसन्न न था।

दस्यु-वृत्ति करे रामचन्द्र राजारे ना देय कर ।

क्रुद्ध हजा म्लेच्छ उजिर आइल तार घर ॥ 159॥

दस्यु-वृत्ति-एक चोर जैसा कार्य; करे-करता था; रामचन्द्र-रामचन्द्र; राजारे-सरकार को; ना-नहीं; देय-जमा करता था; कर-कर; क्रुद्ध हजा-क्रोधित होकर; म्लेच्छ-मुस्लिम; उजिर-मन्त्री; आइल-आ गये; तार घर-उसके घर।

अनुवाद

रामचन्द्र का पेशा आपत्तिजनक था, क्योंकि वह सरकार को कर देने से जी चुराता था। इसलिए सरकारी वित्त मन्त्री नाराज था और वह उसके घर आया।

आसि' सेइ दुर्गा-मण्डपे वासा कैल ।

अवध्य वध करि' मांस से-घरे रान्धाइल ॥160॥

आसि—आकर; सेइ दुर्गा-मण्डपे—उस दुर्गा मण्डप स्थान पर; वासा कैल-अपना निवास बनाया; अवध्य-एक गाय या बछड़ा, जो मारे जाने के योग्य नहीं है; वध करि'-मारकर; मांस-माँस; से-घरे—उस स्थान पर; रान्धाइल-पकाया।

अनुवाद

उस मुसलमान मन्त्री ने रामचन्द्र खान के दुर्गामण्डप को अपना निवासस्थान बनाया। उसने एक गाय मारी और वहाँ माँस पकाया।

स्त्री-पुत्र-सहित रामचन्द्रे बान्धिया ।

तार घर-ग्राम लुटे तिन-दिन रहिया ॥ 161॥

स्त्री-पुत्र—उसकी पत्नी और पुत्र के; सहित-साथ; रामचन्द्रे बान्धिया—रामचन्द्र खान को बाँधकर; तार-उसका; घर-ग्राम-घर और गाँव; लुटे-लूट लिया; तिन-दिन रहिया—तीन दिन रहकर।

अनुवाद

उसने रामचन्द्र खान को उसकी पत्नी तथा बच्चों समेत बन्दी बना लिया और फिर लगातार तीन दिनों तक उसके घर तथा गाँव को लूटा।

सेइ घरे तिन दिन करे अमेध्य रन्धन ।

आर दिन सबा लजा करिला गमन ॥ 162॥

सेइ घरे—उस कक्ष में; तिन दिन-तीन दिन तक; करे-करता रहा; अमेध्य रन्धन-गाय का माँस पकाना; आर दिन-अगले दिन; सबा लजा-अपने संगियों को लेकर; करिला गमन-चला गया।

अनुवाद

उसने उसी कमरे में लगातार तीन दिनों तक गोमांस पकाया। तब अगले दिन अपने अनुयायियों सहित वह चला गया।

जाति-धन-जन खानेर सकल लइल ।

बहु-दिन पर्यन्त ग्राम उजाड़ रहिल ॥163॥

जाति-उत्तराधिकार; धन-सम्पत्ति; जन-अनुयायी; खानेर-रामचन्द्र खान के; सकल-सब कुछ; लइल-उसने छीन लिया; बहु-दिन-लम्बे समय तक; पर्यन्त-के लिए; ग्राम-गाँव; उजाड़ रहिल-उजड़ गया।

अनुवाद

उस मुसलमान मन्त्री ने रामचन्द्र खान का पद, सम्पत्ति तथा अनुयायी छीन लिये। कई दिनों तक गाँव उजाड़ बना रहा।

महान्तेर अपमान ये देश-ग्रामे हय ।

एक जनार दोषे सब देश उजाड़य ॥164॥

महान्तेर-जो लोग आध्यात्मिक जीवन में अत्यन्त उन्नत हैं; अपमान-अपमान; ये देश-ग्रामे-जिस देश या गाँव में; हय-होता है; एक जनार-एक व्यक्ति के; दोषे-दोष से; सब देश-सम्पूर्ण देश; उजाड़य-नष्ट हो जाता है।

अनुवाद

जहाँ भी किसी महान् भक्त का अपमान किया जाता है, वहाँ एक व्यक्ति के दोष से सारा गाँव या नगर पीड़ित होता है।

हरिदास-ठाकुर चलि' आइला चान्दपुरे ।

आसिया रहिला बलराम-आचार्येर घरे ॥ 165॥

हरिदास-ठाकुर-हरिदास ठाकुर; चलि'-चलकर; आइला-आ गये; चान्दपुरे-चन्दनपुर नामक गाँव में; आसिया-आकर; रहिला-रह गये; बलराम- आचार्येर घरे-बलराम आचार्य के घर में।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर चलते-चलते चान्दपुर नामक गाँव में आये। वहाँ पर वे बलराम आचार्य के घर पर ठहरे।

तात्पर्य

चाँदपुर गाँव हुगली जिले के सप्तग्राम में गंगा तथा यमुना नदियों के संगम के निकट स्थित है। चाँदपुर गोवर्धन तथा हिरण्य-इन दो भाइयों के घर से ठीक पूर्व में पड़ता है। ये रघुनाथ दास गोस्वामी के क्रमशः पिता तथा चाचा थे। इसी गाँव में इन दोनों व्यक्तियों के पुरोहित बलराम आचार्य तथा यदुनन्दन आचार्य रहते थे। हरिदास ठाकुर जाकर इन्हीं आचार्यों के साथ रहे। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि बाद में इस गाँव का नाम बदलकर कृष्णपुर हो गया।

हिरण्य, गोवर्धन—दुइ मुलुकेर मजुमदार ।

तार पुरोहित—‘बलराम’ नाम तार ॥ 166॥

हिरण्य-हिरण्य; गोवर्धन-गोवर्धन; दुइ-दोनों; मुलुकेर—उस प्रान्त के; मजुमदार-सरकार के खजांची थे; तार—उनके; पुरोहित-पुरोहित; बलराम-बलराम; नाम-नाम; तार उनका था।

अनुवाद

हिरण्य तथा गोवर्धन उस देश की उस तहसील के दो सरकारी कोषाध्यक्ष थे। उनके पुरोहित का नाम बलराम आचार्य था।

तात्पर्य

मजुमदार शब्द उस कोषाध्यक्ष (खजांची) का सूचक है, जो लगान का हिसाब रखता है।

हरिदासेर कृपा-पात्र, ताते भक्ति-माने ।

यत्न करि' ठाकुरेरे राखिला सेइ ग्रामे ॥167॥

हरिदासेर कृपा-पात्र-हरिदास ठाकुर का कृपापात्र; ताते—इसलिए; भक्ति-माने-हरिदास ठाकुर के महान् भक्त;
यत्न करि'-अत्यन्त सावधानी और एकाग्रतापूर्वक; ठाकुरे-हरिदास ठाकुर को; राखिला-रखा; सेइ ग्रामे-गाँव में।

अनुवाद

बलराम आचार्य पर हरिदास ठाकुर की कृपा के कारण वह हरिदास ठाकुर से अत्यधिक लगाव रखता
था। इसीलिए उसने हरिदास ठाकुर को गाँव में अत्यन्त यत्नपूर्वक रखा।

निर्जन पर्ण-शालाय करेन कीर्तन ।

बलराम-आचार्य-गृहे भिक्षा-निर्वाहण ॥ 168॥

निर्जन-एकान्त; पर्ण-शालाय-फूस की कुटिया में; करेन-करते; कीर्तन-हरे कृष्ण मन्त्र का जप; बलराम-आचार्य-
गृहे-बलराम आचार्य के घर पर; भिक्षा-निर्वाहण-भोजन करते थे।

अनुवाद

उस गाँव में हरिदास ठाकुर को एकान्त फूस की कुटिया दे दी गई थी, जहाँ वे हरे कृष्ण महामन्त्र का
जप करते रहते थे। वे बलराम आचार्य के घर पर प्रसाद लेते थे।

रघुनाथ-दास बालक करेन अध्ययन ।

हरिदास-ठाकुरे याइ' करेन दर्शन ॥ 169॥

रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास; बालक-एक बालक; करेन अध्ययन-अध्ययन करता था; हरिदास-ठाकुरे-हरिदास
ठाकुर के; याइ'-पास जाकर; करेन दर्शन-दर्शन करता था।

अनुवाद

रघुनाथ दास, जो गोवर्धन मजुमदार का पुत्र था और बाद में रघुनाथ दास गोस्वामी बना, उस समय
बालक अवस्था में पढ़ाई कर रहा था। वह नित्य ही हरिदास ठाकुर का दर्शन करने आता था।

हरिदास कृपा करे ताँहार उपरे ।

सेइ कृपा 'कारण' हैल चैतन्य पाइबारे ॥ 170॥

हरिदास-ठाकुर हरिदास; कृपा करे-कृपा करते हैं; ताँहार उपरे—उसके ऊपर; सेइ कृपा-वही कृपा; कारण-कारण;
हैल-बनी; चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु को; पाइबारे-प्राप्त करने की।

अनुवाद

स्वाभाविक रूप से हरिदास ठाकुर उसके प्रति कृपालु थे और इस वैष्णव के कृपापूर्ण आशीर्वाद से
ही वह बाद में श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण प्राप्त कर सका।

ताहाँ यैछे हैल हरिदासेर महिमा कथन ।

व्याख्यान, अद्भुत कथा श्रुन, भक्त-गण ॥ 171॥

ताहाँ-उस स्थान पर; यैछे-जैसे; हैल-हुआ; हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; महिमा-गुणों का; कथन-वर्णन;
व्याख्यान-प्रवचन; अद्भुत-अद्भुत; कथा-घटना; श्रुन-सुनो; भक्त-गण-हे भक्तों।

अनुवाद

हिरण्य तथा गोवर्धन के निवासस्थान पर व्याख्यान होते थे, जिनमें हरिदास ठाकुर की महिमा का
गुणगान होता था। हे भक्तों, उस अद्भुत कथा को सुनो।

एक-दिन बलराम मिनति करिया ।

मजुमदारेर सभाय आइला ठाकुरे लाजा ॥172॥

एक-दिन-एक दिन; बलराम-बलराम आचार्य; मिनति करिया-अति विनम्र भाव से; मजुमदारेर-मजुमदारों की,
हिरण्य तथा गोवर्धन; सभाय-सभा में; आइला-आये; ठाकुरे-हरिदास ठाकुर को; लाजा-अपने साथ लेकर।

अनुवाद

एक दिन बलराम आचार्य ने अत्यन्त दीनतापूर्वक हरिदास ठाकुर से प्रार्थना की कि वे हिरण्य तथा
गोवर्धन मजुमदारों की सभा में चलें। अतः बलराम आचार्य हरिदास ठाकुर के साथ वहाँ गये।

ठाकुर देखि' दुइ भाइ कैला अभ्युत्थान ।

पाय पड़ि' आसन दिला करिया सम्मान ॥ 173 ॥

ठाकुर देखि'-हरिदास ठाकुर को देखकर; दुइ भाइ-दोनों भाई; कैला अभ्युत्थान-खड़े हो गये; पाय पड़ि-चरणकमलों में गिरकर; आसन दिला-आसन अर्पित किया; करिया सम्मान-महान् आदर के साथ।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर को देखकर दोनों भाई तुरन्त उठ खड़े हुए और उनके चरणकमलों पर गिर पड़े। तत्पश्चात् उन्होंने अत्यन्त आदरपूर्वक उन्हें बैठने के लिए आसन दिया।

अनेक पण्डित सभाय, ब्राह्मण, सज्जन ।

दुइ भाइ महा-पण्डित—हिरण्य, गोवर्धन ॥ 174॥

अनेक पण्डित—अनेक विद्वान्; सभाय-उस सभा में; ब्राह्मण-ब्राह्मण; सत्-जन-सज्जन; दुइ भाइ—दोनों भाई; महा-पण्डित-अत्यन्त विद्वान्; हिरण्य-हिरण्य; गोवर्धन-गोवर्धन।

अनुवाद

उस सभा में अनेक विद्वज्जन, ब्राह्मण तथा सम्माननीय भद्र पुरुष थे। हिरण्य तथा गोवर्धन, ये दोनों भाई भी महान् पण्डित (विद्वान्) थे।

हरिदासेर गुण सबे कहे पञ्च-मुखे ।

शुनिया त' दुइ भाइ पाइला बड़ सुखे ॥ 175॥

हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के गुण-गुण; सबे-वे सब; कहे-कहने लगे; पञ्च-मुखे-जैसे पाँच मुखों से कह रहे हों; शुनिया-सुनकर; त'-निश्चय ही; दुइ भाइ-दोनों भाई; पाइला-प्राप्त किया; बड़ सुखे-अत्यन्त प्रसन्नता ।

अनुवाद

वहाँ सारे लोग हरिदास ठाकुर के महान् गुणों का बखान करने लगे, मानो उनके पाँच-पाँच मुख हों। यह सुनकर दोनों भाई परम सुखी हुए।

तिन-लक्ष नाम ठाकुर करेन कीर्तन ।

नामेर महिमा उठाइल पण्डित-गण ॥ 176 ॥

तिन-लक्ष-300,000; नाम-भगवान् के पवित्र नाम; ठाकुर-हरिदास ठाकुर; करेन कीर्तन-जप करते थे; नामेर-पवित्र नाम की महिमा-महिमा; उठाइल-उठाते हैं; पण्डित-गण-सभी पण्डित।

अनुवाद

सभा में इसका उल्लेख किया गया कि हरिदास ठाकुर प्रतिदिन तीन लाख कृष्ण-नाम का जप करते थे। इस तरह सारे विद्वान पवित्र नाम की महिमा के विषय में विचारविमर्श करने लगे।

केह बले,—‘नाम हैते हय पाप-क्षय’ ।

केह बले, — ‘नाम हैते जीवेर मोक्ष हय’ ॥ 177॥

केह बले-उनमें से कुछ ने कहा; नाम हैते-हरे कृष्ण मन्त्र का जप करने से; हय-होता है; पाप-क्षय-सभी पापकर्मों के फलों का विनाश; केह बले-उनमें से कुछ ने कहा; नाम हैते-नाम का जप करने से; जीवेर-जीवों को; मोक्ष हय-मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

अनुवाद

उनमें से कुछेक ने कहा, “भगवान् के पवित्र नाम का जप करने से मनुष्य सारे पापमय जीवन के फलों से मुक्त हो जाता है। अन्यो ने कहा, भगवान् के पवित्र नाम के जप मात्र से जीव भवबन्धन से छूट जाता है।”

हरिदास कहेन, — “नामेर एइ दुइ फल नय ।

नामेर फले कृष्ण-पदे प्रेम उपजय ॥ 178॥

हरिदास कहेन-हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया; नामेर- भगवान् के पवित्र नाम के जप के; एइ-ये; दुइ-दोनों; फल-परिणाम; नय-नहीं हैं; नामेर फले-पवित्र नाम के जप के फलस्वरूप; कृष्ण-पदे-कृष्ण के चरणकमलों में; प्रेम उपजय-प्रेमभाव जागृत हो जाता है।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने आपत्ति की, “ये दोनों वर पवित्र नाम के जप के सही फल नहीं हैं। वास्तव में अपराधरहित नाम-जप से कृष्ण के चरणकमलों के प्रति प्रेम जागृत होता है।

एवं-व्रतः स्व-प्रिय-नाम-कीर्त्या

जातानुरागो द्रुत-चित्त उच्चैः ।

हसत्यथो रोदिति रौति गायत्य्

उन्माद-वन्नृत्यति लोक-बाह्यः ॥ 179॥

एवम्-व्रतः-जब कोई कीर्तन और नृत्य का व्रत ले लेता है; स्व-अपने; प्रिय-अत्यन्त प्रिय; नाम-पवित्र नाम; कीर्त्या-कीर्तन द्वारा; जात-इस प्रकार विकसित करता है; अनुरागः-अनुराग; द्रुत-चित्तः-अत्यन्त उत्कण्ठापूर्वक; उच्चैः-जोर से; हसति-हँसता है; अथो-तथा; रोदिति-रोता है; रौति-विचलित हो जाता है; गायति-गाता है; उन्माद-वत्-एक पागल की तरह; नृत्यति-नाचता है; लोक-बाह्यः-बाहरी लोगों की परवाह किये बिना॥

अनुवाद

“जब कोई व्यक्ति वास्तव में उन्नत होता है और अपने प्रिय भगवान् के नाम-कीर्तन में आनन्द लेता है, तो वह उत्तेजित हो उठता है और उच्च स्वर से नाम-कीर्तन करता है। वह हँसता है, रोता है, चंचल होता है और उन्मत्त की तरह बाहरी लोगों की परवाह किये बिना कीर्तन करता है।”

तात्पर्य

इस श्लोक (भागवत् 11.2.40) की व्याख्या के लिए देखें आदि-लीला 7.94 ।

आनुषङ्गिक फल नामेर—‘मुक्ति’, ‘पाप-नाश’ ।

ताहार दृष्टान्त यैछे सूर्येर प्रकाश ॥ 180 ॥

आनुषङ्गिक-सहवर्ती; फल-परिणाम हैं; नामेर-पवित्र नाम के; मुक्ति-मुक्ति; पाप-नाश-पापमय जीवन के फलों का नाश; ताहार-उसका; दृष्टान्त-उदाहरण है; यैछे-जैसे; सूर्येर प्रकाश-सूर्य का प्रकाश।

अनुवाद

“मुक्ति तथा पाप-फलों का क्षय-ये दो भगवन्नाम कीर्तन के साथ मिलने वाले गौण फल हैं। इसका उदाहरण प्रातःकालीन सूर्य-प्रकाश के चमकने में पाया जाता है।

अंहः संहरदखिलं सकृद्

उदयादेव सकल-लोकस्य ।

तरणिरिव तिमिर-जलधिं

जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम ॥ 181॥

अंहः-भौतिक बन्धन का कारण, पापकर्मों के फल; संहरत्-पूर्णतया नष्ट करने में; अखिलम्-सम्पूर्ण; सकृत्-मात्र एक बार; उदयात्-जागकर; एवं-निश्चय ही; सकल-समस्त; लोकस्य-संसार के लोगों का; तरणिः-सूर्य; इव-जैसे; तिमिर-अन्धकार के; जल-धिम् समुद्र को; जयति-जय हो; जगत्-मङ्गलम्-समस्त जगत् के लिए शुभ; हरेः नाम-भगवान् हरि का पवित्र नाम।

अनुवाद

जिस तरह उदय होता हुआ सूर्य तुरन्त ही समुद्र जैसे अगाध, जगत् के सारे अन्धकार को दूर कर देता है, उसी तरह भगवान् के पवित्र नाम यदि एक बार अपराधरहित होकर उच्चारण किया जाए, तो जीव के पापी जीवन के सारे पापफलों को दूर कर देता है। उस भगवान् के पवित्र नाम की जय हो, जो सारे जगत् के लिए मंगलकारी है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत पद्यावली (16) में प्राप्य है।

एइ श्लोकेर अर्थ कर पण्डितेर गण" ।

सबे कहे,—‘तुमि कह अर्थ-विवरण’ ॥182॥

एइ श्लोकेर-इस श्लोक का; अर्थ-अर्थ; कर-विस्तारित कीजिए; पण्डितेर गण-हे पण्डित जनों; सबे कहे-सभी ने कहा; तुमि कह-आप कहिए; अर्थ-विवरण-अर्थ तथा व्याख्या ।

अनुवाद

इस श्लोक को सुनाकर हरिदास ठाकुर ने कहा, “हे विद्वानों, जरा इस श्लोक का अर्थ बतलाओ।” किन्तु श्रोताओं ने हरिदास ठाकुर से अनुरोध किया, “अच्छा यही होगा कि आप ही इस महत्त्वपूर्ण श्लोक का अर्थ बतलाएँ।”

हरिदास कहेन,—“यैछे सूर उदय ।

उदय ना हैते आरम्भे तमेर हय क्षय” ॥183॥

हरिदास कहेन-हरिदास ठाकुर ने वर्णन करना प्रारम्भ किया; यैछे-जैसे; सूर्योदय-सूर्योदय; उदय ना हैते-यद्यपि अभी दिखाई नहीं देता; आरम्भे-आरम्भ; तमेर-अन्धकार का; हय क्षय-नाश हो जाता है।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने कहा, “जब सूर्यका उदय होने लगता है, तो उसके दृश्यमान होने के पूर्व ही वह रात के अन्धकार को दूर कर देता है।

चौर-प्रेत-राक्षसादिर भय हय नाश ।

उदय हैले धर्म-कर्म-आदि परकाश ॥184॥

चौर-चोरों; प्रेत-भूतों; राक्षस-राक्षसों; आदिर-उनका और अन्यो का; भय-भय; हय-हो जाता है; नाश-समाप्त; उदय हैले-जब सूर्योदय वास्तव में दिखाई देता है; धर्म-कर्म-सभी धार्मिक कार्य तथा नियम; आदि-सब कुछ; परकाश-प्रकाशित हो जाते हैं।

अनुवाद

“सूर्य-प्रकाश के प्रथम दर्शन होते ही चोरों, प्रेतों तथा असुरों का भय तुरन्त चला जाता है और जब सूर्य वास्तव में दिखता है, तो हर वस्तु प्रकट हो जाती है और हर व्यक्ति अपने धार्मिक कार्य तथा नियमित कर्तव्य करना प्रारम्भ कर देता है।

ऐछे नामोदयारम्भे पाप-आदिर क्षय ।

उदय कैले कृष्ण-पदे हय प्रेमोदय ॥ 185॥

ऐछे-इसी प्रकार; नाम-उदय-पवित्र नाम का उदय होने पर; आरम्भे-आरम्भ में ही; पाप-पापकर्मों के फल; आदिर-उनके और दूसरों के; क्षय-नाश; उदय कैले-जब वास्तव में निरपराध जप जागृत होता है; कृष्ण-पदे-कृष्ण के चरणकमलों में; हय प्रेम-उदय-प्रेमभाव का उदय होता है।

अनुवाद

“इसी तरह यह प्रथम संकेत कि भगवान् के पवित्र नाम का निरपराध जप जाग्रत हो चुका है, तुरन्त पापमय जीवन के फलों का क्षय कर देता है। और जब कोई निरपराध होकर नाम का जप करता है, तो उसमें कृष्ण के चरणकमलों पर प्रेमभाव युक्त सेवा जाग्रत हो जाती है।

‘मुक्ति’ तुच्छ-फल हय नामाभास हैते ॥ 186॥

मुक्ति-मुक्ति; तुच्छ-फल-तुच्छ परिणाम; हय-है; नाम-आभास हैते-पवित्र नाम के निरपराध जप के उदय की एक झलक से।

अनुवाद

“मुक्ति तो भगवान् के पवित्र नाम के अपराध रहित जप की जागृति के आभास से प्राप्त होने वाला एक नगण्य फल है।”

प्रियमाणो हरेर्नाम गृणन्पुत्रोपचारितम् ।

अजामिलोऽप्यगाद्धाम किमुत श्रद्धया गृणन् ॥187॥

प्रियमाणः-मरते हुए; हरेः नाम-परम भगवान् के पवित्र नाम का; गृणन्-उच्चारण; पुत्र-उपचारितम्-यद्यपि अपने पुत्र के लिए कहा था; अजामिलः-अजामिल ने; अपि-और; अगात् प्राप्त किया; धाम-आध्यात्मिक जगत्; किम् उत-तो क्या कहना; श्रद्धया-श्रद्धा और आदर भाव से; गृणन्-कीर्तन करते हैं।

अनुवाद

“मृत्यु के समय अजामिल ने अपने पुत्र नारायण को बुलाने के उद्देश्य से भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण किया। फिर भी उसे वैकुण्ठ लोक प्राप्त हुआ। तो फिर उन लोगों के विषय में क्या कहा जा सकता है, जो श्रद्धा तथा आदरपूर्वक पवित्र नाम का कीर्तन करते हैं?”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (6.2.49) से है।

“ये मुक्ति भक्त ना लय, से कृष्ण चाहे दिते” ॥188॥

ये-जो; मुक्ति-मुक्ति; भक्त-एक भक्त; ना लय-नहीं लेता; से—वह; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; चाहे दिते-देना चाहते हैं।

अनुवाद

“जो मुक्ति शुद्ध भक्त को स्वीकार्य नहीं है, वह कृष्ण द्वारा सदा बिना किसी कठिनाई के प्रदान की जाती है।

सालोक्य-सार्ष्टि-सारूप्य-सामीप्यैकत्वमप्युत ।

दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥189॥

सालोक्य-समान लोक में रहना; सार्ष्टि-समान ऐश्वर्य प्राप्त करना; सारूप्य-समान शारीरिक स्वरूप प्राप्त करना; सामीप्य-सदैव परम भगवान् के साथ रहना; एकत्वम्-भगवान् के अस्तित्व में विलीन हो जाना; अपि-तथा; उत-निश्चय ही; दीयमानम्-दिये जाने पर; न गृह्णन्ति-नहीं स्वीकार करते; विना-बिना; मत्-सेवनम्-मेरी सेवा; जनाः-भक्ता।

अनुवाद

“यदि मैं सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य, सामीप्य या एकत्व-इन मुक्तियों को अपने भक्तों को प्रदान भी करूँ, तो वे मेरी सेवा की तुलना में इन्हें स्वीकार नहीं करते।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (3.29.13) से लिया गया है, जिसे भगवान् के अवतार कपिल ने कहा है।

‘गोपाल चक्रवर्ती’ नाम एक-जन ।

मजुमदारेर घरे सेइ आरिन्दा प्रधान ॥190॥

गोपाल चक्रवर्ती-गोपाल चक्रवर्ती; नाम-नामक; एक-जन-एक व्यक्ति; मजुमदारों के घर-हिरण्य और गोवर्धन मजुमदार के घर पर; सेइ-वह; आरिन्दा प्रधान-मुख्य कर-अधिकारी।

अनुवाद

हिरण्य तथा गोवर्धन मजुमदार के घर पर गोपाल चक्रवर्ती नामक एक व्यक्ति सरकारी मुख्य कर संग्राहक था।

गौड़े रहि' पात्साहा-आगे आरिन्दा-गिरि करे ।

बार-लक्ष मुद्रा सेइ पात्सार ठाजि भरे ॥191॥

गौड़े रहि'-बंगाल में रहकर; पात्साहा-आगे-राजा के नाम पर; आरिन्दा-गिरि करे—मुख्य कर-अधिकारी के रूप में कार्य करते हैं; बार-लक्ष-12,00,000; मुद्रा-सिक्के; सेइ-वह; पात्सार ठाजि-राजा के लिए; भरे-एकत्रित करता।

अनुवाद

यह गोपाल चक्रवर्ती बंगाल में रहता था। कर संग्राहक के रूप में उसका काम था, बारह लाख मुद्राएँ एकत्र करके शाही खजाने में जमा करना।

परम-सुन्दर, पण्डित, नूतन-यौवन ।

नामाभासे 'मुक्ति' 'शुनि' ना हइल सहन ॥ 192॥

परम-सुन्दर-अत्यन्त सुन्दर; पण्डित-पण्डित; नूतन-नये; यौवन-युवावस्था; नाम-आभासे-पवित्र नाम के जप के शुद्ध उच्चारण की झलक मात्र द्वारा; मुक्ति-मुक्ति; शुनि'-सुनकर; ना हइल सहन-सहन नहीं कर सका।

अनुवाद

उसका शरीर सुन्दर था और वह पण्डित तथा युवावस्था को प्राप्त था, किन्तु वह इस कथन को सहन नहीं कर पाया कि मात्र नामाभास से (भगवान् के पवित्र नाम के शुद्ध उच्चारण की झलक मात्र से) कोई मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

तात्पर्य

वैष्णवजन नामाभास द्वारा मनुष्य के मुक्त होने के विषय में शास्त्रों के आदेशों का दृढ़ता से पालन करते हैं। मुक्ति कितनी आसानी से प्राप्त की जा सकती है इसके सम्बन्ध में शास्त्रों में जो कथन हैं, उन्हें मायावादी सहन नहीं कर पाते, क्योंकि भगवद्गीता (12.5) में कहा गया है-क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम् अव्यक्तासक्तचेतसाम्-निर्विशेषवादी अनेकानेक जन्मों तक कठिन श्रम करने के बाद शायद मुक्ति प्राप्त करता है। वैष्णव जानते हैं कि भगवान् के पवित्र नाम का अपराधरहित उच्चारण करने मात्र से ही मुक्ति एक गौण फल के रूप में प्राप्त की जा सकती है। इसलिए मुक्ति के लिए अलग से प्रयास करने की कोई आवश्यकता नहीं है। श्रील बिल्वमंगल ठाकुर ने कहा है, मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलि सेवतेऽस्मान्-यदि कोई दृढ़ श्रद्धा तथा आदर से युक्त शुद्ध भक्त है, तो मुक्ति उसके द्वार पर किसी भी तरह की सेवा करने के लिए हाथ जोड़े खड़ी रहती है। मायावादी इसे सहन नहीं कर सकते। इसीलिए यद्यपि आस्त्रिदा प्रधान या कर संग्राहक विद्वान्, सुन्दर तथा युवा था, किन्तु वह हरिदास ठाकुर के कथनों को सहन नहीं कर सका।

क्रुद्ध हजा बले सेइ सरोष वचन ।

"भावुकेर सिद्धान्त शुन, पण्डितेर गण ॥193॥

क्रुद्ध हजा-अत्यन्त क्रोधित होकर; बले-कहा; सेइ-उसने; स-रोष वचन-क्रोधित शब्द; भावुकेर-एक भावुक व्यक्ति के सिद्धान्त-निष्कर्ष; शुन-सुनो; पण्डितेर गण-हे पण्डित गणों ।

अनुवाद

यह युवक गोपाल चक्रवर्ती हरिदास ठाकुर के कथन सुनकर अत्यधिक कुपित हुआ। उसने तुरन्त उनकी आलोचना की, "हे विद्वज्जनों, जरा इस भावुक भक्त का निष्कर्ष तो सुनो।

कोटि-जन्मे ब्रह्म-ज्ञाने येइ 'मुक्ति' नय ।

एइ कहे,—नामाभासे सेइ 'मुक्ति' हय" ॥194॥

कोटि-जन्मे-करोड़ों जन्मों के बाद; ब्रह्म-ज्ञाने-ब्रह्मज्ञान द्वारा; येइ-जो; मुक्ति नय-मुक्ति सम्भव नहीं है; एइ-यह व्यक्ति; कहे-कहता है; नाम-आभासे-पवित्र नाम के शुद्ध जप की झलक के जागृत होने से; सेइ-वही; मुक्ति-मुक्ति; हय-सम्भव है।

अनुवाद

“करोड़ों जन्मों के बाद जब कोई मनुष्य परम ज्ञान में पूर्ण हो जाता है, तब भी उसे मुक्ति नहीं मिल पाती; फिर भी यह व्यक्ति कहता है कि उस मुक्ति को केवल नामाभास से प्राप्त की जा सकती है।”

हरिदास कहेन,—केने करह संशय? ।

शास्त्रे कहे,—नामाभास-मात्रे ‘मुक्ति’ हय ॥195॥

हरिदास कहेन-हरिदास ठाकुर ने कहा; केने-क्यों; करह संशय-सन्देह करते हो; शास्त्रे कहे-यह प्रामाणिक शास्त्रों में वर्णित है; नाम-आभास मात्रे-पवित्र नाम की झलक मात्र से; मुक्ति हय-मुक्ति हो जाती है।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने कहा, “तुम सन्देह क्यों कर रहे हो? प्रामाणिक शास्त्र कहते हैं कि मनुष्य मात्र नामाभास से, पवित्र नाम की झलक मात्र से मुक्ति पा सकता है।

भक्ति-सुख-आगे ‘मुक्ति’ अति-तुच्छ हय ।

अतएव भक्त-गण ‘मुक्ति’ नाहि लय ॥196॥

भक्ति-सुख-प्रेममयी सेवा द्वारा प्राप्त दिव्य आनन्द; आगे-के सामने; मुक्ति-मुक्ति; अति-तुच्छ—अत्यन्त तुच्छ; हय-है; अतएव-अतएव; भक्त-गण-शुद्ध भक्त; मुक्ति-मुक्ति; नाहि लय-नहीं स्वीकार करते॥

अनुवाद

“जो भक्त भक्ति के दिव्य आनन्द का भोग करता है, उसके लिए मुक्ति अतीव नगण्य है। इसलिए शुद्ध भक्त कभी भी मुक्ति पाने की अभिलाषा नहीं रखते।

त्वत्साक्षात्करणाह्लाद-विशुद्धाब्धि-स्थितस्य मे ।

सुखानि गोष्पदायन्ते ब्राह्मण्यपि जगद्गुरो ॥ 197॥

त्वत्-आपसे; साक्षात्-करण-मिलकर; आह्लाद-आनन्द; विशुद्ध-आध्यात्मिक रूप से शुद्ध; अब्धि-एक समुद्र में; स्थितस्य-स्थित; मे-मेरा; सुखानि-आनन्द; गोष्-पदायन्ते-एक बछड़े के खुर के निशान के बराबर; ब्राह्मणि-निराकार ब्रह्म-ज्ञान से प्राप्त; अपि-भी; जगत्-गुरो-हे जगत् के स्वामी।

अनुवाद

“हे प्रिय प्रभु, हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, चूंकि मैंने आपका प्रत्यक्ष दर्शन किया है, इसलिए मेरे दिव्य आनन्द ने महासागर का रूप धारण कर लिया है। अब उस सागर में स्थित होने से मैं अनुभव करता हूँ कि ब्रह्मानन्द समेत अन्य समस्त तथाकथित सुख गाय के खुर के चिह्न में भरे हुए जल के समान हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक हरिभक्ति सुधोदय (14.36) से उद्धृत है।

विप्र कहे,— “नामाभासे यदि ‘मुक्ति’ नय ।

तबे तोमार नाक काटि’ करह निश्चय ॥198॥

विप्र कहे-ब्राह्मण ने कहा; नाम-आभासे-पवित्र नाम के निरपराध जप के आभास मात्र से; यदि-यदि; मुक्ति नय-मुक्ति प्राप्त नहीं होती; तबे-तो; तोमार-आपका; नाक-नाक; काटि-मैं काट लूँगा; करह निश्चय-यह जान लो।

अनुवाद

गोपाल चक्रवर्ती ने कहा, “यदि कोई मात्र नामाभास से मुक्त न हो सके, तो आप इसे निश्चय ही जान लें कि मैं आपकी नाक काट लूँगा।”

हरिदास कहेन,— “यदि नामाभासे ‘मुक्ति’ नये ।

तबे आमार नाक काटिमु,—एइ सुनिश्चय” ॥199॥

हरिदास कहेन-हरिदास ठाकुर ने कहा; यदि-यदि; नाम-आभासे- भगवान् के पवित्र नाम के आभास मात्र से मुक्ति नय-मुक्ति प्राप्त नहीं होती; तबे-तो; आमार-अपना; नाक-नाक; काटिमु-मैं काट लूँगा; एइ-यह; सुनिश्चय-जान लो।

अनुवाद

तब हरिदास ठाकुर ने गोपाल चक्रवर्ती की चुनौती स्वीकार कर ली। उन्होंने कहा, “यदि नामाभास से मुक्ति प्राप्त न हो सके, तो निश्चित रूप से मैं अपनी नाक काट दूँगा।” ।

शुनि’ सभासद् उठे करि’ हाहाकार ।

मजुमदार सेइ विप्रे करिल धिक्कार ॥200॥

शुनि'-सुनकर; सभा-सत्-सभा के सभी लोग; उठे-उठ खड़े हुए; करि' हाहा-कार-हाहाकार करते हुए; मजुमदार-हिरण्य और गोवर्धन मजुमदार; सेइ विप्रे-उस ब्राह्मण को जो उनका सेवक था; करिल-करने लगे; धिक्-कार-धिक्कार।

अनुवाद

सभा के सारे सदस्य जिन्होंने चुनौती सुनी, वे अत्यधिक क्षुब्ध हो गये। वे हाहाकार करते हुए उठ खड़े हुए। हिरण्य तथा गोवर्धन मजुमदार दोनों ने ही उस ब्राह्मण को संग्राहक को तुरन्त डाँटा।

बलाइ-पुरोहित तारे करिला भर्त्सन ।

“घट-पटिया मूर्ख तुजि भक्ति काँहा जान?” ॥201॥

बलाइ-पुरोहित-बलराम आचार्य नामक पुरोहित; तारे-गोपाल चक्रवर्ती की; करिला-किये; भर्त्सन-निन्दा; घट-पटिया-घड़े और मिट्टी में आसक्त; मूर्ख-मूर्ख; तुजि-तुम; भक्ति-प्रेममयी सेवा; काँहा-कहाँ; जान-जानते हो।

अनुवाद

बलराम आचार्य नामक पुरोहित ने भी गोपाल चक्रवर्ती को डाँटा। उसने कहा, “तुम मूर्ख तर्कवादी हो। तुम भगवद्भक्ति के बारे में क्या जानो?”

तात्पर्य

मायावादियों द्वारा स्थापित दर्शन घट-पटिया (“घड़ा और मिट्टी”) दर्शन कहलाता है। इस दर्शन के अनुसार सारी वस्तुएँ एक हैं। ऐसे दार्शनिक मिट्टी से बने घड़े और मिट्टी में कोई अन्तर नहीं देखते। वे तर्क देते हैं कि मिट्टी की बनी कोई भी वस्तु यथा विविध घड़े भी वही मिट्टी हैं। चूँकि गोपाल चक्रवर्ती घटपटिया तार्किक था, निपट भौतिकतावादी था, अतः वह दिव्य भगवद्भक्ति के विषय में क्या समझ पाता?

हरिदास-ठाकुरे तुजि कैलि अपमान! ।

सर्व-नाश हबे तोर, ना हबे कल्याण ॥ 202॥

हरिदास-ठाकुरे-हरिदास ठाकुर का; तुजि-तुमने; कैलि-किया है; अपमान-अपमान; सर्व-नाश-सब कुछ विनष्ट;
हबे-हो जायेगा; तोर-तुम्हारा; ना-नहीं; हबे-होगा; कल्याण-शुभ परिणाम।

अनुवाद

“तुमने हरिदास ठाकुर का अपमान किया है। इसलिए तुम्हारे लिए भयावह स्थिति उत्पन्न होगी। तुम्हें किसी शुभ फल की आशा नहीं करनी चाहिए।”

शुनि’ हरिदास तबे उठिया चलिला ।

मजुमदार सेइ विप्रे त्याग करिला ॥ 203॥

शुनि’-सुनकर; हरिदास-हरिदास ठाकुर; तबे-तब; उठिया चलिला-उठे और जाने लगे; मजुमदार-हिरण्य और गोवर्धन मजूमदार ने; सेइ विप्रे-इस ब्राह्मण का; त्याग करिला-त्याग कर दिया।

अनुवाद

तब हरिदास ठाकुर जाने के लिए उठे और गोपाल चक्रवर्ती के स्वामी दोनों मजुमदारों ने तुरन्त ही गोपाल चक्रवर्ती को अपनी नौकरी से हटा दिया।

सभा-सहिते हरिदासेर पड़िला चरणे ।

हरिदास हासि’ कहे मधुर-वचने ॥204॥

सभा-सहिते-सभा के सारे सदस्यों के साथ; हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; पड़िला चरणे-चरणकमलों में गिर पड़े; हरिदास-हरिदास ठाकुर ने; हासि-हँसकर; कहे-कहा; मधुर-वचने-मधुर वाणी में।

अनुवाद

दोनों मजुमदार सभा के सारे सदस्यों सहित हरिदास ठाकुर के चरणकमलों पर गिर पड़े। किन्तु हरिदास ठाकुर मुस्कुरा रहे थे। उन्होंने मीठी वाणी में कहा।

तोमा-सबार दोष नाहि, एइ अज्ञ ब्राह्मण ।

तार दोष नाहि, तार तर्क-निष्ठ मन ॥205॥

तोमा-सबार-आप सबकी; दोष-गलती; नाहिं-नहीं है; एइ-यह; अज्ञ-अज्ञानी; ब्राह्मण-तथाकथित ब्राह्मण; तार दोष नाहि-इसका भी दोष नहीं है; तार-इसका; तर्क-निष्ठ-तर्क का अभ्यस्त; मन-मन है।

अनुवाद

उन्होंने कहा, “तुम सबका कोई दोष नहीं है। निस्सन्देह, इस अज्ञानी तथाकथित ब्राह्मण का भी दोष नहीं है, क्योंकि वह शुष्क चिन्तन तथा तर्क का अभ्यस्त है।

तर्कर गोचर नहे नामेर महत्त्व ।

कोथा हैते जानिबे से एड सब तत्त्व? ॥ 206॥

तर्कर-तर्कवितर्क से; गोचर-प्रकट; नहे-नहीं है; नामेर-पवित्र नाम की; महत्त्व-महिमा; कोथा हैते-कहाँ से; जानिबे-जानेगा; से—वह; एइ-यह; सब-सब; तत्त्व-सत्य।

अनुवाद

“कोई व्यक्ति मात्र तर्कवितर्क से पवित्र नाम की महिमा को नहीं समझ सकता। इसलिए यह व्यक्ति सम्भवतः नाम की महिमा को नहीं समझ सका।

याह घर, कृष्ण करुन कुशल सबार ।

आमार सम्बन्धे दुःख ना हउक काहार" ॥ 207॥

याह घर-अपने घर जाइये; कृष्ण करुन—भगवान् कृष्ण करें; कुशल सबार-सबका कल्याण; आमार सम्बन्धे-मेरे कारण; दुःख-अप्रसन्नता; ना हउक-न हो; काहार-किसी को।

अनुवाद

“अब आप सभी अपने-अपने घर जायें। भगवान् कृष्ण आप सबको आशीर्वाद दें। मेरे अपमानित होने के कारण आप दुःखी न हों।”

तात्पर्य

हरिदास ठाकुर के इस कथन से यह पता चलता है कि शुद्ध वैष्णव कभी भी किसी द्वारा किये गये अपमान को गम्भीरता से नहीं लेता। यही श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा है :

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।

अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

“भक्त को अपने आपको मार्ग में पड़े तिनके से भी क्षुद्र मानकर दीनतापूर्वक भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना चाहिए। भक्त को वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु, मिथ्या प्रतिष्ठा के भाव से रहित तथा अन्यो को आदर देने के लिए तत्पर रहना चाहिए। ऐसी मनोदशा में वह भगवान् के पवित्र नाम का जप निरन्तर कर सकता है।” वैष्णव सदैव वृक्ष तथा घास की तरह सहिष्णु एवं विनीत होता है। वह अन्यो द्वारा किये गये अपमान को सहता है, क्योंकि वह विचलित हुए बिना केवल भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करने में रुचि रखता है।

तबे से हिरण्य-दास निज घरे आइल ।

सेइ ब्राह्मणे निज द्वार-माना कैल ॥ 208॥

तबे-तब; से-वह; हिरण्य-दास-हिरण्य मजुमदार; निज-अपने; घरे-घर; आइल-वापस लौट गया; सेइ-वह; ब्राह्मणे-गोपाल चक्रवर्ती का; निज-अपने; द्वार-द्वार से; माना-निषेध; कैल-घोषित कर दिया।

अनुवाद

तब हिरण्य दास मजुमदार अपने घर लौट आया और उसने आदेश दिया कि गोपाल चक्रवर्ती घर के भीतर नहीं जा सकता।

तिन दिन भितरे सेइ विप्रेर ‘कुष्ठ’ हैल ।

अति उच्च नासा तार गलिया पड़िल ॥ 209॥

तिन दिन-तीन दिन; भितरे-के अन्दर; सेइ-उस; विप्रेर-ब्राह्मण को; कुष्ठ-कुष्ठ रोग; हैल-हो गया; अति-अत्यन्त; उच्च-ऊँची; नासा-नाक; तार—उसकी; गलिया-गलकर; पड़िल-गिर गई।

अनुवाद

तीन दिनों के भीतर उस ब्राह्मण को कोढ़ हो गया, जिसके फलस्वरूप उसकी उठी हुई नाक गलकर गिर पड़ी।

चम्पक-कलि-सम हस्त-पदाङ्गुलि ।

कोङ्कड़ हड़ल सब, कुष्ठे गेल गलि' ॥210॥

चम्पक-एक सुनहरे रंग के फूल की; कलि-कलि; सम-जैसे; हस्त-पद-अङ्गुलि--हाथ और पैर की अँगुलियाँ; कोङ्कड़ हड़ल-विकृत हो गई; सब-सभी; कुष्ठे-कुष्ठ के कारण; गेल गलि'—गल गई।

अनुवाद

उस ब्राह्मण के हाथ तथा पाँव की अँगुलियाँ सुनहरे रंग के चम्पक की कलियों के समान सुन्दर थीं, किन्तु कोढ़ के कारण वे सब मुरझा गई और धीरे-धीरे गल गई।

देखिया सकल लोक हैल चमत्कार ।

हरिदासे प्रशंसि' तारै करे नमस्कार ॥211॥

देखिया-देखकर; सकल लोक-सभी लोग; हैल-हो गये; चमत्कार-विस्मित; हरिदासे-हरिदास ठाकुर की; प्रशंसि'-प्रशंसा करके; तारै-उनको; करे-करते हैं; नमस्कार-प्रणाम।

अनुवाद

गोपाल चक्रवर्ती की दशा देखकर सारे लोग चकित थे। सबने हरिदास ठाकुर के प्रभाव की प्रशंसा की और उन्हें नमस्कार किया।

यद्यपि हरिदास विप्रेर दोष ना लइला ।

तथापि ईश्वर तारे फल भुञ्जाइला ॥212॥

यद्यपि-यद्यपि; हरिदास-हरिदास ठाकुर ने; विप्रेर-ब्राह्मण के; दोष-अपराध को; ना-नहीं; लइला-गम्भीरता से लिया; तथापि-फिर भी; ईश्वर-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; तारे-उसे; फल-एक वैष्णव का अपमान करने का परिणाम; भुञ्जाइला-भोग करवाते हैं।

अनुवाद

यद्यपि वैष्णव के रूप में हरिदास ठाकुर ने ब्राह्मण के अपराध को गम्भीरता के साथ नहीं लिया, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् इसे सहन नहीं कर सके, अतः उन्होंने ब्राह्मण को यह फल भोगने के लिए बाध्य किया।

भक्त-स्वभाव,—अज्ञ-दोष क्षमा करे।

कृष्ण-स्वभाव,—भक्त-निन्दा सहिते ना पारे ॥213॥

भक्त-स्वभाव-एक शुद्ध भक्त का स्वभाव; अज्ञ-दोष-एक अज्ञानी मूर्ख द्वारा किये अपराध को; क्षमा करे—क्षमा कर देते हैं; कृष्ण-स्वभाव-कृष्ण का स्वभाव है; भक्त-निन्दा-भक्तों की निन्दा; सहिते ना पारे-सहन नहीं कर सकते।

अनुवाद

यह शुद्ध भक्त का गुण है कि वह अज्ञानी धूर्त द्वारा किये गये किसी भी अपराध को क्षमा कर देता है। किन्तु कृष्ण का गुण यह है कि वे अपने भक्तों की निन्दा नहीं सहन कर पाते।

तात्पर्य

वैष्णव और भगवान् के गुण जो इस श्लोक में वर्णित हैं, बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। अपने शिक्षाष्टक (3) में, श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक वैष्णव के गुणों की शिक्षा दी है :

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।

अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

एक वैष्णव घास से अधिक विनीत तथा वृक्ष से भी अधिक सहनशील होने के सिद्धान्त का दृढ़ता से पालन करता है; वह अन्यो से सम्मान की इच्छा नहीं करता, किन्तु हर एक को सम्मान देता है। इस तरह एक वैष्णव एकमात्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का कीर्तन करने तथा उनकी महिमा का गायन करने में रुचि रखता है। हरिदास ठाकुर वैष्णव मत के इस सर्वोच्च आदेश के प्रतीक थे।

कृष्ण किसी वैष्णव के विरुद्ध अपमान या निन्दा को नहीं सह सकते। उदाहरणार्थ, प्रह्लाद महाराज अपने पिता हिरण्यकशिपु द्वारा अनेक प्रकार से सताये जा रहे थे और प्रह्लाद ने तो इसे सह लिया, किन्तु कृष्ण ने नहीं सहा। इसलिए

वे हिरण्यकशिपु का वध करने के लिए नृसिंहदेव के रूप में आये। इसी तरह यद्यपि श्रील हरिदास ठाकुर ने गोपाल चक्रवर्ती द्वारा किया गया अपमान सह लिया, किन्तु कृष्ण नहीं सह सके। भगवान् ने तुरन्त ही गोपाल चक्रवर्ती को कोढ़ी बनाकर उसे दण्ड दिया। श्रील रूप गोस्वामी को वैष्णवों के विधि-विधानों का उपदेश देते समय श्री चैतन्य महाप्रभु ने वैष्णव के चरणकमलों पर किये गये अपराधों के प्रभावों का विशद वर्णन किया है। यदि वैष्णव-अपराध उठे हाती माता (मध्य 19.156)। वैष्णव का अपमान करना या निन्दा करना सबसे बड़ा अपराध बताया गया है और इसकी तुलना मत्त हाथी से की गई है। जब मत्त हाथी किसी बगीचे में प्रवेश करता है, तो वह सारी लताएँ, फूल तथा वृक्ष को नष्ट कर देता है। इसी तरह उचित रीति से भक्ति करने वाला भक्त यदि अपने गुरु अथवा किसी अन्य वैष्णव के चरणकमलों पर अपराधी बन जाता है, तो उसकी भक्ति नष्ट हो जाती है।

विप्रेर कुष्ठ शुनि' हरिदास मने दुःखी हैला ।

बलाइ-पुरोहिते कहि' शान्तिपुर आइला ॥214॥

विप्रेर—ब्राह्मण का; कुष्ठ-कुष्ठ रोग; शुनि'—सुनकर; हरिदास-हरिदास ठाकुर; मने-मन में; दुःखी हैला-दुःखी हुए; बलाइ-पुरोहिते-बलराम आचार्य से; कहि'—कहकर; शान्तिपुर आइला—शान्तिपुर आ गये।

अनुवाद

जब हरिदास ठाकुर ने सुना कि ब्राह्मण गोपाल चक्रवर्ती को कोढ़ हो गया है, तो वे दुःखी हुए। तत्पश्चात् हिरण्य मजुमदार के पुरोहित बलराम आचार्य को बतलाकर वे अद्वैत आचार्य के घर शान्तिपुर चले गये।

आचार्ये मिलिया कैला दण्डवत्प्रणाम ।

अद्वैत आलिङ्गन करि' करिला सम्मान ॥215॥

आचार्ये मिलिया-अद्वैत आचार्य से मिलकर; कैला—किया; दण्डवत् प्रणाम-प्रणाम; अद्वैत-अद्वैत आचार्य ने; आलिङ्गन करि'-गले लगाकर; करिला सम्मान-सम्मान प्रदर्शित किया।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य से मिलकर हरिदास ठाकुर ने सादर दण्डवत् प्रणाम किया। अद्वैत आचार्य ने बदले में उनका आलिङ्गन किया और सम्मान दिखलाया।

गङ्गा-तीरे गोंफा करि' निर्जने तरै दिला ।

भागवत-गीतार भक्ति-अर्थ शुनाइला ॥216॥

गङ्गा-तीरे-गंगा के किनारे; गोंफा करि'—एक गुफा जैसा निवास बनाकर; निर्जने-एकान्त स्थान में; तरै—उनको; दिला—दिया; भागवत- श्रीमद्भागवत का; गीतार-भगवद्गीता का; भक्ति-अर्थ-प्रेममयी सेवा का वास्तविक अर्थ; शुनाइला—उनसे कहे।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने हरिदास ठाकुर के लिए गंगा के तट पर एकान्त स्थान में एक गुफा जैसा घर बनवा दिया और भक्ति के सन्दर्भ में श्रीमद्भागवत तथा भगवद्गीता का वास्तविक अर्थ उन्हें बताया।

आचार्ये घरें नित्य भिक्षा-निर्वाहण ।

दुइ जना मिलि' कृष्ण-कथा-आस्वादन ॥217॥

आचार्ये घरें-अद्वैत आचार्य के घर पर; नित्य-प्रतिदिन; भिक्षा-निर्वाहण-भिक्षा के रूप में अन्न ग्रहण करके; दुइ जना-दोनों; मिलि'—मिलकर; कृष्ण-कथा-कृष्ण के विषय में चर्चा; आस्वादन-आस्वादन।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर नित्यप्रति अद्वैत आचार्य के घर पर भोजन करते। वे दोनों मिलकर कृष्ण विषयक चर्चाओं का अमृत-आस्वादन करते।

हरिदास कहे,— “गोसाजि, करि निवेदने ।

मोरे प्रत्यह अन्न देह' को प्रयोजने?” ॥218॥

हरिदास कहे-हरिदास ठाकुर ने कहा; गोसाजि-मेरे प्रिय अद्वैत आचार्य; करि निवेदने मुझे एक प्रार्थना करने दो; मोरे-मुझे; प्रति-अह-प्रतिदिन; अन्न देह'-आप अन्न देते हैं; को प्रयोजने-क्या आवश्यकता है।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने कहा, “हे अद्वैत आचार्य, मैं आपके समक्ष कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। आप प्रतिदिन मुझे खाने के लिए भोजन की भिक्षा देते हैं। इसकी क्या आवश्यकता है?”

महा-महा-विप्र एथा कुलीन-समाज ।

नीचे आदर कर, ना वासह भय लाज!! ॥219॥

महा-महा-विप्र-बड़े बड़े ब्राह्मण; एथा-यहाँ; कुलीन-समाज-उच्च समाज में; नीचे-एक नीच जाति के व्यक्ति को; आदर कर-आप आदर करके; ना वासह-आप परवाह नहीं करते; भय लाज-भय या शर्म ।

अनुवाद

हे महोदय, आप बड़े-बड़े ब्राह्मणों तथा कुलीनों के समाज में रह रहे हैं, किन्तु बिना भय या लज्जा के आप मुझ जैसे निम्न जाति के व्यक्ति का आदर करते हैं।

अलौकिक आचार तोमार कहिते पाइ भय ।

सेइ कृपा करिबा,—याते मोर रक्षा हय ॥220॥

अलौकिक आचार-असामान्य आचरण; तोमार-आपका; कहिते-कहते हुए; पाइ भय-मैं भयभीत हूँ; सेइ कृपा-वह कृपा; करिबा-कृपया कीजिए; याते-जिसके द्वारा; मोर-मेरी; रक्षा रक्षा; हय-हो।

अनुवाद

“हे महाशय, आपका आचरण असामान्य है। निस्सन्देह, कभी-कभी तो मैं आपसे बोलते हुए डरता हूँ। किन्तु समाज के आचरण से मेरी रक्षा करके मेरे ऊपर कृपा करें।”

तात्पर्य

जब हरिदास ठाकुर अद्वैत आचार्य के संरक्षण में ठहरे थे, तब वे नवद्वीप के शान्तिपुर स्थान में वहाँ के समाज के आचरण से भयभीत थे, क्योंकि वह कुलीन ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों से पूर्ण था। हरिदास ठाकुर मुस्लिम परिवार में जन्में थे और बाद में महान् वैष्णव के रूप में विख्यात हुए, तो भी ब्राह्मण लोग उनकी आलोचना करते थे। इस तरह हरिदास ठाकुर को भय लगा रहता था कि उनसे अत्यधिक घनिष्ठता होने के कारण अद्वैत आचार्य कहीं कठिनाई में न

पड़ जाएँ। श्री अद्वैत आचार्य हरिदास ठाकुर को सर्वोच्च वैष्णव के रूप में आदर देते थे, किन्तु रामचन्द्र खान जैसे अन्य लोग उनसे ईर्ष्या करते थे। निस्सन्देह, हमें तो अद्वैत आचार्य के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए और रामचन्द्र खान जैसे लोगों की परवाह नहीं करनी चाहिए। आजकल अनेक यूरोपियन तथा अमेरिकन लोग वैष्णव रूप में हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में आ रहे हैं और यद्यपि रामचन्द्र खान जैसे व्यक्ति सदैव ऐसे वैष्णवों से ईर्ष्या करते हैं, किन्तु मनुष्य को इन सबके साथ वैष्णवों जैसा व्यवहार करके श्री अद्वैत आचार्य के पदचिह्नों का अनुगमन करना चाहिए। भले ही वे हरिदास ठाकुर जैसे उच्च न हों, किन्तु जिन अमेरिकियों तथा यूरोपवासियों ने वैष्णव दर्शन तथा आचार संहिता को स्वीकार कर लिया है, उन्हें कभी भी वैष्णव-समाज से विलग नहीं किया जाना चाहिए।

आचार्य कहेन,—“तुमि ना करिह भय ।

सेइ आचरिब, येइ शास्त्र-मत हय” ॥221॥

आचार्य कहेन-अद्वैत आचार्य ने कहा; तुमि-आप; ना-नहीं; करिह-करो; भय-भय; सेइ आचरिब—मैं ऐसा ही आचरण करूँगा; येइ-जो कुछ भी; शास्त्र-मत-प्रामाणिक ग्रन्थों द्वारा अनुमोदित; हय-है।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने उत्तर दिया, “हे प्रिय हरिदास, तुम भयभीत मत होओ। मैं प्रामाणिक शास्त्रों द्वारा अनुमोदित सिद्धान्तों के अनुसार ही कड़ाई से व्यवहार करूँगा।”

तात्पर्य

श्रील अद्वैत आचार्य कठोर ब्राह्मण संस्कृति तथा सामाजिक परम्परा से तनिक भी भयभीत न थे। जैसाकि शास्त्रों में, जो प्रमाण माने जाते हैं, आदेश है-कोई भी व्यक्ति, चाहे वह निम्न कुल में ही क्यों न उत्पन्न हो, भगवद्धाम लौट सकता है। भगवद्गीता (9.32) में श्रीकृष्ण कहते हैं :

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

“हे पार्थ, जो लोग मेरी शरण ग्रहण करते हैं, वे भले ही निम्नजन्मा-स्त्री, वैश्य तथा शूद्र-क्यों न हों, वे परम धाम को प्राप्त कर सकते हैं। भले ही कोई मानव समाज में निम्नजन्मा हो, किन्तु जिसने कृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में

स्वीकार कर लिया है, वह भगवधाम जाने के लिए सुपात्र है और जो भगवद्धाम जाने के लिए प्रामाणिक पात्र है, उसे निम्नजन्मा या चण्डाल नहीं मानना चाहिए। शास्त्रों का भी यही आदेश है। जैसाकि श्रीमद्भागवत (2.4.18) में कहा गया है :

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कशा

आभीरशुम्भा यवनाः खसादयः ।

येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः

शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥

न केवल यवन तथा खसादि ही, अपितु उनसे भी निम्न परिवारों में जन्मे लोग भी भगवान् कृष्ण के भक्त की कृपा से शुद्ध किये जा सकते हैं (शुध्यन्ति), क्योंकि कृष्ण ऐसे भक्तों को शुद्ध करने की शक्ति प्रदान करते हैं। अद्वैत आचार्य का शास्त्रों के प्रमाण पर विश्वास था और वे सामाजिक रीति-रिवाजों की परवाह नहीं करते थे। अतएव कृष्णभावनामृत आन्दोलन ऐसा सांस्कृतिक आन्दोलन है, जो स्थानीय सामाजिक रीति-रिवाजों की परवाह नहीं करता। हम श्री चैतन्य महाप्रभु तथा अद्वैत आचार्य के पदचिह्नों पर चलते हुए विश्व के किसी भी भाग से आये भक्त को स्वीकार कर सकते हैं और ज्योंही वह वैष्णव आचार संहिता का पालन करके योग्य बन जाता है, उसे ब्राह्मण मान सकते हैं।

“तुमि खाइले हय कोटि-ब्राह्मण-भोजन” ।

एत बलि, श्राद्ध-पात्र कराइला भोजन ॥222॥

तुमि खाइले—यदि आप खाते हैं; हय-होता है; कोटि-ब्राह्मण-भोजन-1 करोड़ ब्राह्मणों को खिलाना; एत बलि-यह कहकर; श्राद्ध-पात्र—पूर्वजों को अर्पित भोजन; कराइला भोजन-खिलाया।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने कहा, “आपको खिलाना एक करोड़ ब्राह्मणों को खिलाने के समान है। अतएव आप यह श्राद्धपात्र स्वीकार करें। इस तरह अद्वैत आचार्य ने उन्हें खिलाया।”

तात्पर्य

श्राद्ध वह प्रसाद है, जो वर्ष या मास की किसी विशेष तिथि को पितरों को दिया जाता है। तब पितरों को भेंट किया गया श्राद्धपात्र वह थाली है, जो समाज के सर्वोत्तम ब्राह्मण को दी जाती है। अद्वैत आचार्य ने किसी अन्य ब्राह्मण को वह श्राद्धपात्र देने के बदले हरिदास ठाकुर को ही सर्वोच्च ब्राह्मण से भी बड़े मानकर उन्हें वह दे दिया। श्री अद्वैत आचार्य का यह कार्य सिद्ध करता है कि हरिदास ठाकुर सदैव दिव्य पद को प्राप्त रहते थे, अतएव वे सदैव सर्वोच्च ब्राह्मण से भी उच्च थे, क्योंकि वे भौतिक जगत् के सत्त्वगुण से भी परे स्थित थे। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती भक्तिसन्दर्भ के श्लोक 177 का उद्धरण देते हुए इस सन्दर्भ में गरुड़ पुराण का निम्नलिखित कथन उद्धृत करते हैं।

ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यः सत्रयाजी विशिष्यते ।

सत्रयाजीसहस्रेभ्यः सर्ववेदान्तपारगः ॥

सर्ववेदान्तविकोट्या विष्णुभक्तो विशिष्यते ।

वैष्णवानां सहस्रेभ्य एकान्त्येको विशिष्यते ॥

“यज्ञ करने के लिए योग्य ब्राह्मण सामान्य ब्राह्मण से बढ़कर है और ऐसे ब्राह्मण से भी बढ़कर वह है, जिसने सारे वैदिक शास्त्रों का अध्ययन किया हो। ऐसे अनेक ब्राह्मणों में से जो भगवान् विष्णु का भक्त होता है, वह श्रेष्ठ है और ऐसे अनेक वैष्णवों में से जो भगवान् की सेवा में पूर्णतया लगा रहता है, वही सर्वोत्तम है।”

भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्तते ।

स विप्रेन्द्रो मुनिश्रेष्ठाः स ज्ञानी स च पण्डितः ।

तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा हरिः ॥

“भक्त अनेक प्रकार के होते हैं, किन्तु म्लेच्छों या यवनों के परिवार तक में जन्मे वैष्णव को विद्वान पण्डित माना जाता है, यदि वह वैष्णव दर्शन जानता है। अतः उसे दान दिया जाना चाहिए, क्योंकि ऐसा वैष्णव भगवान् के ही सदृश पूज्य होता है।”

न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः ।

तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम् ॥

भगवान् कृष्ण कहते हैं, “अभक्त चाहे ब्राह्मण कुल में उत्पन्न क्यों न हो और वेदाध्ययन में दक्ष क्यों न हो, वह मुझे अति प्रिय नहीं होता, जबकि मांसाहारी निम्न कुल में जन्मा भक्त यदि निष्ठावान हो, तो मुझे अत्यन्त प्रिय है। ऐसे निष्ठावान शुद्ध भक्त को दान दिया जाना चाहिए, क्योंकि वह मेरे ही समान पूज्य है।”

जगत् निस्तार लागि’ करेन चिन्तन ।

अवैष्णव-जगत् केमने हड़बे मोचन? ॥223॥

जगत्-निस्तार-समस्त जगत् के लोगों के उद्धार; लागि’-के लिए; करेन चिन्तन-सदैव विचार करते थे; अवैष्णव-अभक्तों से भरे हुए; जगत्-समस्त संसार का; केमने-कैसे; हड़बे मोचन-उद्धार होगा।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य सदैव इन विचारों में मग्न रहते थे कि सम्पूर्ण जगत् के पतितात्माओं का किस तरह उद्धार किया जाए। उन्होंने सोचा, “सारा जगत् अभक्तों से भरा पड़ा है। उनका उद्धार किस तरह हो सकेगा?”

तात्पर्य

श्रील अद्वैत आचार्य वैष्णव सम्प्रदाय में आचार्यों के लिए आदर्श प्रस्तुत करने वाले हैं। आचार्य को पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए सदैव उत्सुक रहना चाहिए। जो व्यक्ति लोगों द्वारा विग्रह सेवा के लिए चढ़ाये गये धन को अपनी जीविका के लिए प्रयुक्त करके लोगों की भावनाओं का लाभ उठाने के लिए मन्दिर या मठ स्थापित करता है, उसे गोस्वामी या आचार्य नहीं कहा जा सकता। जो व्यक्ति शास्त्रों के निर्णय को जानता है, अपने पूर्ववर्तियों के पदचिह्नों पर चलता है और विश्वभर में भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करने का प्रयास करता है, उसे ही आचार्य माना जायेगा। आचार्य की भूमिका मन्दिर की आय द्वारा जीविकोपार्जन करने में नहीं है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहा करते थे कि यदि कोई व्यक्ति मन्दिर में अर्चाविग्रह दिखलाकर जीविका चलाता है, तो वह आचार्य या गोस्वामी नहीं है। उसके लिए इससे अच्छा तो यह होगा कि वह सड़क पर झाड़ू लगाने का काम करे, क्योंकि जीविकोपार्जन का यह अधिक सम्मानित साधन है।

कृष्णे अवतारिते अद्वैत प्रतिज्ञा करिला ।

जल-तुलसी दिया पूजा करिते लागिला ॥ 224॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण का; अवतारिते-अवतार करवाने का; अद्वैत-अद्वैत आचार्य; प्रतिज्ञा-प्रण; करिला-किया;
जल-तुलसी-गंगाजल तथा तुलसी पत्र; दिया-अर्पित करके; पूजा-पूजा; करिते-करना; लागिला-प्रारम्भ किया।

अनुवाद

समस्त पतितात्माओं का उद्धार करने का दृढ़ संकल्प लेकर अद्वैत आचार्य ने कृष्ण को अवतरित करवाने का निश्चय किया। इस व्रत के साथ भगवान् की पूजा करने के लिए वे गंगाजल तथा तुलसी दल अर्पित करने लगे।

हरिदास करे गोंफाय नाम-सङ्कीर्तन ।

कृष्ण अवतीर्ण हइबेन,—एइ तौ मन ॥225॥

हरिदास-हरिदास ठाकुर ने; करे-किया; गोंफाय-गुफा में; नाम-सङ्कीर्तन-पवित्र नाम का कीर्तन; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; अवतीर्ण हइबेन-अवतरित होंगे; एइ-यह; तौ मन-उनका मन था।

अनुवाद

इसी तरह हरिदास ठाकुर गंगा के किनारे अपनी गुफा में कृष्ण का अवतरण कराने की दृष्टि से जप करते रहे।

दुइ-जनेर भक्त्ये चैतन्य कैला अवतार ।

नाम-प्रेम प्रचारि' कैला जगत् उद्धार ॥226॥

दुइ-जनेर-इन दोनों व्यक्ति की; भक्त्ये-भक्ति के कारण; चैतन्य-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैला-लिया;
अवतार-अवतार; नाम-प्रेम-पवित्र नाम और कृष्ण-प्रेम; प्रचार-प्रचार करके; कैला-किया; जगत् उद्धार-समस्त जगत् का उद्धार।

अनुवाद

इन दोनों व्यक्ति की भक्ति के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु अवतार के रूप में आये। इस तरह सारे जगत् का उद्धार करने के लिए उन्होंने भगवान् के पवित्र नाम तथा कृष्ण-प्रेम का प्रचार किया।

आर अलौकिक एक चरित्र ताँहार ।

याहार श्रवणे लोके हय चमत्कार ॥227॥

आर-एक ओर; अलौकिक-असाधारण; एक-एक; चरित्र-चरित्र; ताँहार-हरिदास ठाकुर का; याहार श्रवणे-जैसे सुनकर; लोके-मानव समाज में; हय-होगा; चमत्कार-आश्चर्य

अनुवाद

हरिदास ठाकुर के असामान्य व्यवहार से सम्बन्धित एक अन्य घटना है। इसको सुनकर कोई भी आश्चर्यचकित हो जायेगा।

तर्क ना करिह, तर्कागोचर ताँर रीति ।

विश्वास करिया शुन करिया प्रतीति ॥ 228 ॥

तर्क ना करिह-तर्क मत करो; तर्क-अगोचर-तर्क से परे; ताँर-उनका; रीति-व्यवहार; विश्वास करिया-विश्वास करके; शुन-सुनो; करिया प्रतीति-भरोसा रखकर।

अनुवाद

ऐसी घटनाओं को शुष्क तर्क किये बिना सुनो, क्योंकि ये घटनाएँ हमारे भौतिक तर्क से परे हैं। मनुष्य को इन पर श्रद्धापूर्वक विश्वास करना चाहिए।

एक-दिन हरिदास गोंफाते वसिया ।

नाम-सङ्कीर्तन करेन उच्च करिया ॥ 229॥

एक-दिन-एक दिन; हरिदास-हरिदास ठाकुर; गोंफाते वसिया-अपनी गुफा में बैठकर; नाम-सङ्कीर्तन करेन-भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन कर रहे थे; उच्च करिया-अत्यन्त उच्च स्वर में।

अनुवाद

एक दिन हरिदास ठाकुर अपनी गुफा में बैठे थे और अत्यधिक उच्च स्वर से पवित्र भगवन्नाम का कीर्तन कर रहे थे।

ज्योत्स्नावती रात्रि, दश दिक्सुनिर्मल ।

गङ्गार लहरी ज्योत्स्नाय करे झल-मल ॥ 230॥

ज्योत्स्नावती—चाँदनी से पूर्ण; रात्रि-रात; दश दिक्-दसों दिशाओं में; सु-निर्मल-अत्यन्त स्पष्ट और चमकदार;
गङ्गार लहरी-गंगा की लहरें; ज्योत्स्नाय—चाँदनी में; करे झल-मल-झिलमिला रही थीं।

अनुवाद

पूर्णिमा की रात्रि थी, जिससे गंगा की लहरें झिलमिला रही थीं। सारी दिशाएँ निर्मल तथा प्रकाशमान
थीं।

द्वारे तुलसी लेपा-पिण्डर उपर ।

गोंफार शोभा देखि* लोकेर जुड़ाय अन्तर ॥231॥

द्वारे-द्वार पर; तुलसी—तुलसी का पौधा; लेपा—अति स्वच्छ; पिण्डर उपर-वेदी के ऊपर; गोंफार शोभा—गुफा की
सुन्दरता; देखि-देखकर; लोकेर-सभी का; जुड़ाय-सन्तुष्ट था; अन्तर—हृदय।

अनुवाद

स्वच्छ वेदी पर तुलसी के पौधे से युक्त गुफा की शोभा को जो भी देखता, वह चकित रह जाता और
हृदय में तुष्ट होता।

हेन-काले एक नारी अङ्गने आइल ।

ताँर अङ्ग-कान्त्ये स्थान पीत-वर्ण हइल ॥232॥

हेन-काले—उस समय; एक-एक; नारी-स्त्री; अङ्गने आइल-आँगन में आ गई; ताँर-उसके; अङ्ग-कान्त्ये-शरीर
की सुन्दरता से; स्थान-वह स्थान; पीत-वर्ण हइल-पीले वर्ण का हो गया।

अनुवाद

उसी समय उस सुन्दर परिदृश्य में एक स्त्री आँगन में प्रकट हुई। उसके शरीर का सौन्दर्य इतना प्रकाशमान
था कि सारा स्थान पीली आभा से भर गया।

ताँर अङ्ग-गन्धे दश दिक् आमोदित ।

भूषण-ध्वनिते कर्ण हय चमकित ॥ 233॥

ताँर-उसके; अङ्ग-गन्धे-शरीर की सुगन्ध; दश दिक्-दसों दिशाएँ; आमोदित-महकने लगीं; भूषण-ध्वनिते-उसके आभूषणों की ध्वनि से; कर्ण-कान; हय-होते; चमकित-गुंजित।

अनुवाद

उसके शरीर की सुगन्ध से सारी दिशाएँ महकने लगीं और उसके गहनों की झंकार से कान झंकरित हो गये।

आसिया तुलसीरे सेइ कैला नमस्कार ।

तुलसी परिक्रमा करि' गेला गोंफा-द्वार ॥ 234॥

आसिया-आकर; तुलसीरे-तुलसी के पौधे के पास; सेइ-उस स्त्री ने; कैला-किया; नमस्कार-प्रणाम; तुलसी-तुलसी के पौधे की परिक्रमा-परिक्रमा; करि'-करके; गेला-गई; गोंफा-द्वार-गुफा के द्वार पर।

अनुवाद

वहाँ आकर उस स्त्री ने तुलसी को नमस्कार किया और तुलसी की परिक्रमा करके वह उस गुफा के दरवाजे पर आई, जहाँ हरिदास ठाकुर बैठे थे।

योड़-हाते हरिदासेर वन्दिला चरण ।

द्वारे वसि' कहे किछु मधुर वचन ॥235॥

योड़-हाते-हाथ जोड़कर; हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; वन्दिला चरण-चरणकमलों में प्रणाम किया; द्वारे वसि'-द्वार पर बैठकर; कहे-कहती है; किछु-कुछ; मधुर वचन-मधुर वचना।

अनुवाद

उसने हाथ जोड़कर हरिदास ठाकुर के चरणकमलों पर नमस्कार किया। फिर द्वार पर बैठकर वह अत्यन्त मधुर वाणी में बोली।

जगतेर बन्धु तुमि रूप-गुणवान् ।

तव सङ्ग लागि' मोर एथाके प्रयाण ॥236॥

जगतेर-समस्त जगत् के; बन्धु-मित्र; तुमि-आप; रूप-गुण-वान्-अत्यन्त सुन्दर तथा गुणवान्; तव सङ्ग-आपके संग; लागि'—के लिए; मोर-मैं; एथाके प्रयाण—यहाँ आई हूँ।

अनुवाद

“हे प्रिय मित्र, आप तो सारे जगत् के मित्र हैं। आप इतने सुन्दर तथा योग्य हैं। मैं यहाँ आपके साथ संग-सुख लाभ के लिए आई हूँ।

“मोरे अङ्गीकार कर हाजा सद्य ।

दीने दया करे,—एङ्ग साधु-स्वभाव हय” ॥ 237॥

मोरे- मुझे; अङ्गीकार कर—स्वीकार करें; हाजा स-दय-दयालु होकर; दीने—पतित जीवों पर; दया करे—दया करना; एङ्ग-यह; साधु-स्वभाव-साधुओं का स्वभाव; हय-है।

अनुवाद

“हे महोदय, आप कृपया मुझे स्वीकार करें और मेरे प्रति कृपालु हों, क्योंकि समस्त साधुजनों का स्वभाव है कि वे दीन तथा पतितों के प्रति कृपालु होते हैं।”

एत बलि' नाना-भाव करये प्रकाश ।

याहार दर्शने मुनिर हय धैर्य-नाश ॥ 238॥

एत बलि'—यह कहकर; नाना-भाव-अनेक मुद्राएँ; करये प्रकाश-प्रदर्शित करने लगी; याहार दर्शने-जिसे देखकर; मुनिर—महान् दार्शनिकों का भी; हय-हो जाए; धैर्य-नाश-धैर्य का नाश।

अनुवाद

यह कहकर वह विविध हावभाव प्रकट करने लगी, जिसे देखकर बड़े-से-बड़े दार्शनिक का भी धैर्य छूट जाता।

निर्विकार हरिदास गम्भीर-आशय ।

बलिते लागिला तारे हजा सदय ॥ 239॥

निर्विकार-अविचलित; हरिदास-हरिदास ठाकुर; गम्भीर-अत्यन्त गम्भीर; आशय-संकल्प; बलिते लागिला-कहने लगे; तारै-उस पर; हजा सदय-कृपा करके।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर अविचलित थे, क्योंकि उनका संकल्प दृढ़ था। वे उस पर कृपालु होकर उससे बोले।

सङ्ख्या-नाम-सङ्कीर्तन-एङ्ग 'महा-यज्ञ' मन्ये ।

ताहाते दीक्षित आमि हङ्ग प्रति-दिने ॥ 240॥

सङ्ख्या -नाम-सङ्कीर्तन-पवित्र नाम का संख्यापूर्वक जप; एङ्ग-यह; महा-यज्ञ-महान् यज्ञ है; मन्ये-मैंने प्रण किया है; ताहाते दीक्षित-उसमें दीक्षित; आमि-मैं; हङ्ग-हूँ; प्रति-दिने-प्रतिदिन।

अनुवाद

“मैंने प्रतिदिन निश्चित संख्या में नाम-कीर्तन करने के महान् यज्ञ-व्रत की दीक्षा ले रखी है।”

यावत्कीर्तन समाप्त नहे, ना करि अन्य काम ।

कीर्तन समाप्त हैले, हय दीक्षार विश्राम ॥ 241॥

यावत्-जब तक; कीर्तन-जप; समाप्त-समाप्त; नहे-नहीं होता; ना-नहीं; करि-मैं करता; अन्य-अन्य; काम-कार्य; कीर्तन-कीर्तन; समाप्त-समाप्त; हैले-होने पर; हय-है; दीक्षार-दीक्षा का; विश्राम-विश्राम।

अनुवाद

“जब तक जप करने का व्रत अधूरा है, तब तक मैं किसी अन्य वस्तु की कामना नहीं करता। जब मैं अपना जप समाप्त कर लेता हूँ, तब मुझे दूसरा कुछ करने का अवसर मिलता है।

द्वारे वसि' शुन तुमि नाम-सङ्कीर्तन ।

नाम समाप्त हैले करिमु तब प्रीति-आचरण ॥ 242॥

द्वारे वसि'—द्वार पर बैठकर; शुन-सुनो; तुमि-तुम; नाम-सङ्कीर्तन-पवित्र नामों का जप; नाम-पवित्र नाम; समाप्त हैले—जब समाप्त हो जाए; करिमु-मैं करूँगा; तब-तुम्हारे; प्रीति-आनन्ददायक; आचरण-कार्य।

अनुवाद

तुम द्वार पर बैठ जाओ और हरे कृष्ण महामन्त्र का जप सुनो। जप समाप्त होते ही मैं तुम्हारी मनोकामना पूरी करूँगा।”

एत बलि' करेन तेंहो नाम-सङ्कीर्तन ।

सेइ नारी वसि' करे श्री-नाम-श्रवण ॥ 243॥

एत बलि'—यह कहकर; करेन-करते हैं; तेंहो-वे; नाम-सङ्कीर्तन-पवित्र नाम का जप; सेइ नारी-वह स्त्री; वसि'—बैठकर; करे-करती है; श्री-नाम-श्रवण-पवित्र नाम का श्रवण।

अनुवाद

यह कहकर हरिदास ठाकुर ने भगवान् के पवित्र नाम का जप जारी रखा। इस तरह उनके समक्ष बैठी वह स्त्री पवित्र नाम का जप सुनने लगी।

कीर्तन करिते आसि' प्रातः काल हैल ।

प्रातः काल देखि' नारी उठिया चलिल ॥244॥

कीर्तन करिते-जप करते करते; आसि-आकर; प्रातः-काल-प्रातः काल; हैल-हो गया; प्रातः काल देखि'—प्रातः काल देखकर; नारी-वह स्त्री; उठिया चलिल-उठकर चली गई।

अनुवाद

इस तरह उनके जप करते-करते सुबह हो गई और जब उस स्त्री ने देखा कि सुबह हो गई, तो वह उठी और चली गई।

एइ-मत तिन-दिन करे आगमन ।

नाना भाव देखाय, याते ब्रह्मार हरे मन ॥245॥

एइ-मत-इस प्रकार; तिन-दिन-तीन दिन; करे-वह करती है; आगमन-आना; नाना भाव-सब प्रकार के स्त्री सुलभ भाव; देखाय-दिखाकर; याते-जिससे; ब्रह्मार-ब्रह्माजी का भी; हरे-आकर्षित हो जाए; मन-मन।

अनुवाद

इस तरह वह तीन दिनों तक हरिदास ठाकुर के पास आती रही और विविध स्त्री-भंगिमाएँ दिखलाती रही, जो ब्रह्मा के भी मन को विमोहित कर लें।

कृष्णे नामाविष्ट-मना सदा हरिदास ।

अरण्ये रोदित हैल स्त्री-भाव-प्रकाश ॥246॥

कृष्णे-भगवान् कृष्ण के नाम-आविष्ट-पवित्र नाम जप में मग्न; मना-मन; सदा-सदैव; हरिदास-हरिदास ठाकुर; अरण्ये-वन में; रोदित-रोने जैसे; हैल-हो गये; स्त्री-भाव-प्रकाश-स्त्री के भाव प्रदर्शना

अनुवाद

हरिदास ठाकुर सदैव कृष्ण के विचारों में तथा कृष्ण के पवित्र नाम में मग्न रहते थे। इसलिए स्त्री ने जो भंगिमाएँ प्रकट कीं, वे जंगल में रोने के समान थीं।

तृतीय दिवसेर रात्रि-शेष यबे हैल ।

ठाकुरेर स्थाने नारी कहिते लागिल ॥ 247॥

तृतीय दिवसेर तीसरे दिन की; रात्रि-शेष-रात का अन्त; यबे-जब; हैल-हो गया; ठाकुरेर-हरिदास ठाकुर के; स्थाने स्थान पर; नारी-स्त्री; कहिते लागिल-कहने लगी।

अनुवाद

तीसरे दिन की रात के समाप्त होने पर वह स्त्री हरिदास से इस प्रकार बोली।

“तिन दिन वञ्चिला आमा करि’ आश्वासन ।

रात्रि-दिने नहे तोमार नाम-समापन” ॥ 248॥

तिन दिन-तीन दिन; वञ्चिला-आपने छल किया; आमा-मुझे; करि' आश्वासन-भरोसा देकर; रात्रि-दिने-सम्पूर्ण दिन और रात को; नहे-नहीं; तोमार-आपका; नाम-समापन-पवित्र नाम का जप समाप्त।

अनुवाद

“हे महोदय, आपने तीन दिनों तक झूठा आश्वासन देकर मुझे धोखा दिया है, क्योंकि मैं देखती हूँ कि आपका दिन-रात चलने वाला यह नाम-जप कभी समाप्त नहीं होने वाला है।”

हरिदास ठाकुर कहने,—“आमि कि करिमु? ।

नियम करियाछि, ताहा केमने छाड़िमु?” ॥249॥

हरिदास ठाकुर-हरिदास ठाकुर ने; कहने-कहा; आमि कि करिमु-मैं क्या करूँ; नियम करियाछि—मैंने एक प्रतिज्ञा की है; ताहा-वह; केमने-कैसे; छाड़िमु-मैं छोड़ दूँ।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने कहा, “मेरी प्रिय मित्र, मैं कर ही क्या सकता हूँ? मैंने व्रत ले रखा है। तो फिर मैं उसे कैसे त्याग सकता हूँ?

तबे नारी कहे तरै करि' नमस्कार ।

‘आमि—माया’ करिते आइलाड परीक्षा तोमार ॥ 250 ॥

तबे-उस समय; नारी-स्त्री; कहे-बोली; तरै-हरिदास ठाकुर को; करि' नमस्कार-प्रणाम करके; आमि-मैं; माया-माया हूँ; करिते-करने के लिए; आइलाड-मैं आई थी; परीक्षा-परीक्षा; तोमार-आपकी।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर को नमस्कार करके वह स्त्री बोली, “मैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की मोहिनी शक्ति, माया हूँ। मैं यहाँ आपकी परीक्षा लेने आई थी।

तात्पर्य

भगवद्गीता (7.14) में भगवान् कृष्ण कहते हैं :

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

“भौतिक प्रकृति के तीन गुणों वाली इस मेरी दैवी शक्ति को पार कर पाना कठिन है। किन्तु जो मेरे शरणागत हो जाते हैं, वे इसे सरलता से पार कर जाते हैं।” हरिदास ठाकुर के चरित्र से यह सचमुच सिद्ध हो गया था। माया सारे जगत् को विमोहित करती है। लोग जीवन के चरम लक्ष्य को भूल चुके हैं, क्योंकि वे तो भौतिक जगत् की चकाचौंध से आकृष्ट हैं। किन्तु यह चकाचौंध का आकर्षण, विशेषतया स्त्री का आकर्षक सौन्दर्य, उन लोगों के लिए है। जिन्होंने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण नहीं ली है। भगवान् कहते हैं-मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते—“जो मेरी शरण में आ चुका है, उसे माया जीत नहीं सकती।” माया स्वयं ही हरिदास की परीक्षा लेने आई, किन्तु यहाँ वह अपनी पराजय स्वीकार करती है, क्योंकि वह उन्हें विमोहित नहीं कर पाई। यह कैसे सम्भव हुआ? इसलिए कि हरिदास ठाकुर भगवान् कृष्ण के चरणकमलों में पूरी तरह समर्पित थे और प्रतिदिन व्रत के रूप में तीन लाख भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण करके कृष्ण के विचारों में सदैव डूबे रहते थे।

ब्रह्मादि जीव, आमि सबारे मोहिलुं ।

एकेला तोमारे आमि मोहिते नारिलुं ॥ 251॥

ब्रह्म-आदि जीव-ब्रह्माजी से लेकर सभी जीवों को; आमि-मैंने; सबारे मोहिलुं-सबको मोहित कर दिया; एकेला-एकमात्र; तोमारे-आपको; आमि-मैं; मोहिते नारिलुं-मोहित नहीं कर पाई।

अनुवाद

मैंने पहले ब्रह्मा तक के मन को मोहित किया है, अन्यो की बात जाने दें। केवल आपके मन को ही मैं आकृष्ट नहीं कर सकी।

तात्पर्य

ब्रह्माजी से लेकर क्षुद्र चींटी तक सारे जीव, बिना किसी अपवाद के पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की माया द्वारा आकृष्ट होते हैं। देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े, पेड़, पौधे सभी संभोग-इच्छा द्वारा आकृष्ट होते हैं। यही माया का मोह है। पुरुष हो या स्त्री, हर व्यक्ति यही सोचता है कि वह माया का भोक्ता है। इस तरह हर व्यक्ति मोहित होता है और भौतिक कार्यों

में लगता है। किन्तु हरिदास ठाकुर सदैव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का चिन्तन करते रहते थे और सदैव भगवान् की इन्द्रियों को सन्तुष्ट करने में लगे रहते थे। उन्हें इसी विधि ने माया के बन्धन से बचाया। यह भक्ति की शक्ति का ज्वलन्त प्रमाण है। भगवान् की सेवा में पूरी तरह लगे रहने के कारण ही उनको माया के साथ भोग करने के लिए प्रेरित नहीं किया जा सका। शास्त्रों का निर्णय है कि शुद्ध वैष्णव कभी भी भौतिक जगत् का भोग करने की नहीं सोचता, जिसकी चरम परिणति संभोग है। वह कभी भी अपने आपको भोक्ता नहीं मानता। प्रत्युत वह भगवान् द्वारा भोग्य होता है। इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सनातन, दिव्य हैं तथा इन्द्रियतृप्ति की अनुभूति से एवं भौतिक गुणों से परे हैं। यदि जीव इस भ्रान्त धारणा को त्याग देता है कि शरीर ही आत्मा है और यदि वह अपने आपको कृष्ण तथा वैष्णवों का नित्य दास समझता है, तो वह माया के प्रभाव को लाँघ सकता है (मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते) । इस तरह जो शुद्ध जीव अनर्थ-निवृत्ति का पद प्राप्त कर लेता है, उसके लिए इस भौतिक जगत् में भोग करने के लिए कुछ नहीं बचता। इस स्थिति को भक्ति-कार्यों को सही ढंग से सम्पन्न करके ही प्राप्त किया जा सकता है। श्रील रूप गोस्वामी ने लिखा है।

आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया ।

ततोऽनर्थ-निवृत्तिः स्यात् ततो निष्ठा रुचिस्ततः ॥

“प्रारम्भ में आत्म-साक्षात्कार की इच्छा होनी चाहिए। इससे व्यक्ति आध्यात्मिकता में उन्नत व्यक्तियों का संग करने का प्रयास करेगा। अगली अवस्था में वह उन्नत गुरु से दीक्षा लेगा और उसके निर्देशन में कनिष्ठ भक्त भक्तियोग प्रारम्भ करेगा। गुरु के निर्देशन में भक्ति सम्पन्न करने से वह सारी भौतिक आसक्तियों से मुक्त हो जाता है, आत्म-साक्षात्कार में स्थिरता प्राप्त करता है तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में सुनने के लिए रुचि उत्पन्न करता है।” (भक्तिरसामृतसिन्धु 1.4.15) यदि कोई सचमुच भक्ति करता है, तो अनर्थ (भौतिक भोग से सम्बन्धित अवांछित वस्तुएँ) स्वतः ही लुप्त हो जायेंगे।

महा-भागवत तुमि,—तोमार दर्शने ।

तोमार कृष्ण-नाम-कीर्तन-श्रवणे ॥ 252॥

चित्त शुद्ध हैल, चाहे कृष्ण-नाम लैते ।

कृष्ण-नाम उपदेशि' कृपा कर मोते ॥ 253॥

महा-भागवत-महान् भक्त; तुमि-आप हैं; तोमार दर्शने-आपके दर्शन से; तोमार-आपके; कृष्ण-नाम-कृष्ण के पवित्र नाम के; कीर्तन-कीर्तन; श्रवणे-श्रवण द्वारा; चित्त-चेतना; शुद्ध हैल-शुद्ध हो गई; चाहे-चाहती हूँ; कृष्ण-नाम लैते-भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम जप करना; कृष्ण-नाम उपदेशि'-हरे कृष्ण महामन्त्र के जप के विषय में शिक्षा दें; कृपा कर-कृपा करके; मोते-मुझे।

अनुवाद

“हे महोदय, आप सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं। आपके दर्शन मात्र से तथा आपको कृष्ण के पवित्र नाम का जप करते सुनकर मेरी चेतना शुद्ध हो गई है। अब मैं भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना चाहती हूँ। कृपया हरे कृष्ण महामन्त्र जप के आनन्द के विषय में उपदेश देने की मुझ पर कृपा करें।

चैतन्यावतारे वहे प्रेमामृत-वन्या ।

सब जीव प्रेमे भासे, पृथिवी हैल धन्या ॥254॥

चैतन्य-अवतारे-श्री चैतन्य महाप्रभु के अवतार द्वारा; वहे-बह रही है; प्रेम-अमृत-भगवत्प्रेम के नित्य अमृत की; वन्या-बाढ़; सब जीव-सारे जीव; प्रेमे-प्रेमभाव में; भासे-तैर रहे हैं; पृथिवी-सम्पूर्ण विश्व; हैल-हो गया है; धन्या-धन्या

अनुवाद

“श्री चैतन्य महाप्रभु का अवतार होने से भगवत्प्रेम रूपी सनातन अमृत की बाढ़ आ गई है। सारे जीव उस बाढ़ में बह रहे हैं। अब सारा जगत् महाप्रभु का कृतज्ञ है।

ए-वन्याय ये ना भासे, सेइ जीव छार ।

कोटि-कल्पे कभु तार नाहिक निस्तार ॥ 255 ॥

ए-वन्याय-इस बाढ़ में; ये-जो कोई भी; ना भासे-नहीं डूबता; सेइ-वह; जीव-जीवात्मा; छार-सर्वाधिक निन्दनीय; कोटि-कल्पे-करोड़ों कल्पों में; कभु-किसी भी समय; तार-उसका; नाहिक-नहीं हो सकता; निस्तार-उद्धार ।

अनुवाद

“जो इस बाद में नहीं बहता, उसे धिक्कार है। ऐसे व्यक्ति को करोड़ों कल्पों तक उद्धार नहीं किया जा सकता।

तात्पर्य

कल्प की व्याख्या भगवद्गीता (8.17) में दी गई है। सहस्रयुग-पर्यन्तमहर्षद् ब्रह्मणो विदुः । ब्रह्मा का एक दिन कल्प कहलाता है। एक युग या महायुग में 43,20,000 वर्ष होते हैं और इस तरह के एक हजार महायुगों से एक कल्प बनता है। श्रीचैतन्य-चरितामृत के रचयिता का कहना है कि यदि कोई श्री चैतन्य महाप्रभु के कृष्णभावनामृत आन्दोलन का लाभ नहीं उठाता, तो उसका उद्धार ऐसे करोड़ों कल्पों में भी नहीं हो सकता।

पूर्वें आमि राम-नाम पाजाछि ‘शिव’ हैते ।

तोमार सङ्गे लोभ हैल कृष्ण-नाम लैते ॥ 256॥

पूर्वें-इससे पहले; आमि-मैंने; राम-नाम-भगवान् राम का पवित्र नाम; पाजाछि-प्राप्त किया था; शिव हैते-शिवजी से; तोमार सङ्गे-आपके संग से; लोभ हैल-मुझे लोभ हो गया है; कृष्ण-नाम लेते-हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करने का।

अनुवाद

“पहले मुझे शिवजी से भगवान् राम का पवित्र नाम प्राप्त हुआ था, किन्तु अब आपकी संगति के फलस्वरूप मैं भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का जप करने के लिए अत्यधिक उत्सुक हूँ।”

मुक्ति-हेतुक तारक हय ‘राम-नाम’ ।

‘कृष्ण-नाम’ पारक हजा करे प्रेम-दान ॥ 257॥

मुक्ति-हेतुक-मुक्ति का कारण; तारक-उद्धारकारी; हय-है; राम-नाम-भगवान् राम का पवित्र नाम; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम; पारक-जो किसी (प्राणी) को भवसागर के दूसरे पार ले जाकर; हजा-इस प्रकार; करे-देता है; प्रेम-दान-कृष्ण-प्रेम रूपी उपहार।

अनुवाद

“भगवान् राम का पवित्र नाम निश्चय ही मुक्ति को देने वाला है, किन्तु कृष्ण का पवित्र नाम भवसागर को पार कराने वाला तथा अन्त में कृष्ण-प्रेम प्रदान कराने वाला है।”

तात्पर्य

इस श्लोक में अप्रत्यक्ष रूप से हरे कृष्ण महामन्त्र के जप की व्याख्या हुई है। हरे कृष्ण महामन्त्र में-हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे-कृष्ण तथा राम दोनों के पवित्र नाम आते हैं। भगवान् राम मुक्ति का अवसर प्रदान करते हैं, किन्तु केवल मुक्ति लाभ से वास्तविक आध्यात्मिक लाभ नहीं मिल पाता। कभी-कभी कोई व्यक्ति भौतिक जगत् से मुक्त तो हो जाता है, किन्तु यदि उसे कृष्ण के चरणकमलों में शरण नहीं मिलती, तो वह पुनः भौतिक जगत् में आ गिरता है। मुक्ति तो उस स्वास्थ्य लाभ की-सी अवस्था है, जिसमें रोगी ज्वर से मुक्त तो रहता है, किन्तु स्वस्थ नहीं रहता। यदि वह इस अवस्था में अत्यन्त सतर्क नहीं रहता, तो पुनः बीमार पड़ सकता है। इसी तरह मुक्ति से कृष्ण के चरणकमलों में शरण मिलने जैसा अभयदान नहीं रहता। शास्त्र में कहा गया है :

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-

स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः

पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥

“हे प्रभु, जो लोग अपने आपको मुक्त मानते हैं, किन्तु जिनमें भक्ति नहीं है, उनकी बुद्धि अशुद्ध है। यद्यपि वे कठिन तपस्या के बल पर मुक्ति की चरमावस्था को प्राप्त होते हैं, किन्तु इस भौतिक संसार में फिर से उनका पतन निश्चित है, क्योंकि वे आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण नहीं करते ।” (श्रीमद्भागवत 10.2.32)। युष्मद्-अङ्घ्रयः कृष्ण के चरणकमलों का सूचक है। यदि मनुष्य कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण नहीं करता, तो वह मुक्ति प्राप्त करके भी नीचे गिर जाता है (पतन्त्यधः), किन्तु हरे कृष्ण महामन्त्र मुक्ति के साथ कृष्ण के चरणकमलों में शरण भी देता है। यदि कोई व्यक्ति मुक्ति के बाद कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है, तो उसका सुप्त कृष्ण-प्रेम विकसित होता है। यही जीवन की सर्वोच्च पूर्णता है।

कृष्ण-नाम देह' तुमि मोरे कर धन्या ।

आमारे भासाय यैछे एइ प्रेम-वन्या ॥ 258॥

कृष्ण नाम-भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम; देह'-कृपया देकर; तुमि-आप; मोरे-मुझे; कर धन्या-भाग्यवती बनाइये;
आमारे-मुझे; भासाय-डूबने दीजिए; यैछे-ताकि; एइ-इस; प्रेम-वन्या-भगवान् कृष्ण के प्रेम-भाव की बाढ़ में।

अनुवाद

“कृपा करके मुझे कृष्ण-नाम दीजिये और मुझे भाग्यशालिनी बनाइये, जिससे मैं भी श्री चैतन्य
महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित भगवत्-प्रेम रूपी बाढ़ में बह सकें।”

एत बलि' वन्दिला हरिदासेर चरण ।

हरिदास कहे,—“कर कृष्ण-सङ्कीर्तन” ॥ 259॥

एत बलि'-यह कहकर; वन्दिला-पूजा की; हरिदासेर चरण-हरिदास ठाकुर के चरणकमलों की; हरिदास कहे-
हरिदास ने कहा; कर-कीजिए; कृष्ण-सङ्कीर्तन-कृष्ण के पवित्र नामों का जप।

अनुवाद

इस तरह कहकर माया ने हरिदास ठाकुर के चरणकमलों की पूजा की और उन्होंने “तुम हरे कृष्ण
महामन्त्र का जप करो” यह कहकर उसे दीक्षा दी।

तात्पर्य

अब माया भी हरिदास ठाकुर की कृपा की इच्छुक थी। अतः हरिदास ठाकुर ने यह कहकर उसे दीक्षा दी कि हरे
कृष्ण महामन्त्र का जप करते रहना।

उपदेश पाजा माया चलिला हजा प्रीत ।

ए-सब कथाते कारो ना जन्मे प्रतीत ॥ 260॥

उपदेश पाजा-यह उपदेश प्राप्त करके; माया-मायादेवी; चलिला-चली गई; हजा प्रीत-अत्यन्त प्रसन्न होकर; ए-
सब कथाते-इन सभी कथाओं में; कारो-कुछ लोगों को; ना-नहीं; जन्मे-है; प्रतीत-विश्वास।

अनुवाद

इस तरह हरिदास ठाकुर से उपदेश पाकर माया अत्यन्त प्रसन्न होकर चली गई। दुर्भाग्यवश कुछ लोगों को इन कथाओं में श्रद्धा नहीं होती।

प्रतीत करिते कहि कारण इहार ।

याहार श्रवणे हय विश्वास सबार ॥ 261॥

प्रतीत करिते-सबका विश्वास उत्पन्न करने के लिए; कहि-मैं कहता हूँ; कारण इहार-इसका कारण; याहार श्रवणे-जिसे सुनकर; हय-हो जायेगा; विश्वास-विश्वास; सबार-सब को।

अनुवाद

इसलिए मैं उन कारणों को बतलाऊँगा कि लोगों को क्यों श्रद्धा करनी चाहिए। जो भी इसे सुनेगा वह श्रद्धालु बन जायेगा।

चैतन्यावतारे कृष्ण-प्रेमे लुब्ध हजा ।

ब्रह्म-शिव-सनकादि पृथिवीते जन्मिया ॥ 262॥

चैतन्य-अवतारे-श्री चैतन्य महाप्रभु के अवतार में; कृष्ण-प्रेमे-कृष्ण के प्रेमभाव को प्राप्त करने के लिए; लुब्ध हजा-अत्यन्त लोभी होकर; ब्रह्म-ब्रह्माजी; शिव-शिवजी; सनक-आदि-चारों कुमार और अन्य; पृथिवीते-इस पृथ्वी पर; जन्मिया-जन्म लिया।

अनुवाद

कृष्णभावनामृत आन्दोलन आरम्भ करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु के अवतार के समय ब्रह्माजी, शिवजी तथा चारों कुमारों ने कृष्ण-प्रेम द्वारा मुग्ध होकर इस पृथ्वी पर जन्म लिया।

कृष्ण-नाम लजा नाचे, प्रेम-वन्याय भासे ।

नारद-ब्रह्मादादि आसे मनुष्य-प्रकाशे ॥ 263॥

कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम; लजा-कीर्तन करके; नाचे-नाचते; प्रेम-वन्याय-भगवत्प्रेम की बाढ़ में; भासे-डूबते; नारद-नारद मुनि; प्रह्लाद-आदि-तथा प्रह्लाद जैसे भक्तगण; आसे-आकर; मनुष्य-प्रकाशे—मनुष्य के रूप में प्रछन्न रूप से।

अनुवाद

महर्षि नारद तथा प्रह्लाद जैसे सारे भक्त मनुष्य के रूप में कृष्ण-नाम का संकीर्तन करते, नाचते तथा भगवत्प्रेम की बाढ़ में बहते हुए वहाँ आये।

लक्ष्मी-आदि करि' कृष्ण-प्रेमे लुब्ध हजा ।

नाम-प्रेम आस्वादिला मनुष्ये जन्मिया ॥ 264॥

लक्ष्मी-आदि-लक्ष्मी देवी तथा अन्यो ने; करि'-इस प्रकार; कृष्ण-प्रेमे-कृष्ण-प्रेम के लिए; लुब्ध हजा-लालायित होकर; नाम-प्रेम-प्रेमपूर्वक कृष्ण के पवित्र नाम का; आस्वादिला-आस्वादन किया; मनुष्ये जन्मिया-मानव समाज में जन्म लेकर।

अनुवाद

कृष्ण-प्रेम से मुग्ध होकर देवी लक्ष्मी इत्यादि मनुष्य रूप में वहाँ आईं। और उन्होंने नाम-प्रेम का आस्वादन किया।

अन्येर का कथा, आपने ब्रजेन्द्र-नन्दन ।

अवतरि' करेन प्रेम-रस आस्वादन ॥ 265॥

अन्येर का कथा-दूसरों की क्या बात करें; आपने-स्वयं; ब्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज के पुत्र, कृष्ण; अवतरि'—अवतरित होकर; करेन-करते हैं; प्रेम-रस आस्वादन-कृष्ण-प्रेम के अमृत का आस्वादन।

अनुवाद

औरों की बात जाने दें, नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण तक हरे कृष्ण कीर्तन के रूप में भगवत्प्रेम का अमृत चखने के लिए स्वयं अवतरित होते हैं।

माया-दासी 'प्रेम' मागे,—इथे कि विस्मय? ।

‘साधु-कृपा’-‘नाम’ विना ‘प्रेम’ ना जन्मय ॥266॥

माया-दासी—बहिरंगा शक्ति एक दासी है; प्रेम मागे-वह भगवत्प्रेम माँगती है; इथे-इसमें; कि विस्मय—क्या आश्चर्य है; साधु-कृपा-भक्त की कृपा; नाम-पवित्र नाम के कीर्तन; विना-बिना; प्रेम-भगवत्प्रेम; ना जन्मय—सम्भव नहीं है।

अनुवाद

तो इसमें क्या आश्चर्य है यदि कृष्ण की दासी, बहिरंगा शक्ति माया भगवत्प्रेम की याचना करती है? भक्त की कृपा के बिना तथा भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन के बिना भगवत्प्रेम सम्भव नहीं है।

चैतन्य-गोसाजिर लीलार एइ त' स्वभाव ।

त्रिभुवन नाचे, गाय, पाजा प्रेम-भाव ॥ 267॥

चैतन्य-गोसाजिर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की; लीलार—लीलाओं का; एइ—यह; त'—निश्चित रूप से; स्वभाव-स्वभाव है; त्रि-भुवन नाचे—तीनों लोक नाचते हैं; गाय-गाते हैं; पाजा—प्राप्त करके; प्रेम-भाव-कृष्ण-प्रेम।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं में तीनों लोक भगवत्प्रेम के सम्पर्क में आकर नाचते तथा कीर्तन करते हैं। यह उनकी लीलाओं का स्वभाव है।

कृष्ण-आदि, आर यत स्थावर-जङ्गमे ।

कृष्ण-प्रेमे मत्त करे कृष्ण-सङ्कीर्तने ॥ 268॥

कृष्ण-आदि-कृष्ण से लेकर; आर-और; यत—जितने भी; स्थावर-जङ्गमे-चर और अचर जीव हैं; कृष्ण-प्रेमे-कृष्ण-प्रेम में; मत्त-उन्मत्त होकर; करे-करते हैं; कृष्ण-सङ्कीर्तने-कृष्ण के पवित्र नामों का संकीर्तन।

अनुवाद

कृष्ण का पवित्र नाम इतना आकर्षक है कि सारे चर तथा अचर जीव एवं स्वयं भगवान् कृष्ण तक जो-जो इसका कीर्तन करता है, वह कृष्ण-प्रेम से पूरित हो उठता है। हरे कृष्ण महामन्त्र के कीर्तन का यह प्रभाव है।

स्वरूप-गोसाजि कड़चाय ये-लीला लिखिल ।

रघुनाथ-दास-मुखे ये सब शुनिल ॥ 269॥

स्वरूप-गोसाजि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; कड़चाय-अपने लेख में; ये-जो कुछ; लीला-लीलाएँ; लिखिल-लिखी हैं; रघुनाथ-दास-मुखे-रघुनाथदास गोस्वामी के मुख से; ये-वह; सब-सब; शुनिल-मैंने सुना है।

अनुवाद

मैंने रघुनाथ दास गोस्वामी के मुख से वह सब कुछ सुना है, जो स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के बारे में अपनी टिप्पणियों में अंकित किया है।

सेइ सब लीला कहि सङ्क्षेप करिया ।

चैतन्य-कृपाते लिखि क्षुद्र-जीव हजा ॥ 270॥

सेइ सब-वे सभी; लीला-लीलाएँ, कहि-मैं कहता हूँ; सङ्क्षेप करिया-संक्षेप में; चैतन्य-कृपाते-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा द्वारा; लिखि-मैं लिखता हूँ; क्षुद्र-जीव हजा-अत्यन्त तुच्छ जीव होकर।

अनुवाद

मैंने उन लीलाओं का संक्षिप्त वर्णन किया है। मैंने जो कुछ लिखा है, वह श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से लिखा है, क्योंकि मैं एक तुच्छ जीव हूँ।

हरिदास ठाकुरे कहिलुँ महिमार कण ।

याहार श्रवणे भक्तेर जुड़ाय श्रवण ॥ 271॥

हरिदास ठाकुरे-हरिदास ठाकुर की; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया; महिमार-महिमा का; कण-एक अंश; याहार-जिसे; श्रवणे-सुनकर; भक्तेर-भक्तों की; जुड़ाय-सन्तुष्ट होती है; श्रवण-श्रवण क्रिया।

अनुवाद

मैंने हरिदास ठाकुर की महिमा के कणमात्र का वर्णन किया है। इसे सुनकर हर भक्त के कान तुष्ट हो जाते हैं।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 272॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी के; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे-चरणकमलों में; यार-जिसकी; आश-आशा है; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए, सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलते हुए श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्य-लीला के अन्तर्गत “श्रील हरिदास ठाकुर की महिमा शीर्षक तृतीय अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।”

अध्याय चार

जगन्नाथ पुरी में महाप्रभु से सनातन गोस्वामी की भेंट

भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत प्रवाह भाष्य में अन्त्य-लीला के चतुर्थ अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है। श्रील सनातन गोस्वामी मथुरा से अकेले ही श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने जगन्नाथ पुरी आये। गन्दे जल में स्नान करने तथा झारिखंड जंगल में यात्रा करते समय रास्ते में हररोज पर्याप्त भोजन न मिलने के कारण उनके शरीर में खुजली

हो गई। इस खुजली से तंग आने के कारण उन्होंने संकल्प किया कि वे श्री चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति में जगन्नाथजी के रथ के नीचे गिरकर आत्महत्या कर लेंगे।

जब सनातन गोस्वामी जगन्नाथ पुरी आये, तो वे कुछ काल तक हरिदास ठाकुर के संरक्षण में रुके रहे। श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हें देखकर अत्यन्त प्रसन्न थे। महाप्रभु ने उनसे उनके छोटे भाई अनुपम की मृत्यु के विषय में बतलाया, भगवान् रामचन्द्र के चरणकमलों में जिनकी बड़ी श्रद्धा थी। एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी से कहा, “आत्महत्या करने का तुम्हारा निर्णय तमोगुण का फल है। आत्महत्या करने से किसी को भगवत्प्रेम प्राप्त नहीं हो सकता। तुमने तो पहले से मेरी सेवा में अपना देह तथा प्राण समर्पित कर रखा है, इसलिए तुम्हारा शरीर तुम्हारा नहीं रहा, न ही तुम्हें आत्महत्या करने का कोई अधिकार है। मुझे तुम्हारे शरीर के माध्यम से अनेक भक्ति-कार्य सम्पन्न करने हैं। मैं तुम्हारे द्वारा भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार कराना चाहता हूँ और वृन्दावन भेजकर विलुप्त तीर्थस्थलों का पुनरोद्धार कराना चाहता हूँ।” इस तरह कहने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ से चले गये और हरिदास ठाकुर तथा सनातन गोस्वामी में इस विषय को लेकर अनेक बातें हुई।

एक दिन सनातन गोस्वामी को श्री महाप्रभु ने यमेश्वर टोटा नामक स्थान पर बुलवाया। सनातन गोस्वामी समुद्र-तट से होकर महाप्रभु के पास पहुँचे। जब महाप्रभु ने उनसे पूछा कि वे किस रास्ते से होकर आये हैं, तो सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया, “जगन्नाथजी के अनेक सेवक जगन्नाथ मन्दिर के सिंह-द्वार से होकर आते-जाते रहते हैं, इसलिए मैं उस मार्ग से नहीं आया। मैं समुद्र-तट से चलकर आया हूँ।” सनातन गोस्वामी को पता नहीं चला कि बालू की तपन से उनके पैरों में फफोले पड़ गये हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु सनातन गोस्वामी के मुख से जगन्नाथजी के मन्दिर के प्रति उनके आदरभाव को सुनकर अतीव प्रसन्न हुए।

चूँकि सनातन गोस्वामी की खाज से पीब बहती थी, इसलिए वे श्री चैतन्य महाप्रभु का आलिंगन करने से बचते रहते; तो भी महाप्रभु बलपूर्वक उनका आलिंगन कर लेते। इसलिए सनातन गोस्वामी अत्यन्त दुःखी हो जाते। फलतः उन्होंने जगदानन्द पण्डित से पूछा कि वे क्या करें। जगदानन्द ने परामर्श दिया कि वे रथयात्रा के बाद वृन्दावन लौट जायें, किन्तु जब श्री चैतन्य महाप्रभु को इसका पता चला, तो उन्होंने जगदानन्द पण्डित को डाँटा-फटकारा और स्मरण दिलाया कि सनातन गोस्वामी उससे बड़े हैं और अधिक विद्वान भी हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को बतलाया कि शुद्ध भक्त होने के कारण उनकी शारीरिक दशा से महाप्रभु को कोई असुविधा नहीं होती। संन्यासी होने के कारण महाप्रभु

एक शरीर को दूसरे से अच्छा नहीं समझते थे। महाप्रभु ने सनातन को यह भी बतलाया कि वे सनातन गोस्वामी तथा अन्य भक्तों का पालन-पोषण पिता की तरह कर रहे हैं। इसलिए सनातन की खाज से निकलने वाली पीब से महाप्रभु को किसी तरह की समस्या नहीं थी। ऐसा कहकर महाप्रभु ने फिर से सनातन गोस्वामी का आलिंगन किया, और इस आलिंगन के बाद सनातन गोस्वामी रोगमुक्त हो गये। महाप्रभु ने उन्हें उस वर्ष अपने साथ रुकने का आदेश दिया। अगले वर्ष रथयात्रा देखने के बाद सनातन गोस्वामी पुरुषोत्तम क्षेत्र छोड़कर वृन्दावन लौट गये।

रूप गोस्वामी भी श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने के बाद बंगाल लौट गये, जहाँ वे एक वर्ष तक रहे। उनके पास जो भी धन था, उसे उन्होंने अपने सम्बन्धियों, ब्राह्मणों तथा मन्दिरों में बाँट दिया। इस तरह वे पूर्णतया विरक्त होकर सनातन गोस्वामी से मिलने वृन्दावन गये।

इन घटनाओं का वर्णन करने के बाद कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने सनातन गोस्वामी, रूप गोस्वामी तथा जीव गोस्वामी की प्रमुख पुस्तकों की सूची दी है।

वृन्दावनात्पुनः प्राप्तं श्री-गौरः श्री-सनातनम् ।

देह-पातादवन्स्नेहाशुद्धं चक्रे परीक्षया ॥1॥

वृन्दावनात्-वृन्दावन से; पुनः-फिर से; प्राप्तम्-प्राप्त किया; श्री-गौरः-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने; श्री-सनातनम्-श्री सनातन गोस्वामी को; देह-पातात्-आत्महत्या से; अवन्-बचाकर; स्नेहात्-स्नेह द्वारा; शुद्धम् शुद्ध; चक्रे-किया; परीक्षया-परीक्षा करके।

अनुवाद

जब सनातन गोस्वामी वृन्दावन से लौटे, तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें आत्महत्या करने के संकल्प से स्नेहपूर्वक बचाया। तत्पश्चात् उनकी परीक्षा लेकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके शरीर को शुद्ध बना दिया।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-श्री अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैतचन्द्र की जय हो! तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

नीलाचल हैते रूप गौड़े यबे गेला ।

मथुरा हैते सनातन नीलाचल आइला ॥३॥

नीलाचल हैते-नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) से; रूप-श्रील रूप गोस्वामी; गौड़े-बंगाल को; यबे-जब; गेला-गये; मथुरा हैते-मथुरा से; सनातन-सनातन गोस्वामी; नीलाचल आइला-जगन्नाथ पुरी आ गये।

अनुवाद

जब श्रील रूप गोस्वामी जगन्नाथ पुरी से बंगाल लौट गये, तो सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने के लिए मथुरा से जगन्नाथ पुरी आये।

झारिखण्ड-वनपथे आइला एकेला चलिया ।

कभु उपवास, कभु चर्वण करिया ॥४॥

झारिखण्ड-झारिखण्ड नामक; वन-पथे-मध्य भारत के वन के मार्ग से; आइला-आये; एकेला-अकेले; चलिया-चलकर; कभु-कभी-कभी; उपवास-उपवास करके; कभु-कभी-कभी; चर्वण करिया-चबाकर (खाकर)।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने अकेले ही मध्य भारत के झारिखण्ड के जंगली रास्ते से होकर यात्रा की। कभी वे उपवास करते तो कभी भोजन करते।

झारिखण्डेर जलेर दोषे, उपवास हैते ।

गात्रे कण्डु हैल, रसा पड़े खाजुयाइते ॥5॥

झारिखण्डेर-झारखण्ड नामक स्थान पर; जलेर-जल के; दोषे-दूषित होने के कारण; उपवास हैते-उपवास के कारण; गात्रे-शरीर पर; कण्डु-खुजली; हैल-हो गई; रसा-फोड़े; पड़े-निकल आये; खाजुयाइते-खुजली के कारण।

अनुवाद

झारखण्ड जंगल में खराब पानी मिलने तथा उपवास करने के कारण सनातन गोस्वामी को एक रोग हो गया, जिससे उनका सारा शरीर खुजलाता रहता। इस तरह वे खुजली के घावों से पीड़ित थे, जिनसे तरल पदार्थ (पीब) निकलता था।

निर्वेद हइल पथे, करेन विचार ।

‘नीच-जाति, देह मोर—अत्यन्त असार ॥6॥

निर्वेद हइल-निराश होकर; पथे—मार्ग में; करेन विचार-उन्होंने सोचा; नीच-जाति-नीच जाति का हूँ; देह मोर-मेरा शरीर; अत्यन्त-पूर्ण रूप से; असार-सेवा (भक्ति) के लिए अयोग्य है।

अनुवाद

निराशा में सनातन गोस्वामी ने विचार किया, “मैं नीच जाति का हूँ और मेरा यह शरीर भक्तिमय सेवा के लिए व्यर्थ है।

जगन्नाथे गेले तारं दर्शन ना पाइमु ।

प्रभुर दर्शन सदा करिते नारिमु ॥ 7॥

जगन्नाथे-जगन्नाथ पुरी; गेले—जब मैं जाऊँगा; तारं-उनका; दर्शन-दर्शन; ना पाइमु-मैं प्राप्त नहीं करूँगा; प्रभुर दर्शन-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन; सदा-हमेशा; करिते-करने के लिए; नारिमु-मैं योग्य नहीं हो सकूँगा।

अनुवाद

“जब मैं जगन्नाथ पुरी जाऊँगा, तो मैं न तो जगन्नाथजी के दर्शन कर सकूँगा, न ही श्री चैतन्य महाप्रभु का सर्वदा दर्शन कर पाऊँगा।”

मन्दिर-निकटे शुनि ताँर वासा-स्थिति ।

मन्दिर-निकटे याइते मोर नाहि शक्ति ॥8॥

मन्दिर-निकटे-मन्दिर के पास; शुनि-मैंने सुना है; ताँर-उनका; वासा-स्थिति-निवासस्थान; मन्दिर-निकटे-मन्दिर के पास; याइते-जाने की; मोर-मेरी; नाहि शक्ति-शक्ति नहीं है।

अनुवाद

“मैंने सुना है कि श्री चैतन्य महाप्रभु का निवासस्थान जगन्नाथजी के मन्दिर के समीप है। किन्तु मन्दिर के समीप तक जाने की मुझमें शक्ति नहीं होगी।”

जगन्नाथेर सेवक फेरे कार्य-अनुरोधे ।

ताँर स्पर्श हैले मोर हबे अपराधे ॥9॥

जगन्नाथेर-भगवान् जगन्नाथ के; सेवक-अनेक सेवक; फेरे-घूमते हैं; कार्य-अनुरोधे-अनेक कार्यों के लिए; ताँर-उनका; स्पर्श-स्पर्श; हैले-यदि हो गया; मोर-मेरा; हबे हो जायेगा; अपराधे-अपराध।

अनुवाद

“सामान्यतया भगवान् जगन्नाथ के सेवक अपना-अपना कार्य करने के लिए इधर-उधर घूमते फिरते हैं, किन्तु यदि वे मुझे छू लेंगे, तो मैं अपराधी बनूँगा।”

ताते यदि एइ देह भाल-स्थाने दिये ।

दुःख-शान्ति हय आर सद्गति पाइये ॥10॥

ताते-अतः; यदि-यदि; एइ-यह; देह-शरीर; भाल-स्थाने-एक अच्छे स्थान पर; दिये-मैं त्याग देता हूँ; दुःख-शान्ति-दुःख का शमन; हय-होगा; आर-और; सद्-गति-अच्छी गति; पाइये-मैं प्राप्त करूँगा।

अनुवाद

“इसलिए यदि मैं यह शरीर किसी अच्छे स्थान में उत्सर्ग कर दूँ, तो मेरा दुःख दूर हो जायेगा और मुझे उच्च गति प्राप्त होगी।”

जगन्नाथ रथ-यात्राय हड़बेन बाहिर ।

तौं रथ-चाकाय छाड़िमु एइ शरीर ॥11॥

जगन्नाथ रथ-यात्राय-भगवान् जगन्नाथ के रथयात्रा उत्सव के अवसर पर; हड़बेन बाहिर-वे बाहर आयेंगे; तौं-उनके; रथ-चाकाय-रथ के पहिए के नीचे; छाड़िमु-मैं त्याग दूँगा; एइ शरीर-यह शरीर।

अनुवाद

“रथयात्रा उत्सव के समय जब भगवान् जगन्नाथ मन्दिर से बाहर आते हैं, तो मैं उनके रथ के पहिए के नीचे अपना शरीर छोड़ दूँगा।”

महाप्रभुर आगे, आर देखि' जगन्नाथ ।

रथे देह छाड़िमु,—एइ परम-पुरुषार्थ” ॥12॥

महाप्रभुर आगे-श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष; आर-और; देखि जगन्नाथ-भगवान् जगन्नाथ को देखने के बाद; रथे-रथ के नीचे; देह छाड़िमु-मैं यह शरीर त्याग दूँगा; एइ-यह; परम-पुरुष-अर्थ-जीवन का परम वरदान होगा।

अनुवाद

जगन्नाथजी का दर्शन करने के बाद मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति में रथ के पहिए के नीचे अपना शरीर-त्याग कर दूँगा। यह मेरे जीवन का सर्वोच्च वर होगा।”

एइ त निश्चय करि' नीलाचले आइला ।

लोके पुछि' हरिदास-स्थाने उत्तरिला ॥13॥

एइ त'-इस प्रकार; निश्चय करि'-निश्चय करके; नीलाचले आइला-जगन्नाथ पुरी आ गये; लोके पुछि'-लोगों से पूछकर; हरिदास-स्थाने-हरिदास ठाकुर के स्थान; उत्तरिला-पहुँच गये।

अनुवाद

यह निश्चय करके सनातन गोस्वामी नीलाचल गये, जहाँ लोगों से दिशा पूछकर वे हरिदास ठाकुर के निवासस्थान जा पहुँचे।

हरिदासेर कैला तेंह चरण वन्दन ।

जानि' हरिदास तौरै कैला आलिङ्गन ॥14॥

हरिदासेर-हरिदास ठाकुर के; कैला-की; तेंह-उन्होंने; चरण वन्दन-चरणकमलों की उपासना; जानि'-जानकर; हरिदास-हरिदास ठाकुर ने; तौरै-उनको; कैला आलिङ्गन-गले लगा लिया।

अनुवाद

उन्होंने हरिदास ठाकुर के चरणकमलों की वन्दना की। वे उन्हें जानते थे, अतः उन्होंने उनका आलिंगन किया।

महाप्रभु देखिते तौरै उत्कण्ठित मन ।

हरिदास कहे,—“प्रभु आसिबेन एखन” ॥15॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु को देखते-देखने के लिए; तौरै-उनका; उत्कण्ठित-आतुर; मन-मन; हरिदास कहे-हरिदास ने कहा; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; आसिबेन एखन-यहाँ आयेंगे।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का दर्शन करने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे। इसलिए हरिदास ठाकुर ने कहा, “महाप्रभु शीघ्र ही यहाँ आने वाले हैं।”

हेन-काले प्रभु 'उपल-भोग' देखिया ।

हरिदासे मिलिते आइला भक्त-गण लजा ॥16॥

हेन-काले-उस समय; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; उपल-भोग-भगवान जगन्नाथ को लगने वाला उपलभोग; देखिया-देखकर; हरिदासे-हरिदास से; मिलिते-मिलने के लिए; आइला-आये; भक्त-गण लजा-अन्य भक्तों के साथ।

अनुवाद

उसी समय श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ मन्दिर में उपल भोग (प्रातःकालीन जलपान) देखकर अपने अन्य भक्तों के साथ हरिदास ठाकुर से मिलने के लिए आये।

प्रभु देखि' दुँहे पड़े दण्डवत् हजा ।

प्रभु आलिङ्गिला हरिदासेरे उठाजा ॥17॥

प्रभु देखि'—भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर; दुँहे-वे दोनों; पड़े-गिर पड़े; दण्डवत् हजा—दण्ड के समान सीधे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; आलिङ्गिला-आलिंगन किया; हरिदासेरे-हरिदास ठाकुर को; उठाजा-उठाकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर हरिदास ठाकुर और सनातन गोस्वामी दोनों ने तुरन्त दण्डवत् प्रणाम किया। तब महाप्रभु ने हरिदास को उठाया और गले लगाया।

हरिदास कहे,—“सनातन करे नमस्कार” ।

सनातने देखि' प्रभु हैला चमत्कार ॥18॥

हरिदास कहे-हरिदास ने कहा; सनातन-सनातन गोस्वामी; करे नमस्कार-अपना प्रणाम अर्पित कर रहे हैं; सनातने देखि'—सनातन गोस्वामी को देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हैला चमत्कार-अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने श्री चैतन्य महाप्रभु से कहा, “यह सनातन गोस्वामी आपको प्रणाम कर रहा है।” सनातन गोस्वामी को देखकर महाप्रभु अत्यधिक चकित हुए।”

सनातने आलिङ्गिते प्रभु आगु हैला ।

पाछे भागे सनातन कहिते लागिंला ॥19॥

सनातने-सनातन गोस्वामी को; आलिङ्गिते-आलिङ्गन करने के लिए; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आगु हैला-आगे आये; पाछे-पीछे; भागे-भागने लगे; सनातन-सनातन गोस्वामी; कहते लागिंला-कहना प्रारम्भ किये।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु उनका आलिङ्गन करने आगे बढ़े, तो सनातन गोस्वामी पीछे हट गये और इस प्रकार बोले।

“मोरे ना छुडिह, प्रभु, पड़ों तोमार पाय ।

एके नीच-जाति अधम, आर कण्डु-रसा गाय” ॥20॥

मोरे-मुझे; ना छुडिह-कृपया स्पर्श मत कीजिए; प्रभु-मेरे प्रभु; पड़ों-में पड़ता हूँ; तोमार पाय-आपके चरणकमलों में; एके-एक ओर; नीच-जाति-एक नीच जाति का; अधम-मनुष्यों में सबसे अधम; आर-और; कण्डु-रसा-पसवाले फोड़ों का एक रोग; गाय-शरीर पर।

अनुवाद

हे प्रभु, कृपया आप मेरा स्पर्श न करें। मैं आपके चरणकमलों पर पड़ता हूँ। मैं नीच जाति में उत्पन्न होने के कारण मनुष्यों में सबसे अधम हूँ। इसके अतिरिक्त मेरे शरीर में खुजली का रोग है।”

बलात्कारे प्रभु तौरै आलिङ्गन कैल ।

कण्डु-क्लेद महाप्रभुर श्री-अङ्गे लागिंल ॥21॥

बलात्कारे-जबरदस्ती; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तौरै-उनको; आलिङ्गन कैल-आलिङ्गन किया; कण्डु-क्लेद-फोड़ों की पस; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; श्री-दिव्य; अङ्गे-शरीर पर; लागिंल-लग गई।

अनुवाद

किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने बलपूर्वक सनातन गोस्वामी का आलिंगन कर लिया। इस तरह खुजली के घावों से रिसता तरल पदार्थ श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य शरीर में लग गया।

सब भक्त-गणे प्रभु मिलाइला सनातने ।

सनातन कैला सबार चरण वन्दने ॥22॥

सब-सभी; भक्त-गणे-भक्तों को प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; मिलाइला-मिलवाया; सनातने-सनातन गोस्वामी से; सनातन-सनातन गोस्वामी ने; कैला-की;सबार-उन सभी के; चरण वन्दने-चरणकमलों की वन्दना।

अनुवाद

महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी से सबका परिचय कराया और सनातन गोस्वामी ने उन सबके चरणकमलों पर सादर नमस्कार अर्पित किया।

प्रभु ला वसिला पिण्डार उपरे भक्त-गण ।

पिण्डार तले वसिला हरिदास सनातन ॥23॥

प्रभु लजा-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; वसिला-बैठ गये; पिण्डार उपरे-ऊँचे आसन (मँच) पर; भक्त-गण-सभी भक्त; पिण्डार तले-आसन के नीचे; वसिला-बैठ गये; हरिदास सनातन-हरिदास ठाकुर और सनातन गोस्वामी।

अनुवाद

महाप्रभु तथा उनके सारे भक्त चबूतरे के ऊपर बैठ गये और हरिदास ठाकुर तथा सनातन गोस्वामी उसके नीचे बैठे।

कुशल-वार्ता महाप्रभु पुछेन सनातने ।

तेंह कहेन,—“परम मङ्गल देखिनु चरणे” ॥24॥

कुशल-कुशल मंगल; वार्ता-खबर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु (ने); पुछेन-पूछते हैं; सनातने-सनातन गोस्वामी से; तेंह कहेन-उन्होंने कहा; परम मङ्गल-सब कुछ शुभ है; देखिनु चरणे-मैंने आपके चरणकमलों के दर्शन किये हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी से उनकी कुशलता का समाचार पूछा। सनातन ने उत्तर दिया,
“सब कुशल है, क्योंकि मुझे आपके चरणकमलों के दर्शन हो गये।”

मथुरार वैष्णव-सबेर कुशल पुछिला ।

सबार कुशल सनातन जानाइला ॥25॥

मथुरार-मथुरा के; वैष्णव-सबेर-सभी वैष्णवों की; कुशल पुछिला-कुशलता की जिज्ञासा की; सबार कुशल-उन सभी की कुशलता की; सनातन-सनातन गोस्वामी ने; जानाइला-सूचना दी।

अनुवाद

जब महाप्रभु ने मथुरा के समस्त वैष्णवों के विषय में पूछा, तो सनातन गोस्वामी ने उनके स्वास्थ्य एवं सौभाग्य के बारे में बतलाया।

प्रभु कहे, इहाँ रूप छिल दश-मास ।

इहाँ हैते गौड़े गेला, हैल दिन दश ॥26॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; इहाँ-यहाँ; रूप-रूप गोस्वामी; छिल-थे; दश-मास-दस महीने तक; इहाँ हैते-यहाँ से; गौड़े गेला-बंगाल चले गये; हैल-हो गये; दिन-दिन; दश-दस।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को बतलाया, “श्रील रूप गोस्वामी यहाँ पर दस महीने तक थे। वे दस दिन पहले ही बंगाल चले गये हैं।

तोमार भाइ अनुपमेर हैल गङ्गा-प्राप्ति ।

भाल छिल, रघुनाथे दृढ़ तार भक्ति ॥ 27॥

तोमार भाइ-तुम्हारे भाई; अनुपमेर-अनुपम का; हैल-हो गया; गङ्गा-प्राप्ति- देहान्त; भाल छिल-वह बहुत अच्छा व्यक्ति था; रघुनाथे-भगवान् रघुनाथ (रामचन्द्र) में; दृढ़-दृढ़; तार भक्ति-उसकी भक्ति थी।

अनुवाद

तुम्हारा भाई अनुपम अब नहीं रहा। वह एक उत्तम भक्त था, जिसका रघुनाथ (भगवान् रामचन्द्र) में दृढ़ विश्वास था।”

सनातन कहे,—“नीच-वंशे मोर जन्म” ।

अधर्म अन्याय यत,—आमार कुल-धर्म ॥28॥

सनातन कहे-सनातन गोस्वामी ने कहा; नीच-वंशे-एक नीच कुल में; मोर जन्म-मेरा जन्म; अधर्म-अधर्म; अन्याय-पापकर्म; यत-सभी; आमार-मेरे; कुल-धर्म-कुल के कार्य हैं।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने कहा, “मैं निम्न कुल में उत्पन्न हुआ, क्योंकि मेरा परिवार सभी प्रकार के आधार्मिक कार्य करता है, जिनसे शास्त्र के आदेशों का उल्लंघन होता है।”

हेन वंश घृणा छाड़ि कैला अङ्गीकार ।

तोमार कृपाय वंशे मङ्गल आमार ॥29॥

हेन-ऐसे; वंश-कुल से; घृणा-घृणा; छाड़ि-छोड़कर; कैला-आपने किया है; अङ्गीकार-स्वीकार; तोमार-आपकी; कृपाय-कृपा द्वारा; वंशे-कुल में; मङ्गल-सौभाग्य; आमार-मेरे।

अनुवाद

“हे प्रभु, आपने मेरे परिवार से घृणा किये बिना मुझे अपने सेवक के रूप में स्वीकार किया है। केवल आपकी कृपा से ही मेरे परिवार में मङ्गल ही मङ्गल है।”

सेइ अनुपम-भाइ शिशु-काल हैते ।

रघुनाथ-उपासना करे दृढ़-चित्ते ॥30॥

सेइ-वह; अनुपम-भाइ-अनुपम नामक भाई; शिशु-काल हैते-बाल्यकाल के प्रारम्भ से ही; रघुनाथ-भगवान् रामचन्द्र की; उपासना-उपासना; करे-करता; दृढ़-चित्ते-अत्यन्त दृढ़ निश्चयपूर्वक।

अनुवाद

“मेरा छोटा भाई अनुपम अपने बचपन से ही रघुनाथ (भगवान् रामचन्द्र) का महान् भक्त था और वह अत्यन्त दृढ़ता से उनकी पूजा करता था।”

रात्रि-दिने रघुनाथेर ‘नाम’ आर ‘ध्यान’ ।

रामायण निरवधि शुने, करे गान ॥31॥

रात्रि-दिने-दिन-रात; रघुनाथेर-भगवान् रामचन्द्र के; नाम-पवित्र नाम; आर- और; ध्यान-चिन्तन; रामायण-रामायण नामक भगवान् रामचन्द्र की लीलाओं के विषय में एक ग्रन्थ; निरवधि-लगातार; शुने-सुनता; करे गान-गाता।

अनुवाद

“वह सदैव रघुनाथ के पवित्र नाम का कीर्तन करता था और उन्हीं का ध्यान करता था। वह निरन्तर रामायण से भगवान् की लीलाओं के विषय में सुनता था और उन्हीं का कीर्तन करता था।

आमि आर रूप—तार ज्येष्ठ-सहोदर ।

आमा-दहा-सङ्गे तेह रहे निरन्तर ॥ 32॥

आमि-मैं; आर-और; रूप-रूप गोस्वामी; तार-उसके; ज्येष्ठ-सहोदर-बड़े भाई हैं; आमा-दहा-हम दोनों के; सङ्गे-साथ; तेह-वह; रहे-रहता; निरन्तर-सदैव।

अनुवाद

“रूप तथा मैं उसके बड़े भाई हैं। वह लगातार हमारे साथ रहा।

आमा-सबा-सङ्गे कृष्ण-कथा, भागवत शुने ।

ताहार परीक्षा कैलुँ आमि-दुइ-जने ॥33॥

आमा-सबा-हम सभी के; सङ्गे-साथ; कृष्ण-कथा-भगवान् कृष्ण के विषय में बातें; भागवत शुने- श्रीमद्भागवत सुनता; ताहार-उसकी; परीक्षा-परीक्षा; कैलुँ-की; आमि-दुइ-जने-हम दोनों ने।

अनुवाद

वह हमारे साथ श्रीमद्भागवत तथा कृष्ण विषयक वार्ताएँ सुनता था और हम दोनों उसकी परीक्षा लिया करते थे।

शुनह वल्लभ, कृष्ण-परम-मधुर ।

सौन्दर्य, माधुर्य, प्रेम-विलास-प्रचुर ॥34॥

शुनह-कृपया सुनो; वल्लभ-प्रिय वल्लभ; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; परम-मधुर-सर्वाधिक आकर्षक; सौन्दर्य-सुन्दरता; माधुर्य-मधुरता; प्रेम-विलास-माधुर्य लीलाएँ; प्रचुर-असीमिता।

अनुवाद

“हम कहते, ‘हे वल्लभ, हमसे सुनो। भगवान् कृष्ण परम आकर्षक हैं। उनका सौन्दर्य, मधुरता तथा प्रेम की लीलाएँ अनन्त हैं।”

“कृष्ण-भजन कर तुमि आमा-हार सङ्गे ।

तिन भाइ एकत्र रहिमु कृष्ण-कथा-रङ्गे” ॥35॥

कृष्ण-भजन-भगवान् कृष्ण के प्रति प्रेममयी सेवा; कर-करो; तुमि-तुम; आमा-दुँहार-हम दोनों के; सङ्गे-साथ; तिन भाइ-तीनों भाई; एकत्र-एक स्थान पर; रहिमु-हम रहेंगे; कृष्ण-कथा- भगवान् कृष्ण की लीलाओं के; रङ्गे-आनन्द में।

अनुवाद

“तुम हम दोनों के साथ कृष्ण की भक्ति में लगो। हम तीनों भाई एकसाथ रहेंगे और भगवान् कृष्ण की लीलाओं की चर्चा का आनन्द लेंगे।”

एइ-मत बार-बार कहि दुइ-जन ।

आमा-दुँहार गौरवे किछु फिरि’ गेल मन ॥ 36॥

एइ-मत-इस प्रकार; बार-बार-बारम्बार; कहि-हम कहते; दुइ-जन-दोनों लोग; आमा-हार-हम दोनों के प्रति; गौरवे-सम्मान के कारण; किछु-कुछ; फिरि’ गेल-बदल गया; मन-मन।

अनुवाद

“इस तरह हम दोनों ने उससे बारम्बार कहा और हमारे फुसलाने तथा हमारे प्रति आदरभाव से उसका मन कुछ-कुछ हमारे उपदेशों की ओर मुड़ा।”

तोमा-दुँहार आज्ञा आमि केमने लइधिमु ।

दीक्षा-मन्त्र देह’ कृष्ण-भजन करिमु ॥37॥

तोमा-आपके; दुँहार-दोनों के; आज्ञा-आदेश की; आमि-मैं; केमने-किस प्रकार; लइधिमु-अवज्ञा करूँगा; दीक्षा-दीक्षा; मन्त्र-मन्त्र; देह’-दीजिए; कृष्ण-भजन-कृष्ण की प्रेममयी सेवा; करिमु-मैं करूँगा।

अनुवाद

“वल्लभ ने उत्तर दिया, ‘हे प्रिय भ्राताओं, मैं आपके आदेशों का उल्लंघन कैसे कर सकता हूँ? मुझे कृष्ण-मन्त्र की दीक्षा दीजिये, जिससे मैं कृष्ण-भक्ति कर सकूँ।”

एत कहि’ रात्रि-काले करेन चिन्तन ।

केमने छाड़िमु रघुनाथेर चरण ॥38॥

एत कहि’-यह कहकर; रात्रि-काले-रात को; करेन चिन्तन-सोचने लगा; केमने-कैसे; छाड़िमु-छोड़ पाऊँगा; रघुनाथेर चरण-भगवान् रघुनाथ के चरणकमल।

अनुवाद

“यह कहकर रात में वह सोचने लगा, मैं किस तरह भगवान् रघुनाथ के चरणकमलों को छोड़ पाऊँगा?”

सब रात्रि क्रन्दन करि' कैल जागरण ।

प्रातः-काले आमा-दुँहाय कैल निवेदन ॥39॥

सब रात्रि-सम्पूर्ण रात्रि; क्रन्दन-रोकर; करि-करके; कैल जागरण-जागता रहा; प्रातः काले-सुबह को; आमा-दुँहाय-हम दोनों से; कैल-करने लगा; निवेदन-विनति ।

अनुवाद

“वह रात-भर जागता रहा और रोता रहा। प्रातःकाल वह हमारे पास आया और इस प्रकार निवेदन करने लगा।”

रघुनाथेर पाद-पद्ये वेचियाछों माथा ।

काड़िते ना पारों माथा, पाड बड़ व्यथा ॥40॥

रघुनाथेर-भगवान् रामचन्द्र के; पाद-पद्ये-चरणकमलों में; वेचियाछों माथा-मैंने अपना मस्तक बेच दिया है; काड़िते-हटाने में; ना पारों-मैं असमर्थ हूँ; माथा-मस्तक; पाड-मैं पाता हूँ; बड़ व्यथा-अत्यन्त कष्ट।

अनुवाद

“मैंने अपना सिर भगवान् रामचन्द्र के चरणकमलों पर बेच दिया है। मैं इसे वापस नहीं ले सकता। यह मेरे लिए अत्यधिक पीड़ादायक होगा।”

कृपा करि' मोरे आज्ञा देह' दुइ-जन ।

जन्मे-जन्मे सेवों रघुनाथेर चरण ॥41॥

कृपा करि’—दया करके; मोरे-मुझे; आज्ञा देह’—आदेश दीजिए; दुइ-जन-आप दोनों; जन्मे-जन्मे-जन्म जन्मान्तर;
सेवों-मैं सेवा करूँ; रघुनाथेर चरण-भगवान् रामचन्द्र के चरणकमलों की।

अनुवाद

“आप दोनों मुझ पर कृपालु हों तथा इस तरह आज्ञा दें कि मैं जन्म-जन्मान्तर भगवान् रघुनाथ के चरणकमलों की सेवा कर सकें।”

रघुनाथेर पाद-पद्म छाड़ान ना याय ।

छाड़िबार मन हैले प्राण फाटि’ झाय’ ॥42॥

रघुनाथेर-भगवान् रघुनाथ के; पाद-पद्म-चरणकमल; छाड़ान ना याय-त्यागना असम्भव है; छाड़िबार-त्यागने का; मन हैले—जब मैं विचार करता हूँ; प्राण-मेरा हृदय; फाटि’ याय-फट जाता है।

अनुवाद

मेरे लिए भगवान् रघुनाथ के चरणकमलों को छोड़ पाना असम्भव है। जब मैं उनको छोड़ने के लिए सोचता भी हूँ, तो मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता है।”

तबे आमि-हे तारे आलिङ्गन कैलुँ ।

साधु, दृढ़-भक्ति तोमार—कहि’ प्रशंसिलुँ ॥43॥

तबे—उस समय; आमि-दुँहै-हम दोनों ने; तारे-उसे; आलिङ्गन कैलुँ-आलिङ्गन किया; साधु-बहुत अच्छी; दृढ़-अत्यन्त दृढ़ है; भक्ति-भक्ति; तोमार—तुम्हारी; कहि’-कहकर; प्रशंसिलुँ-हमने प्रशंसा की।

अनुवाद

यह सुनकर हम दोनों ने उसका आलिङ्गन किया और उसे यहकहकर प्रोत्साहित किया, “तुम महान् सन्त भक्त हो, क्योंकि भक्ति में तुम्हारा संकल्प दृढ़ है। इस तरह हम दोनों ने उसकी प्रशंसा की।”

ये वंशेर उपरे तोमार हय कृपा-लेश ।

सकल मङ्गल ताहे खण्डे सब क्लेश ॥44॥

ये वंशेर-जिस कुल के; उपरे-ऊपर; तोमार-आपकी; हय-है; कृपा-लेश-थोड़ी सी कृपा; सकल मङ्गल-सर्व शुभ; ताहे-उस पर; खण्डे-नष्ट हो जाती हैं; सब-सभी; क्लेश-कष्टपूर्ण परिस्थितियाँ।

अनुवाद

“हे प्रभु, आप जिस वंश पर लेश मात्र भी कृपा करते हैं, वह सदैव भाग्यशाली होता है, क्योंकि ऐसी कृपा से सारे कष्ट लुप्त हो जाते हैं।”

गोसाजि कहेन,—“एइ-मत मुरारि-गुप्त ।

पूर्वे आमि परीक्षिलुँ तार एइ रीत” ॥ 45 ॥

गोसाजि कहेन—श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; एइ-मत-इस प्रकार; मुरारि गुप्त-मुरारी गुप्त; पूर्वे-पहले; आमि-मैंने; परीक्षिलुँ-परीक्षा ली; तार-उसकी; एइ-इस; रीत-प्रकार से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “ऐसी ही घटना मुरारि गुप्त के सम्बन्ध में भी है। पहले मैंने उसकी परीक्षा ली और उसका संकल्प ऐसा ही था।”

सेइ भक्त धन्य, ग्रे ना छाड़े प्रभुर चरण ।

सेइ प्रभु धन्य, ये ना छाड़े निज-जन ॥46॥

सेइ भक्त-वह भक्त; धन्य-धन्य है; ये-जो; ना-नहीं; छाड़े-त्यागता; प्रभुर चरण-भगवान् के चरणकमल; सेइ प्रभु-वह भगवान्; धन्य-धन्य हैं; ये-जो; ना-नहीं; छाड़े-त्यागते; निज-जन-अपने सेवक को।

अनुवाद

“वह भक्त धन्य है, जो अपने स्वामी की शरण नहीं छोड़ता और वह स्वामी धन्य है, जो अपने सेवक को नहीं छोड़ता।”

दुद्वैवे सेवक यदि याय अन्य स्थाने ।

सेइ ठाकुर धन्य तारे चुले धरि आने ॥ 47॥

दुद्वैवे-दुर्भाग्यवश; सेवक-सेवक; यदि-यदि; याय-जाता है; अन्य स्थाने-अन्य स्थान को; सेइ ठाकुर-वह स्वामी;
धन्य-धन्य है; तारे-उसे; चुले-बालों से; धरि'- पकड़कर; आने-वापस लाता है।

अनुवाद

“यदि संयोगवश सेवक सेवा से नीचे गिर जाता है और अन्यत्र चला जाता है, तो वह स्वामी धन्य है,
जो उसको बालों से पकड़कर वापस लाता है।

भाल हैल, तोमार इहाँ हैल आगमने ।

एइ घरे रह इहाँ हरिदास-सने ॥48॥

भाल हैल-यह बहुत अच्छा हुआ; तोमार-तुम्हारा; इहाँ-यहाँ; हैल-हो गया; आगमने-आना; एइ घरे-इस कक्ष
में; रह-रहो; इहाँ-यहाँ; हरिदास-सने-हरिदास ठाकुर के साथ।

अनुवाद

“यह अच्छा हुआ कि तुम यहाँ आ गये। अब इस कमरे में हरिदास ठाकुर के साथ रहो।”

“कृष्ण-भक्ति-रसे दुँहै परम प्रधान ।

कृष्ण-रस आस्वादन कर, लह कृष्ण-नाम” ॥49॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण की भक्ति-रसे—प्रेममयी सेवा के दिव्य रस में; हे-आप दोनों; परम प्रधान-अत्यन्त दक्ष हो;
कृष्ण-रस-कृष्ण का दिव्य स्वाद; आस्वादन-आस्वादन; कर-करो; लह कृष्ण-नाम-कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करो।

अनुवाद

“तुम दोनों ही कृष्ण-भक्ति के रसों को समझने में दक्ष हो। इसलिए तुम दोनों को ऐसे कार्यों का तथा हरे कृष्ण महामन्त्र का आस्वादन करते रहना चाहिए।”

एत बलि' महाप्रभु उठिया चलिला ।

गोविन्द-द्वाराय दुँहै प्रसाद पाठाइला ॥50॥

एत बलि'—यह कहकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; उठिया चलिला-उठकर चल दिये; गोविन्द-द्वाराय-गोविन्द के द्वारा; दुँहै-उन दोनों को प्रसाद पाठाइला—प्रसाद भिजवाया।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु उठे और चल दिये तथा गोविन्द के द्वारा उन्होंने उनके खाने के लिए प्रसाद भेजा।

एइ-मत सनातन रहे प्रभु-स्थाने ।

जगन्नाथेर चक्र देखि' करेन प्रणामे ॥51॥

एइ-मत-इस प्रकार; सनातन-सनातन गोस्वामी; रहे-रहे हैं; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के संरक्षण में; जगन्नाथेर-भगवान् जगन्नाथ के; चक्र-मन्दिर के शीर्ष पर स्थित चक्र को; देखि-देखकर; करेन प्रणामे-सादर प्रणाम करते हैं।

अनुवाद

इस तरह सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु की देखरेख में रहे। वे जगन्नाथ मन्दिर के शिखर के चक्र को देखते तथा नमस्कार करते।

प्रभु आसि' प्रति-दिन मिलेन दुइ-जने ।

इष्ट-गोष्ठी, कृष्ण-कथा कहे कत-क्षणे ॥52॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आसि'—आकर; प्रति-दिन-प्रतिदिन; मिलेन दुइ-जने-उन दोनों से मिलते; इष्ट-गोष्ठी-वार्तालाप; कृष्ण-कथा- भगवान् कृष्ण के विषय में चर्चा; कहे-कहते; कत-क्षणे-कुछ समय।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रतिदिन इन दोनों महान् भक्तों से भेंट करने जाते और कुछ काल तक उनके साथ कृष्ण-कथाओं पर बातें करते।

दिव्य प्रसाद पाय नित्य जगन्नाथ-मन्दिरे ।

ताहा आनि' नित्य अवश्य देन दोंहाकारे ॥53॥

दिव्य-उच्च कोटी का; प्रसाद-प्रसाद; पाय-प्राप्त करते; नित्य-रोज; जगन्नाथ-मन्दिरे-भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर में; ताहा आनि'-वह लाकर; नित्य-रोज; अवश्य-अवश्य ही; देन-देते; दोंहाकारे उन दोनों को।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर में प्रसाद की भेंट सर्वोच्च कोटि की होती थी। श्री चैतन्य महाप्रभु यह प्रसाद लाते और दोनों भक्तों को देते।

एक-दिन आसि' प्रभु दुँहारे मिलिला ।

सनातने आचम्बिते कहिते लागिला ॥54॥

एक-दिन-एक दिवस; आसि'-आकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; दुँहारे मिलिला-उन दोनों से मिले; सनातने-सनातन गोस्वामी से; आचम्बिते-अचानक ही; कहते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

एक दिन जब महाप्रभु उनसे मिलने आये, तो वे सहसा सनातन गोस्वामी से कहने लगे।

सनातन, देह-त्यागे कृष्ण यदि पाइये ।

कोटि-देह क्षणेके तबे छाड़िते पारिये ॥55॥

सनातन-मेरे प्रिय सनातन; देह-त्यागे-आत्महत्या करके; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; यदि यदि; पाइये-मैं प्राप्त कर सकें;
कोटि-देह-करोड़ों शरीर; क्षणेके-एक क्षण में; तबे-तो; छाड़िते पारिये-मैं त्याग सकता हूँ।

अनुवाद

उन्होंने कहा, “हे सनातन, यदि मैं आत्महत्या करके कृष्ण को पा सकें, तो करोड़ों शरीर त्यागने में मुझे
तनिक भी द्विधा नहीं होगी।”

देह-त्यागे कृष्ण ना पाई, पाइये भजने ।

कृष्ण-प्राप्त्ये उपाय कोन नाहि ‘भक्ति’ विने ॥56॥

देह-त्यागे-शरीर त्याग करके; कृष्ण-भगवान् कृष्ण को; ना पाइ-मैं नहीं प्राप्त कर सकता; पाइये-मैं प्राप्त कर सकता
हूँ; भजने-प्रेममयी सेवा द्वारा; कृष्ण-प्राप्त्ये-कृष्ण की शरण प्राप्त करने का उपाय-साधन; कोन-कोई; नाहि-नहीं है; भक्ति
विने- प्रेममयी सेवा के अलावा।

अनुवाद

“तुम जान लो कि मात्र शरीर त्यागने से कोई कृष्ण को प्राप्त नहीं कर सकता। कृष्ण तो भक्ति से प्राप्य
हैं। उन्हें प्राप्त करने का कोई अन्य उपाय नहीं है।”

देह-त्यागादि व्रत, सब—तमो-धर्म ।

तमो-रजो-धर्मे कृष्णे ना पाइये मर्म ॥ 57॥

देह-त्याग-आदि-भौतिक शरीर त्यागना आदि; व्रत-जितने भी; सब-सब; तमः-धर्म-तमोगुण में किये जाने वाले;
तमः-रजः-धर्म-तमो तथा रजोगुण के अधीन रहने से; कृष्णे-भगवान् कृष्ण का; ना पाइये-मैं नहीं पा सकता; मर्म-सत्या।

अनुवाद

आत्महत्या जैसे कर्म तमोगुण से प्रेरित होते हैं एवं तमो तथा रजोगुण में मनुष्य यह नहीं समझ सकता कि कृष्ण कौन हैं।

‘भक्ति’ विना कृष्णे कभु नहे ‘प्रेमोदय’ ।

प्रेम विना कृष्ण-प्राप्ति अन्य हैते नय ॥58॥

भक्ति विना-प्रेममयी सेवा के बिना; कृष्णे-कृष्ण में; कभु-किसी भी काल में; नहे-नहीं; प्रेम-उदय-कृष्ण के प्रति प्रसुप्त प्रेम का उदय; प्रेम विना-कृष्ण-प्रेम के बिना; कृष्ण-प्राप्ति-कृष्ण की प्राप्ति; अन्य कुछ और हैते-द्वारा; नय-सम्भव नहीं है।

अनुवाद

जब तक कोई भक्ति सम्पन्न नहीं करता, तब तक वह अपने सुप्त कृष्ण-प्रेम को जागृत नहीं कर सकता और उस सुप्त प्रेम को जागृत किये बिना कृष्ण को प्राप्त करने का अन्य कोई साधन नहीं है।

न साधयति मां योगो न साङ्ख्यं धर्म उद्धव ।

न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥ 59॥

न-कभी नहीं; साधयति-सन्तोष प्रदान करते हैं; माम्-मुझे; योगः-संयम की प्रक्रिया; न-न ही; साङ्ख्यम्-परम सत्य के विषय में दार्शनिक ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया; धर्मः-ऐसा काम; उद्धव-मेरे प्रिय उद्धव; न-न ही; स्वाध्यायः-वेदों का अध्ययन; तपः-तपस्याएँ; त्यागः-त्याग, संन्यास ग्रहण करना या दान देना; यथा-जितनी; भक्तिः-प्रेममयी सेवा; मम-मेरे प्रति; ऊर्जिता-विकसित।

अनुवाद

“[पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण ने कहा :] ‘हे उद्धव, न तो अष्टांग योग द्वारा, न निर्विशेष एकेश्वरवाद द्वारा, न सांख्य योग द्वारा, न वेदों के अध्ययन द्वारा, न तपस्या, दान या संन्यास द्वारा कोई मुझे उतना तुष्ट कर सकता है जितना कि मेरी शुद्ध भक्ति विकसित करके कर सकता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.14.20) से है।

देह-त्यागादि तमो-धर्म-पातक-कारण ।

साधक ना पाय ताते कृष्णे चरण ॥60॥

देह-त्याग-आत्महत्या द्वारा भौतिक शरीर त्यागना; आदि-आदि; तमः-धर्म-तमोगुण के स्तर पर; पातक-कारण-पापकर्मों के कारण; साधक-भक्त; ना पाय-नहीं प्राप्त करता; ताते-उससे; कृष्णे चरण-कृष्ण के चरणकमलों

अनुवाद

आत्महत्या जैसे उपाय पाप के कारण हैं। ऐसे कर्मों से भक्त कभी भी कृष्ण के चरणकमलों में शरण प्राप्त नहीं कर सकता।

प्रेमी भक्त वियोगे चाहे देह छाड़िते ।

प्रेमे कृष्ण मिले, सेह ना पारे मरिते ॥61॥

प्रेमी भक्त-कृष्ण से प्रेम द्वारा अनुरक्त भक्त; वियोगे-विरह में; चाहे-चाहता है; देह छाड़िते-शरीर त्यागना; प्रेमे-ऐसे प्रेमभाव से; कृष्ण मिले वह कृष्ण से मिलता है; सेह-ऐसा भक्त; ना पारे मरिते-मर नहीं सकता।

अनुवाद

“कृष्ण से वियोग की भावनाओं के कारण कभी-कभी उन्नत भक्त अपना जीवन त्याग देना चाहता है। किन्तु ऐसे प्रेम से कृष्ण का दर्शन होता है और उस समय वह शरीर त्याग नहीं पाता।”

गाढ़ानुरागेर वियोग ना याय सहन ।

ताते अनुरागी वाञ्छे आपन मरण ॥62॥

गाढ़-अनुरागेर-जिसे गहरी आसक्ति है; वियोग-विरह; ना-नहीं; याय सहन-सहन होना; ताते-अतः; अनुरागी-
एक अत्यन्त आसक्त भक्त; वाञ्छे-चाहता है; आपन मरण-अपनी मृत्यु।

अनुवाद

“जो व्यक्ति कृष्ण से प्रगाढ़ प्रेम करता है, वह उनके वियोग को सहन नहीं कर सकता। इसलिए ऐसा
भक्त सदैव अपनी मृत्यु चाहता है।”

यस्याङ्घ्रि-पङ्कज-रजः-स्नपनं महान्तो

वाञ्छन्त्युमा-पतिरिवात्म-तमोऽपहत्यै ।

यहम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं

जह्यामसुन्व्रत-कृशाञ्छत-जन्मभिः स्यात् ॥ 63 ॥

मस्य-जिसके; अङ्घ्रि-चरणों की; पङ्कज-कमल; रजः-धूल में; स्नपनम्-स्नान करके; महान्तः-महात्मा;
वाञ्छन्ति-चाहते हैं; उमा-पतिः-शिवजी; इव-जैसे; आत्म-अपना; तमः-अज्ञान; अपहत्यै-दूर करने के लिए; यर्हि-जब;
अम्बुज-अक्ष-हेकमलनयन; न लभेय-मुझे नहीं मिलती; भवत्-प्रसादम्-आपकी कृपा; जह्याम्-मैं त्याग दूँगा; असून्-
जीवन; व्रत-कृशान् व्रत करके कमजोर होकर; शत-जन्मभिः-हजारों जन्मों तक; स्यात्-यदि ऐसा सम्भव हो।

अनुवाद

हे कमलनयन, शिवजी जैसे महापुरुष अज्ञान को भगाने के लिए आपके चरणकमलों की धूल में स्नान
करने की इच्छा करते हैं। यदि मुझे आपकी कृपा प्राप्त नहीं होती, तो मैं अपनी आयु को कम करने के व्रत का
पालन करूँगी और यदि इस तरह आपकी कृपा मिल सकेगी, तो मैं सैकड़ों जन्मों तक शरीर त्यागती रहूँगी।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.52.43) में रुक्मिणी देवी द्वारा कहा गया है। राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी देवी
ने कृष्ण के दिव्य गुणों के विषय में सुन रखा था, अतएव वे कृष्ण को पति रूप में पाने के लिए इच्छुक थीं। दुर्भाग्यवश

उनका बड़ा भाई रुक्मी कृष्ण से द्वेष रखता था, इसलिए वह उन्हें शिशुपाल को दिये जाने के पक्ष में था। जब रुक्मिणी को इसका पता चला, तो वे अत्यधिक दुःखी हुईं। अतएव उन्होंने एक गोपनीय पत्र कृष्ण के नाम लिखा, जिसे एक ब्राह्मण दूत ने ले जाकर उनके समक्ष प्रस्तुत किया और पढ़कर सुनाया। यह श्लोक उसी पत्र में था।

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृत-पूरकेण

हासावलोक-कल-गीत-ज-हृच्छयाग्निम् ।

नो चेद्वयं विरह-जाग्न्युपयुक्त-देहा

ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ॥ 64॥

सिञ्च-जल छिड़क दो; अङ्ग-हे मेरे प्रिय कृष्ण; नः-हमारे; त्वत्-आपके; अधर-होठों के; अमृत-अमृत के; पूरकण-बहाव से; हास-हँसी, मुस्कान; अवलोक-चितवन; कल-मधुर; गीत-वाणी; जद्वारा उत्पन्न; हृत्-हृदय में; शय-आराम; अग्निम्-आग पर; न उ चेत्-यदि नहीं; वयम्-हम; विरह-विरह से; ज-उत्पन्न; अग्नि-अग्नि द्वारा; उपयुक्त-ग्रासित; देहाः-जिनके शरीर; ध्यानेन-ध्यान द्वारा; याम-जाएँगी; पदयोः-चरणकमलों के; पदवी-पदाश्रित; सखे-हे मेरे प्रिय मित्र; ते-आपके।

अनुवाद

“हे प्रिय कृष्ण, आपने अपनी हँसीयुक्त चितवन तथा मधुर बातों से हमारे हृदयों में कामवासना की अग्नि उत्पन्न कर दी है। अब आपको अपने होठों की अमृतधारा से हमें चूमकर इस अग्नि को बुझाना चाहिए। तुम कृपा करके ऐसा करें। अन्यथा हे मित्र, आपके विरह के कारण हमारे हृदयों के भीतर की अग्नि हमारे शरीरों को क्षार कर देगी। इस तरह ध्यान द्वारा हम आपके चरणकमलों की शरण पा सकेंगी।”

तात्पर्य

यह श्लोक (भागवत 10.29.35) गोपियों द्वारा तब कहा गया था, जब वे शरदकालीन चाँदनी में कृष्ण की वंशी-ध्वनि द्वारा आकृष्ट हुई थीं। वे सभी उन्मत्त होकर कृष्ण के पास आईं, किन्तु उनके प्रेम को वर्धित करने के उद्देश्य से कृष्ण

ने उन्हें घर लौट जाने का नैतिक उपदेश दिया। गोपियों ने इन उपदेशों की परवाह नहीं की। वे कृष्ण द्वारा चुम्बन चाहती थीं, क्योंकि वे उनके साथ नाचने की कामवासना से पूरित होकर वहाँ आई थीं।

कुबुद्धि छाड़िया कर श्रवण-कीर्तन ।

अचिरात् पाबे तबे कृष्णे चरण ॥65॥

कु-बुद्धि-प्रेममयी सेवा करने के लिए अनुपयुक्त बुद्धि; छाड़िया-त्यागकर; कर-करो; श्रवण-कीर्तन-श्रवण और कीर्तन; अचिरात्-अति शीघ्र ही; पाबे-तुम प्राप्त करोगे; तबे-तब; कृष्णे चरण-कृष्ण के चरणकमल।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को कहा, “तुम अपनी समस्त व्यर्थ की इच्छाएँ छोड़ दो, क्योंकि वे कृष्ण के चरणकमलों की शरण पाने के लिए अनुपयुक्त हैं। तुम अपने आपको श्रवण तथा कीर्तन में लगाओ। तब तुम तुरन्त ही बिना संशय के कृष्ण की शरण पा सकोगे।

नीच-जाति नका -भजने अयोग्य ।

सत्कुल-विप्र नहे भजनेर योग्य ॥66॥

नीच-जाति-एक नीच जाति का व्यक्ति; नहे-नहीं होता; कृष्ण-भजने-प्रेममयीसेवा करने के; अयोग्य-अयोग्य; सत्-कुल-विप्र-एक अत्यन्त सम्मानित कुलीन परिवार में जन्मा ब्राह्मण; नहे-नहीं होता; भजनेर योग्य-प्रेममयी सेवा करने के योग्य।

अनुवाद

निम्न कुल में उत्पन्न व्यक्ति भगवान् कृष्ण की भक्ति करने के लिए अयोग्य नहीं होता, न ही कोई व्यक्ति भक्ति के लिए इसलिए योग्य होता है कि वह कुलीन ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुआ है।

येइ भजे सेइ बड़, अभक्त-हीन, छार ।

कृष्ण-भजने नाहि जाति-कुलादि-विचार ॥ 67॥

येइ भजे-जो कोई भी भक्तिमयी सेवा करता है; सेइ-वही; बड़-महान् है; अभक्त-अभक्त, नास्तिक; हीन छार-सबसे घृणित और दुष्ट; कृष्ण-भजने-भगवत्सेवा करने में; नाहि-नहीं है; जाति-जाति; कुल-कुल; आदि-इत्यादि सबका; विचार-विचार।

अनुवाद

“जो भी भक्ति करता है, वही महान् है, जबकि अभक्त सदैव गर्हित एवं निन्दनीय है। इसलिए भगवद्भक्ति करने में किसी के जाति, कुल इत्यादि का विचार नहीं होता।”

दीनेरे अधिक दया करे भगवान् ।

कुलीन, पण्डित, धनीर बड़ अभिमान ॥ 68॥

दीनेरे-दीन पर; अधिक-अधिक; दया-कृपा; करे-प्रदर्शित करते हैं; भगवान्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; कुलीन-उच्च कुल वाले; पण्डित-विद्वान्; धनीर-एक धनी व्यक्ति का; बड़ अभिमान-अत्यन्त अहंकार।

अनुवाद

“पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण सदैव दीनों तथा दुखियारों के प्रति कृपालु रहते हैं, किन्तु कुलीन, विद्वान तथा धनी सदैव अपने पदों का गर्व करते हैं।”

विप्राद् द्वि-षट्-गुण-युतादरविन्द-नाभ-

पादारविन्द-विमुखात् श्रुपचं वरिष्ठम् ।

मन्ये तदर्पत-मनो-वचनेहितार्थ-

प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरि-मानः ॥69॥

विप्रात्-एक ब्राह्मण की तुलना में; द्वि-षट्-गुण-युतात्-जिसमें ब्राह्मण के 12 गुण हैं; अरविन्द-नाभ-भगवान् विष्णु के, जिनकी नाभि कमल के समान है; पाद-अरविन्द-के चरणकमलों से; विमुखात्-भक्ति भाव से रहित व्यक्ति से; श्रु-पचम्-एक चण्डाल अथवा कुत्ते का मांस खानेवाला व्यक्ति; वरिष्ठम्-अधिक प्रशंसनीय है; मन्ये-मैं मानता हूँ; तत्-

अर्पित-उनके प्रति समर्पित; मनः-मन; वचन-वचन; इंहित-कर्म; अर्थ-सम्पत्ति; प्राणम्-जीवन; पुनाति-शुद्ध कर देता है; सः-वह; कुलम्-अपने परिवार को; न तु-परन्तु नहीं; भूरि-मानः-ऐसे गुणों से युक्त होने के घमण्ड वाला ब्राह्मण।

अनुवाद

“भले ही कोई ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हो और बारहों ब्राह्मण-गुणों से युक्त हो, किन्तु इतना योग्य होते हुए भी यदि वह कमलनाभ भगवान् कृष्ण के चरणकमलों में समर्पित नहीं होता, तो वह उस चण्डाल के समान भी नहीं है, जिसने अपना मन, वचन, कर्म, धन तथा प्राण भगवान् की सेवा में अर्पित कर दिया है। मात्र ब्राह्मण कुल में जन्म लेना या ब्राह्मण-गुणों से युक्त होना पर्याप्त नहीं है। मनुष्य को भगवद्भक्त होना आवश्यक है। इस तरह यदि कोई श्वपच या चण्डाल भक्त है, तो वह न केवल अपना, अपितु अपने सारे परिवार का भी उद्धार करता है, जबकि एक ब्राह्मण, जो भक्त नहीं है, किन्तु केवल ब्राह्मण-योग्यताओं से युक्त है, अपने आपको भी शुद्ध नहीं कर सकता, अपने परिवार की तो बात ही जाने दें।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (7.9.10) से है।

भजनेर मध्ये श्रेष्ठ नव-विधा भक्ति ।

“कृष्ण-प्रेम”, ‘कृष्ण’ दिते धरे महा-शक्ति ॥ 70 ॥

भजनेर मध्ये-भक्ति के निष्पादन में; श्रेष्ठ-सर्वश्रेष्ठ; नव-विधा भक्ति-भगवत्सेवा की नौ विधियाँ; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण के प्रति प्रेमभाव; कृष्ण-तथा कृष्ण; दिते-देने की; धरे-धारण करती हैं; महा-शक्ति-महान् शक्ति।

अनुवाद

“भक्ति सम्पन्न करने की विधियों में नौ संस्तुत विधियाँ सर्वश्रेष्ठ हैं, क्योंकि इन विधियों में कृष्ण तथा उनके प्रति प्रेम प्रदान करने की महान् शक्ति निहित है।”

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (7.5.23) में नौ प्रकार की भक्ति का उल्लेख हुआ है :

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

ये नौ प्रकार हैं-श्रवण, कीर्तन, कृष्ण का स्मरण, कृष्ण के चरणों की सेवा, मन्दिर में पूजा करना, स्तुति करना, सेवक की तरह कार्य करना, कृष्ण से मैत्री करना तथा कृष्ण की बिना शर्त शरण ग्रहण करना। भक्ति की इन नौ विधियों से कृष्ण तथा कृष्ण-प्रेम मिलता है। प्रारम्भ में विधि-विधानों के अनुसार भक्ति करनी होती है, किन्तु धीरे-धीरे यही भक्ति भक्त की जीवनाधार बन जाती है और उसे कृष्ण-प्रेम का सर्वोच्च पद प्राप्त होता है। अन्ततोगत्वा कृष्ण ही जीवन के लक्ष्य हैं। कृष्ण के चरणकमलों को प्राप्त करने के लिए न तो कुलीन ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने की आवश्यकता है, न ही निम्न कुल में उत्पन्न व्यक्ति कृष्ण के चरणकमल प्राप्त करने के अयोग्य होता है। श्रीमद्भागवत (3.33.7) में देवहूति कपिलदेव से कहती हैं :

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्

यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।

तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या

ब्रह्मानूचूर्नामि गृणन्ति ये ते ॥

“हे प्रभु, चण्डालों के निम्न कुल में उत्पन्न व्यक्ति भी धन्य है यदि वह भगवान् के पवित्र नाम का सदैव कीर्तन करता है। ऐसा व्यक्ति पहले से ही सभी तरह की तपस्याएँ तथा वैदिक यज्ञ सम्पन्न कर चुका होता है, पहले ही पवित्र नदियों में स्नान कर चुका होता है एवं समस्त वेदों का भी अध्ययन कर चुका होता है। इस तरह वह एक महापुरुष बन चुका होता है।” इसी तरह कुन्तीदेवी भगवान् कृष्ण से कहती हैं :

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ।

नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वाम् अकिञ्चनगोचरम् ॥

“जो व्यक्ति अपने जन्म, ऐश्वर्य, ज्ञान तथा सौंदर्य पर गर्व करता है, वह आपके चरणकमलों को प्राप्त नहीं कर सकता। आप तो केवल अकिंचन तथा दीन को सहज उपलब्ध हैं, अभिमानी को नहीं।”(भागवत 1.8.26)

तार मध्ये सर्वश्रेष्ठ नाम-सङ्कीर्तन ।

निरपराधे नाम लैले पाय प्रेम-धन ॥ 71॥

तार मध्ये-प्रेममयी सेवा की नौ विभिन्न विधियों में; सर्व-श्रेष्ठ-सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण; नाम-सङ्कीर्तन-भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन; निरपराधे-अपराधों से रहित; नाम लैले-यदि कोई पवित्र नाम लेता है; पाय-वह प्राप्त करता है। प्रेम-धन-सबसे अमूल्य कृष्ण के प्रति प्रेमभाव।

अनुवाद

“भक्ति की नौ विधियों में से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है भगवान् के पवित्र नाम का सदैव कीर्तन करना। यदि कोई दस प्रकार के अपराधों से बचते हुए ऐसा करता है, तो वह आसानी से भगवान् के अमूल्य प्रेम को प्राप्त कर लेता है।”

तात्पर्य

श्रील जीव गोस्वामी प्रभु ने भक्ति-सन्दर्भ (270) में निम्नलिखित निर्देश दिये हैं :

इयं च कीर्तनाख्या भक्तिर्भगवतो द्रव्यजातिगुणक्रियाभिर्दीनजनैक--विषयापार--करुणामयीति श्रुतिपुराणादिविश्रुतिः। अतएव कलौ स्वभावत एवातिदीनेषु लोकेषु आविर्भूय तान् अनायासेनैव तत्तद् युगगतमहासाधनानां सर्वमेव फलं ददाना सा कृतार्थयति। यत एव तथैव कलौ भगवतो विशेषतश्च सन्तोषो भवति ।

“भगवन्नाम कीर्तन भगवत्प्रेम प्राप्त करने का मुख्य साधन है। यह कीर्तन या भक्ति न तो किसी साज-सामग्री पर, न ही अच्छे कुल में जन्म लेने पर निर्भर करती है। दीनता तथा विनम्रता से मनुष्य कृष्ण का ध्यान आकृष्ट करता है। यही सारे वेदों का निर्णय है। इसलिए यदि कोई अत्यन्त विनीत एवं दीन बन जाता है, तो वह कलियुग में सरलता से कृष्ण के चरणकमल प्राप्त कर सकता है। यही बड़े-बड़े यज्ञों एवं तपस्याओं की पूर्ति है, क्योंकि जब कोई भगवत्प्रेम प्राप्त कर लेता है, तब उसे जीवन की पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इसलिए मनुष्य भक्ति को सम्पन्न करने के लिए जो भी करे, उसके

साथ भगवान् के पवित्र नाम कीर्तन अवश्य करता रहे।” कृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन-हेरे कृष्ण, हेरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हेरे हेरे / हेरे राम, हेरे राम, राम राम, हेरे हेरे- की प्रशंसा श्रील रूप गोस्वामी ने नामाष्टक (श्लोक 1) में की है :

निखिलश्रुतिमौलिरत्नमाला

घुतिनीराजितपादपङ्कजान्त ।

अयि मुक्तकुलैरुपास्यमानं

परितस्त्वां हरिनाम संश्रयामि ॥

“हे हरिनाम! आपके चरणकमलों के अँगूठों के अग्रभाग समस्त वेदों के मौलि रत्न उपनिषद् रूपी रत्नों से निकलने वाली कान्ति से निरन्तर पूजित होते हैं। आपकी पूजा निरन्तर नारद तथा शुकदेव जैसे मुक्तात्मा करते हैं। हे हरिनाम ! मैं पूरी तरह आपकी शरण ग्रहण करता हूँ।”

इसी तरह श्रील सनातन गोस्वामी ने पवित्र नाम के कीर्तन की प्रशंसा बृहद्भागवतामृत (भाग 1, अध्याय 1, श्लोक 9) में की है :

जयति जयति नामानन्दरूपं मुरारे-

विरमतिनिजधर्मध्यानपूजादियत्नम् ।

कथमपि सकृदात्तं मुक्तिदं प्राणिनां

यत्परमममृतमेकं जीवनं भूषणं मे ॥

“समस्त आनन्दमय पवित्र कृष्ण-नाम की जय हो, जो भक्त के सारे धार्मिक कर्म, ध्यान तथा पूजा को छुड़वा देता है। यदि जीव एक बार भी किसी तरह नामोच्चारण करता है, तो यह नाम उसे मुक्ति प्रदान करता है। कृष्ण-नाम सर्वश्रेष्ठ अमृत है। यह तो मेरा प्राण तथा एकमात्र धन है।”

शुकदेव गोस्वामी ने श्रीमद्भागवत (2.1.11) में कहा है :

एतन्निर्विद्यमानानाम् इच्छतामकुतोभयम् ।

योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥

“हे राजन्, महापुरुषों के मार्ग पर चलते हुए भगवान् के पवित्र नाम का निरन्तर कीर्तन सबके लिए संशयरहित तथा भयरहित सफलता का मार्ग है। इसमें समस्त भौतिक इच्छाओं से रहित, भौतिक भोग के लिए इच्छुक तथा दिव्यज्ञान के बल पर आत्मतुष्ट लोग सम्मिलित हैं।”

श्रीमद्भागवतम् (6.3.22) में यमराज कहते हैं :

एतवानेव लोकेऽस्मिन् पुसां धर्मः परः स्मृतः।

भक्तियोगो भगवती तन्नाम ग्रहणादिभिः ॥

“भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन से प्रारम्भ होने वाली भक्ति मानव समाज में रहने वाले मनुष्य के लिए परम धर्म है।”

इसी तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने शिक्षाष्टक (3) में कहा है :

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।

अमानिना नदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

“अपने आपको मार्ग में पड़े तिनके से भी तुच्छ मानकर विनीत भाव से भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना चाहिए। भक्त को वृक्ष से भी अधिक सहनशील, झूठी प्रतिष्ठा के भाव से रहित तथा अन्यो का आदर करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। ऐसी मनोदशा में रहकर मनुष्य भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन निरन्तर कर सकता है।” नाम-कीर्तन से सम्बन्धित दस अपराधों के लिए देखें आदिलीला (अध्याय 8 का श्लोक 24)।

एत शुनि' सनातनेर हैल चमत्कार ।

प्रभुरे ना भाय मोर मरण-विचार ॥72॥

एत शुनि'-यह सुनकर; सनातनेर-सनातन गोस्वामी को; हैल चमत्कार-आश्चर्य हुआ; प्रभुरे ना भाय-श्री चैतन्य महाप्रभु को पसन्द नहीं आया; मोर-मेरा; मरण-विचार-आत्महत्या करने का निर्णय।

अनुवाद

यह सुनकर सनातन गोस्वामी को अत्यधिक आश्चर्य हुआ। वे समझ गये, “आत्महत्या करने का मेरा निर्णय श्री चैतन्य महाप्रभु को अच्छा नहीं लगा।”

सर्वज्ञ महाप्रभु निषेधिला मोरे ।

प्रभुर चरण धरि' कहेन ताँहारे ॥73॥

सर्व-ज्ञ-जो सब कुछ जानते हैं; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; निषेधिला-निषेध कर दिया है; मोरे-मुझे; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरण-चरण; धरि'-पकड़कर; कहेन ताँहारे-उनसे कहने लगे।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने निष्कर्ष निकाला, “भूत, वर्तमान तथा भविष्य को जानने वाले श्री चैतन्य महाप्रभु ने मुझे आत्महत्या करने से मना किया है।” तब वे महाप्रभु के चरणों पर गिर पड़े और उनसे इस तरह बोले।

सर्वज्ञ, कृपालु तुमि ईश्वर स्वतन्त्र ।

यैछे नाचाओ, तैछे नाचि,—येन काष्ठ-ग्रन्त्र ॥ 74॥

सर्व-ज्ञ-सब जानने वाले; कृपालु कृपालु; तुमि-आप; ईश्वर-परम भगवान्; स्वतन्त्र-स्वतन्त्र; यैछे-जैसे; नाचाओ-आप नचाएँ, तैछे-वैसे; नाचि-मैं नाचता हूँ; येन-जैसे; काष्ठ-ग्रन्त्र-कठपुतली।

अनुवाद

“हे प्रभु, आप सर्वज्ञ, कृपालु तथा स्वतन्त्र परमेश्वर हैं। मैं तो कठपुतली की ही तरह, जैसा आप चाहते हैं, नाचता हूँ।”

“नीच, अधम, पामर मुनि पामर-स्वभाव ।

मोरे जियाइले तोमार किबा हबे लाभ?” ॥ 75॥

नीच-नीच जन्म; अधम-सबसे पतित; पामर-पापी; मुनि-मैं; पामर-स्वभाव-स्वभाव से ही पापी; मोरे जियाइले-यदि आप मुझे बचा लें; तोमार-आपका; किबा-क्या; हबे-होगा; लाभ-लाभ।

अनुवाद

“मैं नीच कुल में जन्मा हूँ। निस्सन्देह, मैं सबसे नीच हूँ। मैं घृणित हूँ, क्योंकि मुझमें पापी व्यक्ति के सारे दुर्गुण हैं। यदि आप मुझे जीवित रखते हैं, तो क्या लाभ होगा?”

प्रभु कहे,—“तोमार देह मोर निज-धन ।

तुमि मोरे करियाछ आत्म-समर्पण” ॥ 76॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं; तोमार देह-तुम्हारा शरीर; मोर-मेरी; निज-धन-अपनी सम्पत्ति है; तुमि-तुमने; मोरे-मुझे; करियाछ—किया है; आत्म-समर्पण-सम्पूर्ण समर्पण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “तुम्हारा शरीर मेरी सम्पत्ति है। तुम इसे पहले ही मुझको समर्पण कर चुके हो। इसलिए अब अपने शरीर पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है।

परेर द्रव्य तुमि केने चाह विनाशिते? ।

धर्माधर्म विचार किबा ना पार करिते? ॥77॥

परेर द्रव्य-दूसरे की सम्पत्ति; तुमि-तुम; केने-क्यों; चाह—चाहते हो; विनाशिते-नष्ट करना; धर्म-अधर्म-पुण्य क्या है और पाप क्या है; विचार-विचार; किबा-क्यों; ना-नहीं; पार-तुम सकते; करिते-करना।

अनुवाद

“तुम दूसरे की सम्पत्ति को क्यों नष्ट करना चाहते हो? क्या तुम यह विचार नहीं कर सकते कि क्या उचित है और क्या अनुचित?”

“तोमार शरीर—मोर प्रधान साधन” ।

ए शरीर साधिमु आमि बहु प्रयोजन ॥ 78 ॥

तोमार शरीर-तुम्हारा शरीर; मोर-मेरा; प्रधान-मुख्य; साधन-साधन है; ए शरीर—इस शरीर से; साधिमु-करूंगा;
आमि-मैं; बहु-अनेक प्रयोजन-आवश्यकताओं की पूर्ति ।

अनुवाद

तुम्हारा शरीर अनेक आवश्यक कार्य सम्पन्न कराने के लिए मेरा प्रमुख साधन है। तुम्हारे शरीर के द्वारा
मैं अनेक कार्यों को पूरा करूंगा।

भक्त-भक्ति-कृष्णप्रेम-तत्त्वेर निधार ।

वैष्णवेर कृत्य, आर वैष्णव-आचार ॥79॥

भक्त-भक्त; भक्ति-प्रेममयी सेवा; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण का प्रेम; तत्त्वेर-सत्य का; निधार-निर्धारण; वैष्णवेर कृत्य-एक
वैष्णव के कर्तव्य; आर-और; वैष्णव-आचार-एक वैष्णव के आचरण।

अनुवाद

तुम्हें भक्त, भक्ति, ईश्वर-प्रेम, वैष्णवों के कर्तव्य तथा वैष्णव के गुणों का निर्धारण करना होगा।

कृष्ण-भक्ति, कृष्णप्रेम-सेवा-प्रवर्तन ।

लुप्त-तीर्थ-उद्धार, आर वैराग्य-शिक्षण ॥80॥

कृष्ण-भक्ति-कृष्ण के प्रति प्रेममयी सेवा; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम; सेवा-सेवा; प्रवर्तन की स्थापना; लुप्त-तीर्थ-विलुप्त
तीर्थस्थानों का; उद्धार-पुनरुद्धार; आर-और; वैराग्य-शिक्षण-संन्यास आश्रम पर उपदेश ।

अनुवाद

“तुम्हें कृष्ण-भक्ति बतलानी होगी, कृष्ण-प्रेम अनुशीलन के केन्द्र स्थापित करने होंगे, लुप्त तीर्थस्थलों
का उद्धार करना होगा तथा लोगों को शिक्षा देनी होगी कि संन्यास किस तरह ग्रहण किया जाए।”

निज-प्रिय-स्थान मोर-मथुरा-वृन्दावन ।

ताहाँ एत धर्म चाहि करिते प्रचारण ॥81॥

निज-अपना; प्रिय-स्थान-अत्यन्त प्रिय स्थान; मोर-मेरा; मथुरा-वृन्दावन-मथुरा और वृन्दावन; ताहाँ-वहाँ; एत-अनेक; धर्म-कार्यकलाप; चाहि-मैं चाहता हूँ; करिते-करना; प्रचारण-प्रचार।

अनुवाद

“मथुरा-वृन्दावन मेरा अति प्रिय अपना धाम है। मैं कृष्णभावनामृत का प्रचार करने के लिए वहाँ अनेक कार्य करना चाहता हूँ।”

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु श्रील सनातन गोस्वामी द्वारा ग्रन्थों का संकलन करवाकर कई उद्देश्य पूरे करना चाह रहे थे। पहला कार्य था-सनातन गोस्वामी ने बृहद्भागवतामृत नामक ग्रन्थ की रचना लोगों को यह शिक्षा देने के लिए की कि किस तरह भक्त बना जाए, कैसे भक्ति की जाए और किस तरह कृष्ण-प्रेम प्राप्त किया जाए। दूसरा कार्य था—उन्होंने हरिभक्ति विलास नामक ग्रन्थ का संकलन किया, जो वैष्णव आचरण के सम्बन्ध में शास्त्रों के आदेशों का प्रामाणिक संग्रह है। श्री सनातन गोस्वामी के प्रयासों से ही वृन्दावन क्षेत्र के लुप्त तीर्थस्थलों का पुनरुद्धार हो सका। उन्होंने वृन्दावन क्षेत्र में प्रथम अर्चाविग्रह मदनमोहन की स्थापना की। उन्होंने अपने व्यक्तिगत आचरण से शिक्षा दी कि किस तरह संन्यास आश्रम में पूर्णतया भगवान् की सेवा में लगे रहकर कर्म करना चाहिए। उन्होंने अपने निजी दृष्टान्त से लोगों को शिक्षा दी कि किस तरह भक्ति करने के लिए वृन्दावन में रहना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु का मुख्य उद्देश्य कृष्णभावनामृत का प्रचार करना था। मथुरा तथा वृन्दावन भगवान् कृष्ण के धाम हैं। इसलिए ये दोनों ही स्थान श्री चैतन्य महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय हैं और वे सनातन गोस्वामी के माध्यम से इनकी महिमा बढ़ाना चाहते थे।

मातार आज्ञाय आमि बसि नीलाचले ।

ताहाँ ‘धर्म’ शिखाइते नाहि निज-बले ॥82॥

मातार-मेरी माता के; आज्ञाय-आदेश से; आमि-मैं; बसि-वास कर रहा हूँ; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में; ताहाँ-मथुरा और वृन्दावन में; धर्म शिखाइते-धर्म के सिद्धान्त सिखाने के लिए; नाहि-नहीं; निज-बले-मेरी क्षमता।

अनुवाद

“मैं अपनी माता के आदेश से जगन्नाथ पुरी में रह रहा हूँ, अतएव मैं लोगों को धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार रहना सिखाने के लिए मथुरा-वृन्दावन नहीं जा सकता।

एत सब कर्म आमि ये-देहे करिमु ।

ताहा छाड़िते चाह तुमि, केमने सहिमु? ॥83॥

एत सब-यह सब; कर्म-कार्य; आमि-मैं; ये-देहे-जिस शरीर के माध्यम से; करिमु-करूँगा; ताहा-वह; छाड़िते-त्यागना; चाह तुमि-तुम चाहते हो; केमने-कैसे; सहिमु-मैं सहन करूँगा।

अनुवाद

“मुझे यह सारा कार्य तुम्हारे शरीर के माध्यम से कराना है, किन्तु तुम इसे त्यागना चाहते हो। यह मैं कैसे सह सकता हूँ?”

तबे सनातन कहे,—“तोमाके नमस्कारे ।

तोमार गम्भीर हृदय के बुझिते पारे?” ॥84॥

तबे-उस समय; सनातन कहे-सनातन गोस्वामी ने कहा; तोमाके नमस्कारे-मैं आपको सादर प्रणाम करता हूँ; तोमार-आपका; गम्भीर-गम्भीर; हृदय-हृदय; के-कौन; बुझिते पारे-समझ सकता है।

अनुवाद

उस समय सनातन गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से कहा, “मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ। आप अपने हृदय के भीतर जो गहन विचार करते हैं, उन्हें कोई नहीं समझ सकता।

काष्ठेर पुतली येन कुहके नाचाय ।

आपने ना जाने, पुतली किबा नाचे गाय! ॥85॥

काष्ठेर पुतली-कठपुतली; येन-जैसे; कुहके नाचाय-जादूगर नचाता है; आपने-स्वयं; ना जाने-नहीं जानती;
पुतली-कठपुतली; किबा-कैसे; नाचे-नाचती है; गाय-गाती है।

अनुवाद

कठपुतली जादूगर के निर्देशानुसार नाचती-गाती है, किन्तु यह नहीं जानती कि वह किस तरह नाच-गा रही है।

यारे यैछे नाचाओ, से तैछे करे नर्तने ।

कैछे नाचे, केबा नाचाय, सेह नाहि जाने” ॥86॥

यारे-जिसको; यैछे-जैसे; नाचाओ-आप नचाते हैं; से-वह व्यक्ति; तैछे-वैसे; करे नर्तने-नाचता है; कैछे-कैसे; नाचे-वह नाचता है; केबा नाचाय-कौन नचाता है; सेह-वह; नाहि जाने-नहीं जानता।

अनुवाद

“हे प्रभु, आप जिस तरह नचाते हैं, मनुष्य उसी के अनुसार नाचता है, किन्तु वह कैसे नाचता है और उसे कौन नचाता है, वह यह नहीं जानता।”

हरिदासे कहे प्रभु,—“शुन, हरिदास ।

परेर द्रव्य इँहो चाहेन करिते विनाश” ॥ 87॥

हरिदासे-हरिदास ठाकुर को ; कहे प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु सम्बोधित करते हैं; शुन हरिदास-मेरे प्रिय हरिदास, कृपया सुनो; परेर द्रव्य-दूसरे की सम्पत्ति; इँहो-यह सनातन गोस्वामी; चाहेन-चाहता है; करिते विनाश-नष्ट करना।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर से कहा, “हे प्रिय हरिदास, जरा मेरी बात सुनो। यह भद्र पुरुष पराई सम्पत्ति को नष्ट करना चाहता है।”

“परेर स्थाप्य द्रव्य केह ना खाय, विलाय ।

निषेधिह ईहारे,—येन ना करे अन्याय” ॥88॥

परेर-दूसे द्वारा; स्थाप्य-संभालने के लिए; द्रव्य-सम्पत्ति; केह ना खाय-कोई प्रयोग नहीं करता; विलाय-बाँटता है; निषेधिह-मना करो; ईहारे-इसे; येन-ताकि; ना करे-यह न करे; अन्याय-कुछ अन्याय।

अनुवाद

“जिसे पराया धन सौंपा जाता है, वह न तो उसे वितरित करता है, न ही अपने उपयोग में लाता है। इसलिए उससे कहो कि ऐसा अवैध कार्य न करो।”

हरिदास कहे,—“मिथ्या अभिमान करि ।

तोमार गम्भीर हृदय बुझिते ना पारि” ॥89॥

हरिदास कहे-हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया; मिथ्या-झूठे; अभिमान करि-अभिमान करते हैं; तोमार-आपके; गम्भीर-गहरे; हृदय-भाव को; बुझिते ना पारि-हम समझ नहीं सकते।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया, “हम अपनी क्षमताओं पर झूठे ही गर्व करते हैं। वस्तुतः हम आपके गहन विचारों को समझ नहीं सकते।”

कोन् को कार्य तुमि कर कोन् द्वारे ।

तुमि ना जानाइले केह जानते ना पारे ॥90॥

कोन् को कार्य-कौन से कार्य; तुमि-आप; कर-करते हैं; कोन् द्वारे-किसके द्वारा; तुमि ना जानाइले-जब तक आप न समझाएँ; केह जानते ना पारे-कोई भी समझ नहीं सकता।

अनुवाद

“जब तक आप हमें बताते नहीं, तब तक हम न तो आपके अभिप्राय को समझ पाते हैं, न ही यह कि किसके माध्यम से आप क्या कराना चाहते हैं।”

“एतादृश तुमि इँहारे करियाछ अङ्गीकार ।

एत सौभाग्य इहाँ ना हय काहार” ॥91॥

एतादृश-ऐसे; तुमि-आपने; इँहारे-इसे; करियाछ अङ्गीकार-स्वीकार किया है; एत सौभाग्य-अत्यन्त सौभाग्य;
इहाँ-इसका; ना हय-सम्भव नहीं है; काहार-किसी और के द्वारा।

अनुवाद

“हे महोदय, चूँकि आप जैसे महापुरुष ने सनातन गोस्वामी को स्वीकार कर लिया है, अतएव वह
अत्यधिक भाग्यशाली है। उसके समान भाग्यशाली कोई दूसरा नहीं हो सकता।”

तबे महाप्रभु करि’ हुँहारे आलिङ्गन ।

‘मध्याह्न’ करिते उठि’ करिला गमन ॥ 92॥

तबे-तब; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करि’-दुँहारे आलिङ्गन-दोनों को गले लगाकर; मध्य-अह्न करिते-अपने
दोपहर के कृत्य करने के लिए; उठि’-उठकर; करिला गमन-चले गये।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर तथा सनातन गोस्वामी दोनों का आलिंगन किया और
तब उठ खड़े हुए एवं दोपहर का कृत्य करने के लिए चले गये।

सनातने कहे हरिदास करि’ आलिङ्गन ।

“तोमार भाग्येर सीमा ना याय कथन” ॥93॥

सनातने-सनातन गोस्वामी से; कहे-कहा; हरिदास-हरिदास ठाकुर ने; करि’ आलिङ्गन-आलिंगन करके; तोमार-
तुम्हारे; भाग्येर-सौभाग्य की; सीमा-सीमा का; ना याय कथन-वर्णन नहीं किया जा सकता।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने सनातन का आलिंगन करते हुए कहा, “हे प्रिय सनातन, कोई भी व्यक्ति तुम्हारे सौभाग्य की सीमा नहीं पा सकता।

तोमार देह कहेन प्रभु मोर निज-धन ।

तोमा-सम भाग्यवान् नाहि कोन जन ॥94॥

तोमार देह-तुम्हारे शरीर को; कहेन प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं; मोर-मेरा; निज-धन-अपनी सम्पत्ति; तोमा-सम-तुम्हारे समान; भाग्यवान्-भाग्यवान व्यक्ति; नाहि-नहीं है; कोन जन-कोई

अनुवाद

“श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुम्हारे शरीर को अपना व्यक्तिगत धन मान लिया है। अतएव तुम्हारे सौभाग्य की कोई तुलना नहीं कर सकता।”

निज-देहे ये कार्य ना पारेन करिते ।

से कार्य कराइबे तोमा, सेह मथुराते ॥95॥

निज-देहे-अपने शरीर से; ये कार्य-जो कार्यकलाप; ना पारेन करिते-वे नहीं कर सकते; से कार्य-वे कार्य; कराइबे-वे करवाएँगे; तोमा-तुमसे; सेह-वे; मथुराते-मथुरा में।

अनुवाद

“जो कुछ श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निजी शरीर से नहीं कर सकते, उसे वे तुम्हारे माध्यम से कराना चाहते हैं और वे इसे मथुरा में कराना चाहते हैं।”

ये कराइते चाहे ईश्वर, सेइ सिद्ध हय ।

तोमार सौभाग्य एइ कहिलुँ निश्चय ॥ 96॥

ये-जो कुछ भी; कराइते-करवाना; चाहे-चाहते हैं; ईश्वर-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; सेइ-वह; सिद्ध-सफल; हय-है; तोमार सौभाग्य-तुम्हारा महान् सौभाग्य; एइ-यह; कहिलुँ-मैंने कहा है; निश्चय-मेरा गम्भीर विचार है।

अनुवाद

“पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हमसे जो भी कराना चाहते हैं, वह सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जायेगा। यह तुम्हारा महान् सौभाग्य है। यह मेरा परिपक्व मत है।”

भक्ति-सिद्धान्त, शास्त्र-आचार-निर्णय ।

तोमा-द्वारे कराइबेन, बुझिलुँ आशय ॥97॥

भक्ति-सिद्धान्त-भक्तिमयी सेवा में सैद्धान्तिक निर्णय; शास्त्र-शास्त्र के विधानों के अनुसार; आचार-निर्णय-आचरण का निर्धारण; तोमा-द्वारे-तुम्हारे द्वारा; कराइबेन-करवाएँगे; बुझिलुँ-मैं समझ सकता हूँ; आशय-उनकी इच्छा।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की बातों से समझ सकता हूँ कि वे चाहते हैं। कि तुम भक्ति के सिद्धान्त तथा शास्त्रनिर्णित विधि-विधान पर ग्रन्थ लिखो।

आमार एइ देह प्रभुर कार्ये ना लागिल ।

भारत-भूमिते जन्मि' एइ देह व्यर्थ हैल ॥98॥

आमार-मेरा; एइ-यह; देह-शरीर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; कार्ये-सेवा में; ना लागिल—प्रयुक्त नहीं हो सका; भारत-भूमिते—भारत भूमि में; जन्मि-जन्म लेकर; एइ देह-यह शरीर; व्यर्थ हैल-व्यर्थ हो गया।

अनुवाद

“मेरा शरीर श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में काम न आ सका। इसलिए भारत-भूमि में जन्म लेकर भी यह शरीर व्यर्थ रहा।”

तात्पर्य

भारत-भूमि की महत्ता की अधिक व्याख्या के लिए देखें आदिलीला 9.41 तथा श्रीमद्भागवत 5.19.19-27। भारत में जन्म लेने का विशेष गुण यह है कि भारत में जन्मा व्यक्ति स्वयमेव भगवद् भावनामय बन जाता है। भारत के

प्रत्येक भाग में, विशेषतया तीर्थस्थानों में एक सामान्य अशिक्षित व्यक्ति भी कृष्णभावना की ओर उन्मुख रहता है और ज्योंही वह किसी कृष्णभावनाभावित व्यक्ति को देखता है, उसे नमस्कार करता है। भारत में गंगा, यमुना, नर्मदा, कावेरी तथा कृष्णा जैसी अनेक पवित्र नदियाँ हैं और इन नदियों में स्नान करने मात्र से ही लोग मुक्त हो जाते हैं एवं कृष्णभावनाभावित हो जाते हैं। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं :

भारतभूमिते हैल मनुष्यजन्म यार ।

जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार ॥

जिसने भारत-भूमि में जन्म लिया है, उसे अपने जन्म का पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए। उसे वेदों के ज्ञान तथा आध्यात्मिक संस्कृति में पूर्णतया निपुण बनना चाहिए और कृष्णभावनामृत के अनुभव को सारे जगत् में वितरित करना चाहिए। सारे विश्व में लोग बुरी तरह से इन्द्रियतृप्ति में लगे हुए हैं और इस तरह वे अपने मनुष्य-जीवन को नष्ट कर रहे हैं। इस कारण अगले जन्म में उनके पशु या इससे भी बदतर बनने की सम्भावना है। मानव समाज को ऐसी भयावह सभ्यता तथा पशु बनने की विपदपूर्ण स्थिति से बचाने के लिए भगवत् चेतना या कृष्णभावना को जागृत करना होगा। कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसी उद्देश्य के लिए चलाया गया है। इसलिए निष्पक्ष लोगों को कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सिद्धान्तों का अध्ययन करना चाहिए और मानव समाज को बचाने के लिए इस आन्दोलन का पूरा साथ देना चाहिए।

सनातन कहे,—“तोमा-सम केबा आछे आन ।

महाप्रभुर गणे तुमि-महा-भाग्यवान्!” ॥ 99॥

सनातन कहे-सनातन गोस्वामी ने कहा; तोमा-सम-आपके समान; केबा-कौन; आछे-है; आन-दूसरा; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; गणे-अन्तरंग अनुयायियों में; तुमि-आप; महा-भाग्यवान्-सबसे भाग्यवान।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया, “हे हरिदास ठाकुर, आपके समान कौन है? आप श्री चैतन्य महाप्रभु के संगियों में से एक हैं। अतएव आप सर्वाधिक भाग्यवान हो।”

अवतार-कार्य प्रभुर—नाम-प्रचारे ।

सेइ निज-कार्य प्रभु करेन तोमार द्वारे ॥100॥

अवतार-कार्य-अवतार का उद्देश्य प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु के नाम-प्रचारे- भगवान् के पवित्र नाम के महत्त्व का प्रचार करना; सेइ-उस; निज-कार्य-अपने जीवन के उद्देश्य को प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन-कर रहे हैं; तोमार द्वारे-आपके द्वारा।

अनुवाद

“श्री चैतन्य महाप्रभु जिस उद्देश्य के लिए अवतार के रूप में आये हैं, वह भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन की महत्ता का विस्तार करना है। अब वे इसे स्वयं करने के बदले आपके माध्यम से इसका विस्तार कर रहे हैं।”

प्रत्यह कर तिन-लक्ष नाम-सङ्कीर्तन ।

सबार आगे कर नामेर महिमा कथन ॥ 101॥

प्रति-अह-प्रतिदिन; कर-आप करते हो; तिन-लक्ष-3,00,000; नाम-सङ्कीर्तन-पवित्र नाम का जप; सबार आगे-सबके सामने; कर-आप करते हो; नामेर-पवित्र नाम की; महिमा कथन-महिमा के विषय में चर्चा।

अनुवाद

“हे महोदय, आप तो नित्य ही तीन लाख बार नाम का कीर्तन करते हो और हर एक को ऐसे कीर्तन की महत्ता के विषय में बतलाते हो।”

आपने आचरे केह, ना करे प्रचार ।

प्रचार करेन केह, ना करेन आचार ॥102॥

आपने-निजि रूप से; आचरे-आचरण; केह-कोई; ना करे प्रचार-प्रचार कार्य नहीं करता; प्रचार करेन-प्रचार करता है; केह-कोई; ना करेन आचार-नियमों के अनुसार दृढ़ आचरण नहीं करता।

अनुवाद

“कुछ लोग बहुत अच्छा आचरण करते हैं, किन्तु कृष्णभावनामृत सम्प्रदाय का प्रचार नहीं करते, जबकि अन्य लोग प्रचार करते हैं, किन्तु उचित रीति से आचरण नहीं करते।”

‘आचार’, ‘प्रचार’,—नामेर करह ‘दुइ’ कार्य ।

तुमि-सर्व-गुरु, तुमि जगतेर आर्य ॥ 103 ॥

आचार प्रचार-अच्छा आचरण करना और प्रचार करना; नामेर-पवित्र नाम का; करह-आप करते हो; दुइ-दोनों; कार्य-कार्य; तुमि-आप; सर्व-गुरु-सबके आध्यात्मिक गुरु; तुमि-आप; जगतेर आर्य-इस संसार में सबसे श्रेष्ठ भक्त।

अनुवाद

“आप अपने निजी आचरण तथा अपने प्रचार द्वारा पवित्र नाम से सम्बन्धित दोनों कार्यों को एक ही साथ करते हो। इसलिए आप सारे जगत् के गुरु हो, क्योंकि आप जगत् में सबसे उन्नत भक्त हो।”

तात्पर्य

यहाँ पर सनातन गोस्वामी प्रामाणिक जगद्गुरु की स्पष्ट परिभाषा देते हैं। इस सम्बन्ध में जो योग्यताएँ बताई गई हैं, वे हैं : व्यक्ति शास्त्रीय आदेशों के अनुसार कार्य करे और उसी के साथ-साथ प्रचार करे। जो ऐसा करता है, वही प्रामाणिक गुरु है। हरिदास ठाकुर आदर्श गुरु थे, क्योंकि वे नियत संख्या में नित्य नाम-जप करते थे। निस्सन्देह, वे प्रतिदिन तीन लाख नाम-जप करते थे। इसी तरह कृष्णभावनामृत आन्दोलन के अनुयायी प्रतिदिन कम-से-कम सोलह माला जप करते हैं, जिसे बिना कठिनाई के किया जा सकता है। उसी के साथ-साथ उन्हें भगवद्गीता यथारूप के उपदेश के अनुसार चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार करना चाहिए। जो ऐसा करता है, वह जगद्गुरु बनने के लिए उपयुक्त है।

एइ-मत दुइ-जन नाना-कथा-रङ्गे ।

कृष्ण-कथा आस्वादय रहि’ एक-सङ्गे ॥104॥

एइ-मत-इस प्रकार; दुइ-जन-दोनों व्यक्ति; नाना-कथा-रङ्गे-अनेक विषयों की चर्चा के आनन्द में; कृष्ण-कथा-कृष्ण विषयक वार्ताओं का; आस्वादय-आस्वादन करते;रहि’ एक-सङ्गे-एक साथ रहते हुए।

अनुवाद

इस तरह वे दोनों कृष्ण विषयक कथाओं की चर्चा करते हुए अपना समय बिताते थे। अतः दोनों ने एकसाथ जीवन का आनन्द लिया।

यात्रा-काले आइला सब गौड़ेर भक्त-गण ।

पूर्ववत् कैला सबे रथ-यात्रा दर्शन ॥ 105॥

यात्रा-काले-रथयात्रा के समय; आइला-आये; सब-सभी; गौड़ेर भक्त-गण- बंगाल के भक्त; पूर्ववत्-पहले की तरह; कैला-किया; सबे-सभी ने; रथ-यात्रा दर्शन-भगवान जगन्नाथ के रथयात्रा उत्सव का दर्शन।

अनुवाद

रथयात्रा के समय बंगाल के सारे भक्त रथ-उत्सव के दर्शन हेतु आये, जैसाकि वे पहले आये थे।

रथ-अग्रे प्रभु तैछे करिला नर्तन ।

देखि चमत्कार हैल सनातनेर मन ॥106 ॥

रथ-अग्रे-रथ के सामने; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तैछे-उसी प्रकार; करिला नर्तन-नृत्य किया; देखि-देखकर; चमत्कार हैल-चकित हो गया; सनातनेर मन- सनातन का मन।

अनुवाद

रथयात्रा उत्सव के समय श्री चैतन्य महाप्रभु पुनः जगन्नाथजी के रथ के आगे-आगे नाचे। जब सनातन गोस्वामी ने यह देखा, तो उनका मन चकित हो गया।

वर्षार चारि-मास रहिला सब निज भक्त-गणे ।

सबा-सङ्गे प्रभु मिलाइला सनातने ॥107॥

वर्षार चारि-मास-वर्षा के चार महीने; रहिला-रहे; सब-सभी; निज भक्त-गणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त; सबा-सङ्गे-उन सबसे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; मिलाइला-परिचित करवाया; सनातने-सनातन गोस्वामी को।

अनुवाद

बंगाल से आये महाप्रभु के भक्त वर्षा ऋतु के चार महीने जगन्नाथ पुरी में रहे और श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबसे सनातन गोस्वामी का परिचय कराया।

अद्वैत, नित्यानन्द, श्रीवास, वक्रेश्वर ।

वासुदेव, मुरारि, राघव, दामोदर ॥ 108॥

पुरी, भारती, स्वरूप, पण्डित-गदाधर ।

सार्वभौम, रामानन्द, जगदानन्द, शङ्कर ॥ 109॥

काशीश्वर, गोविन्दादि व्रत भक्त-गण ।

सबा-सने सनातनेर कराइला मिलन ॥ 110॥

अद्वैत-अद्वैत आचार्य; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु; श्रीवास-श्रीवास ठाकुर, वक्रेश्वर-वक्रेश्वर पण्डित; वासुदेव-वासुदेव दत्त; मुरारि-मुरारी गुप्त; राघव-राघव पण्डित; दामोदर-दामोदर पण्डित; पुरी-परमानन्द पुरी; भारती-ब्रह्मानन्द भारती; स्वरूप-स्वरूप दामोदर; पण्डित-गदाधर-गदाधर पण्डित; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; रामानन्द-रामानन्द राय; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; शङ्कर-शंकर पण्डित; काशीश्वर-काशीश्वर; गोविन्द-गोविन्द; आदि-और अन्य; व्रत भक्त-गण-सभी भक्तगण; सबा-सने-उन सबसे; सनातनेर-सनातन गोस्वामी का; कराइला मिलन-परिचय करवाया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य, नित्यानन्द प्रभु, श्रीवास ठाकुर, वक्रेश्वर पण्डित, वासुदेव दत्त, मुरारि गुप्त, राघव पण्डित, दामोदर पण्डित, परमानन्द पुरी, ब्रह्मानन्द भारती, स्वरूप दामोदर, गदाधर पण्डित,

सार्वभौम भट्टाचार्य, रामानन्द राय, जगदानन्द पण्डित, शंकर पण्डित, काशीश्वर तथा गोविन्द तथा अन्य चुने हुए भक्तों से सनातन गोस्वामी का परिचय कराया।

यथा-योग्य कराइल सबार चरण वन्दन ।

तारै कराइला सबार कृपार भाजन ॥111॥

यथा-स्रोम्य-यथायोग्य रूप से; कराइल-करवाया; सबार-सभी के; चरण वन्दन-चरणकमलों की वन्दना; तारै-उसे; कराइला-बनाया; सबार-उन सभी की; कृपार भाजन-कृपा का पात्र।

अनुवाद

महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी से समस्त भक्तों को उपयुक्त ढंग से नमस्कार करने को कहा। इस तरह उन्होंने उन सबसे सनातन गोस्वामी का परिचय उनकी कृपा का पात्र बनाने के उद्देश्य से कराया।

सद्गुणे, पाण्डित्ये, सबार प्रिय—सनातन ।

ग्रथा-योग्य कृपा-मैत्री-गौरव-भाजन ॥ 112॥

सत्-गुणे-अच्छे गुणों में; पाण्डित्ये-विद्वत्ता में; सबार प्रिय-सब को प्रिय; सनातन-सनातन गोस्वामी; ग्रथा-योग्य-यथोचित रूप से; कृपा-कृपा; मैत्री-मित्रता; गौरव-मान; भाजन-अर्पित करने योग्य।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी अपने पाण्डित्य तथा उत्तम गुणों के कारण हर एक को प्रिय थे। इसलिए उन लोगों ने उन्हें योग्यता के अनुसार कृपा, मित्रता तथा सम्मान प्रदान किया।

सकल वैष्णव गनबे गौड़-देशे गेला ।

सनातन महाप्रभुर चरणे रहिला ॥ 113 ॥

सकल-सभी; वैष्णव-भक्तगण; यबे-जब; गौड़-देशे-बंगाल को; गेला-वापस लौटे; सनातन-सनातन गोस्वामी; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरणे रहिला-चरणकमलों में रहे।

अनुवाद

जब रथयात्रा उत्सव के बाद अन्य सारे भक्त बंगाल लौट गये, तो सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों के संरक्षण में रहते रहे।

दोल-यात्रा-आदि प्रभु सङ्गेते देखिल ।

दिने-दिने प्रभु-सङ्गे आनन्द बाङिल ॥114॥

दोल-यात्रा-दोल यात्रा का उत्सव; आदि-और अन्य; प्रभु सङ्गेते-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; देखिल-उन्होंने देखा; दिने-दिने-दिनोंदिन; प्रभु-सङ्गे-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; आनन्द बाङिल-उनका आनन्द बढ़ गया।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ दोल यात्रा उत्सव देखा। इस तरह महाप्रभु की संगति में उनका आनन्द बढ़ता गया।

पूर्वे वैशाख-मासे सनातन यबे आइला ।

ज्यैष्ठ-मासे प्रभु तारै परीक्षा करिला ॥115॥

पूर्वे-पहले; वैशाख-मासे-अप्रैल-मई मास के दौरान; सनातन-सनातन गोस्वामी; यबे-जब; आइला-आये; ज्यैष्ठ-मासे-मई-जून के मास में; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; तारै-उनकी; परीक्षा करिला-परीक्षा ली।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु को मिलने जगन्नाथ पुरी में अप्रैल-मई के महीने में आये थे और श्री चैतन्य महाप्रभु ने मई-जून के महीने में उनकी परीक्षा ली थी।

ज्यैष्ठ-मासे प्रभु ग्रमेश्वर-टोटा आइला ।

भक्त-अनुरोधे ताहाँ भिक्षा ये करिला ॥116॥

ज्यैष्ठ-मासे-मई-जून मास के दौरान; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; प्रमेश्वर-टोटा-शिवजी के बगीचे यमेश्वर में; आइला-आये; भक्त-अनुरोध-भक्तों के अनुरोध पर; ताहाँ-वहाँ; भिक्षा ये करिला-प्रसाद ग्रहण किया।

अनुवाद

मई-जून माह में श्री चैतन्य महाप्रभु यमेश्वर (शिवजी) के उद्यान में आये और वहाँ पर भक्तों के अनुरोध पर प्रसाद ग्रहण किया।

मध्याह्न-भिक्षा-काले सनातने बोलाइल ।

प्रभु बोलाइला, तँर आनन्द बाड़िल ॥117॥

मध्य-अह्न दोपहर को; भिक्षा-काले-भोजन के समय; सनातने-सनातन गोस्वामी को; बोलाइल-उन्होंने बुलवाया; प्रभु बोलाइला-भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने बुलाया है; तँर-उनकी; आनन्द-खुशी; बाड़िल-बढ़ गई।

अनुवाद

दोपहर में जब भोजन का समय हुआ, तो महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को बुलाया, जिनका सुख इस बुलावे के कारण बढ़ गया।

मध्याह्ने समुद्र-बालु हाछे अग्नि-सम ।

सेइ-पथे सनातन करिला गमन ॥ 118॥

मध्य-अह्न-दोपहर को; समुद्र-बालु-समुद्र किनारे की रेत; हाछे-हो गई थी; अग्नि-सम-आग के समान गर्म; सेइ-पथे-उसी मार्ग से; सनातन-सनातन गोस्वामी; करिला गमन-आये।

अनुवाद

दोपहर के समय समुद्र-तट की बालू आग के समान झुलस रही थी, किन्तु सनातन गोस्वामी उसी रास्ते से आये।

‘प्रभु बोलाजाछे’,—एइ आनन्दित मने ।

तप्त-बालुकाते पा पोड़े, ताहा नाहि जाने ॥ 119॥

प्रभु बोलाजाछे-महाप्रभु ने बुलाया है; एइ-इस; आनन्दित-प्रसन्नता से; मने-मन में; तप्त-बालुकाते-गर्म रेत पर; पा-पैर; पोड़े-जल रहे थे; ताहा-वह; नाहि जाने-जान नहीं पाये।

अनुवाद

महाप्रभु द्वारा बुलाए जाने के हर्ष से अभिभूत सनातन गोस्वामी को यह अनुभव नहीं हुआ कि उनके पाँव गरम बालू से जले जा रहे हैं।

दुइ पाये फोस्का हैल, तबु गेला प्रभु-स्थाने ।

भिक्षा करि' महाप्रभु करियाछेन विश्रामे ॥120॥

दुइ पाये-दोनों पाँवों पर; फोस्का हैल-छाले पड़ गये; तबु-फिर भी; गेला-आये; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर; भिक्षा करि'-भोजन समाप्त करके; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करियाछेन विश्रामे-विश्राम कर रहे थे।

अनुवाद

यद्यपि गर्मी के कारण उनके दोनों पाँवों के तलुवों में फफोले पड़ गये थे, तो भी वे श्री चैतन्य महाप्रभु के पास गये। वहाँ उन्होंने महाप्रभु को भोजन के बाद विश्राम करते पाया।

भिक्षा-अवशेष-पात्र गोविन्द तारे दिला ।

प्रसाद पाजा सनातन प्रभु-पाशे आइला ॥ 121॥

भिक्षा-अवशेष-भोजन के अवशिष्ट की; पात्र-थाली; गोविन्द-गोविन्द ने; तारे दिला-उन्हें दे दी; प्रसाद पाजा-भोजन का उच्छिष्ट ग्रहण करके; सनातन-सनातन गोस्वामी; प्रभु-पाशे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के पास; आइला-आये।

अनुवाद

गोविन्द ने सनातन गोस्वामी को महाप्रभु के भोजन का अवशेष-पात्र प्रदान किया। प्रसाद पाने के बाद सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के पास गये।

प्रभु कहे,—“कोन्पथे आइला, सनातन?” ।

तेंह कहे,—“समुद्र-पथे, करिलें आगमन” ॥122॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने पूछा; कोन् पथे-किस मार्ग से; आइला सनातन-तुम आये हो, सनातन; तेंह कहे-उन्होंने उत्तर दिया; समुद्र-पथे—समुद्र किनारे के मार्ग से; करिलें आगमन-मैं आया हूँ।

अनुवाद

जब महाप्रभु ने पूछा, “तुम किस मार्ग से होकर आये हो?” तो सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया, “मैं समुद्र-तट के मार्ग से आया हूँ।”

प्रभु कहे,—“तप्त-बालुकाते केमने आइला?” ।

सिंह-द्वारे पथ—शीतल, केने ना आइला? ॥123॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; तप्त-बालुकाते-गर्म रेत में; केमने आइला-तुम कैसे आये; सिंह-द्वारे पथ—सिंह द्वार का मार्ग; शीतल-बहुत शीतल है; केने-क्यों; ना आइला-तुम नहीं आये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “तुम समुद्र किनारे से होकर कैसे आये, जहाँ की बालू इतनी गरम है? तुम सिंह-द्वार के सामने के मार्ग से क्यों नहीं आये? वह अत्यन्त शीतल है।”

तात्पर्य

सिंह-द्वार जगन्नाथ मन्दिर के पूर्व की ओर के मुख्य द्वार का सूचक है।

“तप्त-बालुकाय तोमार पाय हैल व्रण ।

चलिते ना पार, केमने करिला सहन?" ॥124॥

तप्त-बालुकाय-गर्म रेत से; तोमार-तुम्हारे; पाय-पावों में; हैल-हो गये; ब्रण-छाले; चलिते ना पार-तुम चल नहीं सकते; केमने-कैसे; करिला सहन-तुमने सहन किया।

अनुवाद

“गरम बालू ने तुम्हारे तलवों में फफोले उत्पन्न कर दिये होंगे। अब तुम चल नहीं सकते। तुमने इसे कैसे सहन किया?”

सनातन कहे, “दुख बहुत ना पाइलुं।

पाये ब्रण हाजाछे ताहा ना जानिलुं” ॥125॥

सनातन कहे-सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया; दुख-कष्ट; बहुत-अधिक; ना पाइलुं-मुझे अनुभव नहीं हुआ; पाये-पाँवों में; ब्रण हाजाछे-छाले हो गये; ताहा-वह; ना जानिलुं-मुझे पता नहीं चला।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया, “मुझे न तो अधिक पीड़ा का अनुभव हुआ, न ही मैं यह जान पाया कि तपिश के कारण फफोले पड़े हैं।”

सिंह-द्वारे याइते मोर नाहि अधिकार।

विशेषे-ठाकुरे ताहाँ सेवकेर प्रचार ॥126॥

सिंह-द्वारे-सिंहद्वार नामक अग्र द्वार के सामने; याइते-जाने का; मोर-मेरा; नाहि अधिकार-अधिकार नहीं है; विशेषे-विशेष रूप से; ठाकुरे-भगवान जगन्नाथ के; ताहाँ-वहाँ; सेवकेर प्रचार-सेवकों की भीड़।

अनुवाद

सिंह-द्वार के निकट से जाने का मुझे अधिकार नहीं है, क्योंकि वहाँ जगन्नाथजी के सेवक सदा आते-जाते रहते हैं।

“सेवक गतागति करे, नाहि अवसर ।

तार स्पर्श हैले, सर्व-नाश हबे मोर” ॥127॥

सेवक-सेवक; गतागति करे-आते-जाते हैं; नाहि अवसर-कोई खाली स्थान नहीं होता; तार स्पर्श हैले-यदि मैं उन्हें स्पर्श कर लूँगा; सर्व-नाश हबे मोर-मैं नष्ट हो जाऊँगा।

अनुवाद

“वहाँ सेवक निरन्तर आते-जाते रहते हैं। यदि मैं उन्हें छू लेता, तो मेरा सर्वनाश हो जाता।”

तात्पर्य

यहाँ यह स्पष्ट सूचित हुआ है कि जो पुरोहित अर्चाविग्रह की पूजा करते हों, उन्हें अपने आपको पूर्णतः शुद्ध रखना चाहिए और बाहरी व्यक्तियों द्वारा छुए जाने से बचना चाहिए। सनातन गोस्वामी तथा हरिदास ठाकुर मुसलमानों से अपनी विगत संगति के कारण अपने आपको म्लेच्छ तथा यवन मानकर न तो मन्दिर में प्रवेश करते थे, न ही मन्दिर के द्वार के सामने के मार्ग पर चलते-फिरते थे। भारत में मन्दिर के पुजारियों में यह प्रथा है कि वे न तो बाहरी लोगों को छूते हैं, न ही किसी से छू जाने पर अर्चाविग्रह कक्ष में प्रवेश करते हैं। मन्दिर-पूजा में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है।

शुनि' महाप्रभु मने सन्तोष पाइला ।

तुष्ट हुआ तारै किछु कहिते लागिला ॥128॥

शुनि'-सुनकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मने-मन में; सन्तोष पाइला-बहुतप्रसन्न हो गये; तुष्ट हा-आनन्दित होकर; तारै-उनसे; किछु-कुछ; कहिते लागिला-कहना प्रारम्भ किया।

अनुवाद

इन सब बातों को सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए और इस तरह बोले।

“यद्यपिओ तुमि हओ जगत्पावन ।

तोमा-स्पर्श पवित्र हय देव-मुनि-गण ॥ 129॥

तथापि भक्त-स्वभाव-मर्यादा-रक्षण ।

मर्यादा-पालन हय साधुर भूषण ॥130॥

यद्यपिओ-यद्यपि; तुमि-तुम; हओ-हो; जगत्-पावन-समस्त ब्रह्माण्ड का उद्धार करने वाले; तोमा-तुम्हारे; स्पर्शो-स्पर्श द्वारा; पवित्र-शुद्ध; हय-होते हैं; देव-मुनि-गण-देवता और महान् सन्त गण; तथापि-फिर भी; भक्त-स्वभाव-एक भक्त का स्वभाव; मर्यादा-मर्यादा; रक्षण-पालन या रक्षा करना; मर्यादा पालन-मर्यादा पालन करना; हय-है; साधुर भूषण-भक्त का अलंकार।

अनुवाद

“हे प्रिय सनातन, यद्यपि तुम सारे ब्रह्माण्ड के उद्धारक हो, और देवता तथा बड़े-बड़े सन्त तक तुम्हारे स्पर्श से शुद्ध बन जाते हैं, किन्तु वैष्णव-शिष्टाचार का पालन और रक्षण करना भक्त का गुण है। वैष्णव-शिष्टाचार को बनाये रखना भक्त का आभूषण है।”

मर्यादा-लङ्घने लोक करे उपहास ।

इह-लोक, पर-लोक दुइ हय नाश ॥131॥

मर्यादा-लङ्घने-मर्यादा के रिवाजों का उल्लंघन करने से; लोक-लोग; करे उपहास-उपहास करते हैं; इह-लोक-यह लोक; पर-लोक-अगला लोक; दुइ-दोनों; हय नाश-नष्ट हो जाते हैं।

अनुवाद

यदि कोई व्यक्ति शिष्टाचार के नियमों का उल्लंघन करता है, तो लोग उसकी हँसी उड़ाते हैं और इस तरह वह इह लोक तथा परलोक दोनों में विनष्ट हो जाता है।

“मर्यादा राखिले, तुष्ट कैले मोर मन ।

तुमि ऐछे ना करिले करे को जन?” ॥ 132॥

मर्यादा राखिले-क्योंकि तुमने मर्यादा का पालन किया है; तुष्ट कैले-तुमने सन्तुष्ट किया है; मोर मन-मेरा मन;
तुमि-तुम; ऐछे-वैसा; ना करिले-नहीं करो; करे-करेगा;को जन-कौन।

अनुवाद

“तुमने शिष्टाचार का पालन करके मेरे मन को तुष्ट किया है। तुम्हारे अतिरिक्त इस उदाहरण को कौन
दिखलाएगा?”

एत बलि' प्रभु तारै आलिङ्गन कैल ।

तारै कण्डु-रसा प्रभुर श्री-अङ्गे लागिल ॥ 133॥

एत बलि'-यह कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; तारै-उन्हें; आलिङ्गन कैल-आलिंगन किया; तारै-उनके;
कण्डु-रसा-छालों से निकलती पस; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; श्री-अङ्गोलागिल-शरीर पर लग गई।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी का आलिंगन किया। सनातन के शरीर के खुजली
के घावों से रिसने वाली पस महाप्रभु के शरीर में लग गई।

बार बार निषेधेन, तबु करे आलिङ्गन ।

अङ्गे रसा लागे, दुःख पाय सनातन ॥134॥

बार बार-बारम्बार; निषेधेन-मना करते; तबु-फिर भी; करे आलिङ्गन-वे आलिंगन करते; अङ्गे-शरीर पर; रसा
लागे-पस लगती; दुःख-अप्रसन्नता; पाय-पाते; सनातन-सनातन गोस्वामी।

अनुवाद

यद्यपि सनातन गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को आलिंगन करने से बार-बार मना किया, किन्तु
महाप्रभु ने फिर भी वही किया। अतः उनके शरीर पर सनातन के शरीर से निकली पस का लेप हो गया। इससे
सनातन गोस्वामी अत्यधिक दुःखी हुए।

एइ-मते सेवक-प्रभु दुँहे घर गेला ।

आर दिन जगदानन्द सनातनेरे मिलिला ॥ 135॥

एइ-मते-इस प्रकार; सेवक-प्रभु-सेवक तथा स्वामी; दुँहे-वे दोनों; घर गेला-अपने-अपने स्थान पर चले गये; आर दिन-अगले दिन; जगदानन्द-जगदानन्द; सनातनेरे मिलिला-सनातन गोस्वामी से मिले।

अनुवाद

इस तरह सेवक तथा स्वामी अपने-अपने घर चले गये। अगले दिन जगदानन्द पण्डित सनातन गोस्वामी से मिलने गये।

दुइ-जन वसि' कृष्ण-कथा-गोष्ठी कैला।

पण्डितेरे सनातन दुःख निवेदिला ॥136॥

दुइ-जन वसि'—दोनों बैठकर; कृष्ण-कथा-भगवान् कृष्ण की कथाओं; गोष्ठी-चर्चा; कैला-करने लगे; पण्डितेरे-जगदानन्द पण्डित के समक्ष; सनातन-सनातन गोस्वामी; दुःख निवेदिला-अपना दुःख व्यक्त किया।

अनुवाद

जब जगदानन्द पण्डित तथा सनातन गोस्वामी एकसाथ बैठ गये और कृष्ण विषयक कथाएँ चलाने लगे, तो सनातन गोस्वामी ने जगदानन्द पण्डित से अपना दुःख कह सुनाया।

“इहाँ आइलाँ प्रभुरे देखि' दुःख खण्डाइते ।

येबा मने, ताहा प्रभु ना दिला करिते” ॥137॥

इहाँ-यहाँ (जगन्नाथ पुरी); आइलाँ-मैं आया हूँ; प्रभुरे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभुको; देखि'—देखकर; दुःख खण्डाइते-अपना दुःख दूर करने; येबा मने-जो मेरे मन में था; ताहा-वह; प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ना दिला करिते-मुझे करने की अनुमति नहीं दी।

अनुवाद

यहाँ मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन करके अपना दुःख कम करने आया था, किन्तु महाप्रभु ने मुझे वह नहीं करने दिया जो मेरे मन में था।

निषेधिते प्रभु आलिङ्गन करेन मोरे ।

मोर कण्डु-रसा लागे प्रभुर शरीरे ॥138॥

निषेधिते-यद्यपि मैंने मना किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु को; आलिङ्गन-आलिंगन; करेन-करते हैं; मोरे-मुझे; मोर कण्डु-रसा-मेरे छालों की पस; लागे-लग जाती है; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; शरीरे-शरीर पर।

अनुवाद

यद्यपि मैं उन्हें ऐसा करने से मना करता हूँ, तो भी श्री चैतन्य महाप्रभु मेरा आलिंगन करते हैं, जिससे उनके शरीर पर मेरी खुजली के घावों से निकली पस का लेप हो जाता है।

अपराध हय मोर, नाहिक निस्तार ।

जगन्नाथेह ना देखिये,—ए दुःख अपार ॥139॥

अपराध-अपराध; हय-है; मोर-मेरा; नाहिक निस्तार-कोई उपाय नहीं है; जगन्नाथेह-भगवान जगन्नाथ भी; ना देखिये-मैं नहीं देख सकता; ए-यह; दुःख अपार-महान् दुःख।

अनुवाद

“इस तरह मैं उनके चरणकमलों पर अपराध कर रहा हूँ, जिसके कारण निश्चय ही मेरा उद्धार नहीं होगा। साथ ही, मैं भगवान जगन्नाथ के दर्शन भी नहीं कर सकता। यही मेरा महान् दुःख है।”

हित-निमित्त आइलाड आमि, हैल विपरीते ।

कि करिले हित हय नारि निर्धारिते” ॥140॥

हित-निमित्त-हित की आकांक्षा से; आइलाड-आया था; आमि-मैं; हैल विपरीते-बिल्कुल विपरीत हो गया; कि करिले-कैसे; हित हय-हित होगा; नारि निर्धारिते-मैं निर्धारण नहीं कर सकता।

अनुवाद

“मैं तो यहाँ अपने लाभ के लिए आया था, किन्तु मैं अब देखता हूँ कि मुझे ठीक उसका विपरीत मिल रहा है। मैं नहीं जानता, न ही मैं निश्चित कर सकता हूँ कि मुझे किस तरह लाभ होगा।”

पण्डित कहे,—“तोमार वास-योग्य वृन्दावन” ।

रथ-यात्रा देखि ताहाँ करह गमन ॥141॥

पण्डित कहे—जगदानन्द पण्डित कहते हैं; तोमार-तुम्हारे; वास-योग्य-रहने के लिए योग्य निवासस्थान; वृन्दावन-वृन्दावन; रथ-यात्रा देखि—रथयात्रा उत्सव देखकर; ताहाँ-वहाँ; करह गमन-जाओ।

अनुवाद

जगदानन्द पण्डित ने कहा, “तुम्हारे रहने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त स्थान वृन्दावन है। तुम रथयात्रा उत्सव का दर्शन करने के बाद वहाँ लौट सकते हो।”

प्रभुर आज्ञा हाछे तोमा' दुइ भाये ।

वृन्दावने वैस, ताहाँ सर्व-सुख पाइये ॥ 142॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; आज्ञा-आदेश; हाछे-हो गया है; तोमा'-तुम; दुइभाये-दोनों भाइयों को; वृन्दावने वैस-वृन्दावन में रहो; ताहाँ-वहाँ; सर्व-सुख-सर्व सुख; पाइये तुम्हें प्राप्त होगा।

अनुवाद

“महाप्रभु ने पहले ही तुम दोनों भाइयों को आदेश दे दिया है कि वृन्दावन में जाकर रहो। वहाँ तुम्हें सारा सुख मिलेगा।”

ये-कार्ये आइला, प्रभुर देखिला चरण ।

रथे जगन्नाथ देखि' करह गमन ॥143॥

ये-का-जिस कार्य के लिए; आइला-तुम आये थे; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु के; देखिला-तुमने देख लिए; चरण-चरण; रथे-रथ पर; जगन्नाथ-भगवान जगन्नाथ को; देखि'-देखकर; करह गमन-चले जाओ।

अनुवाद

“यहाँ आने का तुम्हारा उद्देश्य पूरा हो चुका है, क्योंकि तुम महाप्रभु के चरणकमलों का दर्शन कर चुके हो। इसलिए रथयात्रा में रथ पर जगन्नाथजी के दर्शन करने के बाद तुम जा सकते हो।”

सनातन कहे,—“भाल कैला उपदेश” ।

ताहाँ याब, सेइ मोर “प्रभु-दत्त देश” ॥144॥

सनातन कहे-सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया; भाल कैला उपदेश-आपने अच्छी सलाह दी है; ताहाँ ग्राब-मैं वहाँ जाऊँगा; सेइ-वह; मोर-मुझे; प्रभु-दत्त-महाप्रभु द्वारा दिया हुआ; देश-निवासस्थान है।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया, “आपने मुझे बहुत अच्छा परामर्श दिया है। मैं वहाँ अवश्य जाऊँगा, क्योंकि उसी स्थान को महाप्रभु ने मेरे रहने के लिए दिया है।”

तात्पर्य

प्रभु-दत्त देश पद अत्यन्त सार्थक है। श्री चैतन्य महाप्रभु का भक्ति सम्प्रदाय मनुष्य को एक स्थान पर बैठे रहने की नहीं, अपितु सारे जगत् में इसका विस्तार करने की शिक्षा देता है। महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी को वृन्दावन में तीर्थस्थानों का जीर्णोद्धार तथा मरम्मत करने के लिए और वहीं से भक्ति सम्प्रदाय की स्थापना करने के लिए भेजा। इसलिए सनातन गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी को उनके निवासस्थान के रूप में वृन्दावन दिया गया था। इसी तरह से श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्ति सम्प्रदाय की परम्परा के हर व्यक्ति को अपने गुरु के वचनों को शिरोधार्य करके कृष्णभावनामृत आन्दोलन का विस्तार करना चाहिए। उन्हें विश्व के सारे भागों में, उन स्थानों को प्रभु-दत्त देश अर्थात् गुरु या कृष्ण द्वारा दिया गया निवासस्थान समझकर जाना चाहिए। गुरु तो भगवान् कृष्ण के प्रतिनिधि होते हैं, इसलिए जो अपने गुरु के आदेशों का पालन करता है, वह कृष्ण या चैतन्य महाप्रभु के आदेशों का पालन करता माना जाता है।

श्री चैतन्य महाप्रभु भक्ति सम्प्रदाय को सारे विश्व में फैलाना चाहते थे (पृथिवीते आछे यत नगरादि ग्राम)। इसलिए कृष्णभावनामृत की परम्परा के लोगों को विश्व के विभिन्न भागों में जाकर गुरु के आदेशानुसार प्रचार करना चाहिए। इससे श्री चैतन्य महाप्रभु तुष्ट होंगे।

एत बलि' दुँहै निज-कार्ये उठि' गेला ।

आर दिन महाप्रभु मिलिबारे आइला ॥145॥

एत बलि'-ऐसी वार्ता करते हुए; दुँह-जगदानन्द पण्डित और सनातन गोस्वामी दोनों; निज-कार्ये-अपने-अपने कार्यो में; उठि'-उठकर; गेला-चले गये; आर दिन-अगले दिन; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मिलिबारे आइला-मिलने आये।

अनुवाद

इस तरह बातें करके सनातन गोस्वामी तथा जगदानन्द पण्डित अपने अपने कार्यो पर लौट गये। अगले दिन श्री चैतन्य महाप्रभु हरिदास तथा सनातन गोस्वामी से मिलने गये।

हरिदास कैला प्रभुर चरण वन्दन ।

हरिदासे कैला प्रभु प्रेम-आलिङ्गन ॥146॥

हरिदास-हरिदास ठाकुर ने; कैला-किया; प्रभुर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरण वन्दन-चरणकमलों की वन्दना; हरिदासे-हरिदास ठाकुर को; कैला-किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; प्रेम-आलिङ्गन-प्रेमभाव में आलिंगन।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर नमस्कार किया और महाप्रभु ने प्रेमावेश में उनका आलिंगन किया।

दूर हैते दण्ड-परणाम करे सनातन ।

प्रभु बोलाय बार बार करिते आलिङ्गन ॥147॥

दूर हैते-दूर से ही; दण्ड-परणाम-प्रणाम और दण्डवत्; करे-किया; सनातन-सनातन गोस्वामी ने; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; बोलाय-बुलाये; बार बार-बारम्बार; करिते आलिङ्गन-आलिंगन करने के लिए।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने दूर ही से नमस्कार तथा दण्डवत् किया, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनको आलिंगन करने के लिए बारम्बार पास बुलाया।

अपराध-भये तेंह मिलिते ना आइल ।

महाप्रभु मिलिबारे सेइ ठाजि गेल ॥148॥

अपराध-भये-अपराध के भय से; तेंह-सनातन गोस्वामी; मिलिते-मिलने के लिए; ना आइल-आगे नहीं आये; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मिलिबारे-मिलने के लिए; सेइ ठाजि-सनातन गोस्वामी के पास; गेल-गये॥

अनुवाद

अपराध करने के भय से सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने आगे नहीं आये। किन्तु महाप्रभु उनसे मिलने आगे बढ़े।

सनातन भागि' पाछे करेन गमन ।

बलात्कारे धरि, प्रभु कैला आलिङ्गन ॥149॥

सनातन-सनातन गोस्वामी; भागि'-भागकर; पाछे-पीछे; करेन गमन-हो गये; बलात्कारे-जबरदस्ती; धरि-पकड़कर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैला आलिङ्गन-आलिंगन किया॥

अनुवाद

सनातन गोस्वामी पीछे हट गये, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें बलपूर्वक पकड़ लिया और उनका आलिंगन कर लिया।

दुइ जन लज्जा प्रभु वसिला पिण्डाते ।

निर्विण्ण सनातन लागिला कहिते ॥ 150॥

दुइ जन लजा—उन दोनों को लेकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; वसिला-बैठ गये; पिण्डाते-एक मंच पर; निर्विण्ण-वैराग्य में प्रधान; सनातन-सनातन गोस्वामी; लागिला कहिते-कहने लगे।

अनुवाद

महाप्रभु दोनों को अपने साथ लेकर एक पवित्र स्थान पर बैठ गये। तब वैराग्य में उन्नत सनातन गोस्वामी बोलने लगे।

हित लागि' आइनु मुजि, हैल विपरीत ।

सेवा-योग्य नहि, अपराध करों निति निति ॥ 151॥

हित लागि'-लाभ के लिए; आइनु मुजि मैं आया हूँ; हैल विपरीत-विपरीत हो गया; सेवा-योग्य नहि-मैं सेवा करने योग्य नहीं हूँ; अपराध करों-मैं अपराध करता हूँ; निति निति-दिनों दिन।

अनुवाद

उन्होंने कहा, “मैं तो यहाँ अपने लाभ के लिए आया था, किन्तु मैं देखता हूँ कि उसका उल्टा हो रहा है। मैं सेवा के लिए अयोग्य हूँ। मैं दिन-प्रतिदिन अपराध ही करता हूँ।

सहजे नीच-जाति मुजि, दुष्ट, 'पापाशय' ।

मोरे तुमि छुडिले मोर अपराध हय ॥152॥

सहजे-स्वभाव से; नीच-जाति-अधम जाति का; मुजि-मैं; दुष्ट-पापी; पाप-आशय-पापकर्मों का आगार; मोरे-मुझे; तुमि छुडिले-यदि आप छूँगे; मोर-मेरा; अपराध हय-अपराध है।

अनुवाद

मैं स्वभाव से निम्नजन्मा हूँ। मैं पापकर्मों का प्रदूषित जलाशय हूँ। यदि आप मुझे छूते हैं, तो वह मेरे लिए और भी बड़ा अपराध होगा।

ताहाते आमार अङ्गे कण्डु-रसा-रक्त चले ।

तोमार अङ्गे लागे, तबु स्पर्शह तुमि बले ॥153॥

ताहाते-यही नहीं; आमार-मेरे; अङ्गे-शरीर पर; कण्डु-रसा-गीले, छालों का; रक्त-खून; चले-बहता है; तोमार अङ्गे लागे-आपके शरीर को स्पर्श करता है; तबु-फिर भी; स्पर्शह-स्पर्श करते हैं; तुमि-आप; बले-जबरदस्ती।

अनुवाद

“तिस पर मेरे शरीर के खाज के घावों से जो खून बह रहा है, आपके शरीर को लगता है, फिर भी आप मुझे बलपूर्वक छूते हैं।”

बीभत्स स्पर्शिते ना कर घृणा-लेशे ।

एइ अपराधे मोर हबे सर्व-नाशे ॥154॥

बीभत्स-भयानक; स्पर्शिते-स्पर्श करना; ना कर-आप नहीं करते; घृणा-लेशे-घृणा का एक अंश मात्र भी; एइ अपराधे-इस अपराध के कारण; मोर-मेरा; हबे-हो जायेगा; सर्व-नाशे-सब सौभाग्य का नाश।

अनुवाद

हे महोदय, मेरा शरीर भयावह स्थिति में है, फिर भी उसका स्पर्श करने में आपको तनिक भी घृणा नहीं होती। इस अपराध के कारण मेरे लिए प्रत्येक मंगल समाप्त हो जायेगा।

ताते इहाँ रहिले मोर ना हय ‘कल्याण’ ।

आज्ञा देह’-रथ देखि’ याड वृन्दावन ॥ 155॥

ताते-इस कारण; इहाँ-यहाँ; रहिले-यदि मैं रहूँगा; मोर-मेरा; ना-नहीं; हय-होगा; कल्याण-शुभ; आज्ञा देह’-कृपया आदेश दीजिए; रथ देखि’-रथयात्रा उत्सवदेखकर; याड वृन्दावन-मैं वृन्दावन चला जाऊँ।

अनुवाद

“इसलिए मैं देखता हूँ कि यहाँ रुककर मैं कोई भी मंगल नहीं कर पाऊँगा। कृपया मुझे रथयात्रा उत्सव के बाद वृन्दावन लौट जाने की अनुमति का आदेश दें।”

“जगदानन्द-पण्डिते आमि युक्ति पुछिल ।

वृन्दावन याइते तेह उपदेश दिल” ॥156॥

जगदानन्द-पण्डिते-जगदानन्द पण्डित से; आमि-मैंने; युक्ति-सुझाव; पुछिल-पूछा; वृन्दावन याइते-वृन्दावन जाने का; तेह-उन्होंने; उपदेश दिल-उपदेश दिया है।

अनुवाद

“मैंने जगदानन्द पण्डित से उनका मत जानने के लिए परामर्श किया है और उन्होंने भी वृन्दावन लौट जाने का परामर्श दिया है।”

एत शुनि' महाप्रभु सरोष-अन्तरे ।

जगदानन्दे क्रुद्ध हजा करे तिरस्कारे ॥157॥

एत शुनि'-यह सुनकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; स-रोष-अन्तरे-क्रोध भाव में; जगदानन्दे जगदानन्द पण्डित पर; क्रुद्ध हजा-अत्यन्त क्रोधित होकर; करे तिरस्कारे-डॉटते हैं।

अनुवाद

यह सुनकर क्रुद्ध होकर श्री चैतन्य महाप्रभु जगदानन्द पण्डित की भर्त्सना करने लगे।

कालिकार बटुया जगा ऐछे गर्वी हैल ।

तोमा-सबारेह उपदेश करिते लागिल ॥ 158॥

कालिकार-नया; बटुया-लड़का; जगा-जगदानन्द; ऐछे-इतना; गर्वी हैल-घमण्डी हो गया है; तोमा-सबारेह-तुम्हारे जैसे व्यक्ति को; उपदेश करिते-उपदेश देना; लागिल-प्रारम्भ कर दिया।

अनुवाद

जगा (जगदानन्द पण्डित) अभी केवल छोकरा है, किन्तु वह इतना गर्वीला हो गया है कि अपने आपको तुम जैसे व्यक्ति को उपदेश देने के लिए सक्षम मानता है।

व्यवहारे-परमार्थे तुमि—तार गुरु-तुल्य ।

तोमारे उपदेशे, ना जाने आपन-मूल्य ॥159॥

व्यवहारे सामान्य व्यवहार में; परम-अर्थ-आध्यात्मिक विषयों में; तुमि-तुम; तार-उसके; गुरु-तुल्य-आध्यात्मिक गुरु सामन; तोमारे-तुम्हें; उपदेशे-वह उपदेश देता है; ना जाने नहीं जानता; आपन-मूल्य-अपना मूल्य।

अनुवाद

“आध्यात्मिक उन्नति के मामले में तथा सामान्य व्यवहार में भी तुम उसके गुरु तुल्य हो। फिर भी वह अपने मूल्य को न जानते हुए तुम्हें परामर्श देने का दुस्साहस करता है।”

आमार उपदेष्टा तुमि—प्रामाणिक आर्य ।

तोमारेह उपदेशे—बालका करे ऐछे कार्य ॥ 160॥

आमार-मेरे; उपदेष्टा-सलाहकार; तुमि-तुम; प्रामाणिक आर्य-प्रामाणिक व्यक्ति; तोमारेह-तुम्हें ही; उपदेशे-वह सुझाव देता है; बालका-लड़का; करे-करता है; ऐछे-ऐसा; कार्य-कार्य।

अनुवाद

हे प्रिय सनातन, तुम तो मेरे सलाहकार जैसे हो, क्योंकि तुम प्रामाणिक व्यक्ति हो। किन्तु जगा तुमको उपदेश देना चाहता है। यह तो एक शरारती बालक की धृष्टता ही है।”

शुनि’ सनातन पाये धरि’ प्रभुरे कहिल ।

“जगदानन्देर सौभाग्य आजि से जानिल” ॥161॥

शुनि'—सुनकर; सनातन-सनातन गोस्वामी; पाये धरि'—पाँव पकड़कर; प्रभुरे कहिल-श्री चैतन्य महाप्रभु से कहना प्रारम्भ किया; जगदानन्दे-जगदानन्द पण्डित का; सौभाग्य-सौभाग्य; आजि-अब; से-वह; जानिल-मैं समझ गया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु इस तरह जगदानन्द पण्डित को डाँट रहे थे, तो सनातन गोस्वामी महाप्रभु के चरणों पर गिर पड़े और बोले, “मैं अब जगदानन्द के सौभाग्य को समझ पाया।”

आपनार 'असौभाग्य' आजि हैल ज्ञान ।

जगते नाहि जगदानन्द-सम भाग्यवान् ॥ 162॥

आपनार-मेरा व्यक्तिगत; असौभाग्य-दुर्भाग्य; आजि-आज; हैल ज्ञान-मैं समझ गया; जगते-इस संसार में; नाहि-नहीं है; जगदानन्द-सम-जगदानन्द पण्डित जैसा; भाग्यवान्-भाग्यशाली व्यक्ति।

अनुवाद

“मैं अपने दुर्भाग्य को भी समझ गया। इस जगत् में जगदानन्द के समान भाग्यशाली कोई नहीं है।

जगदानन्दे पियाओ आत्मीयता-सुधा-रस ।

मोरे पियाओ गौरव-स्तुति-निम्ब-निशिन्दा-रस ॥163॥

जगदानन्दे—जगदानन्द पण्डित को; पियाओ-आप पिलाते हैं; आत्मीयता-सुधा-रस-आत्मीय सम्बन्ध का अमृत; मोरे-मुझे; पियाओ-आप पिलाते हैं; गौरव-स्तुति-सम्मान की स्तुति; निम्ब-निशिन्दा-रस-नींबू और निशिन्दा फल का रस।

अनुवाद

“आप तो जगदानन्द को स्नेहमय सम्बन्धों का अमृत पिला रहे हैं। और मेरी गौरव स्तुति करके आप मुझे नीम तथा निशिन्दा का कटु रस पिला रहे हैं।”

आजिह नहिल मोरे आत्मीयता-ज्ञान! ।

मोर अभाग्य, तुमि स्वतन्त्र भगवान्! ॥ 164॥

आजिह-अभी तक भी; नहिल-नहीं; मोरे-मुझे; आत्मीयता-ज्ञान-अपने सम्बन्धियों में से एक मानना; मोर
अभाग्य-मेरा दुर्भाग्य; तुमि-आप हैं; स्वतन्त्र भगवान्-स्वतन्त्र परम भगवान्।

अनुवाद

“यह मेरा दुर्भाग्य है कि आपने मुझे अपने आत्मीय जन के रूप में स्वीकार नहीं किया। किन्तु आप
पूर्णतया स्वतन्त्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।”

शुनि' महाप्रभु किछु लज्जित हैला मने ।

तोरै सन्तोषिते किछु बलेन वचने ॥ 165॥

शुनि'-सुनकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; किछु-कुछ; लज्जित-शर्मिदा; हैला-हो गये; मने-मन में; तोरै-उन्हें;
सन्तोषिते-सन्तुष्ट करने के लिए; किछु-कुछ; बलेन-कहे; वचने-शब्द।

अनुवाद

यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु कुछ लज्जित हुए। सनातन गोस्वामी को तुष्ट करने के उद्देश्य से उन्होंने
निम्नलिखित शब्द कहे।

जगदानन्द प्रिय आमार नहे तोमा हैते ।

मर्यादा-लङ्घन आमि ना पारों सहिते ॥166॥

जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित; प्रिय-मेरा प्रिय; आमार-मेरे लिए; नहे-नहीं है; तोमा हैते-तुमसे अधिक; मर्यादा-
लङ्घन-मर्यादा उल्लंघन; आमि-मैं; ना-नहीं; पारों-कर सकता; सहिते-सहना।

अनुवाद

“हे प्रिय सनातन, तुम यह मत सोचना कि जगदानन्द मुझे तुमसे अधिक प्रिय है। किन्तु मैं आदर्श शिष्टाचार का
अतिक्रमण सहन नहीं कर सकता।”

काहाँ तुमि—प्रामाणिक, शास्त्रे प्रवीण! ।

काहाँ जगा—कालिकार बटुया नवीन! ॥167॥

काहाँ—कहाँ; तुमि-तुम; प्रामाणिक-प्रामाणिक; शास्त्रे प्रवीण-शास्त्रों के ज्ञान में अनुभवी; काहाँ—कहाँ; जगा—जगा; कालिकार-कल का; बटुया-लड़का; नवीन-नया।

अनुवाद

“तुम शास्त्रों के अनुभवी विद्वान हो, जबकि जगा केवल एक युवा बालक है।”

आमाकेह बुझाइते तुमि धर शक्ति ।

कत ठाजि बुझाजाछ व्यवहार-भक्ति ॥168॥

आमाकेह-यहाँ तक कि मुझे; बुझाइते-समझाने की; तुमि-तुम; धर-रखते हो; शक्ति-शक्ति; कत ठाजि-कितनी बार; बुझाजाछ-तुमसे दर्शाया है; व्यवहार-भक्ति-सामान्य आचरण के साथ ही भक्तिमयी सेवा।

अनुवाद

“तुममें मुझ तक को प्रभावित करने की शक्ति है। तुम पहले ही कईस्थानों पर मुझे अपने सामान्य व्यवहार तथा भक्ति के विषय में समझा चुके हो।

तोमारे उपदेश करे, ना याय सहन ।

अतएव तारे आमि करिये भर्सन ॥ 169॥

तोमारे-तुमको; उपदेश करे-उपदेश दे; ना याय सहन-मैं सहन नहीं कर सकता; अतएव-इसलिए; तारे-उसे; आमि-मैं; करिये-किया; भर्सन-डॉट।

अनुवाद

“जगा का तुम्हें उपदेश देना मुझे असह्य है। इसीलिए मैं उसकी भर्त्सना कर रहा हूँ।”

बहिरङ्ग-ज्ञाने तोमारे ना करि स्तवन ।

तोमार गुणे स्तुति कराय यैछे तोमार गुण ॥170 ॥

बहिरङ्ग-ज्ञाने-अपने अन्तरंग सम्बन्धियों से अलग मानकर; तोमारे-तुम्हारी; ना करि-मैं नहीं करता; स्तवन-स्तुति; तोमार-तुम्हारे; गुणे-गुणों द्वारा; स्तुति कराय-कोई भी स्तुति करने पर विवश हो जाए; यैछे-ऐसा; तोमार—तुम्हारा है; गुण-गुण।

अनुवाद

“मैं तुम्हारी प्रशंसा इसलिए नहीं करता, क्योंकि मैं तुम्हें अपने घनिष्ठ सम्बन्धों से बाहर मानता हूँ, अपितु इसलिए कि तुम वास्तव में इतने योग्य हो कि लोगों को तुम्हारे गुणों की प्रशंसा करने के लिए बाध्य होना पड़ता है।”

यद्यपि काहार ‘ममता’ बहु-जने हय ।

प्रीति-स्वभावे काहाते कोन भावोदय ॥ 171॥

यद्यपि-यद्यपि, काहार—किसी का; ममता-स्नेह; बहु-जने—अनेक लोगों के प्रति; हय—होती है; प्रीति-स्वभावे-उसके स्नेह के अनुसार; काहाते-किसी में; कोन-कुछ; भाव-उदय-प्रेमभाव का उदय।

अनुवाद

“यद्यपि एक व्यक्ति का कई व्यक्तियों से स्नेह होता है, किन्तु उनके निजी सम्बन्धों के स्वभाव के अनुसार विभिन्न प्रकार के प्रेमों का उदय होता है।”

तोमार देह तुमि कर बीभत्स-ज्ञान ।

तोमार देह आमारे लागे अमृत-समान ॥ 172॥

तोमार देह तुम्हारा शरीर; तुमि-तुम; कर बीभत्स-ज्ञान-भयानक मानते हो; तोमार देह—तुम्हारा शरीर; आमारे—मुझे; लागे-प्रतीत होता है; अमृत-समान—जैसे अमृत से बना हुआ हो।

अनुवाद

तुम अपने शरीर को बीभत्स मानते हो, किन्तु मैं सोचता हूँ कि तुम्हारा शरीर अमृत के समान है।

अप्राकृत-देह तोमार 'प्राकृत' कभु नय ।

तथापि तोमार ताते प्राकृत-बुद्धि हय ॥ 173॥

अप्राकृत-दिव्य; देह-शरीर; तोमार-तुम्हारा; प्राकृत-भौतिक; कभु नय-कभीनहीं है; तथापि-फिर भी; तोमार-तुम्हारी; ताते-इसमें; प्राकृत-बुद्धि-भौतिक बुद्धि; हय-है।

अनुवाद

वस्तुतः तुम्हारा शरीर दिव्य है, भौतिक नहीं है। किन्तु तुम इसे भौतिक बुद्धि से सोच रहे हो।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इस विषय पर अपना मत व्यक्त करते हैं कि भक्ति में लगा मनुष्य अपने शरीर को किस प्रकार भौतिक से आध्यात्मिक बनाता है। वे कहते हैं, “भगवान् कृष्ण की भक्ति में लगे शुद्ध भक्त के पास किसी निजी इन्द्रियतृप्ति की इच्छा नहीं रहती। इसलिए वह उस कार्य के लिए कभी भी कुछ स्वीकार नहीं करता। वह एकमात्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की प्रसन्नता की कामना करता है और अपने उत्कट कृष्ण-प्रेम के कारण वह विभिन्न प्रकार से कर्म करता है। कर्मीजन सोचते हैं कि यह भौतिक शरीर भौतिक भोग का साधन है, और इसीलिए वे कठोर श्रम करते हैं। किन्तु एक भक्त में ऐसी कोई इच्छा नहीं रहती। भक्त शारीरिक विचारों तथा शारीरिक कर्मों को भूलकर पूरे मन से भगवान् की सेवा में सर्वदा लगा रहता है। कर्मों का शरीर भौतिक कहलाता है, क्योंकि भौतिक कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण कर्मों सदैव भौतिक सुविधाओं का भोग करना चाहता है, किन्तु भक्त का शरीर दिव्य माना जाना चाहिए, क्योंकि वह सदैव कृष्ण की सेवा में लगे रहकर कृष्ण की तुष्टि के लिए ही कठिन श्रम करता है। एक ओर जहाँ कर्मों लोग एकमात्र अपनी इन्द्रिय-तुष्टि में लगे रहते हैं, वहीं भक्तगण भगवान् की तुष्टि के लिए कर्म करते हैं। इसलिए जो व्यक्ति भक्ति तथा सामान्य कर्म में अन्तर नहीं कर पाता, वह शुद्ध भक्त के शरीर को भ्रमवश भौतिक मान बैठता है। जो इसे जानता है, वह ऐसी भूल नहीं करता। भक्ति कार्यों तथा सामान्य भौतिक कार्यों को एक-सा मानने वाले अभक्तगण भगवान्

के पवित्र दिव्य नाम के कीर्तन के प्रति अपराधी हैं। शुद्ध भक्त जानता है कि भक्त का शरीर सदैवदिव्य होने से भगवान् की सेवा करने के लिए उपयुक्त होता है।

भक्ति के सर्वोच्च पद पर स्थित भक्त दीनतावश सोचता है कि वह कोई भक्ति नहीं कर पा रहा। वह सोचता है कि वह भक्ति में निर्धन है और उसका शरीर भौतिक है। दूसरी ओर, सहजिये मूर्खतावश अपने भौतिक शरीरों को दिव्य मानते हैं। इसी कारण वे हमेशा शुद्ध भक्तों की संगति से वंचित रहते हैं। और इसीलिए वे वैष्णवों जैसा व्यवहार नहीं कर सकते। सहजियों के दोषों को देखकर श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपनी पुस्तक कल्याण कल्पतरु में लिखा है :

आमि त' वैष्णव, ए-बुद्धि हइले

अमानी ना हब आमि

प्रतिष्ठाशा आसि, हृदय दूषिबे

हइब निरयगामी ।

निजे श्रेष्ठ जानि, उच्छिष्टादि-दाने,

हबे अभिमान भार

ताइ शिष्य तव, थाकिया सर्वदा

ना लइब पूजा कार ॥

“यदि मैं अपने आपको वैष्णव मानता हूँ, तो मैं अन्यो से आदर पाने की राह देखूँगा। और यदि यश तथा प्रतिष्ठा की इच्छा मेरे हृदय को कलुषित करे, तो मैं निश्चित रूप से नरक जाऊँगा। अन्यो को अपना जूठन देकर मैं अपने आपको श्रेष्ठ मानूँगा और मिथ्या अभिमान के भार से बोझिल हो उठेगा। इसलिए सदैव आपका शरणागत शिष्य बनकर मैं किसी अन्य की पूजा स्वीकार नहीं करूँगा।” श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने लिखा है (अन्त्य-लीला 20.28)।

प्रेमेर स्वभाव-याहाँ प्रेमेर सम्बन्ध ।

सेइ माने-‘कृष्णे मोर नाहि प्रेम-गन्ध’ ॥

“जहाँ भी भगवत्प्रेम का सम्बन्ध होता है, ये स्वाभाविक लक्षण हैं कि भक्त अपने आपको भक्त नहीं मानता, अपितु वह हमेशा सोचता है कि उसमें कृष्ण-प्रेम का लेशमात्र भी नहीं है।”

‘प्राकृत’ हैले ह तोमार वपु नारि उपेक्षिते ।

भद्राभद्र-वस्तु-ज्ञान नाहिक ‘प्राकृते’ ॥174॥

प्राकृत-भौतिक; हैले ह-यदि यह होता; तोमार तुम्हारा; वपु-शरीर; नारि-मैं नहीं कर सकता; उपेक्षिते-उपेक्षा; भद्र-अभद्र-अच्छा या बुरा; वस्तु-ज्ञान-वस्तुओं का ज्ञान; नाहिक नहीं है; प्राकृते-भौतिक संसार में।

अनुवाद

यदि तुम्हारा शरीर भौतिक होता, तो भी मैं उसकी उपेक्षा न कर पाता, क्योंकि भौतिक शरीर को न तो अच्छा मानना चाहिए न बुरा।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी से कहा, “चूँकि तुम वैष्णव हो, इसलिए तुम्हारा शरीर आध्यात्मिक है, भौतिक नहीं। इसलिए तुम्हें इस शरीर को श्रेष्ठ या अधम गुणों के अधीन नहीं मानना चाहिए। साथ ही, मैं संन्यासी हूँ। इसलिए यदि तुम्हारा शरीर भौतिक होता, तो भी संन्यासी को अच्छे तथा बुरे शरीर में कोई अन्तर नहीं देखना चाहिए।”

किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत् ।

वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च ॥ 175॥

किम्-क्या; भद्रम्-अच्छा; किम्-क्या; अभद्रम्-बुरा; वा-या; द्वैतस्य-इस भौतिक संसार के; अवस्तुनः-जिसका अस्तित्व नश्वर है; कियत्-कितने; वाचा-शब्दों द्वारा; उदितम्-उत्पन्न; तत्-वह; अनृतम्-शाश्वत अस्तित्व से रहित; मनसा-मन द्वारा; ध्यातम्-चिन्तित; एव-निश्चित ही; च-और।

अनुवाद

“कृष्ण से सम्बन्ध न रखने वाली जिस भी वस्तु की अनुभूति की जाती हो, उसे माया समझना चाहिए। शब्दों द्वारा उच्चरित या मन में अनुभव किये गये एक भी भ्रम यथार्थ नहीं होते। चूँकि भ्रम यथार्थ नहीं होता, इसलिए जिसे हम बुरा सोचते हैं और जिसे अच्छा सोचते हैं, उनमें कोई अन्तर नहीं होता। जब हम परम सत्य की बात करते हैं, तो ऐसी कल्पनाएँ लागू नहीं होतीं।”

तात्पर्य

यह श्रीमद्भागवत (11.28.4) से उद्धृत किया गया है।

‘द्वैते’ भद्राभद्र-ज्ञान, सब-‘मनोधर्म’ ।

‘एइ भाल, एइ मन्द’,—एइ सब ‘भ्रम’ ॥ 176॥

द्वैते-भौतिक संसार में; भद्र-अभद्र-ज्ञान-अच्छे और बुरे का ज्ञान; सब-सब; मन:-धर्म-मन की काल्पनिक रचनाएँ; एइ भाल-यह अच्छा है; एइ मन्द-यह बुरा है; एइ-यह; सब-सब; भ्रम-भ्रम।

अनुवाद

“भौतिक जगत् में अच्छे-बुरे की कल्पनाएँ मन की उपज होती हैं। इसलिए यह कहना कि ‘यह अच्छा है’ और ‘यह बुरा है’ कोरी भूल है।”

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण परम सत्य हैं और विविध शक्तियों के साथ शाश्वत रूप से विद्यमान रहते हैं। जब कोई व्यक्ति कृष्ण की मोहमयी शक्ति में मग्न रहता है और कृष्ण को नहीं समझ पाता, तो वह अपने लिए अच्छे तथा बुरे का निश्चय नहीं कर सकता। अच्छे तथा बुरे के सारे भाव कल्पनाएँ या मनोधर्म हैं। जब मनुष्य यह भूल जाता है कि वह कृष्ण का सनातन सेवक है, तो वह नाना प्रकार की योजनाओं द्वारा भौतिक जगत् का भोग करना चाहता है। उस समय वह ऐसी भौतिक योजनाओं में अन्तर करता है, जो अच्छी होती हैं और जो बुरी होती हैं। किन्तु वास्तव में वे सब झूठी होती हैं।

विद्या-विनय-सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।

शुनि चैव श्व-पाके च पण्डिताः सम-दर्शिनः ॥ 177॥

विद्या-ज्ञान; विनय-सज्जनता; सम्पन्ने-युक्त; ब्राह्मणे-एक ब्राह्मण में; गवि-एक गाय में; हस्तिनि-एक हाथी में; शुनि-एक कुत्ते में; च-तथा; एव-भी; श्व-पाके-एक कुत्ता खाने वाले (चण्डाल) में; च-तथा; पण्डिताः-जो वास्तव में आध्यात्मिक ज्ञान में स्थित हैं; सम-दर्शिनः-समान दृष्टि वाले।

अनुवाद

“विनम्र साधु पुरुष वास्तविक ज्ञान के बल पर विद्वान तथा विनीत ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते तथा चण्डाल को समदृष्टि से देखते हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक भगवद्गीता (5.18) से उद्धृत है।

ज्ञान-विज्ञान-तृप्तात्मा कूट-स्थो विजितेन्द्रियः ।

युक्त इत्युच्यते योगी सम-लोष्ट्राश्म-काञ्चनः ॥178॥

ज्ञान-अर्जित ज्ञान द्वारा; विज्ञान-अनुभूत ज्ञान; तृप्त-सन्तुष्ट; आत्मा-जीवात्मा; कूट-स्थः-अपने स्वरूप में स्थित; विजित-वश में की हुई; इन्द्रियः-जिसकी इन्द्रियाँ; युक्तः-परम भगवान् के सम्पर्क में; इति-इस प्रकार; उच्यते-कहा जाता है; योगी-एक योगी; सम-समान; लोष्ट्र-कंकर; अश्म-पत्थर; काञ्चनः-सोना।

अनुवाद

जो व्यक्ति जीवन में अर्जित ज्ञान तथा उसके उपयोग से पूर्णतया सन्तुष्ट रहता है और अपने आध्यात्मिक पद पर स्थिर होता है, जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को पूरी तरह वश में रखता है और जो व्यक्ति कंकर, पत्थर तथा सोने को एक-सा देखता है, वह पूर्ण योगी कहलाता है।

तात्पर्य

यह उद्धरण भी भगवद्गीता (6.8) का है।

आमि त'—संन्यासी, आमार 'सम-दृष्टि' धर्म ।

चन्दन-पङ्केते आमार ज्ञान हय 'सम' ॥ 179॥

आमि-मैं; त'—निश्चित रूप से; संन्यासी-संन्यास आश्रम में; आमार-मेरा; सम-दृष्टि-सभी को समान स्तर पर देखना; धर्म-कर्तव्य है; चन्दन-पङ्केते-चन्दन और कीचड़ के मध्य; आमार-मेरा; ज्ञान-ज्ञान; हय-है; सम-समान।

अनुवाद

“चूँकि मैं संन्यासी हूँ, इसलिए मेरा धर्म भेद-भाव करना नहीं, अपितु समदृष्टि रखने का है। मेरा ज्ञान चन्दन तथा कीचड़ में समदृष्टि रखता है।”

तात्पर्य

संन्यासी का धर्म है कि वह सदैव समदृष्टि रखे और एक विद्वान तथा एक वैष्णव का भी यही कर्तव्य है। एक वैष्णव, एक संन्यासी या एक विद्वान में भौतिक जगत् का कोई बोध नहीं होता या तो दूसरे शब्दों में उसे वस्तुओं के भौतिक महत्त्व का बोध नहीं होता। उसे न तो इन्द्रियतृप्ति के लिए चन्दन-लेप का प्रयोग करने की इच्छा रहती है, न ही इन्द्रियतृप्ति उसे कीचड़ से घृणाउत्पन्न कराती है। भौतिक वस्तुओं की स्वीकृति या बहिष्कार संन्यासी, वैष्णव या विद्वान का कार्य नहीं है। उन्नत भक्त को किसी वस्तु के भोगने या बहिष्कार करने की इच्छा नहीं रहती। उसका एकमात्र कर्तव्य कृष्णभावना की उन्नति के लिए जो भी अनुकूल हो उसे स्वीकार करना है। वैष्णव को भौतिक भोग तथा वैराग्य से उदासीन रहना चाहिए और सदैव भगवान् की सेवा हेतु आध्यात्मिक जीवन के लिए लालायित रहना चाहिए।

एइ लागि' तोमा त्याग करिते ना झुयाय ।

घृणा-बुद्धि करि यदि, निज-धर्म याय' ॥180॥

एइ लागि'-इस कारण; तोमा-तुम्हें; त्याग करिते-त्याग करना; ना युयाय-उपयुक्त नहीं है; घृणा-बुद्धि करि-मैं घृणा करूँगा; यदि-यदि; निज-धर्म याय-मैं अपने कर्तव्य से विचलित हो जाऊँगा।

अनुवाद

“इस कारण मैं तुम्हारा त्याग नहीं कर सकता। यदि मैं तुमसे घृणा करूँगा, तो मैं अपने वृत्तिपरक धर्म से विचलित हो जाऊँगा।”

हरिदास कहे,—“प्रभु, ये कहिला तुमि ।

एइ ‘बाह्य प्रतारणा’ नाहि मानि आमि” ॥ 181॥

हरिदास कहे-हरिदास ने कहा; प्रभु-मेरे प्रभु: ये-जो; कहिला-कहा है; तुमि-आपने; एइ-यह; बाह्य प्रतारणा-बाहरी औपचारिकता; नाहि मानि आमि-मैं स्वीकार नहीं करता।

अनुवाद

हरिदास ने कहा, “हे प्रभु, आपने जो कुछ कहा है, वह बाह्य औपचारिकता है। मैं इसे स्वीकार नहीं करता।”

आमा-सब अधमे ये करियाछ अङ्गीकार ।

दीन-दयालु-गुण तोमार ताहाते प्रचार ॥ 182॥

आमा-सब-हम सब; अधर्म-सर्वाधिक पतित; ग्रे-वह; करियाछ-आपने किया; अङ्गीकार-स्वीकार; दीन-दयालु-पतित आत्माओं के प्रति दयालु; गुण-गुण; तोमार-आपका; ताहाते—इसमें; प्रचार-प्रदर्शित।

अनुवाद

“हे प्रभु, हम सब पतित हैं, किन्तु आपने पतितों पर दयालु होने के अपने गुण के कारण हमें स्वीकार किया है। यह जगत-विख्यात है।”

प्रभु हासि’ कहे,—“शुन, हरिदास, सनातन ।

तत्त्वतः कहि तोमा-विषये यैछे मोर मन” ॥ 183॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हासि-हँसकर; कहे-कहते हैं; शुन-सुनो; हरिदास-मेरे प्रिय हरिदास; सनातन-मेरे प्रिय सनातन; तत्त्वतः-वास्तव में; कहि-मैं कह रहा हूँ तोमा-विषये-तुम्हारे विषय में; यैछे-जैसा; मोर मन-मेरा मन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु हँसे और बोले, “हे हरिदास, हे सनातन, सुनो। अब मैं तुमसे सच कह रहा हूँ कि मेरा मन तुम लोगों से किस तरह अनुरक्त है।”

तोमारे ‘लाल्य’, आपनाके ‘लालक’ अभिमान ।

लालकेर लाल्ये नहे दोष-परिज्ञान ॥184॥

तोमारे-तुमको; लाल्य-पालित; आपनाके-स्वयं को; लालक-पालक; अभिमान-मानता हूँ; लालकेर-पालनकर्ता का; लाल्ये-पालित के; नहे-नहीं; दोष-दोष; परिज्ञान-विचार।

अनुवाद

“हे हरिदास तथा सनातन, मैं तुम दोनों को अपने बच्चों जैसा मानता हूँ, जिनका पालन मेरे द्वारा होना है। पालक कभी भी पालितों के दोषों पर गम्भीरता से विचार नहीं करता।”

तात्पर्य

जब पिता बच्चे को पालता है और बच्चा पिता द्वारा पाला जाता है, तब पिता कभी भी बच्चे की त्रुटियों पर ध्यान नहीं देता। वास्तविक त्रुटियाँ होने पर भी पिता उन पर ध्यान नहीं देता।

आपनारे हय मोर अमान्य-समान ।

तोमा-सबारे करों मुजि बालक-अभिमान ॥185॥

आपनारे-अपने लिए; हय-है; मोर-मेरा; अमान्य-सम्मान के अयोग्य; समान-जैसे; तोमा-सबारे-तुम सबको; करों-करता हूँ; मुजि-मैं; बालक-अभिमान-अपनी सन्तानों के समान मानता हूँ।

अनुवाद

मैं अपने आपको आदर के अयोग्य समझता हूँ, किन्तु स्नेह के कारण मैं तुम लोगों को अपने बच्चों के समान मानता हूँ।

मातार यैछे बालकेर 'अमेध्य' लागे गाय ।

घृणा नाहि जन्मे, आर महा-सुख पाय ॥186॥

मातार—माता को; शैछे-जैसे; बालकेर-बच्चे के; अमेध्य—मल तथा मूत्र; लागे गाय-शरीर को लग जाएँ; घृणा-घृणा; नाहि जन्मे—उत्पन्न नहीं होती; आर-और भी; महा-सुख-महान् आनन्द; पाय-प्राप्त होता है।

अनुवाद

“जब बालक मल-मूत्र कर देता है, तो वह माता के शरीर में लग जाता है, किन्तु माता कभी भी बच्चे से घृणा नहीं करती। उल्टे उसे धोने में वह अपार आनन्द पाती है।”

‘लाल्यामेध्य’ लालकेर चन्दन-सम भाय ।

सनातनेर क्लेदे आमार घृणा ना उपजाय ॥187॥

लाल्य—पालित शिशु के; अमेध्य—मल तथा मूत्र; लालकेर-पालक के लिए; चन्दन-सम-चन्दन के समान; भाय-प्रतीत होते हैं; सनातनेर-सनातन गोस्वामी के; क्लेदे—छालों की पस के प्रति; आमार-मेरी; घृणा-घृणा; ना-नहीं; उपजाय-जागती ।

अनुवाद

“माता को पाले जाने वाले बालक का मल-मूत्र चन्दन-लेप के समान प्रतीत होता है। इसी तरह जब सनातन गोस्वामी के घावों से रिसने वाला दुर्गन्धयुक्त द्रव्य मेरे शरीर में छू जाता है, तो मुझे उससे घृणा नहीं होती।”

हरिदास कहे,—“तुमि ईश्वर दया-मय ।

तोमार गम्भीर हृदय बुझन ना याय” ॥188॥

हरिदास कहे-हरिदास ठाकुर ने कहा; तुमि-आप; ईश्वर-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; दया-मय-कृपावान्; तोमार-आपका; गम्भीर-गम्भीर; हृदय-हृदय; बुझन ना याय-समझा नहीं जा सकता।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने कहा, “हे महोदय, आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं और हमारे प्रति अत्यन्त कृपालु हैं। कोई नहीं जान सकता कि आपके अगाध स्नेहिल हृदय में क्या है।”

वासुदेव—गलत्कुष्ठी, ताते अङ्ग-कीड़ा-मय ।

तारे आलिङ्गन कैला हा सदय ॥189॥

वासुदेव-वासुदेव; गलत्-कुष्ठी-कुष्ठरोग से पीड़ित; ताते-उस पर; अङ्ग-शरीर; कीड़ा-मय-कीड़ों से भरा हुआ; तारे-उसे; आलिङ्गन-आलिंगन; कैला-आपने किया; हा स-दय-कृपा करके।

अनुवाद

“आपने वासुदेव कोढ़ी का आलिंगन किया, जिसका शरीर पूरी तरह कीड़ों से भरा था। आप इतने दयालु हैं कि उसकी ऐसी दशा होते हुए भी आपने उसका आलिंगन किया।”

आलिङ्गिया कैला तार कन्दर्प-सम अङ्ग ।

बुझिते ना पारि तोमार कृपार तरङ्ग ॥190॥

आलिङ्गिया-आलिंगन द्वारा; कैला-आपने किया; तार-उसे; कन्दर्प-सम-कामदेव के समान सुन्दर; अङ्ग-शरीर; बुझिते ना पारि-हम नहीं समझ सकते; तोमार-आपकी; कृपार तरङ्ग-कृपा की लहरों को।

अनुवाद

“आपने उसका आलिंगन करके उसके शरीर को कामदेव का-सा सुन्दर बना दिया। हम आपकी कृपा की तरंगों को समझ नहीं सकते।”

प्रभु कहे,—वैष्णव-देह ‘प्राकृत’ कभु नये ।

‘अप्राकृत’ देह भक्तेर ‘चिदानन्द-मय’ ॥ 191॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; वैष्णव देह-एक वैष्णव का शरीर; प्राकृत-भौतिक; कभुनय-कभी नहीं होता; अप्राकृत-दिव्य; देह-शरीर; भक्तेर-एक भक्त का; चित्-आनन्द-मय-दिव्य आनन्द से पूर्ण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “एक भक्त का शरीर कभी भी भौतिक नहीं होता। वह दिव्य, आध्यात्मिक आनन्द से पूर्ण माना जाता है।”

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु हरिदास ठाकुर तथा सनातन गोस्वामी को यह समझाना चाहते हैं कि जिस भक्त का जीवन भगवान् की सेवा में समर्पित होता है, उसकी भौतिक बुद्धि नहीं रहती। चूँकि वह सदैव भगवान् की सेवा में लगा रहता है, इसलिए उसका शरीर दिव्य तथा आध्यात्मिक आनन्द से ओतप्रोत होता है। उसके शरीर को भौतिक कभी नहीं मानना चाहिए, जिस तरह मन्दिर में पूजे जाने वाले अर्चाविग्रह को कभी भी पत्थर या काष्ठ का बना नहीं माना जाता। वस्तुतः अर्चाविग्रह प्रत्यक्ष रूप से भगवान् होते हैं, जिस में कोई सन्देह नहीं है। इसीलिए पद्म पुराण में आदेश हैं-अचर्ये विष्णौ शिलाधीगुरुषु नरमतिर्वैष्णवे जातिबुद्धिः... यस्य वा नारकी सः।” वह मनुष्य नरक का निवासी माना जाता है, जो मन्दिर में पूजे जाने वाले अर्चाविग्रह को पत्थर या काष्ठ का मानता है और जो गुरु को एक सामान्य व्यक्ति समझता है और जो पूर्णरूपेण समर्पित वैष्णव भक्त को भौतिक गुणों से सम्बन्धित मानता है।

दीक्षा-काले भक्त करे आत्म-समर्पण ।

सेइ-काले कृष्ण तारे करे आत्म-सम ॥192॥

दीक्षा-काले-दीक्षा के समय; भक्त-भक्त; करे-करता है; आत्म-अपना; समर्पण-पूर्ण आत्म-समर्पण; सेइ-काले-उसी समय; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; तारे-उसको; करे-बनाते हैं; आत्म-सम-अपने समान दिव्य।

अनुवाद

“दीक्षा के समय जब भक्त अपने आपको भगवान् की सेवा में पूर्णतया समर्पित कर देता है, तब कृष्ण उसे अपने समान ही उत्तम स्वीकार कर लेते हैं।”

सेइ देह करे तार चिदानन्द-मय ।

अप्राकृत-देहे तार चरण भजय ॥ 193॥

सेइ देह-वह शरीर; करे-बनाते हैं; तार-उसका; चित्-आनन्द-मय-दिव्य आनन्दसे पूर्ण; अप्राकृत-देहे-दिव्य शरीर में; तार-उनके; चरण-चरणों की; भजय-उपासना।

अनुवाद

“जब भक्त का शरीर इस तरह आध्यात्मिक बन जाता है, तो भक्त उस दिव्य शरीर से भगवान् के चरणकमलों की सेवा करता है।”

मर्यो यदा त्यक्त-समस्त-कर्मा

निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ।

तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो

मयात्म-भूयाय च कल्पते वै ॥ 194॥

मर्त्यः-जन्म और मृत्यु से ग्रस्त जीव; यदा-जैसे ही; त्यक्त-त्यागकर; समस्त-सब; कर्मा-सकाम कर्म; निवेदित-आत्मा-एक पूर्ण शरणागत आत्मा; विचिकीर्षितः-कार्य करने को इच्छित; मे-मेरे द्वारा; तदा-उस समय; अमृतत्वम्-अमरत्व; प्रतिपद्यमानः-प्राप्त होता है; मया-मेरे साथ; आत्म-भूयाय-समान स्वरूपवान बनने के लिए; च-और; कल्पते-योग्य हो जाता है; वै-निश्चित ही।

अनुवाद

“जब जन्म-मृत्यु को प्राप्त होने वाला जीव मेरा आदेश पूरा करने के लिए अपना जीवन मुझे समर्पित करते हुए सारे भौतिक कार्यों को त्याग देता है और इस तरह मेरे आदेशों के अनुसार कर्म करता है, उस समय वह अमरता के पद तक पहुँच जाता है। तब वह मेरे साथ प्रेम-रस के आदान-प्रदान में आध्यात्मिक आनन्द लूटने के योग्य बन जाता है।”

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (11.29.34) का है। दीक्षा के समय भक्त अपना सारा भौतिक विचार छोड़ देता है। अतः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सम्पर्क में होने के कारण वह दिव्य स्तर पर स्थित हो जाता है। इस प्रकार ज्ञान तथा आध्यात्मिक पद पाकर वह कृष्ण के आध्यात्मिक शरीर की सेवा में सदैव लगा रहता है। जब कोई इस तरह से भौतिक सम्बन्धों से मुक्त हो जाता है, तो उसका शरीर तुरन्त आध्यात्मिक बन जाता है और कृष्ण उसकी सेवा अंगीकार कर लेते हैं। किन्तु कृष्ण किसी ऐसे व्यक्ति की कोई वस्तु ग्रहण नहीं करते, जो देहात्मबुद्धि में हो। जब भक्त में भौतिक इन्द्रियतृप्ति के लिए कोई इच्छा नहीं रह जाती, तब वह आध्यात्मिक स्वरूप में भगवान् की सेवा में लगता है, क्योंकि उसकी सुप्त आध्यात्मिक चेतना का उदय होता है। इस आध्यात्मिक चेतना के उदय से उसका शरीर आध्यात्मिक बन जाता है और इस तरह वह भगवान् की सेवा करने के योग्य बन जाता है। कर्मी लोग भले ही भक्त के शरीर को भौतिक माने, किन्तु वास्तव में ऐसा होता नहीं है, क्योंकि भक्त को भौतिक भोग का कोई बोध नहीं होता। यदि कोई सोचता है कि शुद्ध भक्त का शरीर भौतिक है, तो वह अपराधी है, क्योंकि यह वैष्णव अपराध है। इस सम्बन्ध में देखें श्रील सनातन गोस्वामी कृत बृहद्भागवतामृत (1.3.45 तथा 2.3.139)।

सनातनेर देहे कृष्ण कण्डु उपजाजा ।

आमा परीक्षिते इहाँ दिला पाठाजा ॥ 195॥

सनातनेर-सनातन गोस्वामी के; देहे-शरीर में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण ने; कण्डु-छाले; उपजा उपजाजा-उत्पन्न; आमा-मेरी; परीक्षिते-परीक्षा के लिए; इहाँ-यहाँ; दिला पाठाजा-भेजा है।

अनुवाद

कृष्ण ने किसी प्रकार सनातन गोस्वामी के शरीर में खुजली के घाव प्रकट कर दिये हैं और मेरी परीक्षा लेने के लिए उसे यहाँ भेज दिया है।

घृणा करि' आलिङ्गन ना करिताम यबे ।

कृष्ण-ठाजि अपराध-दण्ड पाइताम तबे ॥ 196॥

घृणा करिघृणा करके; आलिङ्गन-आलिंगन; ना करिताम-मैं नहीं करता; यबे-जब; कृष्ण-ठाजि-भगवान् कृष्ण;
अपराध-दण्ड-अपराधों के लिए दण्ड; पाइताम-मुझे मिलता; तबे-तब।

अनुवाद

यदि मैंने सनातन गोस्वामी से घृणा की होती और उसका आलिंगन न किया होता, तो निश्चय ही कृष्ण
के प्रति अपराध करने के लिए मैं दण्डित होता।

पारिषद-देह एड़, ना हय दुर्गन्ध ।

प्रथम दिवसे पाइलुं चतुःसम-गन्ध ॥197॥

पारिषद-देह-कृष्ण के पार्षद का शरीर; एड़-यह; ना हय-नहीं है; दुर्गन्ध-दुर्गन्ध युक्त; प्रथम दिवसे-पहले दिन;
पाइलुं-मैंने प्राप्त किया; चतुःसम-गन्ध-चतुःसम की सुगन्ध, चन्दन, कपूर, अगुरु तथा कस्तूरी का मिश्रण।

अनुवाद

“सनातन गोस्वामी कृष्ण के संगियों में से एक है। उसके शरीर से कोई दुर्गन्ध नहीं आ सकती। पहले
दिन जब मैंने उनका आलिंगन किया, तो मुझे चतुःसम (चन्दन, कपूर, अगुरु तथा कस्तूरी के मिश्रण) की
सुगन्धि आयी।”

तात्पर्य

भगवान् का संगी वह है, जिसका शरीर पूरी तरह से भगवान् की सेवा में लगा रहता है। भौतिकतावादी व्यक्ति
को सनातन गोस्वामी का शरीर खुजली के घावों से भरा दिख सकता है, जिसमें से दुर्गन्धयुक्त गन्दा तरल पदार्थ निकल
रहा था। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा कि उनके शरीर की सुगन्ध वास्तव में चन्दन, कपूर, अगुरु तथा कस्तूरी के
मिश्रण की सुगन्ध थी। गरुड़ पुराण में चतुःसम कहलाने वाले इस मिश्रण का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

कस्तूरिकाया द्वौ भागौ चत्वारश्चन्दनस्य तु ।

कुङ्कुमस्य त्रयश्चैकः शशिनः स्यात् चतुःसमम् ॥

“दो भाग कस्तूरी, चार भाग चन्दन, तीन भाग अगुरु या केशर तथा एक भाग कपूर को मिलाने पर चतुःसम बनता है।”
चतुःसम की सुगन्ध सुहावनी होती है। हरिभक्ति विलास (विलास 6) में भी इसका उल्लेख है।”

वस्तुतः प्रभु झबे कैला आलिङ्गन ।

ताँर स्पर्शो गन्ध हैल चन्दनेर सम ॥198॥

वस्तुतः—वास्तव में प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; यबे-जब; कैला—किया; आलिङ्गन-आलिंगन; ताँर स्पर्शो—उनके स्पर्श द्वारा; गन्ध हैल—सुगन्ध हो गई; चन्दनेर सम-चन्दन के समान।

अनुवाद

वस्तुतः जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी का आलिंगन किया, तो महाप्रभु के स्पर्श मात्र से चन्दन-लेप के ही समान सुगन्ध प्रकट हुई।

प्रभु कहे,—“सनातन, ना मानिह दुःख ।

तोमार आलिङ्गने आमि पाइ बड़ सुख” ॥199॥

प्रभु कहे—श्री चैतन्य महाप्रभु कहना जारी रखा; सनातन-मेरे प्रिय सनातन; ना मानिह दुःख—दुःखी मत होओ; तोमार आलिङ्गने—तुम्हारा आलिंगन करके; आमि—मुझे; पाइ—मिलता है; बड़ सुख—महान् आनन्द।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “हे प्रिय सनातन, दुःखी मत हो, क्योंकि जब मैं तुम्हारा आलिंगन करता हूँ, तब वास्तव में मुझे महान् सुख मिलता है।”

ए-वत्सर तुमि इहाँ रह आमा-सने ।

वत्सर रहि तोमारे आमि पाठाइमु वृन्दावने ॥ 200॥

ए-वत्सर—इस वर्ष; तुमि—तुम; इहाँ—यहाँ; रह-रहो; आमा-सने-मेरे साथ; वत्सर-वर्ष; रहि-रहकर; तोमारे—तुम्हें; आमि—मैं; पाठाइमु वृन्दावने—वृन्दावन भेज दूँगा।

अनुवाद

“तुम मेरे साथ जगन्नाथ पुरी में एक वर्ष तक रहो। उसके बाद मैं तुम्हें वृन्दावन भेज दूँगा।”

एत बलि' पुनः तौरै कैला आलिङ्गन ।

कण्डु गेल, अङ्ग हैल सुवर्णेर सम ॥ 201॥

एत बलि'-यह कहकर पुनः-फिर; तौरै-उन्हें; कैला-किया; आलिङ्गन-आलिंगन; कण्डु गेल-छाले लुप्त हो गये;
अङ्ग-शरीर; हैल-हो गया; सुवर्णेर सम-सोने के समान।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी का पुनः आलिंगन किया। इस तरह सनातन के
छाले तुरन्त लुप्त हो गये और उनका सारा शरीर सोने के रंग जैसा हो गया।

देखि' हरिदास मने हैला चमत्कार ।

प्रभुरे कहेन,—“एइ भङ्गी ये तोमार” ॥ 202॥

देखि'-देखकर; हरिदास-हरिदास ठाकुर; मने-मन में; हैला चमत्कार-आश्चर्यचकित हो गये; प्रभुरे कहेन-महाप्रभु
से बोले; एइ-यह; भङ्गी-दिव्य कार्य; ये-जो; तोमार-आपका।

अनुवाद

यह परिवर्तन देखकर अत्यधिक आश्चर्यचकित हुए हरिदास ठाकुर ने महाप्रभु से कहा, “यह आपकी
लीला है।

सेइ झारिखण्डेर पानी तुमि खाओयाइला ।

सेइ पानी-लक्ष्ये इँहार कण्डु उपजाइला ॥203॥

सेइ-वह; झारिखण्डेर-झारखण्ड का; पानी-जल; तुमि-आपने; खाओयाइला-पिलाया; सेइ पानी-लक्ष्ये-इस
जल के प्रभाव से; ईँहार-सनातन गोस्वामी के; कण्डु उपजाइला-आपने छाले उत्पन्न किये।

अनुवाद

“हे प्रभु, आपने सनातन गोस्वामी को झारिखण्ड जल पीने को बाध्य किया और वास्तव में उनके
शरीर में खुजली के घाव आपने ही उत्पन्न किये।”

कण्डु करि’ परीक्षा करिले सनातने ।

एइ लीला-भङ्गी तोमार केह नाहि जाने ॥204॥

कण्डु करि’-छाले उत्पन्न करके; परीक्षा-परीक्षा; करिले-आपने ली; सनातने-सनातन गोस्वामी की; एइ-यह;
लीला-लीला; भङ्गी-युक्ति; तोमार-आपकी; केह नाहि जाने-कोई नहीं जानता।

अनुवाद

“इन खुजली के घावों को इस तरह उत्पन्न करके आपने सनातन गोस्वामी की परीक्षा ली। आपकी
दिव्य लीलाओं को कोई भी नहीं समझ सकता।”

दुँहे आलिङ्गिया प्रभु गेला निजालय ।

प्रभुर गुण कहे दुँहे हा प्रेम-मय ॥ 205॥

दुँहे-दोनों को; आलिङ्गिया-आलिंगन करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; गेला-चले गये; निज-आलय-अपने
स्थान पर; प्रभुर गुण-श्री चैतन्य महाप्रभु के गुण; कहे-चर्चा करने लगे; दुँहे-वे दोनों; हा-होकर; प्रेम-मय-भावविभोर
होकर।

अनुवाद

हरिदास ठाकुर तथा सनातन गोस्वामी दोनों का आलिंगन करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु अपने स्थान पर लौट गये। तब हरिदास ठाकुर तथा सनातन गोस्वामी ने भावविभोर होकर महाप्रभु के दिव्य गुणों का वर्णन करना शुरू किया।

एइ-मत सनातन रहे प्रभु-स्थाने ।

कृष्ण-चैतन्य-गुण-कथा हरिदास-सने ॥206॥

एइ-मत-इस प्रकार; सनातन-सनातन गोस्वामी; रहे-रहे; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण में; कृष्ण-चैतन्य-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के; गुण-गुणों की; कथा-चर्चा; हरिदास-सने-हरिदास ठाकुर के साथ।

अनुवाद

इस तरह सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के संरक्षण में रहे और हरिदास ठाकुर के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य गुणों की चर्चा करते रहे।

दोल-यात्रा देखि प्रभु तरै विदाय दिला ।

वृन्दावने ये करिबेन, सब शिखाइला ॥ 207॥

दोल-यात्रा-दोल यात्रा उत्सव; देखि-देखकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; तरै-उन्हें; विदाय दिला-विदा किया; वृन्दावने-वृन्दावन में; ये करिबेन-वे जो भी करेंगे; सब-सब; शिखाइला-सिखाया॥

अनुवाद

दोलयात्रा उत्सव देखने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को वृन्दावन में जो कुछ करना था, उसका पूरी तरह आदेश देकर उन्हें विदा किया।

ये-काले विदाय हैला प्रभुर चरणे ।

दुइ-जनार विच्छेद-दशा ना याय वर्णने ॥ 208॥

ये-काले-जब; विदाय-विदाई; हैला-हुई; प्रभुर चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में; दुइ-जनार-उन दोनों की; विच्छेद-दशा-विरह की दशा; ना याय वर्णने-वर्णन नहीं की जा सकती।

अनुवाद

जब सनातन गोस्वामी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक दूसरे से विदा ली, तो जो विरह दृश्य उपस्थित हुआ, उसका यहाँ पर वर्णन नहीं किया जा सकता।

येइ वन-पथे प्रभु गेला वृन्दावन ।

सेइ-पथे याइते मन कैला सनातन ॥209॥

येइ-जिस; वन-पथे-जंगल के मार्ग पर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; गेला वृन्दावन-वृन्दावन गये थे; सेइ-पथे-उसी मार्ग से; याइते-जाने का; मन-मन; कैला-बनाया; सनातन-सनातन गोस्वामी ने।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने उसी जंगल के मार्ग से होकर वृन्दावन जाने का निश्चय किया, जिससे होकर महाप्रभु गये थे।

ये-पथे, ये-ग्राम-नदी-शैल, याहाँ ग्रेइ लीला ।

बलभद्र-भट्ट-स्थाने सब लिखि' निला ॥210॥

ये-पथे-जिस मार्ग से; ये-जिस; ग्राम-गाँव; नदी-नदियाँ; शैल-पहाड़; याहाँ-जहाँ; येइ-जो; लीला-लीलाएँ; बलभद्र-भट्ट-स्थाने-बलभद्र भट्ट से; सब-सब कुछ; लिखि'-लिखकर; निला-उन्होंने ले लीं।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी ने बलभद्र भट्टाचार्य से पूछकर उन सारे गाँवों, नदियों तथा पर्वतों का नाम लिख लिया, जहाँ जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी लीलाएँ सम्पन्न की थीं।

महाप्रभुर भक्त-गणे सबारे मिलिया ।

सेइ-पथे चलि' याय से स्थान देखिया ॥211॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गणे-भक्त; सबारे-सभी; मिलिया-मिलकर; सेइ-पथे-मार्ग पर; चलि' याय-चल दिये; से-उन; स्थान-स्थानों को; देखिया-देखते हुए।

अनुवाद

सनातन गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों से मिले और तब उन्होंने उसी रास्ते से यात्रा करके उन स्थानों को देखा, जिनसे होकर श्री चैतन्य महाप्रभु गुजरे थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का एक गीत (शरणागति 31.3) में लिखते हैं :

गौर आमार, ये सब स्थाने

करल भ्रमण रंगे।

से-सब स्थान, हेरिब आमि,

प्रणयि-भक्त-संगे।

“मैं चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तों की लीलाओं से सम्बन्धित सारे पवित्र स्थानों के दर्शन करना चाहूँगा।” भक्त को यह बात मन में रख लेनी चाहिए कि जहाँ-जहाँ महाप्रभु ने लीलाएँ की हैं, उन स्थानों के दर्शन किये जाएँ। निस्सन्देह, श्री चैतन्य महाप्रभु के शुद्ध भक्त उन स्थानों के दर्शन भी करना चाहेंगे, जहाँ महाप्रभु कुछ घण्टों या मिनटों के लिए गये थे।

ये-ये-लीला प्रभु पथे कैला ये-ये-स्थाने ।

ताहा देखि प्रेमावेश हय सनातने ॥ 212 ॥

ये-ये-जो कुछ; लीला-लीलाएँ; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; पथे-मार्ग में; कैला-किये; ये-ये-स्थाने-जिस-जिस स्थान पर; ताहा-वे स्थान; देखि'-देखकर; प्रेम- आवेश-प्रेम भाव; हय-आ गया; सनातने-सनातन गोस्वामी में।

अनुवाद

जब भी सनातन गोस्वामी ऐसे किसी स्थान को देखते, जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु ने मार्ग में अपनी लीलाएँ की थीं, तब वे तुरन्त ही प्रेमावेश से पूरित हो जाते।

एइ-मते सनातन वृन्दावने आइला ।

पाछे आसि' रूप-गोसाजि ताँहारे मिलिला ॥ 213॥

एइ-मते-इस प्रकार; सनातन-सनातन गोस्वामी; वृन्दावने आइला-वृन्दावन आ गये; पाछे आसि'-बाद में आकर; रूप-गोसाजि-श्रील रूप गोस्वामी; ताँहारे-उनसे; मिलिला-मिले।

अनुवाद

इस तरह सनातन गोस्वामी वृन्दावन पहुँचे। बाद में रूप गोस्वामी आये और उनसे मिले।

एक-वत्सर रूप-गोसाजिर गौड़े विलम्ब हैल ।

कुटुम्बेर 'स्थिति'-अर्थ विभाग करि' दिले ॥214॥

एक-वत्सर-एक वर्ष तक; रूप-गोसाजिर-श्रील रूप गोस्वामी का; गौड़े-बंगाल में; विलम्ब-देरी; हैल-हो गई थी; कुटुम्बेर-सम्बन्धियों की स्थिति-अर्थ-जीवनयापन के लिए सम्पत्ति; विभाग-विभाजन; करि'-करके; दिल-दिये।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी को बंगाल में एक वर्ष का विलम्ब हो गया, क्योंकि वे अपना धन अपने सम्बन्धियों को बाँट रहे थे और उन्हें उनकी समुचित स्थितियों में स्थापित कर रहे थे।

तात्पर्य

यद्यपि श्रील रूप गोस्वामी अपने पारिवारिक जीवन से विरक्त हो चुके थे, फिर भी वे अपने पारिवारिक सदस्यों के प्रति अन्यायी नहीं थे। संन्यास के बाद भी वे बंगाल लौटे, जहाँ उन्होंने अपने पास के धन का उचित रीति से विभाजन किया और उसे अपने सम्बन्धियों को दे दिया, जिससे उन्हें असुविधा न हो।

गौड़े ने अर्थ छिल, ताहा आनाइला ।

कुटुम्ब-ब्राह्मण-देवालये बाँटि' दिला ॥215॥

गौड़े-बंगाल में; ये-जो कुछ; अर्थ-धन; छिल-था; ताहा-वह; आनाइला-एकत्रित करके; कुटुम्ब-सम्बन्धियों को; ब्राह्मण-ब्राह्मणों को; देवालये-मन्दिरों में बाँटि' दिला-विभाजित किया और बाँटा।

अनुवाद

उन्होंने बंगाल में जो भी धन संग्रह किया था, उसे एकत्र किया और उसे अपने सम्बन्धियों, ब्राह्मणों तथा मन्दिरों में बाँट दिया।

सब मन:-कथा गोसाजि करि' निर्वाहण ।

निश्चिन्त हजा शीघ्र आइला वृन्दावन ॥216॥

सब-सब; मन:-कथा-योजनाएँ; गोसाजि-रूप गोस्वामी; करि' निर्वाहण-उचितप्रकार कार्यान्वित करके; निश्चिन्त हजा-सब चिन्ताओं से मुक्त होकर; शीघ्र आइला-बहुत जल्दी लौट गये; वृन्दावन-वृन्दावन।

अनुवाद

इस तरह उनके मन में जितने कार्य थे, उन्हें सम्पन्न करके वे पूर्णतया तुष्ट होकर वृन्दावन लौट आये।

दुइ भाइ मिलि' वृन्दावने वास कैला ।

प्रभुर ये आज्ञा, दुँहै सब निर्वाहिला ॥217॥

दुइ भाइ-दोनों भाई; मिलि'—मिलकर; वृन्दावने-वृन्दावन में; वास कैला-वासकरने लगे; प्रभुर ये आज्ञा-जो भी श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश थे; हे-उन दोनों ने; सब-सभी; निर्वाहिला-पूरे किये।

अनुवाद

दोनों भाई वृन्दावन में मिले, जहाँ वे श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा को पूरी करने के लिए रहे।

तात्पर्य

श्रीचैतन्यमनोऽभीष्टं स्थापितं येन भूतले ।

स्वयं रूपः कदा मह्यं ददाति स्वपदान्तिकम् ॥

“श्रील रूप गोस्वामी प्रभुपाद कब मुझे अपने चरणकमलों में शरण देंगे, जिन्होंने भौतिक जगत् के अन्तर्गत श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा पूरी करने के लिए मिशन की स्थापना की है। पहले श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी नवाब हुसैन शाह की सरकार में मन्त्री थे और वे गृहस्थ भी थे, किन्तु बाद में गोस्वामी बन गये। अतएव गोस्वामी वह है, जो श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा पूरी करता है।” गोस्वामी” पद कोई पैतृक उपाधि नहीं है। यह उस व्यक्ति के लिए है, जिसने अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण पा लिया हो और जो अपना जीवन श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा के निर्वाह हेतु समर्पित कर दे। इसीलिए श्रील सनातन गोस्वामी तथा श्रील रूप गोस्वामी तब वास्तविक गोस्वामी बने, जब उन्होंने अपना जीवन महाप्रभु की सेवा के लिए समर्पित कर दिया।

नाना-शास्त्र आनि’ लुप्त-तीर्थ उद्धारिला ।

वृन्दावने कृष्ण-सेवा प्रकाश करिला ॥ 218॥

नाना-शास्त्र-अनेक प्रकार के ग्रन्थों को; आनि’-इकट्ठा करके; लुप्त-तीर्थ-पवित्र स्थानों के विलुप्त स्थल; उद्धारिला-खोजे; वृन्दावने-वृन्दावन में; कृष्ण-सेवा-भगवान् कृष्ण की प्रत्यक्ष सेवा; प्रकाश करिला-प्रकट करवाई।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी ने अनेक प्रामाणिक शास्त्र एकत्र किये और इन शास्त्रों के साक्ष्य के आधार पर समस्त लुप्त तीर्थस्थलों का पुनरुद्धार किया। इस तरह उन्होंने भगवान् कृष्ण की पूजा हेतु मन्दिरों की स्थापना की।

सनातन ग्रन्थ कैला ‘भागवतामृते’ ।

भक्त-भक्ति-कृष्ण-तत्त्व जानि याहा हैते ॥219॥

सनातन-सनातन गोस्वामी ने; ग्रन्थ-ग्रन्थों की; कैला-रचना की; भागवतामृत-बृहद् भागवतामृत में; भक्त-भक्त;
भक्ति-भक्ति; कृष्ण-तत्त्व-परम सत्य, कृष्ण; जानि-हम जान सकें; याहा हैते-जिसके द्वारा।

अनुवाद

श्रील सनातन गोस्वामी ने बृहद्-भागवतामृत का संकलन किया। इस पुस्तक के द्वारा यह जाना जा सकता है कि कौन भक्त है, भक्ति की विधि क्या है और परम सत्य कृष्ण कौन हैं।

सिद्धान्त-सार ग्रन्थ कैला 'दशम-टिप्पनी' ।

कृष्ण-लीला-रस-प्रेम याहा हैते जानि ॥ 220॥

सिद्धान्त-सार-परिपक्व सार; ग्रन्थ-ग्रन्थ; कैला-रचना की; दशम-टिप्पनी-दशम स्कन्ध पर टीका; कृष्ण-लीला-भगवान् कृष्ण की लीलाओं के; रस-दिव्य रसों का; प्रेम-प्रेम भाव; याहा हैते-जिसके द्वारा; जानि-हम समझ सकते हैं।

अनुवाद

श्रील सनातन गोस्वामी ने दशम स्कन्ध का भाष्य दशम टिप्पणी के नाम से लिखा, जिससे हम भगवान् कृष्ण की दिव्य लीलाओं तथा प्रेमावेश को समझ सकते हैं।

‘हरि-भक्ति-विलास’-ग्रन्थ कैला वैष्णव-आचार ।

वैष्णवेर कर्तव्य याहाँ पाइये पार ॥221॥

हरि-भक्ति-विलास- हरिभक्ति विलास नामक; ग्रन्थ-ग्रन्थ; कैला-संकलित किया;वैष्णव-आचार-एक वैष्णव का आदर्श व्यवहार; वैष्णवेर-एक भक्त का; कर्तव्य-कर्तव्य; याहाँ-जिसमें; पाइये पार-उच्चतम स्तर तक समझा जा सकता है।

अनुवाद

उन्होंने हरिभक्ति विलासका भी संकलन किया, जिससे हम भक्त के आदर्श आचरण को तथा वैष्णव के कर्तव्य की पूरी सीमा को समझ सकते हैं।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर लिखते हैं, “हरिभक्ति विलास मूलतः श्रील सनातन गोस्वामी द्वारा संकलित हुआ था। बाद में गोपाल भट्ट गोस्वामी ने इसका लघु संस्करण प्रस्तुत किया और उसमें दिग्दर्शिनी टीका जोड़ दी। हरिभक्ति विलास में सात्वत शास्त्रों से इतने उद्धरण हैं कि कभी-कभी पूछा जाता है कि किस तरह नास्तिक स्मार्तगण इन्हें स्वीकार करने से मना कर सकते हैं और उसके बदले अन्य मतों की कल्पना करते हैं। हरिभक्ति विलास में जो भी लिपिबद्ध हुआ है, वह पूरी तरह वैदिक शास्त्रों के अनुसार है और निश्चित रूप से शुद्ध है, किन्तु कर्मियों की सदैव प्रवृत्ति रहती है कि वे शुद्ध वैष्णव-ज्ञान के प्रमाणों की अवहेलना करते हैं। चूँकि कर्मीजन संसार तथा भौतिक कर्मों में अत्यधिक लिप्त रहते हैं, इसलिए वे वैष्णव-सिद्धान्तों के विरुद्ध नास्तिक सिद्धान्तों की स्थापना करने का प्रयास करते रहते हैं।”

आर यत ग्रन्थ कैला, ताहा के करे गणन ।

‘मदन-गोपाल-गोविन्देर सेवा’-प्रकाशन ॥222॥

आर यत-अन्य सभी; ग्रन्थ-ग्रन्थ; कैला-संकलित किये; ताहा-वे; के करे गणन-कौन गिन सकता है; मदन-गोपाल-मदन गोपाल नामक विग्रह; गोविन्देर-श्री गोविन्द नामक विग्रह की; सेवा-सेवा; प्रकाशन प्रकट करना।

अनुवाद

श्रील सनातन गोस्वामी ने अन्य कई ग्रन्थ भी संकलित किये हैं। उनकी गणना कौन कर सकता है? इन ग्रन्थों का मूलभूत सिद्धान्त हम सबको यह बतलाना है कि मदनमोहन तथा गोविन्दजी से किस तरह प्रेम किया जाए।

तात्पर्य

भक्ति रत्नाकर में श्रील सनातन गोस्वामी की निम्नलिखित पुस्तकों का प्रसंग आया है-(1) बृहद्भागवतामृत, (2) हरिभक्ति विलास तथा इसकी टीका दिग्दर्शिनी, (3) लीलास्तव तथा (4) वैष्णव तोषणी, जो कि श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध की टीका है। सनातन गोस्वामी ने अनेकानेक पुस्तकें लिखीं। इन सबका उद्देश्य वृन्दावन के मुख्य अर्चाविग्रहों-

गोविन्द तथा मदनगोपाल की सेवा करने की विधि बतलाना था। बाद में धीरे-धीरे अन्य अर्चाविग्रह स्थापित किये गये और वृन्दावन का महत्त्व बढ़ा।

रूप-गोसाजि कैला 'रसामृत-सिन्धु' सार ।

कृष्ण-भक्ति-रसेर याहाँ पाइये विस्तार ॥223॥

रूप-गोसाजि-श्रील रूप गोस्वामी ने; कैला-संकलित किया; रसामृत-सिन्धु- भक्तिरसामृतसिन्धु नामक ग्रन्थ; सार-प्रेममयी सेवा के ज्ञान का सार; कृष्ण-भक्ति-रसेर-कृष्ण की सेवा के दिव्य रसों का; याहाँ-जिसमें; पाइये-हम प्राप्त कर सकते हैं; विस्तार-विस्तृत।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने भी कई ग्रन्थ लिखे, जिनमें से सर्वाधिक विख्यात है भक्तिरसामृतसिन्धु। इस ग्रन्थ से कृष्ण-भक्ति के सार तथा ऐसी सेवा से प्राप्त होने वाले दिव्य रस को समझा जा सकता है।

'उज्ज्वल-नीलमणि'-नाम ग्रन्थ कैल आर ।

राधा-कृष्ण-लीला-रस ताहाँ पाइये पार ॥224॥

उज्ज्वल-नीलमणि-उज्ज्वल नीलमणि; नाम-नामक; ग्रन्थ-शास्त्र; कैल-संकलितकिया; आर-भी; राधा-कृष्ण-लीला-रस-राधा और कृष्ण की लीलाओं के दिव्य रस;ताहाँ-उनमें; पाइये-हम प्राप्त करते हैं; पार-उच्चतम सीमा तक।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने उज्ज्वल नीलमणि नामक ग्रन्थ का भी संकलन किया, जिससे हम श्री श्रीराधाकृष्ण के प्रेम-व्यवहार की पराकाष्ठा को समझ सकते हैं।

'विदग्ध-माधव', 'ललित-माधव',—नाटक-मुगल ।

कृष्ण-लीला-रस ताहाँ पाइये सकल ॥ 225॥

विदग्ध-माधव-विदग्ध माधव; ललित-माधव-ललित माधव; नाटक-युगल-दो नाटक; कृष्ण-लीला-रस-भगवान्
कृष्ण की लीलाओं से प्राप्त रस; ताहाँ-उनमें; पाइये सकल-हम सब समझ सकते हैं।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने दो महत्त्वपूर्ण नाटक भी लिखे, जिनके नाम विदग्ध माधव तथा ललित माधव
हैं, जिनसे कृष्ण की लीलाओं से प्राप्य समस्त रसों को समझा जा सकता है।

‘दान-केलि-कौमुदी’ आदि लक्ष-ग्रन्थ कैल ।

सेइ सब ग्रन्थे ब्रजेर रस विचारिल ॥226॥

दान-केलि-कौमुदी-दानकेलिकौमुदी नामक ग्रन्थ; आदि-आदि; लक्ष-एक लाख; ग्रन्थ-श्लोक; कैल-संकलित
किये; सेइ-उन; सब-सभी; ग्रन्थे-ग्रन्थों में; ब्रजेर-वृन्दावन के; रस विचारिल-दिव्य रसों का विस्तृत वर्णन किया।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने ‘दानकेलिकौमुदी’ ग्रन्थ से प्रारम्भ करके एक लाख श्लोकों की रचना की। इन
शास्त्रों में उन्होंने वृन्दावन-लीलाओं के दिव्य रसों की विस्तार से व्याख्या की है।

तात्पर्य

लक्ष-ग्रन्थ (“एक लाख श्लोक”) शब्दों के सन्दर्भ में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि श्रील रूप
गोस्वामी द्वारा रचित समस्त श्लोकों की संख्या एक लाख (एक-लक्ष या लक्ष-ग्रन्थ) है। लिपिकार संस्कृत ग्रन्थों के
श्लोकों तथा गद्यांशों-दोनों ही की गणना करते हैं। किसी को भूल से यह नहीं सोच लेना चाहिए कि श्रील रूप गोस्वामी
ने एक लाख पुस्तकें लिखीं। वस्तुतः उन्होंने 16 पुस्तकें लिखीं, जैसाकि भक्ति रत्नाकर की प्रथम तरंग में उल्लेख आया
है (श्रीरूपगोस्वामी ग्रन्थ षोडश करिल)।

ताँ लघु-भ्राता-श्री-वल्लभ-अनुपम ।

ताँ पुत्र महा-पण्डित-जीव-गोसात्रि नाम ॥227॥

ताँर-उनका; लघु-भ्राता-छोटा भाई; श्री-वल्लभ-अनुपम-श्री वल्लभ या अनुपम नामक; ताँर पुत्र-उसका पुत्र;
महा-पण्डित-अत्यन्त विद्वान्; जीव-गोसाजि-श्रील जीव गोस्वामी; नाम-नामक।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी के छोटे भाई श्री वल्लभ या अनुपम के पुत्र बहुत बड़े विद्वान थे, जिनका नाम श्रील जीव गोस्वामी था।

सर्व त्यजि' तेंहो पाछे आइला वृन्दावन ।

तेंह भक्ति-शास्त्र बहु कैला प्रचारण ॥228॥

सर्व त्यजि'-सब कुछ त्यागकर; तेंहो-वे (श्रील जीव गोस्वामी); पाछे-बाद में; आइला वृन्दावन-वृन्दावन आ गये; तेंह-उन्होंने; भक्ति-शास्त्र-भक्ति पर ग्रन्थ; बहु-अनेक; कैला-किया; प्रचारण-प्रचार।

अनुवाद

श्रील जीव गोस्वामी अपना सर्वस्व त्यागकर वृन्दावन आये। बाद में उन्होंने भी भक्ति विषयक अनेक पुस्तकें लिखीं और प्रचार-कार्य को बढ़ाया।

“भागवत-सन्दर्भ”-नाम कैल ग्रन्थ-सार ।

भागवत-सिद्धान्तेर ताहाँ पाइये पार ॥229॥

भागवत-सन्दर्भ- भागवत सन्दर्भ, जो षट् सन्दर्भ नाम से भी जाना जाता है; नाम-नामक; कैल-रचना किया; ग्रन्थ-सार-सभी शास्त्रों का सार; भागवत-सिद्धान्तेर-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनकी सेवा के विषय में निर्णायक जानकारी; ताहाँ-उनमें; पाइये-हम प्राप्त करते हैं; पार-सीमा।

अनुवाद

श्रील जीव गोस्वामी ने विशेष रूप से भागवत सन्दर्भया षट् सन्दर्भ ग्रन्थ की रचना की, जो समस्त शास्त्रों का निचोड़ है। इस ग्रन्थ से भक्ति तथा भगवान् के विषय में निर्णायक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

‘गोपाल-चम्पू’ नाम ग्रन्थ सार कैल ।

ब्रज-प्रेम-लीला-रस-सार देखाइल ॥ 230॥

गोपाल-चम्पू-गोपाल चम्पू; नाम-नामक; ग्रन्थ सार-सभी वैदिक साहित्य का सार; कैल-लिखा; ब्रज-वृन्दावन के प्रेम-प्रेम की; लीला-लीलाओं का; रस-रसों का; सार-सार; देखाइल-दर्शाया।

अनुवाद

उन्होंने गोपाल चम्पू नामक ग्रन्थ भी लिखा, जो समस्त वैदिक साहित्य का सार है। इस ग्रन्थ में उन्होंने राधाकृष्ण के प्रेम के आदान-प्रदान तथा वृन्दावन-लीलाओं को प्रदर्शित किया है।

‘षट्सन्दर्भ’ कृष्ण-प्रेम-तत्त्व प्रकाशिल ।

चारि-लक्ष ग्रन्थ तेंहो विस्तार करिल ॥231॥

षट् सन्दर्भ-षट् सन्दर्भ में; कृष्ण-प्रेम-तत्त्व-कृष्ण के दिव्य प्रेम के विषयक तथ्य; प्रकाशिल-उन्होंने प्रकट किये; चारि-लक्ष ग्रन्थ-4,00,000 श्लोक; तेंहो-उन्होंने; विस्तार करिल-विस्तार किया।

अनुवाद

षट् सन्दर्भ में श्रील जीव गोस्वामी ने कृष्ण-प्रेम विषयक सत्य को प्रकट किया है। इस तरह उनके सारे ग्रन्थों का विस्तार चार लाख श्लोकों में हुआ है।

जीव-गोसाजि गौड़ हैते मथुरा चलिला ।

नित्यानन्द-प्रभु-ठाजि आज्ञा मागिला ॥ 232॥

जीव-गोसाजि-श्रीपाद जीव गोस्वामी; गौड़ हैते-बंगाल से; मथुरा चलिला-मथुरा चल दिये; नित्यानन्द-प्रभु-ठाजि-श्री नित्यानन्द प्रभु से; आज्ञा मागिला-उन्होंने अनुमति माँगी।

अनुवाद

जब जीव गोस्वामी की इच्छा बंगाल से मथुरा जाने की हुई, तो उन्होंने श्रील नित्यानन्द प्रभु से अनुमति माँगी।

प्रभु प्रीत्ये तारं माथे धरिला चरण ।

रूप-सनातन-सम्बन्धे कैला आलिङ्गन ॥233॥

प्रभु प्रीत्ये-श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा के कारण; तारं-उनके; माथे-मस्तक पर; धरिला चरण-अपने चरणकमल रख दिये; रूप-सनातन-सम्बन्धे-उनके रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी से सम्बन्ध के कारण; कैला आलिङ्गन-आलिंगन किया।

अनुवाद

जीव गोस्वामी का रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी से, जो कि श्री चैतन्य महाप्रभु के अति कृपापात्र थे, सम्बन्ध होने के कारण श्री नित्यानन्द प्रभु ने श्रील जीव गोस्वामी के सिर पर अपने चरण रखे और उनका आलिंगन किया।

आज्ञा दिला,—“शीघ्र तुमि याह वृन्दावने ।

तोमार वंशे प्रभु दियाछेन सेइ-स्थाने” ॥ 234॥

आज्ञा दिला-उन्होंने आदेश दिया; शीघ्र बहुत जल्दी; तुमि-तुम; याह-जाओ; वृन्दावने-वृन्दावन; तोमार-तुम्हारे; वंशे-कुल को प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभुने; दियाछेन-दिया है; सेइ-स्थाने-वह स्थान।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु ने आज्ञा दी, “हाँ, तुम शीघ्र वृन्दावन जाओ। वह स्थान श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुम्हारे परिवार को, तुम्हारे पिता तथा चाचाओं को दिया है, इसलिए तुम वहाँ शीघ्र जाओ।”

तारं आज्ञाय आइला, आज्ञा-फल पाइला ।

शास्त्र करि' कत-काल 'भक्ति' प्रचारिला ॥235॥

ताँर आज़ाय-उनके आदेश पर; आइला-आये; आज़ा-फल-उनके आदेश का फल; पाइला-पाया; शास्त्र करि'-
अनेक ग्रन्थों की रचना की; कत-काल-दीर्घकाल तक; भक्ति प्रचारिला-भक्ति (प्रेममयी सेवा) का प्रचार किया।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु की आज्ञा से वे वृन्दावन गये और सचमुच ही उन्होंने उनकी आज्ञा का फल प्राप्त किया, क्योंकि उन्होंने दीर्घकाल तक अनेक पुस्तकों की रचना की और वृन्दावन से भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार किया।

एइ तिन-गुरु, आर रघुनाथ-दास ।

इँहा-सबार चरण वन्दों, याँर मुजि 'दास' ॥236॥

एइ-ये; तिन-गुरु-तीन आध्यात्मिक गुरु; आर-और; रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास गोस्वामी; इँहा-सबार-इन सभी के; चरण-चरणकमलों की; वन्दों-मैं वन्दना करता हूँ; याँर-जिनका; मुजि-मैं हूँ; दास-सेवक।

अनुवाद

रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी तथा जीव गोस्वामी-ये तीनों तथा रघुनाथ दास गोस्वामी भी उसी तरह से मेरे गुरु हैं। इसलिए मैं उनके चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, क्योंकि मैं उनका दास हूँ।

एइ त कहिलुँ पुनः सनातन-सङ्गमे ।

प्रभुर आशय जानि याहार श्रवणे ॥ 237॥

एइ त कहिलुँ-इस प्रकार मैंने वर्णन किया है; पुनः-फिर; सनातन-सङ्गमे-सनातन गोस्वामी से भेंट; प्रभुर आशय-श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा; जानि-मैं समझ सकता हूँ, याहार श्रवणे-जिसे सुनकर।

अनुवाद

इस तरह मैंने महाप्रभु की सनातन गोस्वामी से पुनः भेंट का वर्णन किया है। इसे सुनकर मैं महाप्रभु की इच्छा समझ सकता हूँ।

चैतन्य-चरित्र एङ्-इक्षु-दण्ड-सम ।

चर्वण करिते हय रस-आस्वादन ॥ 238॥

चैतन्य-चरित्र-श्री चैतन्य महाप्रभु के गुण; एङ्-ये; इक्षु-दण्ड-सम-गन्ने के समान; चर्वण करिते-चबाने पर; हय-होता है; रस-आस्वादन-रस का आस्वादन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के ये गुण गन्ने के समान हैं, जिससे इसे चूसने वाले को दिव्य रस का स्वाद मिलता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 239॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी के; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे-चरणकमलों में; ग्रार-जिसकी; आश-आशा है; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्रील रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए, सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए, मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलकर श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्री चैतन्य-चरितामृत अन्त्य-लीला के अन्तर्गत “जगन्नाथ पुरी में चैतन्य महाप्रभु से सनातन गोस्वामी की भेंट” शीर्षक चतुर्थ अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय पाँच

प्रद्युम्न मिश्र का रामानन्द राय से उपदेश लेना

पाँचवे अध्याय का निम्नलिखित सारांश श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में दिया गया है। श्रीहठ का एक निवासी प्रद्युम्न मिश्र श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने कृष्ण तथा उनकी लीलाओं के विषय में सुनने के लिए उनके पास आया। किन्तु महाप्रभु ने उसे श्रील रामानन्द राय के पास भेज दिया। श्रील रामानन्द राय मन्दिर में देवदासी नृत्यांगनाओं को प्रशिक्षण दे रहे थे। जब प्रद्युम्न मिश्र ने यह सुना, तो वह श्री चैतन्य महाप्रभु के पास लौट आया। किन्तु महाप्रभु ने श्रील रामानन्द राय के चरित्र का विस्तार से वर्णन किया। तब प्रद्युम्न मिश्र रामानन्द राय से आध्यात्मिक सत्य के विषय में सुनने के लिए पुनः उनके पास गया।

बंगाल के एक ब्राह्मण ने श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों के विषय में एक नाटक की रचना की, जिसे महाप्रभु के संगियों को दिखाने के लिए वह जगन्नाथ पुरी गया। जब श्री चैतन्य महाप्रभु के सचिव स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने यह नाटक सुना, तो उन्हें इसमें मायावादी दर्शन की झलक मिली; अतः उन्होंने लेखक से इसकी ओर संकेत किया। यद्यपि स्वरूप दामोदर ने नान्दी श्लोक के गौण अर्थ के सन्दर्भ में पूरे नाटक की ही भ्रमना की, फिर भी उन्होंने ब्राह्मण को तुष्ट कर दिया। इस तरह वह ब्राह्मण स्वरूप दामोदर गोस्वामी के प्रति अत्यधिक कृतज्ञ हुआ, उसने अपने पारिवारिक सम्बन्ध त्याग दिये और श्री चैतन्य महाप्रभु के संगियों के साथ जगन्नाथ पुरी में रहने लगा।

वैगुण्य-कीट-कलितः पैशुन्य-व्रण-पीडितः ।

दैन्यार्णवे निमग्नोऽहं चैतन्य-वैद्यमाश्रये ॥१॥

वैगुण्य-भौतिक कार्यकलापों के; कीट-कीड़ों द्वारा; कलित:-काटा हुआ; पेशुन्य ईर्ष्या के; व्रण-छालों द्वारा;
पीड़ित:-पीड़ित; दैन्य-अर्णवे-विनम्रता के समुद्र में; निमग्न:-डूबा हुआ; अहम्-मैं; चैतन्य-वैद्यम्-भगवान् श्री चैतन्य
महाप्रभु नामक वैद्य की; आश्रये-शरण लेता हूँ

अनुवाद

मैं भौतिक कर्म के कीटों से दंशित और द्वेष के फोड़ों से पीड़ित हूँ। इसलिए दीनता के सागर में गिरकर
मैं महान् वैद्य श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण ग्रहण करता हूँ।

जय जय शची-सुत श्री-कृष्ण-चैतन्य ।

जय जय कृपा-मय नित्यानन्द धन्य ॥2॥

जय जय-जय हो; शची-सुत-माता शची के पुत्र की; श्री-कृष्ण-चैतन्यश्री चैतन्य महाप्रभु; जय जय-जय हो; कृपा-
मय-सबसे दयावान की; नित्यानन्द धन्य-महान् श्री नित्यानन्द प्रभु।

अनुवाद

शची माता के पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! निस्सन्देह, वे
सर्वाधिक यशस्वी तथा कृपामय हैं।

जयाद्वैत कृपा-सिन्धु जय भक्त-गण ।

जय स्वरूप, गदाधर, रूप, सनातन ॥3॥

जय अद्वैत-अद्वैत प्रभु की जय हो; कृपा-सिन्धु-दया के सागर; जय भक्त-गण-भक्तों की जय हो; जय स्वरूप-
स्वरूप दामोदर की जय हो; गदाधर-गदाधर पण्डित; रूप रूप गोस्वामी; सनातन-सनातन गोस्वामी।

अनुवाद

मैं कृपा के सागर अद्वैत प्रभु को तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी, गदाधर पण्डित, श्री रूप गोस्वामी
तथा श्री सनातन गोस्वामी जैसे समस्त भक्तों को सादर नमस्कार करता हूँ।

एक-दिन प्रद्युम्न-मिश्र प्रभुर चरणे ।

दण्डवत् करि' किछु करे निवेदने ॥4॥

एक-दिन-एक दिन; प्रद्युम्न-मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र नाम का एक भक्त; प्रभुर चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में; दण्डवत् करि'—प्रणाम करके; किछु-कुछ; करे निवेदने निवेदन करने लगा।

अनुवाद

एक दिन प्रद्युम्न मिश्र नाम का एक भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के पास आया और उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके अत्यन्त विनीत भाव से कुछ निवेदन करने लगा।

शुन, प्रभु, मुजि दीन गृहस्थ अधम! ।

कोन भाग्ये पाजाछों तोमार दुर्लभ चरण ॥5॥

शुन-कृपया सुनिए; प्रभु-मेरे प्रभु, मुत्रि-मैं; दीन-अत्यन्त पतित; गृहस्थ-गृहस्थ; अधम-मनुष्यों में नीच; कोन भाग्ये-किसी सौभाग्य के कारण; पाजाछों-मुझे मिले हैं; तोमार-आपके; दुर्लभ-अत्यन्त दुर्लभ; चरण-चरणकमल।

अनुवाद

उसने कहा, “हे प्रभु, कृपया मेरी बात सुनें । मैं मनुष्यों में सबसे नीच, कृपण गृहस्थ हूँ, किन्तु अपने सौभाग्य से मैंने किसी तरह आपके दुर्लभ चरणकमलों की शरण प्राप्त की है।”

कृष्ण-कथा शुनिबारे मोर इच्छा हय ।

कृष्ण-कथा कह मोरे हजा सदय ॥6॥

कृष्ण-कथा-भगवान् कृष्ण विषयक कथाएँ; शुनिबारे-सुनने की; मोर-मेरी; इच्छा-इच्छा; हय-है; कृष्ण-कथा-भगवान् कृष्ण के विषय में कथाएँ; कह-कृपया कहिये; मोरे-मुझसे; हजा-होकर; स-दय-कृपालु।

अनुवाद

“मैं निरन्तर कृष्ण विषयक कथाएँ सुनना चाहता हूँ। कृपया मेरे ऊपर दयालु होइए और मुझे कृष्ण के विषय में कुछ बतलाइये।”

प्रभु कहेन,—“कृष्ण-कथा आमि नाहि जानि ।

सबे रामानन्द जाने, तौ मुखे शुनि” ॥7॥

प्रभु कहेन—महाप्रभु ने उत्तर दिया; कृष्ण-कथा-भगवान् कृष्ण विषयक कथाएँ; आमि-मैं; नाहि जानि-नहीं जानता; सबे-केवल; रामानन्द जाने-रामानन्द राय जानते हैं; तौ मुखे-उनके मुख से; शुनि-मैं सुनता हूँ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, “मैं कृष्ण विषयक कथाएँ नहीं जानता। मेरे विचार से एकमात्र रामानन्द राय उन्हें जानते हैं, क्योंकि मैं उन्हीं से ये कथाएँ सुनता हूँ।”

भाग्ये तोमार कृष्ण-कथा शुनिते हय मन ।

रामानन्द-पाश याइ’ करह श्रवण ॥8॥

भाग्ये-सौभाग्य से; तोमार-तुम्हारा; कृष्ण-कथा-भगवान् कृष्ण विषयक कथाएँ; शुनिते-सुनने के लिए; हय मन-रुचि हुई है; रामानन्द-पाश-रामानन्द राय के पास; याइ’—जाकर; करह श्रवण-सुनो।

अनुवाद

यह तो तुम्हारा सौभाग्य है कि कृष्ण विषयक कथाएँ सुनने के लिए तुम्हारी रुचि हुई है। तुम्हारे लिए सबसे अच्छा यही होगा कि तुम रामानन्द राय के पास जाओ और उनसे इन कथाओं के विषय में सुनो।

कृष्ण-कथाय रुचि तोमार—बड़ भाग्यवान् ।

यार कृष्ण-कथाय रुचि, सेइ भाग्यवान् ॥9॥

कृष्ण-कथाय-कृष्ण की कथाओं में; रुचि-रस; तोमार तुम्हारा; बड़ भाग्यवान्-अत्यन्त भाग्यशाली; यार-जिसका; कृष्ण-कथाय-कृष्ण के बारे में सुनने में; रुचि-रस है; सेइ भाग्यवान्-वह अत्यन्त भाग्यशाली है।

अनुवाद

मैं देख रहा हूँ कि तुममें कृष्ण विषयक कथा सुनने के प्रति रुचि उत्पन्न हुई है। इसलिए तुम अत्यन्त भाग्यशाली हो। न केवल तुमने, अपितु जिस किसी ने ऐसी रुचि उत्पन्न कर ली है, वही परम भाग्यशाली माना जाता है।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन-कथासु यः ।

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥10॥

धर्मः-वर्ण तथा आश्रम के विधानों का पालन; सु-अनुष्ठितः-उचित प्रकार से आचरित; पुंसाम्-लोगों के; विष्वक्सेन-कथासु-विष्वक्सेन अथवा कृष्ण की कथाओं में; यः-जो; न-नहीं; उत्पादयेत् उत्पन्न करते; यदि-यदि; तिम-रुचि; श्रमः-परिश्रम; एव-निःसन्देह; हि-अवश्य; केवलम् केवला।

अनुवाद

“जो व्यक्ति वर्णाश्रम प्रणाली के अनुसार विधि-विधानों को उचित रीति से सम्पन्न करता है, किन्तु कृष्ण के प्रति सुप्त अनुराग को विकसित नहीं करता अथवा कृष्ण के विषय में सुनने तथा कीर्तन करने के प्रति रुचि उत्पन्न नहीं करता, वह व्यर्थ ही श्रम करता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (1.2.8) से उद्धृत है।

तबे प्रद्युम्न-मिश्र गेला रामानन्देर स्थाने ।

रायेर सेवक तरै वसाइल आसने ॥11॥

तबे-उसके बाद; प्रद्युम्न-मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; गेला-गया; रामानन्देर स्थाने-रामानन्द राय के स्थान पर; रायेर सेवक-रामानन्द राय के सेवक ने; तरै-उसे; वसाइल आसने-बैठने का आसन दिया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के द्वारा इस प्रकार मन्त्रणा दिये जाने पर प्रद्युम्न मिश्र रामानन्द राय के घर गया।
वहाँ उनके नौकर ने उसे बैठने के लिए समुचित आसन दिया।

दर्शन ना पाजा मिश्र सेवके पुछिल ।

रायेर वृत्तान्त सेवक कहिते लागिल ॥12॥

दर्शन-दर्शन; ना-नहीं; पाजा-पाकर; मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; सेवके-सेवक से; पुछिल-पूछा; रायेर-रामानन्द राय के;
वृत्तान्त-कार्यकलाप; सेवक-नौकर; कहते लागिल-बताने लगा।

अनुवाद

रामानन्द राय का तुरन्त दर्शन न पाकर प्रद्युम्न मिश्र ने नौकर से पूछताछ की, जिसने श्री रामानन्द राय
की कार्य-व्यस्तता के सम्बन्ध में बताया।

दुइ देव-कन्या हय परम-सुन्दरी ।

नृत्य-गीते सुनिपुणा, वयसे किशोरी ॥13॥

दुइ-दो; देव-कन्या-नृत्य करनेवाली कन्याएँ; हय-हैं; परम-सुन्दरी-अत्यन्त सुन्दर; नृत्य-गीते-नाचने और गाने में;
सु-निपुणा-अत्यन्त निपुण; वयसे-आयु में; किशोरी-अत्यन्त युवती।

अनुवाद

“दो नर्तकी कन्याएँ हैं, जो अतीव सुन्दर हैं। वे अत्यन्त तरुणावस्था में हैं और नाचने-गाने में अति दक्ष
हैं।”

सेइ दुँहै लजा राय निभृत उद्याने ।

निज-नाटक-गीतेर शिखाय नर्तने ॥14॥

सेइ दुँहै-उन दोनों को; लजा-लेकर; राय-रामानन्द राय; निभृत उद्याने-एक बगीचे में एकान्त स्थान में; निज-
नाटक-स्व-लिखित नाटक के; गीतेर-गीतों पर; शिखाय-निर्देश देते हैं; नर्तने-नृत्य में।

अनुवाद

“श्रील रामानन्द राय इन दोनों कन्याओं को अपने उद्यान के एकान्त स्थान में ले गये हैं, जहाँ वे स्वरचित नाटक के लिए लिखे गये गीतों के अनुसार उन्हें नृत्य का प्रशिक्षण दे रहे हैं तथा निर्देशन कर रहे हैं।”

तात्पर्य

जिस नाटक का अभ्यास रामानन्द राय तथा दो तरुणियाँ कर रही थीं, वह सुविख्यात जगन्नाथ वल्लभ नाटक था। ये गीत तथा नृत्य भगवान जगन्नाथ की प्रसन्नता के लिए थे, अतएव रामानन्द राय स्वयं ही प्रशिक्षण दे रहे थे कि नाटक के लिए कैसे नाचा-गाया जाए।

तुमि इहाँ वसि' रह, क्षणेके आसिबेन ।

तबे येइ आज्ञा देह, सेइ करिबेन ॥15॥

तुमि-आप; इहाँ-यहाँ; वसि'-बैठकर, रह-प्रतीक्षा कीजिए; क्षणेके आसिबेन- वह किसी भी क्षण आ जायेंगे; तबे-तब; येइ-जो कुछ; आज्ञा-आदेश; देह-आप देंगे; सेइ-वह; करिबेन-करेंगे।

अनुवाद

“कृपया यहाँ बैठ जायें और कुछ क्षणों तक प्रतीक्षा करें। उनके आते ही आप जो आदेश देंगे वे करेंगे।”

तबे प्रद्युम्न-मिश्र ताहाँ रहिल वसिया ।

रामानन्द निभृते सेइ दुइ-जन लजा ॥16॥

तबे-तब; प्रद्युम्न-मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; ताहाँ-वहाँ; रहिल वसिया-बैठे रहे; रामानन्द-रामानन्द राय; निभृते-एक एकान्त स्थान में; सेइ-वे; दुइ-जन-दोनों कन्याओं को; लजा-लेकर।

अनुवाद

जब प्रद्युम्न मिश्र वहाँ बैठा हुआ था, तब रामानन्द राय दो कन्याओं को एकान्त स्थान में ले गये।

स्व-हस्ते करेन तार अभ्यङ्ग-मर्दन ।

स्व-हस्ते कराने स्नान, गात्र सम्मार्जन ॥17॥

स्व-हस्ते-अपने हाथों से; करेन-करते हैं; तार-उन दोनों कन्याओं के; अभ्यङ्ग-मर्दन-शरीर की तेल से मालिश;
स्व-हस्ते-अपने हाथों से; कराने स्नान-स्नान करवाते हैं; गात्र सम्मार्जन-सम्पूर्ण शरीर का मार्जन।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय ने अपने हाथों से उनके शरीर में तेल से मालिश की और जल से स्नान कराया।
निस्सन्देह, रामानन्द राय ने अपने हाथों से उनके सारे शरीर को साफ किया।

स्व-हस्ते परान वस्त्र, सर्वाङ्ग मण्डन ।

तबु निर्विकार राय-रामानन्देर मन ॥18॥

स्व-हस्ते-अपने हाथों से; परान वस्त्र-उन्हें वस्त्र पहनाते हैं; सर्वाङ्ग मण्डन-सम्पूर्ण शरीर को सजाना; तबु-फिर
भी; निर्विकार-अविचलित; राय-रामानन्देर-रामानन्द राय के; मन-मनोभाव।

अनुवाद

यद्यपि उन्होंने दोनों तरुणियों को वस्त्र पहनाए तथा उनके शरीरों को अपने हाथ से सजाया, किन्तु वे
निर्विकार रहे। ऐसा है श्री रामानन्द राय का मन।

काष्ठ-पाषाण-स्पर्शो हय यैछे भाव ।

तरुणी-स्पर्शो रामानन्देर तैछे 'स्वभाव' ॥19॥

काष्ठ-लकड़ी; पाषाण-पत्थर; स्पर्श-स्पर्श द्वारा; हय-होती है; यैछे-जैसी; भाव-मानसिक स्थिति; तरुणी-स्पर्शो-
युवती कन्याओं के स्पर्श द्वारा; रामानन्देर-रामानन्द राय का; तैछे-वैसा ही; स्वभाव-स्वभाव रहा।

अनुवाद

उन तरुणियों का स्पर्श करते समय वे काठ या पत्थर का स्पर्श करने वाले व्यक्ति के समान थे, क्योंकि उनका शरीर तथा मन दोनों अप्रभावित थे।

सेव्य-बुद्धि आरोपिया करेन सेवन ।

स्वाभाविक दासी-भाव करेन आरोपण ॥20॥

सेव्य-बुद्धि आरोपिया-पूजनीय मानकर; करेन सेवन-सेवा में नियोजित करते हैं; स्वाभाविक-अपनी स्वाभाविक स्थिति द्वारा; दासी-भाव-एक दासी के रूप में; करेन आरोपण-मानते हैं।

अनुवाद

श्रील रामानन्द राय ऐसा इसलिए करते थे, क्योंकि वे अपने आपको अपनी स्वाभाविक स्थिति में गोपियों की दासी के रूप में मानते थे। इस तरह यद्यपि वे बाहर से पुरुष प्रतीत होते थे, किन्तु अन्तःकरण से अपनी मूल आध्यात्मिक स्थिति में वे अपने आपको दासी रूप में और दोनों कन्याओं को गोपियाँ मानते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में लिखते हैं, “ श्रील रामानन्द राय ने जगन्नाथ वल्लभ नाटक की रचना की और इस नाटक के भावों के प्रदर्शनार्थ उन्होंने दो पेशेवर नर्तकियाँ तथा गायिकाएँ लगा रखी थीं। ऐसी लड़कियाँ जो देवदासी कहलाती हैं, आज भी जगन्नाथ मन्दिर में लगाई जाती हैं, जहाँ वे माहारी कहलाती हैं। श्री रामानन्द राय ने ऐसी दो कन्याएँ लगा रखी थीं और चूँकि उन्हें गोपियों का अभिनय करना था, अतएव वे उन्हें इसकी शिक्षा देते थे कि किस तरह गोपियों के विचार जागृत किये जाँय। चूँकि गोपियाँ पूज्य हैं, अतएव रामानन्द राय, जो कि उन कन्याओं को गोपियाँ तथा स्वयं को उनकी दासी मानते थे, स्वयं ही उनके शरीर को पूरी तरह स्वच्छ रखने के लिए तेल की मालिश करते थे। चूँकि रामानन्द राय सदैव गोपियों की दासी का पद स्वीकार करते थे, अतएव इन कन्याओं के साथ उनका पूर्वाभ्यास वास्तव में आध्यात्मिक स्तर पर होता था।”

चूँकि रामानन्द राय द्वारा उन कन्याओं की सेवा करते समय निजी इन्द्रियतृप्ति का कोई प्रश्न नहीं था, अतएव उनका मन स्थिर था तथा उनका शरीर निर्विकार था। इसकी न तो किसी को नकल करनी चाहिए, न ही रामानन्द राय के

अतिरिक्त किसी में ऐसी मनोवृत्ति सम्भव है, जैसाकि आगे श्री चैतन्य महाप्रभु बतलाएंगे। रामानन्द राय का दृष्टान्त सचमुच ही अनोखा है। श्रीचैतन्य-चरितामृत के रचियता ने यह वर्णन इसलिए दिया है, क्योंकि पूर्ण भक्ति में ऐसी स्थिति प्राप्त की जा सकती है। तो भी, इस विषय को गम्भीरता से समझे जाने की आवश्यकता है और कभी भी ऐसे कार्यों की नकल करने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

महाप्रभुर भक्त-गणेर दुर्गम महिमा ।

ताहे रामानन्देर भाव-भक्ति-प्रेम-सीमा ॥21॥

महाप्रभुर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गणेर-भक्तों की; दुर्गम-समझनाकठिन है; महिमा-महानता; ताहे-उस सम्बन्ध में; रामानन्देर-श्री रामानन्द राय की; भाव-भक्ति-प्रेम भक्ति के प्रेम-सीमा-कृष्ण-प्रेम की सीमा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की महानता को समझ पाना अत्यधिक कठिन है। इन सबमें श्री रामानन्द राय अनोखे हैं, क्योंकि उन्होंने यह दिखला दिया कि कोई अपने प्रेमावेश (भाव-प्रेम) को किस तरह चरम सीमा (पराकाष्ठा) तक पहुँचा सकता है।

तबे सेइ दुइ-जने नृत्य शिखाइला ।

गीतेर गूढ़ अर्थ अभिनय कराइला ॥22॥

तबे-उसके बाद; सेइ-वे; दुइ-जने-उन दोनों युवा कन्याओं को; नृत्य शिखाइला-नृत्य करना सिखाया; गीतेर-गीतों का; गूढ़ अर्थ-गहरा अर्थ; अभिनय कराइला-अभिनय द्वारा प्रदर्शित करना सिखाया।

अनुवाद

रामानन्द राय ने दोनों लड़कियों को नाचने तथा नाटकीय अभिनयों द्वारा उनके गीतों के गूढ़ अर्थ को व्यक्त करने का निर्देशन दिया।

सञ्चारी, सात्त्विक, स्थायि-भावेर लक्षण ।

मुखे नेत्रे अभिनय करे प्रकटन ॥23॥

सञ्चारी-कुछ समय तक प्रकट होने वाले; सात्त्विक-स्वाभाविक; स्थायि-निरन्तर रहने वाले; भावर-भावों के लक्षण-लक्षण; मुखे-चेहरे के हावभावों में; नेत्रे-आँखों की गति में; अभिनय-नाटकीय, अभिनय; करे प्रकटन-करके दिखाया।

अनुवाद

उन्होंने उन दोनों को संचारी, सात्त्विक तथा स्थायी भावों के लक्षणों को मुख, नेत्र तथा शरीर के अन्य भागों की गतियों द्वारा व्यक्त करना सिखाया।

भाव-प्रकटन-लास्य राय ये शिखाय ।

जगन्नाथेर आगे दुँहै प्रकट देखाय ॥24॥

भाव-भाव; प्रकटन-प्रकट करना; लास्य-स्त्री सुलभ मुद्राएँ और नृत्य; राय- रामानन्द राय; ग्रे-जो; शिखाय-सिखा रहे थे; जगन्नाथेर आगे-भगवान् जगन्नाथ के समक्ष; दुँहै-उन दोनों ने; प्रकट देखाय-प्रदर्शित किये।

अनुवाद

स्त्री सुलभ नृत्य भंगिमाओं के माध्यम से रामानन्द राय द्वारा प्रशिक्षित दोनों तरुणियों ने इन भावाभिव्यक्तियों को भगवान् जगन्नाथ के समक्ष हूबहू प्रदर्शित किया।

तबे सेइ दुइ-जने प्रसाद खाओयाइला ।

निभृते दुँहारे निज-घरे पाठाइला ॥ 25 ॥

तबे-फिर; सेइ-उन दोनों को; दुइ-जने-दोनों कन्याओं को प्रसाद खाओयाइला-प्रसाद खिलाया; निभृते-गुप्त रूप से; दुँहारे-उन दोनों को; निज-घरे-उनके घर; पाठाइला-भेज दिया।

अनुवाद

तब रामानन्द राय ने दोनों तरुणियों को प्रचुर प्रसाद खिलाया और किसी को प्रकट किये बिना उन दोनों को उनके घर भेज दिया।

प्रति-दिन राय ऐछे कराय साधन ।

को जाने क्षुद्र जीव काँहा ताँर मन? ॥ 26॥

प्रति-दिन-रोज; राय-रामानन्द राय; ऐछे-इस प्रकार; कराय साधन-नियमित रूप से प्रशिक्षण देते; को जाने-कौन जान सकता है; क्षुद्र जीव-एक तुच्छ जीव; काँहा-कहाँ; ताँर-उनका; मन-मनोभाव।

अनुवाद

प्रतिदिन वे उन दोनों देवदासियों को नृत्य सिखाते। जिन क्षुद्र जीवों के मन सदैव भौतिक इन्द्रियतृप्ति में लीन रहते हों, भला उनमें से ऐसा कौन होगा, जो श्री रामानन्द राय के मनोभाव को समझ सकता था?

तात्पर्य

कृष्ण की तुष्टि के लिए रामानन्द राय द्वारा गोपियों की सेवा पूर्णतया आध्यात्मिक जगत् का व्यवहार है। आध्यात्मिक परिवेश में पूर्णरूपेण रहे बिना रामानन्द राय के कार्यों को समझ पाना अत्यन्त कठिन है।

मिश्रेर आगमन राये सेवक कहिला ।

शीघ्र रामानन्द तबे सभाते आइला ॥ 27॥

मिश्रेर-प्रद्युम्न मिश्र का; आगमन-आगमन; राये-रामानन्द राय को; सेवक कहिला-सेवक ने बताया; शीघ्र-अति शीघ्र; रामानन्द-रामानन्द राय; तबे-उसके बाद; सभाते आइला-सभाकक्ष में गये।

अनुवाद

जब नौकर ने रामानन्द राय को प्रद्युम्न मिश्र के आगमन की सूचना दी, तो वे तुरन्त ही सभाकक्ष गये।

मिश्ररे नमस्कार करे सम्मान करिया ।

निवेदन करे किछु विनीत हवा ॥28॥

मिश्रै-प्रद्युम्न मिश्र को; नमस्कार करे-प्रणाम करके; सम्मान करिया-आदरपूर्वक; निवेदन करे-निवेदन किया;
किछु-कुछ; विनीत हवा-अत्यन्त विनम्रतापूर्वक।

अनुवाद

उन्होंने प्रद्युम्न मिश्र को सादर नमस्कार किया और तब अत्यन्त विनीत होकर इस प्रकार कहा।

बहु-क्षण आइला, मोरे केह ना कहिल ।

तोमार चरणे मोर अपराध हइल ॥29॥

बहु-क्षण-बहुत पहले से; आइला-आप आये; मोरे-मुझे; केह ना कहिल-किसी ने सूचना नहीं दी; तोमार चरणे-
आपके चरणकमलों में; मोर-मेरा; अपराध-अपराध; हइल-हो गया।

अनुवाद

“हे महोदय, आप काफी समय पहले यहाँ आये, किन्तु किसी ने मुझे सूचित नहीं किया। इसलिए मैं
निश्चित रूप से आपके चरणकमलों पर अपराधी हूँ।”

तोमार आगमने मोर पवित्र हैल घर ।

आज्ञा कर, क्या करें तोमार किङ्कर ॥30॥

तोमार आगमने-आपके आगमन के कारण; मोर-मेरा; पवित्र-पवित्र; हैल-हो गया; घर-घर; आज्ञा कर-कृपया
आदेश दीजिए; क्या करों-मैं क्या कर सकता हूँ; तोमार किङ्कर-मैं आपका सेवक हूँ।

अनुवाद

“आपके आने से मेरा सम्पूर्ण घर पवित्र हो गया है। कृपया मुझे आदेश दें। मैं आपके लिए क्या कर
सकता हूँ? मैं आपका सेवक हूँ।”

मिश्र कहे,—“तोमा देखिते हैल आगमने ।

आपना पवित्र कैलुँ तोमार दरशने” ॥31॥

मिश्र कहे-प्रद्युम्न मिश्र ने उत्तर दिया; तोमा-आपको; देखते-मिलने के लिए; हैल आगमने-मैं आया था; आपना-मैं स्वयं; पवित्र कैलुँ-पवित्र हो गया हूँ; तोमार दरशने-आपके दर्शन द्वारा।

अनुवाद

प्रद्युम्न मिश्र ने उत्तर दिया, “मैं तो केवल आपका दर्शन करने आया था। अब मैंने आपका दर्शन करके अपने आपको पवित्र कर लिया है।”

अतिकाल देखि मिश्र किछु ना कहिल ।

विदाय हइया मिश्र निज-घर गेल ॥32॥

अतिकाल देखि’-देर होते देख; मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; किछु-कुछ; ना कहिल-नहीं बोले; विदाय हइया-विदा होकर; मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; निज-घर-अपने घर; गेल-लौट गया।

अनुवाद

यह देखकर कि काफी देर हो चुकी है, उसने रामानन्द राय से कुछ भी नहीं कहा। प्रत्युत उसने विदा ली और अपने घर लौट गया।

आर दिन मिश्र आइल प्रभु-विद्यमाने ।

प्रभु कहे,—“कृष्ण-कथा शुनिला राय-स्थाने”? ॥33॥

आर दिन-अगले दिन; मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; आइल-आया; प्रभु-विद्यमाने-श्री चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति में; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा; कृष्ण-कथा-कृष्ण की चर्चा; शुनिला-क्या तुमने सुनीं; राय-स्थाने-श्री रामानन्द राय से।

अनुवाद

अगले दिन जब प्रद्युम्न मिश्र श्री चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति में आया, तो महाप्रभु ने पूछा, “क्या तुमने श्री रामानन्द राय से कृष्ण के विषय में कथाएँ सुनीं?”

तब मिश्र रामानन्देर वृत्तान्त कहिला ।

शुनि’ महाप्रभु तब कहिते लागिला ॥34॥

तब-उसके बाद; मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; रामानन्द-श्री रामानन्द राय के; वृत्तान्त कहिला-कार्यकलापों का वर्णन किया; शुनि-सुनकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु: तब-तब; कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

तब प्रद्युम्न मिश्र ने श्री रामानन्द राय के कार्यकलापों का वर्णन किया। इन्हें सुनने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु बोलने लगे।

आमि त’ सन्यासी, आपनारे विरक्त करि’ मानि ।

दर्शन रहु दूरे, ‘प्रकृतिर’ नाम यदि शुनि ॥ 35॥

तबहिं विकार पाय मोर तनु-मन ।

प्रकृति-दर्शने स्थिर हय को जन? ॥ 36॥

आमि-मैं; त’-तो; सन्यासी-एक संन्यासी; आपनारे-स्वयं को; विरक्त करि’-सर्वस्व त्याग दिया; मानि-मैं मानता हूँ; दर्शन रहु दूरे-देखना तो दूर की बात; प्रकृतिर-स्त्री का नाम-नाम; यदि-यदि; शुनि-मैं सुनता हूँ; तबहिं-तुरन्त; विकार-विकार; पाय-प्राप्त करता है; मोर-मेरा; तनु-मन-मन और शरीर; प्रकृति-दर्शने-एक स्त्री को देखकर; स्थिर-धीर; हय-हो; को जन-कौन व्यक्ति।

अनुवाद

उन्होंने कहा, “मैं एक संन्यासी हूँ और मैं निश्चित रूप से अपने आपको विरक्त मानता हूँ। किन्तु स्त्री को देखने की बात तो दूर रही, यदि मैं स्त्री का नाम भी सुनता हूँ, तो मैं अपने तन तथा मन में विकार का अनुभव करता हूँ। इसलिए स्त्री के दर्शन से कौन अविचलित रह सकता है? यह बहुत कठिन है।”

रामानन्द रायेर कथा श्रुन, सर्व-जन ।

कहिबार कथा नहे, याहा आश्चर्य-कथन ॥ 37॥

रामानन्द रायेर—श्री रामानन्द राय के; कथा-विषय; श्रुन-कृपया सुनो; सर्व-जन-सभी लोग; कहिबार-कहने की; कथा-बातें; नहे-वे नहीं हैं; याहा—जो; आश्चर्य-कथन-आश्चर्यजनक और अद्भुत बातें।

अनुवाद

सभी लोग कृपया रामानन्द राय के विषय में इन बातों को सुनो; यद्यपि वे इतनी अद्भुत तथा असामान्य हैं कि उन्हें कहा नहीं जाना चाहिए।

एके देव-दासी, आर सुन्दरी तरुणी ।

तार सब अङ्ग-सेवा करेन आपनि ॥38॥

एके-एक ओर; देव-दासी-नर्तकी कन्याएँ; आर-और; सुन्दरी तरुणी-अत्यन्त सुन्दरी तथा युवतियाँ; तार-उनके; सब-सभी; अङ्ग-अंगों की; सेवा-सेवा; करेन आपनि—स्वयं करते हैं।

अनुवाद

“दोनों पेशेवर नर्तकियाँ सुन्दरी तथा तरुणियाँ हैं, फिर भी श्री रामानन्द राय उनके शरीरों में अपने हाथ से तेल की मालिश करते हैं।”

स्नानादि कराय, पराय वास-विभूषण ।

गुह्य अङ्गेर हय ताहा दर्शन-स्पर्शन ॥39॥

स्नान-आदि कराय-वे उन्हें स्नानादि करवाते हैं; पराय वास-विभूषण-वस्त्र पहनाते हैं तथा उनके शरीर को अनेक प्रकार के आभूषणों से सजाते हैं; गुह्य अङ्ग-शरीर के गुप्त अंगों का; हय-होता है; ताहा-वह; दर्शन-स्पर्शन-देखना और स्पर्श ।

अनुवाद

वे स्वयं ही उन्हें नहलाते हैं और आभूषणों से विभूषित करते हैं। इस तरह वे स्वाभाविक रूप से उनके शरीरों के गुप्तांगों को देखते तथा छूते हैं।

तबु निर्विकार राय-रामानन्देर मन ।

नाना-भावोद्गार तारे कराय शिक्षण ॥40॥

तबु-फिर भी; निर्विकार-अविचलित; राय-रामानन्देर मन-श्री रामानन्द राय का मन; नाना-भाव-उद्गार-भक्ति भाव के सभी लक्षण और परिवर्तन; तारे-उनको; कराय शिक्षण-वे सिखाते हैं।

अनुवाद

“तो भी, रामानन्द राय के मन में कभी विकार नहीं आता, यद्यपि वे उन कन्याओं को यह सिखाते हैं कि भाव के सारे लक्षणों को शरीर द्वारा किस तरह व्यक्त किया जाए।”

निर्विकार देह-मन—काष्ठ-पाषाण-सम! ।

आश्चर्य,—तरुणी-स्पर्श निर्विकार मन ॥41॥

निर्विकार-निर्विकार; देह-मन-शरीर तथा मन; काष्ठ-पाषाण-सम-लकड़ी और पत्थर के समान; आश्चर्य-आश्चर्यजनक; तरुणी-स्पर्श-युवा कन्याओं को स्पर्श करने पर; निर्विकार-अविकृत; मन-मन।

अनुवाद

“उनका मन काठ या पत्थर की तरह स्थिर है। निस्सन्देह, यह आश्चर्यजनक है कि जब वे ऐसी तरुणियों का स्पर्श करते हैं, तो भी उनका मन कभी चलायमान नहीं होता।”

एक रामानन्देर हय एइ अधिकार ।

ताते जानि अप्राकृत-देह ताँहार ॥42॥

एक-केवल एक; रामानन्देर-श्री रामानन्द राय का; हय-है; एइ-यह; अधिकार-विशेष अधिकार; ताते-उस प्रकार;
जानि-हम समझ सकते हैं; अप्राकृत-आध्यात्मिक; देह-देह; ताँहार-उनकी।

अनुवाद

“ऐसे कार्यों पर एकमात्र रामानन्द राय का जन्मसिद्ध अधिकार है, क्योंकि मैं समझ सकता हूँ कि उनका
शरीर भौतिक नहीं, अपितु पूरी तरह आध्यात्मिक हो चुका है।”

ताँहार मनेर भाव तेंह जाने मात्र ।

ताहा जानिबारे आर द्वितीय नाहि पात्र ॥43॥

ताँहार-उनके; मनेर-मन की; भाव-स्थिति; तेंह-वे; जाने-जानते हैं; मात्र-केवल; ताहा जानिबारे-उसे समझने के
लिए; आर-अन्य; द्वितीय-दूसरा; नाहि-नहीं है; पात्र-योग्य व्यक्ति।

अनुवाद

“एकमात्र वे ही अपने मन की स्थिति को समझ सकते हैं, अन्य कोई नहीं।”

किन्तु शास्त्र-दृष्ट्ये एक करि अनुमान ।

श्री-भागवत-शास्त्र—ताहाते प्रमाण ॥44॥

किन्तु-लेकिन; शास्त्र-दृष्ट्ये-शास्त्रों के निर्देशानुसार; एक-एक; करि अनुमान-मैं अनुमान करता हूँ; श्री-भागवत-
शास्त्र-श्रीमद्भागवत नामक वैदिक शास्त्र; ताहाते-उस सम्बन्ध में; प्रमाण-प्रमाण।

अनुवाद

किन्तु मैं शास्त्र के निर्देशों के अनुसार अनुमान कर सकता हूँ। वैदिक शास्त्र श्रीमद्भागवत इस विषय में प्रत्यक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करता है।

ब्रज-वधू-सङ्गे कृष्णोर रासादि-विलास ।

येइ जन कहे, शुने करिया विश्वास ॥ 45 ॥

हृद्-रोग-काम तौर तत्काले हय क्षय ।

तिन-गुण-क्षोभ नहे, 'महा-धीर' हय ॥46॥

ब्रज-वधू-सङ्गे-ब्रजभूमि की कन्याओं के संग में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण की; रास-आदि-विलास-रास नृत्य जैसी लीलाएँ; येइ-जो; जन-लोग; कहे-वर्णन करते हैं; शुने-सुनते हैं; करिया विश्वास-अत्यन्त श्रद्धापूर्वक; हृद्-रोग-हृदय का रोग; काम-कामवासना; तौर-उनके; तत्-काले-उसी समय; हय क्षय-नष्ट हो जाता है; तिन-गुण-भौतिक प्रकृति के तीन गुणों का; क्षोभ-विकार; नहे-नहीं; महा-धीर-अत्यन्त धीर; हय-हो जाता है।

अनुवाद

“जब कोई कृष्ण की लीलाओं, यथा गोपियों के साथ उनके रासनृत्य को अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सुनता या कहता है, तो उसके हृदय की कामवासनाएँ तथा भौतिक प्रकृति के तीन गुणों से उत्पन्न क्षोभ तुरन्त ही नष्ट हो जाते हैं और वह धीर तथा शान्त बन जाता है।”

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है, “श्रीमद्भागवत में वर्णित कृष्ण की रासलीला के विषय में अत्यन्त श्रद्धा तथा दिव्य आध्यात्मिकता से प्रेरित मन से सुनने का इच्छुक कोई भी व्यक्ति तुरन्त स्वाभाविक कामवासनाओं से मुक्त हो जाता है, जो कि भौतिकतावादी मनुष्य के हृदय में पाई जाती हैं।”

जब एक शुद्ध वैष्णव श्रीमद्भागवत के विषय में प्रवचन करता है और दूसरा शुद्ध वैष्णव उस स्वरूप-सिद्ध व्यक्ति से श्रवण करता है, तो दोनों ही ऐसे दिव्य जगत् में रहते हैं, जहाँ भौतिक प्रकृति के गुणों के विकार उनका स्पर्श तक नहीं कर पाते। वक्ता तथा श्रोता दोनों ही प्रकृति के गुणों के कल्मष से छूटकर दिव्य चेतना को प्राप्त करते हैं, जिसमें वे यह

जानते हैं कि दिव्य स्तर पर उनका पद परम भगवान् की सेवा करना है। प्राकृत सहजिया वर्ग के लोग, जो कि कृष्ण-लीलाओं को भौतिक जगत् में होने वाले पुरुष तथा स्त्री के आचरण जैसा मानते हैं, कृत्रिम तौर पर यह सोचते हैं कि रासलीला सुनने से उनके रुग्ण हृदयों की कामवासनाएँ कम होंगी। किन्तु वे विधि-विधानों को न मानकर सामान्य नैतिकता का भी उल्लंघन करते हैं, इसलिए रासलीला के विषय में उनका चिन्तन व्यर्थ का प्रयास है, जिससे कभी-कभी वे गोपियों तथा कृष्ण के कार्यकलापों की नकल करने लगते हैं। प्राकृत सहजियों के ऐसी आदतों का निषेध करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने विश्वास शब्द का प्रयोग करके उनकी भौतिक बुद्धि को अलग कर दिया है। श्रीमद्भागवत (10.33.30) में श्रील शुकदेव गोस्वामी कहते हैं :

नैतत्समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः ।

विनश्यत्याचरन् मौढ्याद् यथा रुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥

“जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नहीं है, उसे अपने मन में भी कभी कृष्ण की दिव्य रासलीला के कार्यों का अनुकरण नहीं करना चाहिए। यदि कोई अज्ञानवश ऐसा करता है, तो वह उसी तरह विनष्ट हो जाता है मानो वह शिवजी का अनुकरण कर रहा हो, जिन्होंने समुद्र से निकले विष को पिया था।”

उज्ज्वल मधुर प्रेम-भक्ति सेइ पाय ।

आनन्दे कृष्ण-माधुर्ये विहरे सदाय ॥47॥

उज्ज्वल-प्रकाशमान; मधुर-मधुर; प्रेम-भक्ति-कृष्ण का प्रेम भाव; सेइ-वह; पाय-प्राप्त करता है; आनन्दे-दिव्य आनन्द में; कृष्ण-माधु-कृष्ण की लीलाओं की मधुरता; विहरे-आनन्द लेता है; सदाय-सदैव।

अनुवाद

“कृष्ण के दिव्य, तेजस्वी, मधुर प्रेम का आस्वादन करते हुए ऐसा व्यक्ति कृष्ण की लीलाओं की मधुरता के दिव्य आनन्द को चौबीसों घण्टे भोग सकता है।”

विक्रीडितं ब्रज-वधूभिरिदं च विष्णोः

श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः ।

भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं

हृद्-रोगमाश्रयहिनोत्यचिरेण धीरः ॥48॥

विक्रीडितम्-रास नृत्य की लीला; व्रज-वधूभिः-व्रज की कन्याएँ, गोपियाँ; इदम्-यह; च-तथा; विष्णोः -भगवान् कृष्ण की; श्रद्धा-अन्वितः-दिव्य श्रद्धापूर्वक; अनुशृणुयात्-परम्परा में निरन्तर सुनता है; अथ-तथा; वर्णयेत्-वर्णन करता है; यः-जो; भक्तिम्-भक्ति; पराम्-दिव्य; भगवति-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति प्रतिलभ्य-प्राप्त करके; कामम्-भौतिक कामवासनाएँ; हृत्-रोगम्-हृदय का रोग; आशु-अति शीघ्र; अपहिनोति-त्याग देता है; अचिरेण-बिना विलम्ब के; धीरः-जो उन्नत भगवत्सेवा द्वारा धीर है।

अनुवाद

एक दिव्य रूप से धीर व्यक्ति, जो गोपियों के साथ कृष्ण के रासनृत्य की लीलाओं के विषय में किसी स्वरूपसिद्ध व्यक्ति से श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक निरन्तर श्रवण करता है या जो कोई इनका वर्णन करता है, वह परम पुरुष भगवान् के चरणकमलों में पूर्ण दिव्य भक्ति प्राप्त कर सकता है। इस तरह भौतिक कामेच्छाएँ, जो कि समस्त भौतिकतावादी व्यक्तियों के हृदय का रोग है, उसके लिए तुरन्त ही पूर्णतः विनष्ट हो जाती है।

तात्पर्य

कृष्ण की सारी लीलाएँ अलौकिक हैं एवं गोपियाँ भी दिव्य पद को प्राप्त हैं। अतएव यदि गोपियों तथा कृष्ण की लीलाओं को गम्भीरतापूर्वक समझ लिया जाए, तो मनुष्य निश्चित रूप से भौतिक आसक्ति से छूट जायेगा। तब भौतिक कामेच्छाओं के उदय होने की कोई सम्भावना नहीं रहती।

ये शुने, ये पड़े, तारं फल एतादृशी ।

सेइ भावाविष्ट सेइ सेवे अहर्निशि ॥49॥

तारं फल कि कहिमु, कहने ना याय ।

नित्य-सिद्ध सेइ, प्राय-सिद्ध तारं काय ॥50॥

ये शुने-जो कोई भी सुनता है; ये पड़े-जो पढ़ता है; तार-उसका; फल-परिणाम; एतादृशी-यह; सेइ-वह; भाव-
आविष्ट-सदैव कृष्ण के विचारों में निमग्न; सेइ सेवे-जो सेवा करता है; अहः-निशि-दिन-रात; तार-उसका; फल-परिणाम;
कि कहिमु-मैं क्या कहूँगा; कहने ना याय-यह वर्णन करना कठिन है; नित्य-सिद्ध-नित्य सिद्ध; सेइ-ऐसा व्यक्ति; प्राय-
सिद्ध-दिव्य; तार-उसका; काय-शरीर।

अनुवाद

“श्रील रूप गोस्वामी के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए यदि दिव्य पद को प्राप्त व्यक्ति कृष्ण की
रासलीला के विषय में सुनता और कहता है तथा अपने मन में भगवान् की दिन-रात सेवा करते हुए कृष्ण के
विचारों में सदा डूबा रहता है, तो उसे जो फल मिलेगा उसके विषय में मैं क्या कहूँ? यह आध्यात्मिक रूप से
इतना महान् है कि शब्दों द्वारा इसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। ऐसा व्यक्ति भगवान् का नित्यमुक्त संगी होता
है और उसका शरीर पूर्णतया आध्यात्मिक होता है। यद्यपि वह भौतिक नेत्रों को दिखता है, किन्तु वह
आध्यात्मिक पद को प्राप्त रहता है और उसके सारे कार्यकलाप आध्यात्मिक होते हैं। कृष्ण की इच्छा से ऐसे
भक्त को आध्यात्मिक शरीर प्राप्त हुआ समझा जाता है।”

रागानुग-मार्गे जानि रायेर भजन ।

सिद्ध-देह-तुल्य, ताते ‘प्राकृत’ नहे मन ॥51॥

रागानुग-मार्गे-कृष्ण के प्रति स्वाभाविक प्रेम के मार्ग पर; जानि-हम समझ सकते हैं; रायेर भजन-रामानन्द राय
की भक्तिमय सेवा; सिद्ध-देह-आध्यात्मिक देह; तुल्य-समान; ताते-अतः; प्राकृत-भौतिक; नहे-नहीं है; मन-मन।

अनुवाद

“श्रील रामानन्द राय भगवान् के रागानुग प्रेम (स्वतःस्फूर्त प्रेम) के मार्ग पर स्थित हैं। अतः वे अपने
आध्यात्मिक शरीर में हैं और उनका मन भौतिक रूप से प्रभावित नहीं है।”

आमिह रायेर स्थाने शुनि कृष्ण-कथा ।

शुनिते इच्छा हय यदि, पुनः याह तथा ॥52॥

आमिह-मैं भी; रायेर स्थाने-रामानन्द राय से; शुनि-सुनता हूँ; कृष्ण-कथा-कृष्ण की कथाएँ; शुनिते-सुनने की इच्छा-इच्छा; हय-है; यदि-यदि; पुनः-फिर से; याह-जाओ; तथा-वहाँ।

अनुवाद

“मैं भी रामानन्द राय से कृष्ण विषयक कथाएँ सुनता हूँ। यदि तुम ऐसी कथाएँ सुनना चाहते हो, तो उनके पास पुनः जाओ।”

मोर नाम लइह,—“तेंहो पाठाइला मोरे ।

तोमार स्थाने कृष्ण-कथा शुनिबार तरे” ॥53॥

मोर-मेरा; नाम-नाम; लइह-लेना; तेंहो-उन्होंने; पाठाइला-भेजा है; मोरे-मुझे; तोमार स्थाने-आपसे; कृष्ण-कथा-कृष्ण की लीलाएँ; शुनिबार तरे-सुनने के लिए।

अनुवाद

तुम उनके समक्ष यह कहकर मेरा नाम ले सकते हो कि, उन्होंने आपसे कृष्ण के विषय में सुनने के लिए मुझे भेजा है।

शीघ्र याह, यावत्तेहो आछेन सभाते ।

एत शुनि' प्रद्युम्न-मिश्र चलिला तुरिते ॥54॥

शीघ्र ग्राह-जल्दी आओ; यावत्-जब तक; तेंहो-वे; आछेन-हैं; सभाते-सभाकक्ष में; एत शुनि'-यह सुनकर; प्रद्युम्न-मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; चलिला-चला गया; तुरिते-बहुत जल्दी से।

अनुवाद

“जब तक वे सभाकक्ष में हैं, तुम जल्दी से जाओ।” यह सुनकर प्रद्युम्न मिश्र तुरन्त चला गया।

राय-पाश गेल, राय प्रणति करिल ।

“आज्ञा कर, ये लागि’ आगमन हैल” ॥55॥

राय-पाश-रामानन्द राय के पास; गेल-वह गया; राय-रामानन्द राय ने; प्रणति करिल-प्रणाम किया; आज्ञा कर-कृपया आदेश दीजिए; ग्रे लागि’-किस उद्देश्य से; आगमन हैल-आप आये हैं।

अनुवाद

प्रद्युम्न मिश्र रामानन्द राय के पास गया, जिन्होंने उन्हें सादर नमस्कार किया और कहा, “कृपया आज्ञा दें। आप किस कार्य से आये हैं?”

मिश्र कहे,—“महाप्रभु पाठाइला मोरे ।

तोमार स्थाने कृष्ण-कथा शुनिबार तरे” ॥56॥

मिश्र कहे-प्रद्युम्न मिश्र ने कहा; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; पाठाइला मोरे-मुझे भेजा है; तोमार स्थाने-आपसे; कृष्ण-कथा-भगवान् कृष्ण की कथाएँ; शुनिबार तरे-सुनने के लिए।

अनुवाद

प्रद्युम्न मिश्र ने उत्तर दिया, “श्री चैतन्य महाप्रभु ने मुझे आपसे कृष्ण-कथाएँ सुनने के लिए भेजा है।”

शुनि’ रामानन्द राय हैला प्रेमावेशे ।

कहिते लागिला किछु मनेर हरिषे ॥57॥

शुनि’—सुनकर; रामानन्द राय-रामानन्द राय; हैला-हो गये; प्रेम-आवेशे-प्रेमभाव में आविष्ट; कहिते लागिला-कहना प्रारम्भ किया; किछु-कुछ; मनेर हरिषे—दिव्य आनन्द में ।

अनुवाद

यह सुनकर रामानन्द राय प्रेमानन्द में मग्न हो गये और अतीव दिव्य हर्षपूर्वक बोलने लगे।

“प्रभुर आज्ञाय कृष्ण-कथा शुनिते आइला एथा ।

इहा वइ महा-भाग्य आमि पाब कोथा?" ॥58॥

प्रभुर आज्ञाय-श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश पर; कृष्ण-कथा- भगवान् कृष्ण की कथाएँ; श्रुनिते-सुनने के लिए; आइला एथा-आप यहाँ आये हैं; इहा वइ-इसके बिना; महा-भाग्य-महा सौभाग्य; आमि-मैं; पाब-पाऊँगा; कोथा-कहाँ।

अनुवाद

“आप श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश का पालन करते हुए कृष्ण के विषय में सुनने के लिए आये हैं। यह मेरा परम सौभाग्य है। भला और किस तरह मैं ऐसा अवसर पा सकता था?”

एत कहि तारे लजा निभृते वसिला ।

‘कि कथा श्रुनिते चाह?’ मिश्रे पुछिला ॥59॥

एत कहि-यह कहकर; तारे-उन्हें; लजा-लेकर; निभृते वसिला-एकान्त स्थान में बैठ गये; कि कथा-किस प्रकार की कथा; श्रुनिते चाह-आप सुनना चाहते हैं; मिश्रे पुछिला-उन्होंने प्रद्युम्न मिश्र से पूछा।

अनुवाद

यह कहकर श्री रामानन्द राय प्रद्युम्न मिश्र को एकान्त स्थान में ले गये और उससे पूछा, “आप मुझसे किस तरह की कृष्ण-कथा सुनना चाहते हैं?”

तेंहो कहे, — “ये कहिला विद्यानगरे ।

सेइ कथा क्रमे तुमि कहिबा आमारे” ॥60॥

तेंहो कहे-उसने उत्तर दिया; ये-जो; कहिला-आपने कहा; विद्यानगरे-विद्यानगर में; सेइ कथा-वही विषय; क्रमे-क्रमपूर्वक; तुमि-आप; कहिबा-कृपया कहिए; आमारे-मुझसे।

अनुवाद

प्रद्युम्न मिश्र ने उत्तर दिया, “कृपया मुझसे वही कथाएँ कहें, जो आपने विद्यानगर में कही थीं।”

आनेर कि कथा, तुमि-प्रभुर उपदेष्टा !

आमि त' भिक्षुक विप्र, तुमि-मोर पोष्टा ॥61॥

आनेर कि कथा-अन्यों का क्या कहना; तुमि-आप; प्रभुर उपदेष्टा-श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशकर्ता; आमि-मैं; त'-निश्चित रूप से; भिक्षुक-भिखारी; विप्र-ब्राह्मण; तुमि-आप; मोर-मेरे; पोष्टा-पालक।

अनुवाद

“आप तो श्री चैतन्य महाप्रभु के भी उपदेशक हैं, अन्यों की क्या कही जाए। मैं तो एक भिखारी ब्राह्मण हूँ और आप मेरे पालनकर्ता हैं।”

भाल, मन्द-“किछु आमि पुछिते ना जानि ।

‘दीन’ देखि’ कृपा करि’ कहिबा आपनि” ॥62॥

भाल-अच्छा; मन्द-बुरा; किछु-कुछ भी; आमि-मैं; पुछिते-पूछना; ना जानि- नहीं जानता; दीन-ज्ञान में दीन; देखि’-देखकर; कृपा करि’-अत्यन्त कृपापूर्वक; कहिबा-कृपया कहिए; आपनि-आपकी अपनी इच्छा से।

अनुवाद

“मैं नहीं जानता कि कैसे पूछना चाहिए, क्योंकि मैं नहीं जानता कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है। मुझे अल्प ज्ञान वाला देखकर आप अपनी इच्छा से जो मेरे लिए अच्छा हो वही कहें।”

तबे रामानन्द क्रमे कहिते लागिला ।

कृष्ण-कथा-रसामृत-सिन्धु उथलिला ॥ 63॥

तबे-तत्पश्चात्; रामानन्द-रामानन्द राय; क्रमे क्रमपूर्वक; कहिते लागिला-कहना प्रारम्भ किया; कृष्ण-कथा-कृष्ण की कथा; रसामृत-सिन्धु-दिव्य रसों का समुद्र; उथलिला-उद्वेलित हो गया।

अनुवाद

तत्पश्चात् रामानन्द राय ने क्रम से कृष्ण-कथाएँ कहनी शुरू कर दीं। इस तरह उन कथाओं के दिव्य रस का सागर उफनने लगा।

आपने प्रश्न करि' पाछे करेन सिद्धान्त ।

तृतीय प्रहर हैल, नहे कथा-अन्त ॥ 64॥

आपने-स्वयं; प्रश्न करि'-प्रश्न करके; पाछे-उसके बाद; करेन सिद्धान्त-निष्कर्ष देते हैं; तृतीय प्रहर हैल-दोपहर हो गई; नहे कथा-अन्त-उन कथाओं का कोई अन्त नहीं हुआ।

अनुवाद

वे स्वयं प्रश्न करते और फिर निर्णयात्मक कथनों से उनका उत्तर देते। जब दोपहर हो गई, तो भी कथाओं का अन्त नहीं हुआ।

वक्ता श्रोता कहे शुने दुँहे प्रेमावेशे ।

आत्म-स्मृति नाहि, काहाँ जानिब दिन-शेषे ॥65॥

वक्ता-कहने वाला; श्रोता-सुनने वाला; कहे-कहता है; शुने-सुनता है; दुँहे-वे दोनों; प्रेम-आवेशे-प्रेम भाव में; आत्म-स्मृति नाहि-देह स्मृति नहीं रही; काहाँ-कहाँ; जानिब-जान सकते; दिन-शेषे-दिन का अन्त।

अनुवाद

वक्ता तथा श्रोता प्रेमावेश में बोलते तथा सुनते रहे। इस तरह वे अपने शरीर की सुधि-बुध खो बैठे। तो फिर वे दिन के अन्त को कैसे समझ पाते?

सेवक कहिल,—‘दिन हैल अवसान’ ।

तबे राय कृष्ण-कथार करिला विश्राम ॥66॥

सेवक कहिल-सेवक ने बताया; दिन-दिन; हैल अवसान-समाप्त हो गया है; तबे-उस समय; राय-रामानन्द राय ने; कृष्ण-कथार-कृष्ण की कथाओं का; करिला विश्राम-समापन किया।

अनुवाद

सेवक ने उन्हें बतलाया कि, “दिन ढल चुका है।” तब रामानन्द राय ने कृष्ण विषयक अपनी कथाएँ समाप्त कीं।

बहु-सम्मान करि' मिश्रे विदाय दिला ।

‘कृतार्थ हड़लाड’ बलि' मिश्र नाचिते लागिला ॥67॥

बहु-सम्मान-अत्यन्त सम्मानपूर्ण व्यवहार; करि'-करके; मिश्रे-प्रद्युम्न मिश्र को; विदाय दिला-विदा किया; कृतार्थ हड़लाड-मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हो गया हूँ; बलि'-कहकर; मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; नाचिते लागिला-नाचने लगा।

अनुवाद

रामानन्द राय ने प्रद्युम्न मिश्र का अत्यधिक सम्मान किया और उसे विदा किया। प्रद्युम्न मिश्र ने कहा, “मैं अत्यधिक तुष्ट हूँ।” तब वह नाचने लगा ।

घरे गया मिश्र कैल स्नान, भोजन ।

सन्ध्या-काले देखिते आइल प्रभुर चरण ॥ 68॥

घरे गया-घर लौटकर; मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र ने; कैल-किया; स्नान-स्नान; भोजन-भोजन; सन्ध्या-काले-साँय को; देखिते-देखने के लिए; आइल-आये; प्रभुर चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

घर लौटकर प्रद्युम्न मिश्र ने स्नान और भोजन किया। शाम को वह श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का दर्शन करने आया।

प्रभुर चरण वन्दे उल्लसित-मने ।

प्रभु कहे,—‘कृष्ण-कथा हड़ल श्रवणे’? ॥69॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरण-चरणकमलों की; वन्दे-वह वन्दना करता है; उल्लसित-मने-अत्यन्त प्रसन्नातपूर्वक; प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं; कृष्ण- कथा-कृष्ण की लीलाएँ; हइल श्रवणे-क्या तुमने सुनीं।

अनुवाद

“उसने अत्यधिक प्रसन्नता से श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की पूजा की। महाप्रभु ने पूछा, ‘क्या तुमने कृष्ण-कथाएँ सुनीं?’”

मिश्र कहे,—“प्रभु, मोरे कृतार्थ करिला ।

कृष्ण-कथामृताणवे मोरे डुबाइला” ॥ 70 ॥

मिश्र कहे-प्रद्युम्न मिश्र ने कहा; प्रभु-मेरे प्रिय प्रभु; मोरे-मुझे; कृतार्थ-सन्तुष्ट; करिला-आपने कर दिया; कृष्ण-कथा-कृष्ण की कथाओं के; अमृत-अर्णवे-अमृत के समुद्र में; मोरे-मुझे; डुबाइला-आपने डुबा दिया।

अनुवाद

प्रद्युम्न मिश्र ने कहा, “हे प्रभु, आपने मुझे आपका अत्यन्त कृतज्ञ बना दिया है, क्योंकि आपने कृष्ण-कथा के अमृत-सागर में मुझे डुबो दिया है।”

रामानन्द राय-कथा कहिले ना हय ।

‘मनुष्य’ नहे राय, कृष्ण-भक्ति-रस-मय ॥71 ॥

रामानन्द राय-कथा-रामानन्द राय की वार्ताएँ; कहिले-वर्णन करना; ना हय-सम्भव नहीं है; मनुष्य-एक साधारण मनुष्य; नहे-नहीं हैं; राय-रामानन्द राय; कृष्ण-भक्ति-रस-मय-भगवान् कृष्ण की प्रेममयी सेवा में निमग्न।

अनुवाद

“मैं रामानन्द राय की कथाओं का ठीक-ठीक वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि वे कोई सामान्य मनुष्य नहीं हैं। वे कृष्ण की भक्ति में पूर्णतया निमग्न हैं।”

तात्पर्य

गुरु को साधारण व्यक्ति मानना निषेध है (गुरुषु नरमतिः) । जब रामानन्द राय ने प्रद्युम्न मिश्र से बात की, तो प्रद्युम्न मिश्र की समझ में आया कि वे कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। आध्यात्मिक रूप से उन्नत व्यक्ति, जो आध्यात्मिक गुरु के रूप में स्वीकृत है-जब बोलता है, तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् उसके अन्तःकरण से उसे निर्देश देते हैं। वह स्वयं नहीं बोल रहा होता। दूसरे शब्दों में, जब कोई शुद्ध भक्त या गुरु बोलता है, तो वह जो कुछ कहता है, उसे परम्परा पद्धति में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा प्रत्यक्ष बोला हुआ मानना चाहिए।

आर एक कथा राय कहिला आमारे ।

‘कृष्ण-कथा-वक्ता करि’ ना जानिह मोरे ॥72॥

आर-दूसरी; एक-एक; कथा-बात; राय-रामानन्द राय ने; कहिला आमारे-मुझसे कही; कृष्ण-कथा-वक्ता-कृष्ण कथाओं का वक्ता; करि’-जैसे; ना जानिह मोरे-मुझे मत मानो।

अनुवाद

“एक अन्य बात भी रामानन्द राय ने मुझसे कही है। तुम मुझे इन कृष्ण-कथाओं का वक्ता मत मानना।”

मोर मुखे कथा कहेन आपने गौरचन्द्र ।

यैछे कहाय, तैछे कहि,—येन वीणा-यन्त्र ॥73॥

मोर मुखे-मेरे मुख में; कथा-कथा; कहेन-कहते हैं; आपने-स्वयं; गौर-चन्द्र-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; यैछे कहाय-जैसा वे बोलवाते हैं; तैछे कहि-वहीं मैं कहता हूँ; येन-जैसे; वीणा-यन्त्र-वीणा नामक तारयुक्त यंत्र।

अनुवाद

“मैं जो भी कहता हूँ, वह श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं बोलते हैं। मैं एक वीणा की तरह हूँ। वे मुझसे जो कहलवाते हैं, उसका ही मैं उच्चारण करता हूँ।”

मोर मुखे कहाय कथा, करे परचार ।

पृथिवीते के जानिबे ए-लीला ताँहार? ॥74॥

मोर मुखे-मेरे मुख से; कहाय-कहलवाते हैं; कथा-प्रवचन; करे परचार-प्रचार करते हैं; पृथिवीते-इस संसार में; के जानिबे-कौन समझेगा; ए-लीला-यह लीला; ताँहार-उनकी।

अनुवाद

“इस तरह महाप्रभु कृष्णभावनामृत सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए मेरे मुख से बोलते हैं। इस संसार में ऐसा कौन है, जो महाप्रभु की इस लीला को समझ सकेगा?”

ये-सब शुनिलैं, कृष्ण-रसेर सागर ।

ब्रह्मादि-देवेर ए सब ना हय गोचर ॥75॥

ये-सब-वह सब; शुनि-मैंने सुना; कृष्ण-रसेर-भगवान् कृष्ण के अमृत का; सागर-समुद्र; ब्रह्मा-आदि-देवेर-ब्रह्माजी आदि देवताओं के लिए; ए सब-यह सब; ना हय गोचर-समझना सम्भव नहीं है।

अनुवाद

“मैंने रामानन्द राय से जो कुछ सुना है, वह कृष्ण-कथाओं के अमृत-सागर के तुल्य है। यहाँ तक कि ब्रह्मादि देवता भी इन कथाओं को नहीं समझ पाते।”

हेन ‘रस’ पान मोरे कराइला तुमि ।

जन्मे जन्मे तोमार पाय विकाइलाड आमि ॥76॥

हेन रस-ऐसा आध्यात्मिक रस; पान-पीना; मोरे-मुझे; कराइला तुमि-आपने करवाया; जन्मे जन्मे-जन्म जन्मातर तक; तोमार पाय-आपके चरणों में; विकाइलाड आमि-मैं बिक गया हूँ।

अनुवाद

“हे प्रभु, आपने कृष्ण-कथा का यह दिव्य अमृत मुझे पिलाया है। अतएव मैं जन्म-जन्मान्तर के लिए आपके चरणकमलों में बिक गया हूँ।”

प्रभु कहे,—“रामानन्द विनयेर खनि” ।

आपनार कथा पर-मुण्डे देन आनि' ॥ 77॥

प्रभु कहे-महाप्रभु ने उत्तर दिया; रामानन्द-रामानन्द राय; विनयेर खनि-विनम्रता की खान; आपनार कथा-अपने शब्द; पर-मुण्डे-दूसरे के मस्तक पर; देन-डाल दिये; आनि'-लाकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “रामानन्द राय समस्त विनयशीलता की खान हैं। इसलिए उन्होंने अपने शब्दों को दूसरे की बुद्धि पर आरोपित कर दिया है।”

महानुभवेर एइ सहज 'स्वभाव' हय ।

आपनार गुण नाहि आपने कहय ॥78॥

महानुभवेर-अनुभूति में उन्नत लोगों का; एइ-यह; सहज-स्वाभाविक; स्वभाव-लक्षण; हय-है; आपनार गुण-अपने निजी गुण; नाहि-नहीं; आपने-स्वयं; कहय-कहते।

अनुवाद

“जो लोग भक्ति में उन्नत होते हैं, उनका यह सहज स्वभाव है। वे अपने सद्गुणों का स्वयं बखान नहीं करते।”

रामानन्द-रायेर एइ कहिलु गुण-लेश ।

प्रद्युम्न मिश्रेरै यैछे कैला उपदेश ॥ 79 ॥

रामानन्द-रायेर-श्री रामानन्द राय का; एइ-यह; कहिलु-मैंने कहा; गुण-लेश-दिव्य गुणों का एक अंश मात्र प्रद्युम्न मिश्रे-प्रद्युम्न मिश्र को; यैछे-जिस प्रकार; कैला उपदेश-उन्होंने उपदेश दिया।

अनुवाद

मैंने रामानन्द राय के दिव्य गुणों के अंश मात्र का वर्णन किया है, जो प्रद्युम्न मिश्र को उपदेश देते समय प्रकट हुए।

‘गृहस्थ’ हजा नहे राय षड्-वर्गेर वशे ।

‘विषयी’ हजा सन्न्यासीरे उपदेशे ॥80॥

गृहस्थ हजा-एक गृहस्थ होकर; नहे-नहीं है; राय-रामानन्द राय; षड्-वर्गेर वशे-छः प्रकार के शारीरिक परिवर्तनों के वश में; विषयी हजा-सांसारिक (भोगी जैसा) होकर; सन्न्यासीरे उपदेशे-संन्यास आश्रम के लोगों को उपदेश देते।

अनुवाद

यद्यपि रामानन्द राय गृहस्थ थे, किन्तु वे छः प्रकार के शारीरिक परिवर्तनों के वशीभूत नहीं थे। यद्यपि ऊपर से वे धन-सम्पत्ति में आसक्त व्यक्ति प्रतीत होते थे, किन्तु उन्होंने संन्यासियों तक को उपदेश दिया।

तात्पर्य

बाहर से श्री रामानन्द राय गृहस्थ और माया के वश में प्रतीत होते थे। वे आत्मसंयमी ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ या संन्यासी न थे। गृहस्थजन, जो कि माया के वश में रहते हैं, इन्द्रिय-भोग के लिए ही गृहस्थ जीवन स्वीकार करते हैं, किन्तु दिव्य पद को प्राप्त वैष्णव छः प्रकार के शारीरिक परिवर्तनों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य) के भौतिक नियमों द्वारा प्रभावित नहीं होते, भले ही वे गृहस्थ की भूमिका क्यों न निभा रहे हों। इस प्रकार, यद्यपि श्रील रामानन्द राय गृहस्थ की भूमिका निभा रहे थे और धन-सम्पत्ति से आसक्त सामान्य व्यक्ति माने जाते थे, किन्तु वे सदैव दिव्य कृष्ण-लीलाओं में निमग्न रहते थे। इसलिए उनका मन आध्यात्मिक पद को प्राप्त था और वे कृष्ण के विषय में ही रुचि लेते थे। रामानन्द राय उन मायावादी निर्विशेषवादियों या भौतिकतावादी तार्किकों में से नहीं थे, जो कृष्ण की दिव्य लीलाओं के सिद्धान्तों के विरोधी हैं। वे पहले से संन्यासी और आध्यात्मिकता में स्थित थे, अतएव वे अपनी आध्यात्मिक शक्ति से बालू को सोने में बदलने में समर्थ थे। दूसरे शब्दों में, वे किसी व्यक्ति को भौतिक पद से आध्यात्मिक पद तक ऊपर उठा सकते थे।

एइ-सब गुण तॉर प्रकाश करिते ।

मिश्रेरे पाठाइला ताहाँ श्रवण करिते ॥ 81॥

एइ-सब-ये सब; गुण-गुण; तार-रामानन्द राय के प्रकाश करिते-प्रकट करने के लिए; मिश्रे-प्रद्युम्न मिश्र को;
पाठाइला-उन्होंने भेजा; ताहाँ-वहाँ; श्रवण करिते-सुनने के लिए।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय के दिव्य गुणों के प्रदर्शनार्थ ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रद्युम्न मिश्र को उनसे कृष्ण
विषयक चर्चाएँ सुनने के लिए भेजा था।

भक्त-गुण प्रकाशिते प्रभु भाल जाने ।

नाना-भङ्गीते गुण प्रकाशि” निज-लाभ माने ॥82॥

भक्त-गुण-एक भक्त के गुण; प्रकाशिते-प्रदर्शित करना; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु: भाल जाने-भलीभाँति जानते हैं
किस प्रकार; नाना-भङ्गीते-विविध प्रकार से; गुण-गुण; प्रकाशि”-प्रकट करके; निज-लाभ-अपना लाभ; माने-वे मानते
हैं।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु अच्छी तरह जानते हैं कि अपने भक्तों के गुणों को किस
तरह प्रकट किया जाए। इसलिए वे एक चित्रकार की भाँति इसे अनेक प्रकारों से प्रदर्शित करते हैं और इसे वे
निजी लाभ मानते हैं।

आर एक ‘स्वभाव’ गौरैर शुन, भक्त-गण ।

ऐश्वर्य-स्वभाव गूढ़ करे प्रकटन ॥83॥

आर-दूसरा; एक-एक; स्वभाव-स्वभाव; गौरैर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का; शुन-सुनो; भक्त-गण-हे भक्तों;
ऐश्वर्य-स्वभाव-ऐश्वर्य और स्वभाव; गूढ़-अत्यन्त गम्भीर; करे-करते हैं; प्रकटन-प्रकट।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का एक अन्य गुण भी है। हे भक्तों, ध्यानपूर्वक सुनो कि वे किस तरह अपना ऐश्वर्य तथा गुण प्रकट करते हैं, यद्यपि वे अत्यधिक गूढ़ होते हैं।

संन्यासी पण्डित-गणेर करिते गर्व नाश ।

नीच-शूद्र-द्वारा करेन धर्मेर प्रकाश ॥८४॥

संन्यासी-संन्यास आश्रम के लोग; पण्डित-गणेर-विद्वानों का; करिते-करने के लिए; गर्व-धमण्ड; नाश-विनष्ट; नीच-निम्न जाति के; शूद्र-चौथी श्रेणी के व्यक्ति; द्वारा-द्वारा; करेन-करते हैं; धर्मेर प्रकाश-वास्तविक धर्म के नियमों का प्रकाश।

अनुवाद

तथाकथित संन्यासियों एवं पण्डितों के मिथ्या अभिमान को नष्ट करने के लिए वे शूद्र या निम्न कुल के व्यक्ति द्वारा भी वास्तविक धर्म का प्रचार करते हैं।

तात्पर्य

जब कोई व्यक्ति वेदान्त-सूत्र में बड़ा विद्वान होता है, तो वह पण्डित कहलाता है। सामान्यतया यह योग्यता ब्राह्मणों तथा संन्यासियों में पाई जाती है। संन्यास तो ब्राह्मण के लिए, जो कि चारों वर्गों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) में सर्वोच्च होता है, सर्वोपरि पद है। जनमत यह है कि ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, संस्कारों द्वारा शुद्ध किया गया तथा गुरु से उचित रीति से दीक्षा-प्राप्तव्यक्ति वैदिक साहित्य का पण्डित होता है। जब ऐसे व्यक्ति को संन्यास दिया जाता है, तो वह सर्वोच्च पद पर स्थित होता है। ब्राह्मण को अन्य तीन वर्गों-क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्गों का गुरु माना जाता है और संन्यासी को तो उच्च ब्राह्मणों का भी गुरु माना जाता है।

सामान्यतया ब्राह्मणों तथा संन्यासियों को अपने आध्यात्मिक पद का बड़ा गर्व रहता है। इसीलिए उनके इस मिथ्या गर्व को विनष्ट करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय के माध्यम से कृष्णभावनामृत का प्रचार किया, क्योंकि रामानन्द राय न तो संन्यासी थे, न ही ब्राह्मण कुल में उत्पन्न ब्राह्मण थे। वे तो शूद्र वर्ग के एक गृहस्थ थे; तो भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके गुरु बनने की व्यवस्था की और उन्होंने ब्राह्मण कुल में जन्मे अत्यन्त योग्य ब्राह्मण प्रद्युम्न

मिश्र को शिक्षा दी। यहाँ तक कि संन्यासी होते हुए स्वयं महाप्रभु ने श्री रामानन्द राय से उपदेश लिया। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय के माध्यम से अपना ऐश्वर्य प्रकट किया। इस घटना की यही विशेषता है।

श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन है- येइ कृष्णतत्त्ववेत्ता, सेइ ‘गुरु’ हय—जो भी कृष्ण के विज्ञान को जानता है, वह गुरु बन सकता है चाहे वह संन्यासी हो या न हो, ब्राह्मण हो या न हो। सामान्य लोग शास्त्र के सार को नहीं समझ सकते, न ही वे श्री चैतन्य महाप्रभु के सिद्धान्तों के दृढ़ अनुयायियों के चरित्र, व्यवहार तथा योग्यताओं को ही समझ सकते हैं। जो शूद्रों से भी नीच माने जाते हैं, कृष्णभावनामृत आन्दोलन ऐसे परिवारों में जन्मे लोगों से भी शुद्ध महान् वैष्णव तैयार कर रहा है। यह इसका प्रमाण है कि वैष्णव किसी भी परिवार में जन्म ले सकता है, जिसकी पुष्टि श्रीमद्भागवत (2.4.18) में हुई है :-

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कशा

आभीरशुम्भा यवनाः खसादयः ।

येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः

शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥

“किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुलकश, आभीर, शुम्भ, यवन तथा खस एवं पापकर्मों में लगी अन्य जातियाँ तक भगवान् के भक्तों की शरण ग्रहण करके शुद्ध बन सकती हैं, क्योंकि भगवान् परम शक्तिमान हैं। मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।” भगवान् विष्णु की कृपा से कोई भी व्यक्ति पूर्णतया शुद्ध, कृष्णभावनामृत का प्रचारक तथा अखिल विश्व का गुरु बन सकता है। यह सिद्धान्त समस्त वैदिक साहित्य में स्वीकार हुआ है। शास्त्रों से प्रमाण दिये जा सकते हैं कि किस तरह निम्न कुल में उत्पन्न व्यक्ति अखिल विश्व का गुरु बन सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु को सर्वाधिक वदान्य पुरुष माने जाते हैं, क्योंकि वे वैदिक शास्त्रों का सार ऐसे किसी भी व्यक्ति को वितरित करते हैं, जो उनका निष्ठावान सेवक बनने के कारण योग्य बन जाता है।

‘भक्ति’, ‘प्रेम’, ‘तत्त्व’ कहे राये करि’ ‘वक्ता’ ।

आपनि प्रद्युम्न-मिश्र-सह हय ‘श्रोता’ ॥85॥

भक्ति-भक्तिमय सेवा; प्रेम-प्रेमभाव; तत्त्व-तथ्य; कहे-वे कहते हैं; राये-रामानन्द राय को; करि-बनाकर; वक्ता-वक्ता; आपनि स्वयं; प्रद्युम्न-मिश्र-प्रद्युम्न मिश्र; सह-साथ; हय श्रोता-श्रोता बन जाते हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने निम्न कुल जन्मा गृहस्थ रामानन्द राय को वक्ता बनाकर भक्ति, प्रेम तथा परम सत्य के विषय में प्रचार किया। फिर स्वयं उच्च ब्राह्मण संन्यासी श्री चैतन्य महाप्रभु तथा शुद्ध ब्राह्मण प्रद्युम्न मिश्र-दोनों रामानन्द राय के श्रोता बने।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में कहते हैं कि शंकराचार्य सम्प्रदाय के संन्यासी सदैव यही सोचते हैं कि उन्होंने ब्राह्मण के समस्त कर्तव्य पूरे कर लिए हैं तथा वेदान्त-सूत्र का सार समझ लेने और संन्यासी बन जाने से वे सारे समाज के स्वयंभू गुरु हैं। इसी तरह ब्राह्मण कुलों में उत्पन्न हुए लोग सोचते हैं कि वेदों में वर्णित अनुष्ठान सम्पन्न करने के कारण तथा स्मृति के सिद्धान्तों का पालन करने के कारण केवल वे ही समाज के गुरु बन सकते हैं। ये उच्च ब्राह्मण सोचते हैं कि जब तक मनुष्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न न हो, तब तक वह गुरु नहीं बन सकता और परम सत्य की शिक्षा नहीं दे सकता। इन जात ब्राह्मणों तथा मायावादी संन्यासियों का गर्व चूर करने के लिए ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह सिद्ध किया कि रामानन्द राय जैसा शूद्र कुल में उत्पन्न एवं गृहस्थ आश्रम में स्थित व्यक्ति स्वयं उनका तथा प्रद्युम्न मिश्र जैसे उच्च व्यक्तियों का गुरु बन सकता है। यह वैष्णव सम्प्रदाय का सिद्धान्त है, जिसका प्रमाण श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं में मिलता है। जो व्यक्ति यह जानता है कि क्या आध्यात्मिक है, क्या भौतिक है और कौन अध्यात्म पद पर दृढ़ता से स्थित है, वह जगद्गुरु बन सकता है। जगद्गुरु बनने के अनिवार्य नियमों को जाने बिना अपने आपको जगद्गुरु विज्ञापित करने से ही कोई जगद्गुरु नहीं बन सकता। यहाँ तक कि ऐसे लोग जिन्होंने यह कभी नहीं देखा कि जगद्गुरु क्या होता है और जो कभी किसी से बातें तक नहीं करते, वे गर्वित संन्यासी बन जाते हैं और अपने आपको जगद्गुरु कहने लगते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु को यह पसन्द नहीं था। जो भी व्यक्ति कृष्णतत्त्व को जानता हो और आध्यात्मिक जीवन के लिए पूर्णतया योग्य हो, वही जगद्गुरु बन सकता है। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं श्री रामानन्द राय से शिक्षा ली और उच्च ब्राह्मण प्रद्युम्न मिश्र को भी उनसे शिक्षा लेने के लिए उनके पास भेजा।

हरिदास-द्वारा नाम-माहात्म्य-प्रकाश ।

सनातन-द्वारा भक्ति-सिद्धान्त-विलास ॥86॥

हरिदास-द्वारा-हरिदास ठाकुर द्वारा; नाम-माहात्म्य-हरे कृष्ण महामन्त्र के जप की महिमा; प्रकाश-प्रकट करवाते हैं; सनातन-द्वारा-सनातन गोस्वामी द्वारा; भक्ति-सिद्धान्त-विलास-भक्ति के सार का प्रसार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् के पवित्र नाम की महिमा हरिदास ठाकुर के माध्यम से प्रकट की, जो मुसलमान परिवार में उत्पन्न हुए थे। इसी तरह उन्होंने सनातन गोस्वामी के माध्यम से भक्ति का सार प्रकट किया, जो लगभग मुसलमान बनाये जा चुके थे।

श्री-रूप-द्वारा ब्रजेर प्रेम-रस-लीला ।

के बुझिते पारे गम्भीर चैतन्ये खेला? ॥87॥

श्री-रूप-द्वारा-श्री रूप गोस्वामी के माध्यम से; ब्रजेर-वृन्दावन के प्रेम-रस-लीला-प्रेमभाव और लीलाओं का वर्णन; के-कौन; बुझिते पारे-समझ सकता है; गम्भीर-गहन; चैतन्ये खेला-श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ।

अनुवाद

महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी के माध्यम से वृन्दावन के प्रेम तथा उसकी दिव्य लीलाओं को भी प्रकट किया। इन सब पर विचार करने पर भला कौन ऐसा है, जो श्री चैतन्य महाप्रभु की गम्भीर योजनाओं को समझ सकता है?

श्री-चैतन्य-लीला एइ—अमृतेर सिन्धु ।

त्रिजगत् भासाइते पारे यार एक बिन्दु ॥88॥

श्री-चैतन्य-लीला-श्री चैतन्य महाप्रभु की दिव्य लीलाएँ; एइ—ये; अमृतेर सिन्धु-अमृत का समुद्र; त्रि-जगत्-तीनों जगत्; भासाइते-डुबाने के लिए; पारे-समर्थ हैं; यार-जिसकी; एक बिन्दु-एक बूँद।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलाप अमृत के सिन्धु के समान हैं। इस सिन्धु की एक बूँद भी तीनों लोकों को आप्लावित कर सकती है।

तात्पर्य

तीनों लोकों को अमृत से आप्लावित करना ही श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का उद्देश्य है। इसे श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी तथा उसके बाद ठाकुर नरोत्तम दास तथा श्यामानन्द गोस्वामी ने दिखाया कि यह किस तरह सम्भव हो सकता है, क्योंकि इन सबने श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा का प्रतिनिधित्व किया। अब वही कृपा कृष्णभावनामृत आन्दोलन के माध्यम से सारे जगत् को आप्लावित कर रही है। वर्तमान कृष्णभावनामृत आन्दोलन श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा अपने काल में स्वयं सम्पन्न की हुई लीलाओं से अभिन्न है, क्योंकि उन्हीं सिद्धान्तों का पालन हो रहा है और वे ही कार्य अनवरत रूप से सम्पन्न किये जा रहे हैं।

चैतन्य-चरितामृत नित्य कर पान ।

याहा हैते ‘प्रेमानन्द’, ‘भक्ति-तत्त्व-ज्ञान’ ॥89॥

चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक इस दिव्य ग्रन्थ का; नित्य-प्रतिदिन; कर पान-करो आस्वादन; याहा हैते—जिसके द्वारा; प्रेम-आनन्द-दिव्य आनन्द; भक्ति-तत्त्व-ज्ञान-भक्ति का दिव्य ज्ञान।

अनुवाद

हे भक्तों, श्री चैतन्य-चरितामृत तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के अमृत का नित्य ही पान करो, क्योंकि ऐसा करने से मनुष्य दिव्य आनन्द में डूब सकता है और भक्ति के पूर्ण ज्ञान को प्राप्त कर सकता है।

एइ-मत महाप्रभु भक्त-गण लजा ।

नीलाचले विहरये भक्ति प्रचारिया ॥90॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; भक्त-गण लजा-अपने शुद्ध भक्तों के संग में; नीलाचले—जगन्नाथ पुरी में; विहरये-दिव्य आनन्द लेते; भक्ति प्रचारिया-भक्ति (प्रेममयी सेवा) का प्रचार करके।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने संगियों, अपने शुद्ध भक्तों के साथ जगन्नाथ पुरी (नीलाचल) में नाना प्रकार से भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार करते हुए दिव्य आनन्द का आस्वादन किया।

बङ्ग-देशी एक विप्र प्रभुर चरिते ।

नाटक करि' लजा आइल प्रभुके शुनाइते ॥91॥

बङ्ग-देशी-बंगाल से; एक विप्र-एक ब्राह्मण; प्रभुर चरिते-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र के विषय में; नाटक करि'-एक नाटक लिखकर; लजा-लेकर; आइल-आया; प्रभुके शुनाइते-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को सुनाने के लिए।

अनुवाद

बंगाल में रहने वाले एक ब्राह्मण ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र के विषय में एक नाटक लिखा और उसकी पाण्डुलिपि लेकर महाप्रभु को सुनाने के लिए आया।

भगवानाचार्य-सने तार परिचय ।

तारै मिलि तारं घरे करिल आलय ॥ 92॥

भगवान्-आचार्य-भगवान् आचार्य नामक श्री चैतन्य महाप्रभु का एक भक्त; सने-के साथ; तार परिचय-उसका परिचय; तारै मिलि'-उनसे मिलकर; तारं घरे-उनके घर पर; करिल आलय-निवास किया।

अनुवाद

यह ब्राह्मण श्री चैतन्य महाप्रभु के एक भक्त भगवान् आचार्य का परिचित था। अतएव जगन्नाथ पुरी में उनसे मिलने के बाद वह ब्राह्मण भगवान् आचार्य के घर में रहने लगा।

प्रथमे नाटक तेहो तारै शुनाइल ।

तारं सङ्गे अनेक वैष्णव नाटक शुनिल ॥93॥

प्रथमे-सर्व प्रथम; नाटक-नाटक; तैहो-उसने; तौर-उन्हें; शुनाइल-सुनाया; तौर सड़े-उनके साथ; अनेक-अनेक;
वैष्णव-वैष्णवों ने; नाटक शुनिल-नाटक सुना।

अनुवाद

पहले तो उस ब्राह्मण ने भगवान् आचार्य को वह नाटक सुनाया और तब अनेक भक्तों ने भगवान्
आचार्य के साथ उसे सुना।

सबेइ प्रशंसे नाटक “परम उत्तम” ।

महाप्रभुरे शुनाइते सबार हैल मन ॥94॥

सबेइ-सभी ने; प्रशंसे—प्रशंसा की; नाटक-नाटक की; परम उत्तम-”बहुत अच्छा, बहुत अच्छा”; महाप्रभुरे-श्री
चैतन्य महाप्रभु को; शुनाइते-सुनाने का; सबार-सबका; हैल-हो गया; मन-मन।

अनुवाद

सारे वैष्णवों ने यह कहकर नाटक की प्रशंसा की कि यह बहुत ही अच्छा है। उन्होंने यह भी इच्छा
व्यक्त की कि श्री चैतन्य महाप्रभु भी यह नाटक सुनें।

गीत, श्लोक, ग्रन्थ, कवित्व—येइ करि’ आने ।

प्रथमे शुनाय सेइ स्वरूपेर स्थाने ॥ 95॥

गीत-गीत; श्लोक-श्लोक; ग्रन्थ-ग्रन्थ; कवित्व-कविता; येइ-जो कोई भी; करि’—बनाकर; आने-लाता; प्रथमे-
पहले; शुनाय—सुनाता; सेइ-वह व्यक्ति; स्वरूपेर स्थाने—स्वरूप दामोदर गोस्वामी के सामने।

अनुवाद

यह प्रथा थी कि जो कोई भी श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में कोई गीत, श्लोक, ग्रन्थ या कविता
लिखता, तो सुनाने के लिए उसे सर्वप्रथम स्वरूप दामोदर गोस्वामी के पास लाना पड़ता।

स्वरूप-ठाजि उत्तरे यदि, लजा, तौर मन ।

तबे महाप्रभु-ठाजि कराय श्रवण ॥96॥

स्वरूप-ठात्रि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी के समक्ष; उत्तरे-उत्तीर्ण; यदि-यदि कोई; लजा-लेकर; तौर मन-उनका मन; तबे-उसके बाद; महाप्रभु-ठाजि-श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने; कराय श्रवण-सुनवाते।

अनुवाद

यदि स्वरूप गोस्वामी हाँ कर देते, तो वह श्री चैतन्य महाप्रभु को सुनने के लिए प्रस्तुत किया जाता।

‘रसाभास’ हय यदि ‘सिद्धान्त-विरोध’ ।

सहिते ना पारे प्रभु, मने हय क्रोध ॥ 97॥

रस-आभास-रसाभास; हय-हो जाता; यदि-यदि; सिद्धान्त-विरोध-भक्ति के सिद्धान्तों के विरुद्ध; सहिते ना पारे-सहन नहीं कर सकते; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मने-मन में; हय-होते; क्रोध-गुस्सा।

अनुवाद

यदि इसका संकेत होता कि दिव्य रसों की व्याप्ति इस तरह हुई है, जो भक्ति सिद्धान्त के विरुद्ध हैं, तो श्री चैतन्य महाप्रभु इसे सहन नहीं कर पाते थे और अत्यन्त क्रुद्ध होते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने रसाभास की निम्नलिखित परिभाषा भक्तिसामृतसिन्धु (उत्तर-विभाग, नवम तरंग 1-3, 33, 38 तथा 41) से दी है :

पूर्वमेवानुशिष्टेन विकला रसलक्षणा ।

रसा एव रसाभासा रसज्ञैरनुकीर्तिताः ॥

स्युत्रिधोपरसाश्चानुरसाश्चापरसाश्च ते ।

उत्तमा मध्यमाः प्रोक्ताः कनिष्ठाश्चेत्यमी क्रमात् ॥

प्राप्तैः स्थायिविभावानुभावाद्यैस्तु विरूपताम् ।

शान्तादयो रसा एव द्वादशोपरसा मताः ॥

भक्तादिभिर्विभावाद्यैः कृष्णसम्बन्धवर्जितैः ।

रसा हास्यादयः सप्त शान्तश्चानुरसा मताः ॥

कृष्णतत्प्रतिपक्षश्चेद् विषयाश्रयतां गताः ।

हासादीनां तदा तेऽत्र प्राज्ञैरपरसा मताः ॥

भावाः सर्वे तदाभासा रसाभासाश्च केचन ।

अमी प्रोक्त रसाभिज्ञैः सर्वेऽपि रसनाद् रसाः ॥

“जो रस क्षणिक रूप से दिव्य प्रतीत हो, किन्तु पहले बताये गये रसों का विरोध करे तथा रस की कुछ शर्तों को पूरा न करे वह उच्च भक्तों द्वारा, जो दिव्य रसों का आस्वादन करना जानते हैं, रसाभास या रसों का अतिक्रमण कहा जाता है। ऐसे रस उपरस (गौण रस), अनुरस (दिव्य रस की नकल) तथा अपरस (विरोधाभासी दिव्य रस) कहलाते हैं। इस तरह रसाभास अर्थात् रस की व्याप्ति को प्रथम, द्वितीय या तृतीय कोटि का बतलाया जाता है। जब बारह रसों को—यथा शान्त, दास्य तथा सख्य रसों को विरोधी स्थायी भाव, विभाव तथा अनुभाव द्वारा लक्षित किया जाता है, तब वे उपरस कहलाते हैं। जब सात दिव्य गौण रस तथा शुष्क शान्त रस कृष्ण और प्रेमभक्ति से सम्बन्ध न रखने वाले भक्तों तथा भावों द्वारा उत्पन्न होते हैं, तो वे अनुरस कहलाते हैं। यदि कृष्ण तथा उनसे विरोध रखने वाले शत्रु हास्य रस के लक्ष्य तथा आगार बनते हैं, तो इस तरह से उत्पन्न भाव अपरस कहलाते हैं। कभी-कभी दक्ष लोग एक रस से दूसरे का अन्तर करते समय कुछ रसाभासों को आनन्ददायक तथा आस्वादयुक्त होने के कारण रस मान बैठते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं, परस्परवैरयोर्यदि योगस्तदा रसाभासः-”जब दो विरोधी दिव्य रसों का अतिक्रमण होता है, तो वे रसाभास उत्पन्न करते हैं।”

अतएव प्रभु किछु आगे नाहि शुने ।

एइ मर्यादा प्रभु करियाछे नियमे ॥९८॥

अतएव-अतः; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; किछु-कुछ भी; आगे-पहले; नाहि शुने-नहीं सुनते; एइ मर्यादा-यह मर्यादा; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; करियाछे नियमे-एक नियम बना दिया।

अनुवाद

इसलिए जब तक स्वरूप दामोदर पहले सुन न लें, तब तक श्री चैतन्य महाप्रभु उसे नहीं सुनते। महाप्रभु ने इस शिष्टाचार या मर्यादा को नियम बना दिया था।

स्वरूपेर ठाजि आचार्य कैला निवेदन ।

एक विप्र प्रभुर नाटक करियाछे उत्तम ॥ 99॥

स्वरूपेर ठाजि-स्वरूप दामोदर के सामने; आचार्य-भगवान् आचार्य ने; कैला-की; निवेदन-विनति; एक विप्र-एक ब्राह्मण ने; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु पर; नाटक- नाटक; करियाछे-रचा है; उत्तम-अति उत्तम।

अनुवाद

भगवान् आचार्य ने स्वरूप दामोदर गोस्वामी से निवेदन किया, “एक उत्तम ब्राह्मण ने श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में एक नाटक प्रस्तुत किया है, जो अत्युत्तम रीति से लिखा हुआ प्रतीत होता है।”

आदौ तुमि शुन, यदि तोमार मन माने ।

पाछे महाप्रभुरे तबे कराइमु श्रवणे ॥100 ॥

आदौ-प्रथम; तुमि-आप; शुन-सुनिये; यदि-यदि; तोमार मन माने-आप स्वीकार करें; पाछे-बाद में; महाप्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; तबे-तब; कराइमु श्रवणे-मैं सुनने का निवेदन करूंगा।

अनुवाद

“पहले आप सुन लें और यदि आपका मन इसे स्वीकार करे, तो मैं श्री चैतन्य महाप्रभु से इसे सुनने के लिए प्रार्थना करूँ।”

स्वरूप कहे,—“तुमि ‘गोप’ परम-उदार ।

ये-से शास्त्र श्रुनिते इच्छा उपजे तोमार” ॥ 101॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने कहा; तुमि-तुम; गोप-ग्वाल बाल; परम-उदार-अत्यन्त उदार; ये-से शास्त्र-कुछ भी शास्त्र के रूप में लिखित; श्रुनिते-सुनने की; इच्छा-इच्छा; उपजे-जागृत हो जाती है; तोमार तुम्हारी।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने उत्तर दिया, “हे भगवान् आचार्य, तुम अत्यन्त उदार ग्वाले हो। कभी-कभी तुम्हारे भीतर किसी भी प्रकार की कविता को सुनने की इच्छा जागृत हो जाती है।”

‘यद्वा-तद्वा’ कविर वाक्ये हय ‘रसाभास’ ।

सिद्धान्त-विरुद्ध श्रुनिते ना हय उल्लास ॥102॥

यद्वा-तद्वा कविर-किसी भी तथाकथित कवि के; वाक्ये-वाक्यों में; हय-होता है; रस-आभास-दिव्य रसों का अतिक्रमण; सिद्धान्त-विरुद्ध-सैद्धान्तिक निष्कर्षों के विरुद्ध; श्रुनिते-सुनने पर; ना-नहीं; हय-होता; उल्लास-आनन्द।

अनुवाद

“तथाकथित कवियों की रचनाओं में सामान्यतया दिव्य रसों का अतिक्रमण (रसाभास) की सम्भावना रहती है। इस तरह जब रस सिद्धान्तों के विरुद्ध हो जाते हैं, तो ऐसी कविता को सुनना कोई भी पसन्द नहीं करता।”

तात्पर्य

यद्वा-तद्वा कवि उसका सूचक है, जो बिना ज्ञान के काव्य रचना करता है। काव्य रचना और वह भी वैष्णव सिद्धान्त से सम्बन्धित काव्य की रचना अत्यन्त कठिन है। यदि बिना उचित ज्ञान के काव्य रचना की जाती है, तो रसों का अतिक्रमण की पूरी सम्भावना रहती है। जब ऐसा होता है, तो कोई भी विद्वान या उच्च वैष्णव उसे सुनना पसन्द नहीं करेंगे।

‘रस’, ‘रसाभास’ यार नाहिक विचार ।

भक्ति-सिद्धान्त-सिन्धु नाहि पाय पार ॥103॥

रस-दिव्य रस; रस-आभास-दिव्य रसों का अतिक्रमण; यार—जिसको; नाहिक विचार-कोई विचार नहीं है; भक्ति-सिद्धान्त-सिन्धु-भक्ति के सिद्धान्तों का समुद्र; नाहि-नहीं; पाय-प्राप्त करता; पार—सीमा।

अनुवाद

जिस कवि को दिव्य रसों का तथा उनके अतिक्रमण का ज्ञान नहीं होता, वह भक्ति के सिद्धान्त रूपी सागर को पार नहीं कर सकता।

‘व्याकरण’ नाहि जाने, ना जाने ‘अलङ्कार’ ।

‘नाटकालङ्कार’-ज्ञान नाहिक याहार ॥ 104॥

कृष्ण-लीला वर्णिते ना जाने सेइ छार! ।

विशेषे दुर्गम एइ चैतन्य-विहार ॥105॥

व्याकरण-व्याकरण; नाहि जाने-नहीं जानता; ना जाने-नहीं जानता; अलङ्कार-अलंकार; नाटक-अलङ्कार—नाटक के अलंकारों का; ज्ञान-ज्ञान; नाहिक-नहीं है। याहार—जिसको; कृष्ण-लीला-भगवान् कृष्ण की लीलाएँ; वर्णिते-वर्णन करना; ना जाने-नहीं जानता; सेइ-वह; छार—पतित; विशेषे-विशेष रूप से; दुर्गम-अत्यन्त कठिन; एइ-ये; चैतन्य-विहार-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ।

अनुवाद

“जो कवि व्याकरण के नियमों को नहीं जानता, जो अलंकारों, विशेषतया नाटक में प्रयुक्त अलंकारों को नहीं जानता और जो यह नहीं जानता कि श्रीकृष्ण की लीलाओं को किस तरह प्रस्तुत किया जाए, उसे धिक्कार है। इतना ही नहीं, श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ समझने में विशेष रूप से कठिन हैं।”

कृष्ण-लीला, गौर-लीला से करे वर्णन ।

गौर-पाद-पद्म यार हय प्राण-धन ॥106॥

कृष्ण-लीला-भगवान् कृष्ण की लीलाएँ; गौर-लीला-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; से-वह; करे वर्णन-वर्णन करता है; गौर-पाद-पद्म-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; याँ-जिसके; हय-हैं; प्राण-धन-जीवन (प्राण) और आत्मा।

अनुवाद

जिसने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों को अपने प्राण-धन के रूप में स्वीकार कर लिया है, वही भगवान् कृष्ण या श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का वर्णन कर सकता है।

ग्राम्य-कविर कवित्व श्रुति हय 'दुःख' ।

विदग्ध-आत्मीय-वाक्य श्रुति हय 'सुख' ॥107॥

ग्राम्य-कविर-पुरुष और स्त्री सम्बन्धी कविताएँ लिखने वाले कवि की; कवित्व- कविता; श्रुति-सुनने से; हय-होता है; दुःख-दुःख; विदग्ध-आत्मीय-प्रेमभाव में पूर्णतया निमग्न भक्त के; वाक्य-वचन; श्रुति-सुनकर; हय होता है; सुख-आनन्द।

अनुवाद

“जिस व्यक्ति को दिव्य ज्ञान नहीं है और जो पुरुष तथा स्त्री के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में लिखता है, उसकी कविता सुनकर केवल दुःख होता है, जबकि प्रेम में डूबे भक्त के शब्दों को सुनकर परम सुख उत्पन्न होता है।”

तात्पर्य

ग्राम्य-कवि द्योतक है ऐसे कवि या लेखक का, जो स्त्री तथा पुरुष के सम्बन्धों के विषय में उपन्यास लिखते हैं। किन्तु विदग्ध-आत्मीय-वाक्य द्योतक है उस भक्त द्वारा लिखे गये शब्दों का, जो शुद्ध भक्ति को भली-भाँति समझता है। ऐसे भक्त जो परम्परा पद्धति का पालन करते हैं, वे सजातीयाशय-स्निग्ध कहलाते हैं—अर्थात् वे अपने ही जैसे लोगों को अच्छे लगने वाले हैं। भक्तगण ऐसे ही काव्य तथा अन्य रचनाओं को अत्यन्त सुखपूर्वक स्वीकार करते हैं।

रूप यैछे दुइ नाटक करियाछे आरम्भे ।

शुनिते आनन्द बाड़े यार मुख-बन्धे ॥108॥

रूप-रूप गोस्वामी ने; यैछे-जैसे; दुइ-दो; नाटक-नाटक; करियाछे आरम्भे-रचे हैं; शुनिते-सुनकर; आनन्द बाड़े-दिव्य आनन्द बढ़ जाता है; ग्रार-जिसका; मुख-बन्धे-मात्र आमुख भाग सुनकर ही।

अनुवाद

“रूप गोस्वामी ने नाटक रचना का मानक स्थापित किया है। यदि भक्तगण उनके दो नाटकों के आमुख अंशों को सुनते हैं, तो उनसे उनके आनन्द में वृद्धि होती है।”

भगवानाचार्य कहे,—“शुन एक-बार ।

तुमि शुनिले भाल-मन्द जानिबे विचार” ॥ 109॥

भगवान्-आचार्य-भगवान् आचार्य; कहे-कहते हैं; शुन-कृपया सुनिये; एक-बार-एक बार; तुमि शुनिले-यदि आप सुनते हैं; भाल-मन्द-अच्छा या बुरा; जानिबे विचार-समझ पायेंगे।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर द्वारा इस तरह समझाने के बाद भी भगवान् आचार्य ने अनुरोध किया, “कृपया एक बार तो यह नाटक सुन लीजिये। यदि आप सुनेंगे, तो विचार कर सकेंगे कि यह अच्छा है या बुरा।”

दुइ तिन दिन आचार्य आग्रह करिल ।

ताँर आग्रहे स्वरूपेर शुनिते इच्छा हइल ॥110॥

दुइ तिन दिन-दो या तीन दिन तक; आचार्य-भगवान् आचार्य ने; आग्रह करिल-अपनी तीव्र इच्छा व्यक्त की; ताँर आग्रहे-उनकी उत्सुकता द्वारा; स्वरूपेर-स्वरूप दामोदर की; शुनिते-सुनने की इच्छा-इच्छा; हइल हो गई।

अनुवाद

भगवान् आचार्य ने लगातार दो-तीन दिनों तक स्वरूप दामोदर गोस्वामी से काव्य सुनने के लिए आग्रह किया। उनके बारम्बार अनुरोधों से स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने बंगाल के ब्राह्मण द्वारा रचित काव्य को सुनने की इच्छा व्यक्त की।

सबा लजा स्वरूप गोसाजि शुनिते वसिला ।

तबे सेइ कवि नान्दी-श्लोक पड़िला ॥111॥

सबा लजा-अन्य भक्तों के संग में; स्वरूप गोसाजि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; शुनिते वसिला-सुनने के लिए बैठ गये; तब-तब; सेइ कवि-उस कवि ने; नान्दी-श्लोक-नान्दी श्लोक; पड़िला-पढ़ा।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोस्वामी काव्य सुनने के लिए अन्य भक्तों के साथ बैठ गये और तब कवि ने परिचयात्मक श्लोक (नान्दी श्लोक) पढ़ना प्रारम्भ किया।

विकच-कमल-नेत्रे श्री-जगन्नाथ-संज्ञे

कनक-रुचिरिहात्मन्यात्मतां यः प्रपन्नः ।

प्रकृति-जडमशेषं चेतयन्नाविरासीत्

स दिशतु तव भव्यं कृष्ण-चैतन्य-देवः ॥112॥

विकच-विस्तृत; कमल-नेत्रे-जिसके कमलनयन; श्री-जगन्नाथ-संज्ञे-श्री जगन्नाथ नामक; कनक-रुचिः-स्वर्णिम कान्ति युक्त; इह-यहाँ जगन्नाथ पुरी में; आत्मनि-शरीर में; आत्मताम्-आत्मत्व; यः-जिन्होंने; प्रपन्नः-प्राप्त कर ली है; प्रकृति-प्रकृति; जडम्-जड़; अशेषम्-असीमित; चेतयन्-जगाते हुए; आविरासीत्-प्रकट हुए हैं; सः-वे; दिशतु-वर्षा करें; तव-आप पर; भव्यम्-कृपा, सौभाग्य; कृष्ण-चैतन्य-देवः-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

“पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने सुनहरा वर्ण धारण कर लिया है और जगन्नाथ नामक शरीर के आत्मा बन गये हैं, जिनके विकसित कमलनेत्र अतीव विस्तृत हैं। इस तरह वे जगन्नाथ पुरी में प्रकट हुए हैं और उन्होंने ने जड़ पदार्थ को चेतन बना दिया है। वे श्रीकृष्ण चैतन्यदेव तुम सबको सौभाग्य प्रदान करें।”

श्लोक शुनि’ सर्व-लोक ताहारे बाखाने ।

स्वरूप कहे,—“एइ श्लोक करह व्याख्याने” ॥113॥

श्लोक शुनि’—श्लोक सुनकर; सर्व-लोक-सभी ने; ताहारे-उसकी; बाखाने-प्रशंसा की; स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने कहा; एइ श्लोक-इस श्लोक का; करह व्याख्याने-कृपया वर्णन करो।

अनुवाद

जब उपस्थित लोगों ने यह श्लोक सुना, तो सबने कवि की प्रशंसा की, किन्तु स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने उससे अनुरोध किया कि, “कृपया इस श्लोक की व्याख्या करें।”

कवि कहे,—जगन्नाथ—सुन्दर-शरीर ।

चैतन्य-गोसाजि—शरीरी महा-धीर ॥114॥

कवि कहे-कवि ने कहा; जगन्नाथ भगवान् जगन्नाथ; सुन्दर-शरीर-अत्यन्त सुन्दर शरीर, चैतन्य-गोसाजि-श्री चैतन्य महाप्रभु; शरीरी-आत्मा; महा-धीर-अत्यन्त धीर।

अनुवाद

कवि ने कहा, “जगन्नाथजी अत्यन्त सुन्दर शरीर हैं और श्री चैतन्य महाप्रभु जो कि अत्यन्त धीर हैं, उस शरीर के स्वामी हैं।”

तात्पर्य

शरीरी उस व्यक्ति का द्योतक है, जो उस शरीर का मालिक है। भगवद्गीता (2.13) में कहा गया है :

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्षीरस्तत्र न मुह्यति ॥

“जिस तरह शरीरधारी आत्मा इस शरीर में बाल्यावस्था से तरुणावस्था में और फिर वृद्धावस्था में निरन्तर अग्रसर होता रहता है, उसी प्रकार मृत्यु होने पर आत्मा दूसरे शरीर में चला जाता है। धीर व्यक्ति ऐसे परिवर्तन से मोहग्रस्त नहीं होता।” संसार के सामान्य जीव के लिए शरीर तथा शरीर के स्वामी में अन्तर या भेद होता है। किन्तु आध्यात्मिक जगत् में ऐसा अन्तर नहीं है, क्योंकि शरीर स्वयं स्वामी है और स्वामी ही शरीर है। आध्यात्मिक जगत् में हर वस्तु को आध्यात्मिक होना चाहिए। अतएव शरीर तथा शरीर में कोई अन्तर नहीं है।

सहजे जड़-जगतेर चेतन कराइते ।

नीलाचले महाप्रभु हैला आविर्भूते ॥115॥

सहजे-स्वाभाविक रूप से; जड़-जगतेर-जड़ भौतिक जगत् को; चेतन कराइते-आध्यात्मिक चेतना दिलाने के लिए; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; हैला आविर्भूते-प्रकट हुए हैं।

अनुवाद

“श्री चैतन्य महाप्रभु यहाँ नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) में सम्पूर्ण जड़ भौतिक जगत् को आध्यात्मिक बनाने के लिए प्रकट हुए हैं।”

शुनिया सबार हैल आनन्दित-मन ।

दुःख पाजा स्वरूप कहे सक्रोध वचन ॥116॥

शुनिया-सुनकर; सबार-सभी को; हैल-हुआ; आनन्दित-मन-मन में अति आनन्द; दुःख पाजा-दुःखी होकर; स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने कहना प्रारम्भ किया; स-क्रोध वचन-क्रुद्ध वचनों के साथ।

अनुवाद

यह सुनकर वहाँ पर उपस्थित सारे लोग अत्यन्त प्रसन्न थे। किन्तु स्वरूप दामोदर, जो कि अकेले ही अत्यन्त दुःखी थे, अत्यन्त क्रोध से बोले।

आरे मूर्ख, आपनार कैलि सर्व-नाश! ।

दुइ त' ईश्वरे तोर नाहिक विश्वास ॥117॥

आरे मूर्ख-हे मूर्ख; आपना-अपना; कैलि-तुमने किया है; सर्व-नाश-सब सौभाग्य का नाश; दुइ त' ईश्वरे दोनों भगवान् में; तोर-तुम्हारा; नाहिक विश्वास-विश्वास नहीं है।

अनुवाद

उन्होंने कहा, “तुम मूर्ख हो। तुमने अपने सर्वनाश को अपने आप बुलाया है, क्योंकि तुम्हें न तो दो भगवानों-जगन्नाथ तथा श्री चैतन्य महाप्रभु-का ज्ञान है, न ही उनमें तुम्हारी श्रद्धा है।”

पूर्णानन्द-चित्स्वरूप जगन्नाथ-राय ।

तौरै कैलि जड़-नश्वर-प्राकृत-काय!! ॥118॥

पूर्ण-आनन्द-सम्पूर्ण दिव्य आनन्द; चित्-स्वरूप-आध्यात्मिक स्वरूप; जगन्नाथ-राय-भगवान जगन्नाथ; तौरै-उनको; कैलि-तुमने बना दिया; जड़-जड़; नश्वर- नाशवान; प्राकृत-भौतिक; काय-शरीरधारी।

अनुवाद

“भगवान जगन्नाथ सम्पूर्ण आध्यात्मिक हैं और दिव्य आनन्द से परिपूर्ण हैं, किन्तु तुमने उनकी तुलना जड़ नाशवान शरीर से की है, जो भगवान् की निष्क्रिय बहिरंगा शक्ति से बना है।”

तात्पर्य

यदि कोई यह सोचता है कि भगवान जगन्नाथ का स्वरूप काष्ठनिर्मित मूर्ति है, तो वह अपने लिए तुरन्त ही दुर्भाग्य को बुलावा देता है। पद्य पुराण के अनुसार--अर्ये विष्णौ शिलाधीः...यस्य वा नारकी सः ।”जो मन्दिर के अर्चाविग्रह को पत्थर या काष्ठ का बना मानता है, वह नरक का निवासी है।” इस तरह जो व्यक्ति यह सोचता है कि भगवान जगन्नाथ का शरीर पदार्थ का बना है और जो भगवान जगन्नाथ के शरीर तथा आत्मा में अन्तर करता है, उसे धिक्कार है, क्योंकि वह अपराधी है। वह शुद्ध भक्त, जो कृष्णभावना के विज्ञान को जानता है, वह भगवान जगन्नाथ

तथा उनके शरीर में अन्तर नहीं करता। वह जानता है कि वे अभिन्न हैं, ठीक वैसे ही जैसे कि भगवान् कृष्ण तथा उनका आत्मा एक हैं। जब मनुष्य के नेत्र आध्यात्मिक पद पर सम्पादित भक्ति द्वारा शुद्ध हो जाते हैं, तब वह भगवान् जगन्नाथ तथा उनके शरीर को वास्तव में पूर्ण आध्यात्मिक रूप में देख सकता है। इसलिए उन्नत भक्त पूज्य आराध्य श्रीविग्रह को सामान्य व्यक्ति की तरह शरीर के भीतर आत्मा से युक्त नहीं मानता। भगवान् जगन्नाथ के शरीर और आत्मा में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि भगवान् जगन्नाथ सच्चिदानन्द विग्रह हैं, ठीक उसी तरह जैसे कि कृष्ण का शरीर सच्चिदानन्द विग्रह है। वस्तुतः भगवान् जगन्नाथ तथा श्री चैतन्य महाप्रभु में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु बंगाल के अज्ञानी कवि ने भगवान् श्री जगन्नाथ के शरीर के लिए भौतिक अन्तर का प्रयोग किया।

पूर्ण-घडू-ऐश्वर्य चैतन्य—स्वयं भगवान् ।

तारै कैलि क्षुद्र जीव स्फुलिङ्ग समान!! ॥119॥

पूर्ण-सम्पूर्ण; षट्-ऐश्वर्य-छः ऐश्वर्यों से युक्त; चैतन्य-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; स्वयम्-स्वयं; भगवान्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; तारै-उनको; कैलि-तुमने बना दिया; क्षुद्र जीव-एक सामान्य जीवात्मा; स्फुलिङ्ग-समान-अंश के समान।

अनुवाद

“तुमने श्री चैतन्य महाप्रभु को, जो कि छः ऐश्वर्यों से युक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, सामान्य जीव के स्तर को कहा है। उन्हें परम अग्नि के रूप में न जानकर तुमने उन्हें एक स्फुलिङ्ग के रूप में मान लिया है।”

तात्पर्य

उपनिषदों में कहा गया है- यथाग्नेर् विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्ति-जीव अग्नि के स्फुलिङ्गों के समान हैं और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् मूल विशाल अग्नि माने जाते हैं। जब हम यह श्रुतिवाक्य सुनते हैं, तब हमें भगवान् कृष्ण तथा जीवों के बीच के अन्तर को समझना चाहिए। किन्तु जो व्यक्ति बहिरंगा शक्ति के अधीन होता है, वह इस अन्तर को नहीं समझ सकता। ऐसा व्यक्ति यह नहीं समझ सकता कि परम पुरुष मूल विशाल अग्नि हैं, जबकि जीव उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सूक्ष्म भिन्नांश मात्र हैं। भगवद्गीता (15.7) में कृष्ण कहते हैं :

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।

मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

“इस बद्ध जगत् में सारे जीव मेरे शाश्वत अंश हैं। बद्ध जीवन के कारण वे मन सहित छहों इन्द्रियों से घोर संघर्ष कर रहे हैं।”

भौतिक जगत् के जीव के शरीर तथा आत्मा में अन्तर होता है, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु तथा भगवान् जगन्नाथ के कोई भौतिक शरीर नहीं होते हैं, अतएव उनके शरीरों तथा आत्माओं में कोई अन्तर नहीं है। आध्यात्मिक स्तर पर शरीर तथा आत्मा अभिन्न हैं, उनमें कोई अन्तर नहीं है। श्रीमद्भागवत (1.11.38) में कहा गया है:

एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः।

न युज्यते सदात्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥

“यह भगवान् का ईश्वरत्व है। वे भौतिक प्रकृति के गुणों से प्रभावित नहीं होते, यद्यपि वे उनके संसर्ग में रहते हैं। इसी तरह जिन भक्तों ने भगवान् की शरण ले रखी है, वे भौतिक गुणों द्वारा प्रभावित नहीं हो सकते।” पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण प्रकृति के तीन गुणों से प्रभावित नहीं होते। निस्सन्देह, उनके भक्त भी बहिरंगा शक्ति के प्रभाव से अकलुषित रहते हैं, क्योंकि वे भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं। भक्त का शरीर भी आध्यात्मिक बन जाता है, जिस तरह कि अग्नि में रखी हुई लोहे की सलाख अग्नि के समान ही तप्त बन जाती है और जो कोई उसे छूता है, वह तुरन्त जल जाता है। इसलिए बंगाल के कवि ने भगवान् जगन्नाथ के शरीर तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् जगन्नाथ को दो भिन्न हस्ती-भौतिक तथा आध्यात्मिक-मानकर, जैसे भगवान् कोई सामान्य जीव हों, घोर अपराध किया। भगवान् सदैव भौतिक शक्ति के स्वामी हैं, अतएव वे सामान्य जीव के समान भौतिक शक्ति द्वारा आच्छादित नहीं होते।

दुइ-ठाजि अपराधे पाइबि दुर्गति! ।

अतत्त्व-ज्ञ ‘तत्त्व’ वर्णे, तार एइ रीति! ॥120॥

दुइ-ठाजि-दोनों के प्रति; अपराधे-अपराध द्वारा; पाइबि-तुम्हें मिलेगा; दुर्गति- नरक वास; अ-तत्त्व-ज्ञ-जिसे परम सत्य का कुछ भी ज्ञान नहीं है; तत्त्व वर्णे-परम सत्य का वर्णन करता है; तार-उसकी; एइ-यही; रीति-गति है।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने आगे कहा, “चूँकि तुमने भगवान् जगन्नाथ तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति अपराध किया है, अतएव तुम्हें नरक की प्राप्ति होगी। तुम यह भी नहीं जानते कि परम सत्य का वर्णन किस तरह किया जाता है, तो भी तुमने ऐसा करने का प्रयास किया है। इसलिए तुम्हें धिक्कार है।”

तात्पर्य

बंगाल से आया ब्राह्मण कवि स्वरूप दामोदर गोस्वामी की दृष्टि से एक अपराधी था, क्योंकि उसने परम सत्य का कोई ज्ञान न होते हुए भी उनका वर्णन करने का प्रयास किया था। यह बंगाली कवि श्री चैतन्य महाप्रभु तथा भगवान् जगन्नाथ दोनों के प्रति अपराधी था। चूँकि उसने भगवान् जगन्नाथ के शरीर तथा आत्मा में अन्तर किया था और उसी के साथ उसने श्री चैतन्य महाप्रभु को जगन्नाथजी से भिन्न कहा था, इसलिए उसने इन दोनों के प्रति अपराध किया था। अ-तत्त्व-ज्ञ वह है, जिसे परम सत्य का कोई ज्ञान नहीं होता अथवा जो अपने शरीर की पूजा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में करता है। यदि सकाम कर्म में लगा या केवल इन्द्रियतृप्ति में लगा रहने वाला व्यक्ति- अहंग्रहोपासक-मायावादी- परम सत्य का वर्णन करता है, तो वह तुरन्त अपराधी बन जाता है।

आर एक करियाछ परम ‘प्रमाद’! ।

देह-देहि-भेद ईश्वरे कैले ‘अपराध’! ॥121॥

आर एक-एक ओर; करियाछ-तुमने किया है; परम-बड़ी; प्रमाद-गलती; देह- देहि-भेद-शरीर और आत्मा के बीच अन्तर; ईश्वरे-भगवान् में; कैले-तुमने किया है; अपराध-अपराध।

अनुवाद

तुम पूर्णतया भ्रम में हो, क्योंकि तुमने भगवान् (जगन्नाथ अथवा श्री चैतन्य महाप्रभु) के शरीर तथा आत्मा में भेद किया है। यह एक महान् अपराध है।

तात्पर्य

जब कोई व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरीर तथा आत्मा में अन्तर करता है, तो वह तुरन्त अपराधी बन जाता है। चूँकि भौतिक जगत् में सारे जीव भौतिक शरीरों से आच्छादित होते हैं, अतएव सामान्य मनुष्य के शरीर तथा आत्मा अभिन्न नहीं हो सकते। परम भगवान् हर एक को उसके कर्म का फल देते हैं, क्योंकि वे सकाम कर्म के फलों के स्वामी हैं। वे समस्त कारणों के कारण भी हैं और भौतिक शक्ति के स्वामी हैं। अतएव वे सर्वश्रेष्ठ हैं। किन्तु सामान्य जीव अपनी भौतिक दशा में अपने सकाम कर्मों के फलों का भोग करता है, अतएव उनके प्रभाव में आ जाता है। यहाँ तक कि ब्रह्मभूत की मुक्त अवस्था में भी वह भगवान् की सेवा करता है। इस तरह सामान्य जीव तथा परम भगवान् में अन्तर होते हैं जो कर्मी तथा ज्ञानी इन अन्तरों की अवहेलना करते हैं, वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरणकमलों के प्रति अपराधी हैं।

सामान्य व्यक्ति भौतिक शक्ति के वशीभूत हो सकता है, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्-श्री चैतन्य महाप्रभु, भगवान् कृष्ण या भगवान् जगन्नाथ-सदैव भौतिक शक्ति के स्वामी हैं, अतएव वे कभी भी उसके प्रभाव के पात्र नहीं होते। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का परम असीम आध्यात्मिक स्वरूप होता है, जो कभी खंडित नहीं होता, किन्तु जीव की चेतना सीमित तथा सूक्ष्म होती है। सारे जीव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सनातन सूक्ष्म भिन्नांश होते हैं (ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः)। ऐसा नहीं है कि वे बद्ध जीवन में भौतिक शक्ति द्वारा आच्छादित रहते हैं, किन्तु जब इस भौतिक शक्ति के प्रभाव से मुक्त कर दिये जाते हैं, तो वे भगवान् के साथ एकाकार हो जाते हैं। ऐसा विचार अपराध है।

मायावादी मूर्खा के अनुसार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भौतिक भौतिक जगत् में प्रकट होते हैं, तब वे भौतिक शरीर धारण करते हैं। किन्तु एक वैष्णव इसे भलीभाँति जानता है कि सामान्य मनुष्यों की तरह कृष्ण, भगवान् जगन्नाथ या श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर तथा आत्मा में कोई अन्तर नहीं होता। यहाँ तक कि भौतिक जगत् में भी भगवान् अपना आध्यात्मिक स्वरूप बनाये रखते हैं। इसीलिए भगवान् कृष्ण ने अपने बाल रूप में भी समस्त ऐश्वर्यों को प्रकट किया। कृष्ण के शरीर तथा आत्मा में कोई अन्तर नहीं है चाहे उनका बाल रूप हो या कौमार रूप। वे सदैव अपने शरीर से अभिन्न हैं। यद्यपि कृष्ण सामान्य मनुष्य की तरह प्रकट होते हैं, किन्तु उन पर भौतिक जगत् के नियम लागू नहीं होते। वे स्वराट् हैं-पूर्ण स्वतन्त्र हैं। वे भौतिक जगत् में प्रकट हो सकते हैं, किन्तु इस मायावादी-मत के अपराधमूलक निष्कर्ष के विपरीत, उनका शरीर भौतिक नहीं होता। इस सन्दर्भ में पुनः श्रीमद्भागवत के उपर्युक्त श्लोक (1.11.38) का उल्लेख किया जा सकता है :

एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः ।

न युज्यते सदात्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥

परम पुरुष का शरीर सनातन तथा आध्यात्मिक होता है। यदि कोई पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरीर तथा आत्मा में भेद करना चाहता है, तो वह महान् अपराध करता है।

ईश्वरेर नाहि कभु देह-देहि-भेद ।

स्वरूप, देह,—चिदानन्द, नाहिक विभेद ॥122॥

ईश्वरेर-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का; नाहि-नहीं है; कभु-कभी भी; देह-देहि-भेद- शरीर और आत्मा में अन्तर; स्वरूप-स्वरूप; देह-शरीर; चित्-आनन्द-आनन्दमय आध्यात्मिक शक्ति से निर्मित; नाहिक विभेद-कुछ भी अन्तर नहीं है।

अनुवाद

“पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरीर तथा आत्मा में कभी भी कोई अन्तर नहीं होता। उनका स्वरूप तथा उनका शरीर आनन्दमय आध्यात्मिक शक्ति से बना होता है (चिदानन्द)। उनमें कोई अन्तर नहीं होता।

तात्पर्य

नन्द महाराज के पुत्र भगवान् कृष्ण अद्वय-ज्ञान हैं—अर्थात् उनके शरीर तथा आत्मा में कोई अन्तर नहीं होता, क्योंकि उनका अस्तित्व पूर्णतया आध्यात्मिक है। वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वम् से प्रारम्भ होने वाले श्रीमद्भागवत के श्लोक (1.2.11) के अनुसार परम सत्य को सदा तीन दृष्टिबिन्दुओं से समझा जाना चाहिए-ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान्। किन्तु भौतिक जगत् की वस्तुओं के विपरीत, परम सत्य सदैव एक और अपरिवर्तित रहता है। इसलिए उनके शरीर तथा आत्मा में कोई अन्तर नहीं होता। अतएव उनके रूप, नाम, गुण तथा लीलाएँ भौतिक जगत् की लीलाओं आदि से सर्वथा भिन्न हैं। यह भलीभाँति समझ लेना होगा कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरीर तथा आत्मा में कोई अन्तर नहीं है। जब कोई

व्यक्ति उनके शरीर तथा आत्मा में अन्तर की कल्पना करता है, तो वह तुरन्त भौतिक प्रकृति द्वारा बद्ध हो जाता है। चूँकि भौतिक जगत् में मनुष्य ऐसे अन्तर करता है, इसीलिए वह बद्धजीव कहलाता है।

“देह-देहि-विभागोऽयं नेश्वरे विद्यते क्वचित्” ॥123॥

देह-शरीर का; देहि-आत्मा का; विभाग:-भेद; अयम्-यह; न-नहीं; ईश्वरे-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में; विद्यते-होता है; क्वचित्-कभी भी।

अनुवाद

“पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के शरीर तथा आत्मा में कभी भी कोई अन्तर नहीं होता।”

तात्पर्य

यह उद्धरण लघु भागवतामृत (1.5.342) में सम्मिलित है और कूर्म पुराण का है।

नातः परं परम यद्भवतः स्वरूपम्

आनन्द-मात्रमविकल्पमविद्ध-वर्चः ।

पश्यामि विश्व-सृजमेकमविश्वमात्मन्

भूतेन्द्रियात्मक-मदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥124॥

तद्वा इदं भुवन-मङ्गल मङ्गलाय

ध्याने स्म नो दरशितं त उपासकानाम् ।

तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं

योऽनादृतो नरक-भाग्भिरसत्प्रसङ्गैः ॥ 125॥

न-नहीं; अतः परम्-इससे बढ़कर; परम-हे परमेश्वर; यत्-जो; भवतः-आपके; स्वरूपम्-नित्य स्वरूप; आनन्द-मात्रम्-निराकार ब्रह्मज्योति; अविकल्पम्-परिवर्तन रहित; अविद्ध-वर्चः-शक्ति के क्षय से रहित; पश्यामि-मैं देखता हूँ;

विश्व-सृजम्- ब्रह्माण्ड के रचयिता; एकम्-अद्वितीय; अविश्वम्-जड़ से परे; आत्मन्-हे परम कारण; भूत-शरीर; इन्द्रिय-इन्द्रियाँ; आत्मक-ऐसे व्यक्तित्व पर; मदः-घमण्ड; ते-आपको; उपाश्रितः-समर्पित; अस्मि-मैं हूँ; तत्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; वा-या; इदम्-यह वर्तमान स्वरूप; भुवन-मङ्गल-वे सभी ब्रह्माण्डों के लिए सर्व शुभकारी हैं; मङ्गलाय-सर्वमंगल के लिए; ध्याने-ध्यान में; स्म-यह जैसा था; नः-हमारे लिए; दर्शितम्-प्रकट हुआ; ते-आपके; उपासकाना-भक्तों का; तस्मै-उनको; नमः-मेरा सादर प्रणाम; भगवते-भगवान् के लिए; अनुविधेम-मैं करता हूँ; तुभ्यम्-आपको; यः-जो; अनादृतः-आदर नहीं किया गया; नरक-भाग्भिः-नरक जाने योग्य लोगों द्वारा; असत्-प्रसङ्गैः-भौतिक विषयों द्वारा।

अनुवाद

“हे मेरे प्रभु, मैं आपके इस शाश्वत आनन्द तथा ज्ञानमय रूप से श्रेष्ठ अन्य कोई रूप नहीं देखता हूँ। आध्यात्मिक आकाश में आपकी निर्विशेष ब्रह्मज्योति में न तो समय-समय पर कोई परिवर्तन होता है और न आपकी अन्तरंगा शक्ति में कोई हास पाया जाता है। मैं आपके प्रति आत्मसमर्पण करता हूँ, क्योंकि यद्यपि मुझे अपने भौतिक शरीर और इन्द्रियों पर अभिमान है, किन्तु आप पूरे ब्रह्माण्ड की सृष्टि के कारण हैं। फिर भी आपको जड़ पदार्थ स्पर्श नहीं करता।”

“आपका यह वर्तमान स्वरूप अथवा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा विस्तारित कोई अन्य रूप समस्त ब्रह्माण्डों के लिए समान रूप से मंगलकारी है। चूँकि आपने अपने इस शाश्वत व्यक्तिगत रूप को प्रकट किया है, जिसका आपके भक्त ध्यान करते हैं, इसलिए मैं आपको सादर नमन करता हूँ। जिन लोगों के भाग्य में नरक जाना निश्चित हो चुका है, वे लौकिक विषयों के चिन्तन में तल्लीन रहने के कारण आपके निजी रूप की उपेक्षा करते हैं।”

तात्पर्य

ये श्लोक श्रीमद्भागवत (3.9.3-4) से हैं, जिन्हें ब्रह्माजी ने कहा था।

काहाँ ‘पूर्णानन्दैश्वर्य’ कृष्ण ‘मायेश्वर’! ।

काहाँ ‘क्षुद्र’ जीव ‘दुःखी’, ‘मायार किङ्कर’! ॥126॥

काहाँ-कहाँ; पूर्ण-पूर्ण; आनन्द-आनन्द; ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; माया-ईश्वर-भौतिक प्रकृति के स्वामी; काहाँ-कहाँ; क्षुद्र जीव-तुच्छ बद्धजीव; दुःखी- दुःखी; मायार किङ्कर-भौतिक शक्ति का दास।

अनुवाद

“कहाँ दिव्य आनन्द से पूर्ण, छः पूर्ण आध्यात्मिक ऐश्वर्यों से युक्त तथा भौतिक शक्ति के स्वामी परम सत्य, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण और काहाँ क्षुद्र बद्धजीव, जो सदैव दुःखी रहता है और भौतिक शक्ति का दास है।”

तात्पर्य

जीव तो भौतिक शक्ति (माया) का नित्य बद्ध दास है, जबकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण भौतिक शक्ति के स्वामी (मायेश्वर) हैं। तो भला वे किस तरह समान स्तर पर हो सकते हैं? उनमें कोई तुलना नहीं हो सकती। भगवान् सदैव दिव्य आनन्द की अवस्था को प्राप्त रहते हैं, जबकि जीव भौतिक शक्ति के सम्पर्क में होने के कारण सदैव दुःखी रहता है। परमेश्वर भौतिक शक्ति को नियन्त्रित करते हैं और भौतिक शक्ति बद्धजीवों को नियन्त्रित करती है। इसलिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा सामान्य जीवों में कोई तुलना नहीं हो सकती।

ह्लादिन्या सम्बिदाश्चिष्टः सच्चिदानन्द-ईश्वरः ।

स्वाविद्या संवृतो जीवः सङ्क्लेश-निकराकरः ॥127॥

ह्लादिन्या-ह्लादिनी शक्ति द्वारा; सम्बिदा-सम्बित् शक्ति द्वारा; आश्चिष्टः-आवृत; सत्-चित्-आनन्दः-सदैव दिव्य आनन्द से पूर्ण; ईश्वरः-परम नियन्ता; स्व-अपने; अविद्या-अज्ञान द्वारा; संवृतः-आवृत; जीवः-जीव; सङ्क्लेश-त्रि-तापों के; निकर-भण्डार की; आकरः-खान॥

अनुवाद

“परम नियन्ता, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सदैव दिव्य आनन्द से पूरित रहते हैं और ह्लादिनी तथा सम्बित् नामक शक्तियों से युक्त होते हैं। किन्तु बद्धजीव सदैव अविद्या से आवृत रहता है और जीवन के तीन क्लेशों से चिन्तित रहता है। इस तरह वह सभी प्रकार के क्लेशों का आगार होता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीधर स्वामी कृत भावार्थ दीपिका (1.7.6) में है, जहाँ वे श्री विष्णु स्वामी का उद्धरण दे रहे हैं।

शुनि' सभा-सदेर चित्ते हैल चमत्कार ।

“सत्य कहे गोसाजि, दुँहार करियाछे तिरस्कार” ॥128॥

शुनि'-सुनकर; सभा-सदेर-सभा के सभी सदस्यों के; चित्ते-मनों में, हैल-हो गया; चमत्कार-आश्चर्य; सत्य-सच; कहे-कहा; गोसाजि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने; दुहार दोनों का; करियाछे-किया है; तिरस्कार-अपराध।

अनुवाद

यह व्याख्या सुनकर सभा के सारे सदस्य आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने स्वीकार किया कि, “स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने वास्तविक सत्य कहा है। बंगाल के इस ब्राह्मण ने भगवान जगन्नाथ तथा श्री चैतन्य महाप्रभु का गलत वर्णन करके अपराध किया है।”

शुनिया कविर हैल लज्जा, भय, विस्मय ।

हंस-मध्ये बक यैछे किछु नाहि कय ॥129॥

शुनिया-सुनकर; कविर-कवि का; हैल-हो गया; लज्जा-शर्म; भय-भय; विस्मय-आश्चर्य; हंस-मध्ये-श्वेत हंसों की सभा में; बक-एक बगुला; यैछे-जैसे; किछु-कुछ; नाहि-नहीं; कय-कहता।

अनुवाद

जब बंगाली कवि ने स्वरूप दामोदर गोस्वामी की यह भर्सना सुनी, तो वह लज्जित, भयभीत तथा आश्चर्यचकित हुआ। निस्सन्देह, हंसों के बीच में बगुले की तरह होने से वह कुछ भी नहीं कह सका।

तार दुःख देखि, स्वरूप सदय-हृदय ।

उपदेश कैला तारे यैछे 'हित' हय ॥130॥

तार-उसकी; दुःख देखि-अप्रसन्नता देखकर; स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; सदय-हृदय-अत्यन्त दयापूर्ण हृदय से; उपदेश कैला-उपदेश दिये; तारे-उसे; बैठे- ताकि; हित-लाभ; हय-हो सके।

अनुवाद

कवि के दुःख को देखकर अत्यन्त दयालु स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने उसे उपदेश दिया, जिससे उसे कुछ लाभ मिल सके।

याह, भागवत पढ़ वैष्णव स्थाने ।

एकान्त आश्रय कर चैतन्य-चरणे ॥ 131॥

याह-जाओ; भागवत पढ़- श्रीमद्भागवत पढ़ो; वैष्णव स्थाने-एक स्वरूप सिद्ध वैष्णव से; एकान्त आश्रय कर-पूर्ण समर्पण करो; चैतन्य-चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में।

अनुवाद

उन्होंने कहा, “यदि तुम श्रीमद्भागवत समझना चाहते हो, तो तुम्हें किसी स्वरूपसिद्ध वैष्णव के पास जाकर उससे सुनना चाहिए। तुम ऐसा तब कर सकते हो, जब तुम श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में पूरी तरह से शरण ग्रहण करते हो।”

तात्पर्य

यहाँ पर स्वरूप दामोदर गोस्वामी बंगाली कवि को शुद्ध वैष्णव से श्रीमद्भागवत सुनने और उनसे सीखने का उपदेश देते हैं। विशेषतया भारत में आजकल पेशेवर भागवत वाचकों का एक वर्ग है, जिनकी जीविका का साधन एक गाँव से दूसरे गाँव, एक नगर से दूसरे नगर जाकर भागवत का पठन करना तथा धन या सामान यथा छाता, वस्त्र, फल के रूप में दक्षिणा एकत्र करना है। इस तरह अब भागवत का व्यापार चल रहा है, जिसमें एक सप्ताह तक पाठ चलता है, जिसे भागवत सप्ताह कहते हैं, यद्यपि श्रीमद्भागवत में इसका कहीं कोई उल्लेख नहीं है। श्रीमद्भागवत में कहीं नहीं कहा गया है कि पेशेवर लोगों से एक सप्ताह में भागवत सुनी जाए। प्रत्युत श्रीमद्भागवत का कथन है। (1.2.17): शृण्वतां स्वकथा कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः। नियमित रूप से किसी स्वरूपसिद्ध वैष्णव से श्रीमद्भागवत का श्रवण करना चाहिए।

ऐसे श्रवण से वह पवित्र हो जाता है। हृद्यन्तस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम्। इस तरह जब कोई व्यक्ति नियमित रूप से तथा निष्ठापूर्वक भागवत सुनता है, तो उसका हृदय समस्त भौतिक कल्मष से मुक्त हो जाता है :

नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया ।

भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥

“जब कोई व्यक्ति नियमित रूप से भागवत सुनता है और शुद्ध भक्त की सेवा करता है, तो हृदय को कष्ट देने वाली हर वस्तु का लगभग विनाश हो जाता है और उत्तमश्लोक यशस्वी भगवान् के प्रति, जिनकी दिव्य गीतों से स्तुति की जाती है, प्रेमाभक्ति निर्विवाद रूप से स्थापित हो जाती है।” (भागवत 1.2.18)

यही सही विधि है, किन्तु लोग पेशेवर भागवत वाचकों द्वारा पथ-भ्रष्ट किये जाते हैं। इसलिए यहाँ पर स्वरूप दामोदर गोस्वामी परामर्श देते हैं कि पेशेवर वाचकों से श्रीमद्भागवत न सुनी जाए। बल्कि स्वरूपसिद्ध वैष्णव से भागवत सुनी और सीखी जाए। कभी-कभी यह देखा जाता है कि जब कोई मायावादी संन्यासी भागवत का पठन करता है, तो लोगों के झुंड शब्दों की जादूगरी सुनने जाते हैं, जिनसे कृष्ण के प्रति सुप्त प्रेम जागृत नहीं हो पाता। कभी-कभी लोग पेशेवर नाटक देखने तथा अभिनेताओं को भोजन तथा धन भेंट करने जाते हैं, जो इन भेंटों को एकत्र करने में पटु होते हैं। इसका फल यह होता है कि श्रोता लोग गृहमन्धकूपम् अर्थात् पारिवारिक आसक्ति की उसी स्थिति में पड़े रहते हैं और वे कृष्ण-प्रेम को जागृत नहीं कर पाते।

भागवत (7.5.30) में कहा गया है- मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम्-गृहव्रत अर्थात् जो भौतिकतावादी जीवन-शैली बनाये रखने के लिए दृढ़ संकल्प हैं, वे कभी भी अपने सुप्त कृष्ण-प्रेम को जागृत नहीं कर पायेंगे, क्योंकि वे गृहस्थ जीवन में अपनी स्थिति को दृढ़ करने के लिए तथा गृहस्थी एवं कामवासना में सुखी रहने के लिए ही भागवत सुनते हैं। पेशेवर लोगों से भागवत सुनने की इस विधि की भर्त्सना करते हुए स्वरूप दामोदर गोस्वामी कहते हैं याह, भागवत पढ़ वैष्णवे स्थाने-”भागवत समझने के लिए तुम्हें स्वरूपसिद्ध वैष्णव के पास जाना चाहिए।” मायावादी या अन्य अभक्त व्याकरण का प्रयोग करके शब्दों के वाग्जाल द्वारा शास्त्रों का मनगढन्त मतलब निकालने का प्रयास करता है और अबोध जनता से धन एकत्र करता है तथा लोगों को अन्धकार में रखता है। ऐसे लोगों से भागवत नहीं सुननी चाहिए।

स्वरूप दामोदर गोस्वामी श्रीमद्भागवत के तथाकथित भौतिकतावादी श्रोताओं के आचरण का कड़ाई से निषेध करते हैं। ऐसे भागवत श्रोता वास्तविक कृष्ण-प्रेम जागृत न करके गृहस्थ जीवन तथा यौन जीवन के प्रति अधिकाधिक आसक्त हो जाते हैं (यन्मैथुनादिगृहमेधिसुखं हि तुच्छम्)। श्रीमद्भागवत ऐसे व्यक्ति से सुननी चाहिए, जिसका भौतिक कार्यकलापों से कोई सम्बन्ध न हो अर्थात् जो परमहंस वैष्णव हो। संन्यास की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त व्यक्ति को परमहंस वैष्णव कहते हैं। निस्सन्देह, ऐसा तब तक सम्भव नहीं है, जब तक मनुष्य श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण ग्रहण नहीं करता। श्री चैतन्य महाप्रभु के पदचिह्नों का अनुसरण करने वाला व्यक्ति ही श्रीमद्भागवत को समझ सकता है।

चैतन्ये भक्त-गणेर नित्य कर 'सङ्ग' ।

तबेत जानिबा सिद्धान्त-समुद्र-तरङ्ग ॥132॥

चैतन्ये-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गणेर-भक्तों का; नित्य-नियमित; कर-करो; सङ्ग-संग; तबेत-केवल तभी; जानिबा-तुम समझोगे; सिद्धान्त-समुद्र-तरङ्ग-भक्ति के समुद्र की लहरों को।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने आगे कहा, “श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की नियमित रूप से संगति करो, तभी तुम भक्ति के समुद्र की तरंगों को समझ सकोगे।”

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि श्री चैतन्य महाप्रभु की भक्ति-पद्धति के अनुयायी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के सनातन संगी हैं और परम सत्य के पूर्ण ज्ञाता हैं। यदि कोई श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की संगति करके महाप्रभु के सिद्धान्तों का तुरन्त पालन करता है, तो उसके हृदय से भौतिक भोग की सारी काम-वासनाएँ लुप्त हो जाएँगी। तभी वह श्रीमद्भागवत का अर्थ और इसके सुनने के महत्त्व को समझ सकेगा। अन्यथा ऐसा समझ पाना असम्भव है।

तबेत पाण्डित्य तोमार हड़बे सफल ।

कृष्णेर स्वरूप-लीला वर्णिबा निर्मल ॥ 133॥

तबेत-केवल तभी; पाण्डित्य-विद्वत्ता; तोमार-तुम्हारी; हड़बे-होगी; स-फल- सफल; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; स्वरूप-लीला-दिव्य लीलाएँ; वर्णिबा-तुम वर्णन करोगे; निर्मल-भौतिक कल्मष से रहित।

अनुवाद

जब तुम श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तों के सिद्धान्तों का पालन करोगे, तभी तुम्हारी विद्या सफल होगी। तभी तुम भौतिक कल्मष के बिना कृष्ण की दिव्य लीलाओं के विषय में लिख सकोगे।

एइ श्लोक करियाछ पाजा सन्तोष ।

तोमार हृदयेर अर्थे दुँहाय लागे ‘दोष’ ॥134॥

एइ श्लोक-यह श्लोक; करियाछ-तुमने रचा है; पाजा सन्तोष-सन्तोष पाकर; तोमार हृदयेर-तुम्हारे हृदय का; अर्थे-अर्थ द्वारा; दुँहाय-दोनों के प्रति; लागे दोष- अपराध हुआ है।

अनुवाद

“यद्यपि तुमने इस परिचयात्मक श्लोक की रचना पूर्ण सन्तोषपूर्वक की है, किन्तु जिस अर्थ को तुमने व्यक्त किया है, वह जगन्नाथजी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु दोनों के प्रति अपराध से दूषित है।”

तुमि यैछे-तैछे कह, ना जानिया रीति ।

सरस्वती सेइ-शब्दे करियाछे स्तुति ॥ 135॥

तुमि-तुम; यैछे-तैछे-जैसे-तैसे; कह-कहते हो; ना जानिया रीति-नियमों को जाने बिना; सरस्वती विद्या की देवी ने; सेइ-शब्दे-उन शब्दों में; करियाछे स्तुति-प्रार्थनाएँ बनाई हैं।

अनुवाद

तुमने नियमों को न जानते हुए अनाप-शनाप लिखा है, किन्तु देवी सरस्वती ने तुम्हारे शब्दों का उपयोग भगवान् को अपनी स्तुति भेंट करने के लिए कर लिया है।

तात्पर्य

स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने बंगाली कवि को बतलाया, “तुम अपने अज्ञान तथा मायावादी दर्शन के प्रति झुकाव के कारण मायावाद तथा वैष्णव दर्शन में अन्तर नहीं कर सकते। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु तथा भगवान् जगन्नाथ की प्रशंसा करने के लिए तुमने जो प्रक्रिया अपनाई है, वह विधिपूर्वक नहीं है, अपितु वह अनियमित तथा अपराधपूर्ण है। किन्तु सौभाग्यवश तुम्हारे शब्दों से सरस्वती माता ने अपने स्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु की स्तुति चतुराई से की है।”

यैछे इन्द्र, दैत्यादि करे कृष्णे भर्सन ।

सेइ-शब्दे सरस्वती करेन स्तवन ॥136॥

यैछे-जिस प्रकार; इन्द्र-इन्द्र, स्वर्ग का राजा; दैत्य-राक्षस; आदि-और अन्य; करे-करते हैं; कृष्णे भर्सन-कृष्ण की निन्दा; सेइ-शब्दे-उन शब्दों द्वारा; सरस्वती- विद्या की देवी; करेन स्तवन-प्रार्थनाएँ अर्पित करती हैं।

अनुवाद

कभी-कभी असुर तथा स्वर्ग का राजा इन्द्र तक कृष्ण की भर्त्सना करते थे, किन्तु माता सरस्वती ने उनके शब्दों का लाभ उठाकर भगवान् की स्तुति की।

वाचालं बालिशं स्तब्धं अज्ञं पण्डित-मानिनम् ।

कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा में चक्रुरप्रियम् ॥137॥

वाचालम्-बातूनी; बालिशम्-बचकाना; स्तब्धम्-धृष्ट; अज्ञम्-मूर्ख; पण्डित- मानिनम्-स्वयं को महान् विद्वान् समझने वाला; कृष्णम्-कृष्ण को; मर्त्यम्-एक साधारण मरणशील मनुष्य; उपाश्रित्य-शरण लेकर; गोपा:-ग्वालों ने; मे-मेरे प्रति; चक्रुः-करते; अप्रियम्-जो बहुत अच्छा नहीं लगता।

अनुवाद

“[इन्द्र ने कहा :] “यह कृष्ण एक सामान्य मनुष्य है और वह वाचाल, बचकाना, उद्धत तथा अज्ञानी है, यद्यपि वह अपने आपको बहुत विद्वान मानता है। वृन्दावन के ग्वालों ने उसको स्वीकार करके मेरा अपमान किया है। यह बात मुझे बिल्कुल अच्छी नहीं लगी।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.25.5) से लिया गया है।

ऐश्वर्य-मदे मत्त इन्द्र,—येन मातोयाल ।

बुद्धि-नाश हैल, केवल नाहिक साम्भाल ॥138॥

ऐश्वर्य-मदे-अपने ऐश्वर्य के अभिमान में; मत्त-उन्मत्त; इन्द्र-स्वर्ग का राजा; येन-जैसे; मातोयाल-एक पागल व्यक्ति; बुद्धि-नाश-बुद्धि रहित; हैल-हो गया; केवल-केवल; नाहिक-नहीं; साम्भाल-सावधान।

अनुवाद

“स्वर्ग का राजा इन्द्र अपने स्वर्ग के ऐश्वर्य से अति गर्वित होकर पागल की तरह बन गया। इस तरह बुद्धि से रहित होकर वह कृष्ण के विषय में अनाप-शनाप बोलने से अपने आपको रोक न सका।”

इन्द्र बले,—“मुञ्जि कृष्णेर करियाछि निन्दन” ।

तार-इ मुखे सरस्वती करेन स्तवन ॥ 139॥

इन्द्र बले-इन्द्र कहता है; मुञ्जि-मैंने; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण की; करियाछि-की है; निन्दन-निन्दा और अपमान; तार-इ मुखे—उसके मुख से; सरस्वती माता सरस्वती, विद्या की देवी; करेन स्तवन-प्रार्थनाएँ करती हैं।

अनुवाद

इस प्रकार इन्द्र ने सोचा, “मैंने ठीक ही कृष्ण की भर्त्सना की और उसकी निन्दा की।” किन्तु विद्या की देवी सरस्वती ने इस अवसर का लाभ कृष्ण की स्तुति करने में उठाया।

‘वाचाल’ कहिये ‘वेद-प्रवर्तक’ धन्य ।

‘बालिश’—तथापि ‘शिशु-प्राय’ गर्व-शून्य ॥140॥

वाचाल-बातूनी; कहिये-मैं कहता हूँ; वेद-प्रवर्तक-जो वेद के आधार पर बोल सकता है; धन्य धन्य है; बालिश-बचकाना; तथापि—फिर भी; शिशु-प्राय-बच्चे जैसा; गर्व-शून्य-गर्व रहित।

अनुवाद

‘वाचाल’ शब्द का प्रयोग ऐसे व्यक्ति के लिए किया जाता है, जो वैदिक प्रमाण के अनुसार बोल सकता है और ‘बालिश’ शब्द का अर्थ है ‘अबोध।’ कृष्ण ने वैदिक ज्ञान का प्रवचन किया, फिर भी वे अपने आपको सदैव गर्वशून्य, अबोध बालक के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

वन्द्याभावे ‘अनम्र’—‘स्तब्ध’-शब्दे कय ।

याहा हैते अन्य ‘विज्ञ’ नाहि—से ‘अज्ञ’ हय ॥141॥

वन्द्य-अभावे-क्योंकि और कोई नहीं है जिसको प्रणाम किया जा सके; अनम्र-जो वन्दना नहीं करता; स्तब्ध-शब्दे-‘स्तब्ध’ शब्द द्वारा; कय-कहता है; याहा हैते—जिसकी अपेक्षा; अन्य-अन्य; विज्ञ-विद्वान; नाहि-नहीं; से-वे; अज्ञ-जिसके लिए कुछ भी अज्ञात नहीं; हय-है।

अनुवाद

“जब नमस्कार ग्रहण करने वाला कोई न हो, तो वह ‘अनम्र’ कहलाता है, अर्थात् वह जो किसी अन्य को नमस्कार नहीं करता। ‘स्तब्ध’ का यही अर्थ है। और चूँकि कृष्ण से बढ़कर कोई पण्डित नहीं है, इसलिए वे ‘अज्ञ’ कहे जा सकते हैं, जो यह सूचित करता है कि उनसे कुछ भी अज्ञात नहीं है।”

पण्डितेर मान्य-पात्र—हय ‘पण्डित-मानी’ ।

तथापि भक्त-वात्सल्ये ‘मनुष्य’ अभिमानी ॥ 142॥

पण्डित-विद्वानों का; मान्य-पात्र-सम्मान का पात्र; हय-है; पण्डित-मानी-विद्वानों द्वारा सम्मानित व्यक्ति; तथापि-
फिर भी; भक्त-वात्सल्य-भक्तों के प्रति अत्यन्त स्नेहशील होने के कारण; मनुष्य अभिमानी-स्वयं को साधारण मनुष्य
जैसा दिखाते हैं।

अनुवाद

‘पण्डित-मानी’ शब्द का प्रयोग यह सूचित करने के लिए किया जा सकता है कि विद्वान पण्डित भी
कृष्ण का आदर करते हैं। तो भी, अपने भक्तों के प्रति स्नेह के कारण कृष्ण सामान्य व्यक्ति की तरह प्रकट होते
हैं, इसलिए उन्हें ‘मर्त्य’ कहा जा सकता है।

जरासन्ध कहे,—“कृष्ण-पुरुष-अधम” ।

तोर सङ्गे ना युझिमु, “याहि बन्धु-हन्” ॥143॥

जरासन्ध कहे जरासंध कहता है; कृष्ण-कृष्ण; पुरुष-अधम-मनुष्यों में अधम है; तोर सङ्गे-तुम्हारे साथ; ना
युझिमु-मैं युद्ध नहीं करूँगा; याहि-क्योंकि; बन्धु-हन्- अपने सम्बन्धियों का हत्यारा।

अनुवाद

असुर जरासन्ध ने यह कहकर कृष्ण की भर्त्सना की कि, “तुम मनुष्यों में अधम हो। मैं तुमसे युद्ध नहीं
करूँगा, क्योंकि तुमने अपने ही सम्बन्धियों का वध किया है।”

तात्पर्य

इस श्लोक में भी माता सरस्वती कृष्ण की स्तुति करती हैं। पुरुष-अधम शब्द पुरुषोत्तम भगवान् का द्योतक है,
जिनके अधीन सारे मनुष्य रहते हैं। अथवा दूसरे शब्दों में, वे पुरुष उत्तम-सर्व जीवों में श्रेष्ठ हैं। इसी तरह बन्धुहन् शब्द
का अर्थ है “माया का वध करने वाला।” बद्ध जीवन की अवस्था में मनुष्य माया के साथ बन्धु (मित्र) की तरह सम्बन्धित
रहता है, किन्तु जब वह कृष्ण के सम्पर्क में आता है, तो उस सम्बन्ध से मुक्त हो जाता है।

याहा हैते अन्य पुरुष-सकल-‘अधम’ ।

सेइ हय 'पुरुषाधम'—सरस्वतीर मन ॥144॥

याहा हैते-जिससे; अन्य-अन्य; पुरुष-व्यक्ति; सकल-सभी; अधम-अधीन; सेइ-वह; हय-हैं; पुरुष-अधम-वह व्यक्ति जिसके अधीन सभी रहते हैं; सरस्वतीर मन-माता सरस्वती की व्याख्या।

अनुवाद

माता सरस्वती 'पुरुषाधम' का अर्थ पुरुषोत्तम लगाती हैं-‘वह जिसके अधीन सारे मनुष्य हैं।’

‘बान्धे सबारे’-ताते अविद्या ‘बन्धु’ हय ।

‘अविद्या-नाशक’-‘बन्धु-हन्’-शब्दे कय ॥145॥

बान्धे-बाँधती हैं; सबारे-सब को; ताते-अतः; अविद्या-अज्ञान या माया; बन्धु- बाँधनेवाली या सम्बन्धी; हय है; अविद्या-नाशक-माया का नाशकर्ता; बन्धु-हन्-शब्दे- बन्धु-हन् शब्द द्वारा; कय-माता सरस्वती कहती है।

अनुवाद

“अविद्या या माया को ‘बन्धु’ कहा जा सकता है, क्योंकि इस भौतिक जगत् में वह हर एक को बाँधती है। इसलिए ‘बन्धु-हन्’ शब्द का प्रयोग करके माता सरस्वती कहना चाहती हैं कि कृष्ण माया के नाशकर्ता हैं।”

तात्पर्य

हर व्यक्ति माया में बद्ध है, किन्तु जैसाकि भगवद्गीता (7.14) में कहा गया है-मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते—जैसे ही कोई कृष्ण की शरण ग्रहण करता है, वह माया से मुक्त हो जाता है। इसीलिए कृष्ण को बन्धु-हन् अर्थात् माया का नाशकर्ता कहा जा सकता है।

एइ-मत शिशुपाल करिल निन्दन ।

सेइ-वाक्ये सरस्वती करेन स्तवन ॥146॥

एइ-मत-इसी प्रकार; शिशुपाल-शिशुपाल; करिल निन्दन-निन्दा की; सेइ-वाक्ये-उन शब्दों द्वारा; सरस्वती विद्या की देवी ने; करेन स्तवन-प्रार्थनाएँ बनाईं।

अनुवाद

इसी तरह शिशुपाल ने भी कृष्ण की निन्दा की, किन्तु विद्या की देवी सरस्वती ने उसी के शब्दों द्वारा कृष्ण की स्तुति की।

तैछे एइ श्लोके तोमार अर्थे 'निन्दा' आइसे ।

सरस्वतीर अर्थ शुन, याते 'स्तुति' भासे ॥147॥

तैछे-इस प्रकार; एइ श्लोके-इस श्लोक में; तोमार-तुम्हारे; अर्थे-अर्थ द्वारा; निन्दा-निन्दा; आइसे-आती है; सरस्वतीर अर्थ-माता सरस्वती का अर्थ; शुन-सुनो; याते-जिसके द्वारा; स्तुति-प्रार्थनाएँ; भासे-प्रतीत हों।

अनुवाद

इसी तरह यद्यपि तुम्हारे अर्थ के अनुसार तुम्हारा श्लोक निन्दापरक है, किन्तु माता सरस्वती इसका लाभ भगवान् की स्तुति करने में उठाती हैं।

जगन्नाथ हन कृष्णेर 'आत्म-स्वरूप' ।

किन्तु इहाँ दारु-ब्रह्म—स्थावर-स्वरूप ॥148॥

जगन्नाथ भगवान् जगन्नाथ; हन-हैं; कृष्णेर आत्म-स्वरूप-कृष्ण से अभिन्न; किन्तु किन्तु; इहाँ-जगन्नाथ पुरी में; दारु-ब्रह्म-परम भगवान् काष्ठ के रूप में प्रकट; स्थावर-स्वरूप-अचल स्वरूप।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ एवं कृष्ण में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु यहाँ पर भगवान् जगन्नाथ काष्ठ में प्रकट होने वाले परम पुरुष के रूप में स्थिर हैं। इसलिए वे गति नहीं करते।

ताहा-सह आत्मता एक-रूप हवा ।

कृष्ण एक-तत्त्व-रूप-दुई रूप हवा ॥ 149॥

ताँहा-सह-उनके साथ; आत्मता-आत्मा होने का गुण; एक-रूप हवा-एक स्वरूप; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; एक-तत्त्व-रूप-एक सिद्धान्त; दुई-दो; रूप-रूप; हवा-होकर।

अनुवाद

“इस तरह भगवान् जगन्नाथ तथा श्री चैतन्य महाप्रभु दो दिखते हुए भी एक हैं, क्योंकि दोनों ही कृष्ण हैं, जो केवल एक हैं।”

संसार-तारण-हेतु येइ इच्छा-शक्ति ।

ताहार मिलन करि' एकता येछे प्राप्ति ॥ 150॥

संसार-तारण-हेतु-समस्त जगत् का उद्धार करने के लिए; येइ-जो; इच्छा-शक्ति-इच्छा शक्ति; ताहार-उस इच्छा के; मिलन करि'-मिलन द्वारा; एकता-एकता; येछे-ताकि; प्राप्ति-प्राप्त हो।

अनुवाद

“दोनों में समस्त संसार का उद्धार करने की परम इच्छा मिलती है और इसलिए भी वे एक ही हैं।”

सकल संसारी लोकेर करिते उद्धार ।

गौर-जङ्गम-रूपे कैला अवतार ॥ 151॥

सकल-सभी; संसारी-भौतिक दूषणों से युक्त; लोकेर-लोगों का; करिते उद्धार- उद्धार करने के लिए; गौर-श्री चैतन्य महाप्रभु; जङ्गम-सचल; रूपे-रूप में; कैला अवतार-अवतरित हुए हैं।

अनुवाद

“संसार के समस्त दूषित लोगों का उद्धार करने के लिए वही कृष्ण अवतरित हुए हैं और श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में विचरण कर रहे हैं।”

जगन्नाथेर दर्शने खण्डाय संसार ।

सब-देशेर सब-लोक नारे आसिबार ॥152॥

जगन्नाथेर-भगवान् जगन्नाथ के दर्शने-दर्शन द्वारा; खण्डाय संसार-भौतिक अस्तित्व से मुक्ति हो जाती है; सब-देशेर-सभी देशों के; सब-लोक-सभी लोग; नारे आसिबार-आ नहीं सकते।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने से मनुष्य भौतिक अस्तित्व से छूट जाता है, किन्तु न तो सारे देशों के सारे लोग जगन्नाथ पुरी आ सकते हैं, न ही उनको प्रवेश दिया जा सकता है।

श्री-कृष्ण-चैतन्य-प्रभु देशे देशे याजा ।

सब-लोके निस्तारिला जङ्गम-ब्रह्म हजा ॥ 153॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य-प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने; देशे देशे याजा-एक देश से दूसरे देश घूमकर; सब-लोके निस्तारिला-सभी बद्धजीवों का उद्धार किया; जङ्गम-ब्रह्म-संचल ब्रह्म; हजा-बनकर।

अनुवाद

किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं या अपने प्रतिनिधियों द्वारा एक देश से दूसरे देश में जाते हैं। इस तरह वे गतिशील ब्रह्म की तरह संसार के समस्त लोकों का उद्धार करते हैं।

सरस्वतीर अर्थ एइ कहिलुँ विवरण ।

एहो भाग्य तोमार ऐछे करिले वर्णन ॥ 154॥

सरस्वतीर-सरस्वती का; अर्थ-अर्थ; एइ-यह; कहिलुँ विवरण-मैंने वर्णन किया; एहो-यह; भाग्य-महाभाग्य; तोमार ऐछे-तुम्हारा है; करिले वर्णन-तुमने वर्णन किया।

अनुवाद

इस तरह मैंने माता सरस्वती द्वारा इच्छित अर्थ की व्याख्या की है। यह तुम्हारा परम सौभाग्य है कि तुमने इस तरह भगवान् जगन्नाथ तथा श्री चैतन्य महाप्रभु का वर्णन किया है।

“कृष्णे गालि दिते करे नाम उच्चारण ।

सेइ नाम हय तार ‘मुक्तिर’ कारण” ॥155॥

कृष्णे-भगवान् कृष्ण की; गालि दिते-निन्दा करने में करे नाम उच्चारण-कृष्ण का नाम उच्चारण करता है; सेइ नाम-वही पवित्र नाम; हय-बन जाता है; तार-उसकी; मुक्तिर कारण-मुक्ति का कारण।

अनुवाद

“कभी-कभी ऐसा होता है कि जो व्यक्ति कृष्ण की भर्त्सना करना चाहता है, वह पवित्र नाम का उच्चारण करता है और इस तरह वह नाम उसकी मुक्ति का कारण बन जाता है।”

तबे सेइ कवि सबार चरणे पड़िया ।

सबार शरण लैल दन्ते तृण लजा ॥ 156 ॥

तबे-फिर; सेइ-उस; कवि-कवि ने; सबार-सभी के; चरणे-चरणों में; पड़िया-गिरकर; सबार-सभी भक्तों की; शरण लैल-शरण ले ली; दन्ते-मुख में; तृण लजा-तिनका लेकर।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोस्वामी द्वारा इस उचित व्याख्या को सुनकर बंगाली कवि समस्त भक्तों के चरणों पर गिर पड़ा और अपने मुँह में तिन्का दबाकर उसने सबकी शरण ग्रहण की।

तबे सब भक्त तारे अङ्गीकार कैला ।

तार गुण कहि’ महाप्रभुरे मिलाइला ॥157॥

तबे-फिर; सब भक्त-सभी भक्तों ने; तारे-उसे; अङ्गीकार कैला-अपने संगियों में से एक के रूप में स्वीकार किया; तार गुण कहि’—उसका विनम्र आचरण वर्णित करके; महाप्रभुरे मिलाइला—उसे श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलवाया।

अनुवाद

तब सारे भक्तों ने उसकी संगति स्वीकार की। उसके विनीत स्वभाव की बातें करते हुए उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु से उसका परिचय कराया।

सेइ कवि सर्व त्यजि' रहिला नीलाचले ।

गौर-भक्त-गणेर कृपा के कहिते पारे? ॥158॥

सेइ कवि-वह कवि; सर्व त्यजि'-सब मूर्खतापूर्ण कार्य छोड़कर; रहिला-रहने लगा; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में; गौर-भक्त-गणेर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की; कृपा-दया; के-कौन; कहिते पारे-वर्णन कर सकता है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की कृपा से उस बंगाली कवि ने अन्य सारे कार्य त्याग दिये और वह उनके साथ जगन्नाथ पुरी में रहने लगा। भला श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की कृपा को कौन बतला सकता है?

एइ त' कहिलुँ प्रद्युम्न-मिश्र-विवरण ।

प्रभुर आज्ञाय कैल कृष्ण-कथार श्रवण ॥159॥

एइ त कहिलुँ-इस प्रकार मैंने वर्णन किया है; प्रद्युम्न-मिश्र-विवरण-प्रद्युम्न मिश्र का विवरण; प्रभुर आज्ञाय-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश पर; कैल-किया; कृष्ण-कथा श्रवण-कृष्ण विषयक कथाओं का श्रवण।

अनुवाद

इस प्रकार मैंने प्रद्युम्न मिश्र की कथा का और जिस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा के अनुसार उसने रामानंद राय द्वारा कही गई कृष्ण विषयक वार्ताएँ सुनीं, उसका वर्णन किया है।

तार मध्ये कहिलुँ रामानन्देर महिमा ।

आपने श्री-मुखे प्रभु वर्णे याँर सीमा ॥160॥

तार मध्ये-इन व्याख्यानों में; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया है; रामानन्दर महिमा- रामानन्द राय की महिमा; आपने-स्वयं; श्री-मुखे-अपने मुख से; प्रभु-महाप्रभु ने; वर्णे-वर्णन किया; याँर-जिनके; सीमा-प्रेमभाव की सीमा का।

अनुवाद

इसी कथा के बीच में मैंने श्री रामानन्द राय के यशस्वी गुणों का वर्णन किया है, जिनके माध्यम से श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं कृष्ण-प्रेम की सीमाओं का वर्णन किया है।

प्रस्तावे कहिलुँ कविर नाटक-विवरण ।

अज्ञ हजा श्रद्धाय पाइल प्रभुर चरण ॥161॥

प्रस्तावे-साथ ही; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया; कविर-कवि का; नाटक-विवरण-नाटक का विवरण; अज्ञ हजा-अज्ञानी होते हुए भी; श्रद्धाय-विश्वास और प्रेम से; पाइल-प्राप्त किया; प्रभुर चरण-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

इस कथा के मध्य मैंने बंगाली कवि के नाटक के विषय में भी कहा है। यद्यपि वह अज्ञानी था, किन्तु अपनी श्रद्धा तथा दीनता के कारण उसने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण प्राप्त की।

श्री-कृष्ण-चैतन्य-लीला—अमृतेर सार ।

एक-लीला-प्रवाहे वहे शत-शत धार ॥162॥

श्री-कृष्ण-चैतन्य-लीला-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; अमृतेर सार- अमृत का सार; एक-लीला-एक लीला के; प्रवाहे-प्रवाह द्वारा; वहे-बहती हैं; शत-शत धार-सैकड़ों धाराएँ।

अनुवाद

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अमृत की सार हैं। उनकी एक लीला की धारा से सैकड़ों-हजारों शाखाएँ बहती हैं।

श्रद्धा करि' एइ लीला येइ पड़े, शुने ।

गौर-लीला, भक्ति-भक्त-रस-तत्त्व जाने ॥ 163॥

श्रद्धा करि'—विश्वास और प्रेम के साथ; एइ लीला-ये लीलाएँ; येइ-जो कोई भी; पड़े शुने-पढ़ता और सुनता है; गौर-लीला- भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; भक्ति-भक्त-रस-तत्त्व-भक्ति, भक्तों और उनके दिव्य रसों के विषय में सब सत्य; जाने-जान सकता है।

अनुवाद

जो व्यक्ति श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक इन लीलाओं को पढ़ता तथा सुनता है, वह भक्ति, भक्त तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के दिव्य रसों के सत्य को समझ सकता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥164॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी के; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे-चरणकमलों में; यार-जिसकी; आश—आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्रीरूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलकर श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्री चैतन्य-चरितामृत अन्त्य-लीला के पाँचवे अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें यह वर्णन हुआ है कि प्रद्युम्न मिश्र ने किस तरह रामानन्द राय से उपदेश प्राप्त किया।

अध्याय छह

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रघुनाथ दास गोस्वामी की भेंट

भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृतप्रवाह भाष्य में इस अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु में प्रेमावेश के दिव्य विकार प्रकट होते थे, तब रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी उनके पास रहते और उनकी इच्छा के अनुरूप उनको सन्तुष्ट किया करते थे। रघुनाथ दास गोस्वामी बहुत समय से श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों के निकट आने का प्रयास कर रहे थे, इसलिए अन्ततः उन्होंने घर-बार छोड़ दिया और महाप्रभु से भेंट की।

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन जाते समय शान्तिपुर गये थे, तब रघुनाथ दास गोस्वामी ने महाप्रभु के चरणकमलों पर अपना जीवन अर्पित करने की बात की थी। किन्तु इसी बीच एक मुसलमान अधिकारी रघुनाथ दास गोस्वामी के ताऊ हिरण्य दास से ईर्ष्या करने लगा और उसने किसी बड़े दरबारी सचिव को उसको बन्दी बनाने के लिए प्रेरित किया। इस तरह हिरण्य दास ने अपना घर छोड़ दिया, किन्तु रघुनाथ दास की बुद्धिमानी से गलतफहमी दूर हो गई। तब रघुनाथ दास पानिहाटि चले गये और उन्होंने श्री नित्यानन्द प्रभु के आदेश से वहाँ चिड़ादधि महोत्सव सम्पन्न किया, जिसमें उन्होंने चिउड़ा के साथ दही मिलाकर वितरित किया। इस उत्सव के अगले दिन नित्यानन्द प्रभु ने रघुनाथ दास को आशीर्वाद दिया कि उसे शीघ्र ही श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण प्राप्त होगी। इस घटना के बाद रघुनाथ दास अपने पुरोहित यदुनन्दन आचार्य की सहायता से चालाकी से अपने घर से निकल भागे। वे आम रास्ते से न जाकर छिपते हुए जगन्नाथपुरी गये। वे बारह दिनों के बाद जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में पहुँचे।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुनाथदास गोस्वामी को स्वरूप दामोदर गोस्वामी के हाथों सौंप दिया। इसलिए रघुनाथ दास गोस्वामी का दूसरा नाम स्वरूपे रघु या स्वरूप-दामोदर का रघुनाथ है। रघुनाथ दास गोस्वामी पाँच दिनों तक मन्दिर में प्रसाद लेते रहे, किन्तु बाद में वे सिंह द्वार पर खड़े रहते और भिक्षा से जो भी मिल जाता उसे खाते। बाद में वे विभिन्न छत्रों (लंगरों) से भीख माँगकर जीवन धारण करने लगे। जब रघुनाथ दास के पिता को यह समाचार मिला, तो उसने कुछ सेवक तथा धन भेजा, किन्तु रघुनाथ दास ने यह धन लेने से मना कर दिया। यह जानकर कि रघुनाथदास गोस्वामी छत्रों से भीख माँगकर जीवन-यापन करते हैं, श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी गुंजा माला तथा गोवर्धन पर्वत की एक शिला (गोवर्धन शिला) उन्हें भेंट की। तत्पश्चात् रघुनाथ दास गोस्वामी फेंके गये भोजन को एकत्र करके उसे धोकर खाने लगे। इस विरक्त जीवन से स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु दोनों ही अतीव प्रसन्न थे। एक दिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने वही भोजन छीनकर खाया और रघुनाथ दास गोस्वामी को उनके वैराग्य के लिए आशीर्वाद दिया।

कृपा-गुणैर्यः कुगृहान्ध-कूपाद्

उद्धृत्य भङ्ग्या रघुनाथ-दासम् ।

न्यस्य स्वरूपे विदधेऽन्तरङ्गं

श्री-कृष्ण-चैतन्यममुं प्रपद्ये ॥१॥

कृपा-गुणैः-अहैतुकी कृपा रूपी रस्सियों द्वारा; यः-जो; कु-गृह-घृणित पारिवारिक जीवन रूपी; अन्ध-कूपात्-अन्धकूप से; उद्धृत्य-उद्धार पाकर; भङ्ग्या –युक्ति द्वारा; रघुनाथ-दासम्-रघुनाथ दास गोस्वामी को; न्यस्य-सौंपकर; स्वरूपे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी को; विदधे-बनाया; अन्तः-अङ्गम्-अपने अन्तरंग साथियों में से एक; श्री-कृष्ण-चैतन्यम्-भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु को; अमुम्-उनको; प्रपद्ये-मैं प्रणाम करता हूँ।

अनुवाद

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने अपनी अहैतुकी कृपा रूपी रस्सी से रघुनाथदास गोस्वामी को घृणित पारिवारिक जीवन रूपी अन्धे कुएँ से उद्धार करने के लिए युक्ति का प्रयोग किया। उन्होंने रघुनाथ दास गोस्वामी को स्वरूप दामोदर गोस्वामी के संरक्षण में रखकर अपना निजी संगी बनाया। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द- नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो; अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-भगवान् चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत आचार्य की जय हो! और श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

एङ्-मत गौरचन्द्र भक्त-गण-सङ्गे ।

नीलाचले नाना लीला करे नाना-रङ्गे ॥3॥

एङ्-मत-इस प्रकार; गौरचन्द्र-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; भक्त-गण-सङ्गे-अपने संगियों के साथ; नीलाचले-नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) में; नाना-अनेक; लीला-लीलाएँ; करे-करते; नाना-रङ्गे-अनेक प्रकार के दिव्य आनन्द में।

अनुवाद

इस तरह भगवान् गौरचन्द्र ने अपने संगियों के साथ जगन्नाथपुरी में नाना प्रकार की दिव्य आनन्ददायिनी लीलाएँ सम्पन्न कीं।

यद्यपि अन्तरे कृष्ण-वियोग बाधये ।

बाहिरे ना प्रकाशय भक्त-दुःख-भये ॥4॥

प्रद्यपि-यद्यपि; अन्तरे-हृदय में; कृष्ण-वियोग-कृष्ण का विरह; बाधये-बाधा देता; बाहिरे-बाहरी रूप से; ना प्रकाशय-नहीं दिखाते; भक्त-दुःख-भये-भक्तों की अप्रसन्नता के भय से।

अनुवाद

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण के विछोह की पीड़ा होती थी, किन्तु वे अपनी भावनाओं को बाह्य रूप से प्रकट नहीं करते थे, क्योंकि उन्हें भय था कि भक्तगण दुःखी होंगे।

उत्कट विरह-दुःख यबे बाहिराय ।

तबे ने वैकल्य प्रभुर वर्णन ना याय ॥5॥

उत्कट-तीव्र; विरह-दुःख-विरह का दुःख; यबे-जब; बाहिराय-प्रकट होता; तबे-उस समय; ये-जो; वैकल्य-परिवर्तन; प्रभुर-महाप्रभु के; वर्णन ना याय-वर्णन नहीं किये जा सकते।

अनुवाद

जब कृष्ण के विछोह से उत्पन्न गहन दुःख को महाप्रभु प्रकट करते, तो उनमें जो विकार आते, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

रामानन्देर कृष्ण-कथा, स्वरूपेर गान ।

विरह-वेदनाय प्रभुर राखये पराण ॥6॥

रामानन्द-रामानन्द राय की; कृष्ण-कथा-भगवान् कृष्ण की कथाएँ; स्वरूपे गान-स्वरूप दामोदर के गीत; विरह-वेदनाय-विरह वेदना के समय पर; प्रभुर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का; राखये-रखते; पराण-जीवन ।

अनुवाद

जब महाप्रभु को कृष्ण के विछोह की तीव्र पीड़ा का अनुभव होता, तब एकमात्र श्री रामानन्द राय द्वारा कही गई कृष्ण कथा तथा स्वरूप दामोदर के मधुर गीत उन्हें जीवित रखते।

दिने प्रभु नाना-सङ्गे हय अन्य मन ।

रात्रि-काले बाड़े प्रभुर विरह-वेदन ॥7॥

दिने-दिन के समय; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; नाना-सङ्गे-अनेक संगियों द्वारा; हय-हो जाते; अन्य-व्यस्त; मन-उनका मन; रात्रि-काले-रात को; बाड़े-बढ़ जाता; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; विरह-वेदन-विरह का कष्ट।

अनुवाद

दिन के समय विविध भक्तों की संगति होने से महाप्रभु का मन कुछ दूसरी ओर लगा रहता, किन्तु रात में कृष्ण-विरह की पीड़ा तेजी से बढ़ जाती।

ताँ सुख-हेतु सङ्गे रहे दुइ जना ।

कृष्ण-रस-श्लोक-गीते करेन सान्त्वना ॥8॥

ताँ सुख-हेतु-उनकी प्रसन्नता के लिए; सङ्गे-उनके संग में; रहे-रहते; दुइ जना-दो व्यक्ति; कृष्ण-रस-कृष्ण के दिव्य रसों के; श्लोक-श्लोकों; गीते-गीतों द्वारा; करेन सान्त्वना-वे सांत्वना देते।

अनुवाद

दो व्यक्ति रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी महाप्रभु के साथ रहते, जो उनकी तुष्टि हेतु कृष्णलीला विषयक विविध श्लोक सुनाकर तथा उपयुक्त गीत गाकर उनको शान्त रखते।

सुबल यैछे पूर्वे कृष्ण-सुखे सहाय ।

गौर-सुख-दान-हेतु तैछे राम-राय ॥9॥

सुबल-सुबल, कृष्ण के गोपसखाओं में से एक; यैछे-जिस प्रकार; पूर्वे-पहले; कृष्ण-सुखेर-कृष्ण को सुख देने के लिए; सहाय-सहायक; गौर-सुख-दान-हेतु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को आनन्द देने के लिए; तैछे-उसी प्रकार; राम-राय-रामानन्द राय।

अनुवाद

पूर्वकाल में जब भगवान् कृष्ण स्वयं उपस्थित थे, तब उनका एक ग्वाल मित्र सुबल उन्हें तब सुख देता, जब वे राधारानी का विरह अनुभव करते। उसी तरह रामानन्द राय श्री चैतन्य महाप्रभु को सुख देने में सहायक बनते।

पूर्वे यैछे राधार ललिता सहाय-प्रधान ।

तैछे स्वरूप-गोसाजि राखे महाप्रभुर प्राण ॥10॥

पूर्वे-पहले; यैछे-जिस प्रकार; राधार-श्रीमती राधारानी की; ललिता-ललिता नामक उनकी सखी; सहाय-प्रधान-सर्वोच्च सहायिका; तैछे-उसी प्रकार; स्वरूप- गोसाजि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; राखे-रखते; महाप्रभुर प्राण-श्री चैतन्य महाप्रभु का जीवन।

अनुवाद

पूर्वकाल में जब श्रीमती राधारानी कृष्ण-वियोग की पीड़ा का अनुभव करतीं, तब उनकी नित्य सखी ललिता अनेक प्रकार से सहायता करके उन्हें जीवित रखतीं। उसी तरह जब श्री चैतन्य महाप्रभु को राधारानी के भाव आते, तब स्वरूप दामोदर गोस्वामी उनका जीवन बनाये रखने में उनकी सहायता करते।

एइ दुइ जनार सौभाग्य कहन ना याय ।

प्रभुर 'अन्तरङ्ग' बलि' यारै लोके गाय ॥11॥

एइ दुइ जनार-इन दो लोगों का; सौभाग्य-सौभाग्य; कहन ना याय-वर्णन नहीं किया जा सकता; प्रभुर-भगवान् श्री
चैतन्य महाप्रभु के; अन्तरङ्ग-अत्यन्त अन्तरंग संगी; बलि'-जैसे; यारै-जिसे; लोके-लोग; गाय-कहते।

अनुवाद

रामानन्द राय तथा स्वरूप दामोदर गोस्वामी के सौभाग्य का वर्णन कर पाना अत्यन्त कठिन है। वे श्री
चैतन्य महाप्रभु के घनिष्ठ विश्वसनीय मित्रों के रूप में विख्यात थे।

एइ-मत विहरे गौर लजा भक्त-गण ।

रघुनाथ-मिलन एबे शुन, भक्त-गण ॥12॥

एइ-मत-इस प्रकार; विहरे-आनन्द लेते; गौर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; लजा भक्त-गण-अपने भक्तों को साथ
लेकर; रघुनाथ-मिलन-रघुनाथ दास गोस्वामी से मिलन; एबे-अब; शुन-सुनिए; भक्त-गण-हे भक्तों।

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु अपने भक्तों के साथ जीवन का आनन्द लेते थे। हे श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों, अब
सुनो कि रघुनाथ दास गोस्वामी किस तरह महाप्रभु से मिले।

पूर्वे शान्तिपुरे रघुनाथ प्रबे आइला ।

महाप्रभु कृपा करि' तारै शिखाइला ॥13॥

पूर्वे-पहले; शान्तिपुरे-शान्तिपुर में; रघुनाथ-रघुनाथ दास; यबे आइला-जब वे आये; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु
ने; कृपा करि'-अहैतुकी कृपा दर्शाकर; तारै शिखाइला-उन्हें शिक्षा दी।

अनुवाद

जब गृहस्थ जीवन के समय रघुनाथ दास श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने शान्तिपुर गये, तब महाप्रभु ने
अपनी अहैतुकी कृपावश उन्हें योग्य शिक्षाएँ दीं।

प्रभुर शिक्षाते तेंहो निज-घरे याय ।

मर्कट-वैराग्य छाड़ि' हैला 'विषयि-प्राय' ॥14॥

प्रभुर शिक्षाते-श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेश द्वारा; तेंहो-वे; निज-घरे याय-अपने घर लौट गये; मर्कट-वैराग्य-बन्दर
जैसा वैराग्य; छाड़ि'—छोड़कर; हैला-हो गये; विषयि-प्राय-एक विषयी व्यक्ति जैसे।

अनुवाद

तथाकथित वैरागी बनने के स्थान पर रघुनाथ दास महाप्रभु के उपदेशों का अनुसरण करते हुए अपने
घर लौटे और विषयी-व्यक्ति की तरह कार्य करने लगे।

भितरे वैराग्य, बाहिरे करे सर्व-कर्म ।

देखिया त' माता-पितार आनन्दित मन ॥15॥

भितरे-अपने हृदय में; वैराग्यपूर्ण विरक्ति; बाहिरे-बाहरी रूप से; करे-करते; सर्व-सब; कर्म-कार्य; देखिया-देखकर;
त'—निश्चय ही; माता-पितार-माता और पिता का; आनन्दित-सन्तुष्ट; मन-मन।

अनुवाद

रघुनाथ दास अपने गृहस्थ जीवन से भी भीतर से पूरी तरह विरक्त थे, किन्तु उन्होंने अपने वैराग्य को बाहर प्रकट
नहीं किया। उल्टे वे सामान्य व्यापारी की तरह कार्य करते रहे। यह देखकर उनके माता-पिता सन्तुष्ट थे।

‘मथुरा हैते प्रभु आइला’,—वार्ता यबे पाइला ।

प्रभु-पाश चलिबारे उद्योग करिला ॥16॥

मथुरा हैते-मथुरा से; प्रभु आइला-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु लौट आये हैं; वार्ता-सन्देश; यबे पाइला—जब उन्हें
मिला; प्रभु-पाश-श्री चैतन्य महाप्रभु के पास; चलिबारे-जाने का; उद्योग करिला-प्रयास किया।

अनुवाद

जब उन्हें यह सन्देश मिला कि श्री चैतन्य महाप्रभु मथुरापुरी से लौट आये हैं, तो रघुनाथ दास ने महाप्रभु
के चरणों तक जाने का प्रयास किया।

हेन-काले मुलुकेर एक म्लेच्छ अधिकारी ।

सप्तग्राम-मुलुकेर से हय 'चौधुरी' ॥17॥

हेन-काले-इस समय; मुलुकेर-प्रदेश का; एक-एक; म्लेच्छ-मुस्लिम; अधिकारी-अफसर; सप्तग्राम-मुलुकेर-सप्तग्राम नामक स्थान का; से-वह व्यक्ति; हय-है; चौधुरी-कर संग्रहक।

अनुवाद

उस समय एक मुसलमान अधिकारी सप्तग्राम से कर वसूलता था।

तात्पर्य

पहले जब मुसलमान सरकार शासन करती थी, तब कर वसूल करने के लिए नियुक्त व्यक्ति स्थानीय जमींदारों से कर वसूल करता था। वह एकत्रित राशि का एक चौथाई अपने लाभ के रूप में रख लेता और शेष सरकारी खजाने में जमा कर देता था।

हिरण्य-दास मुलुक निलमक्रर करिया ।

तार अधिकार गेल, मरे से देखिया ॥18॥

हिरण्य-दास-रघुनाथ गोस्वामी के ताऊ; मुलुक निल-प्रदेश का अधिकार लिया; मक्रर करिया-कुछ समझौते द्वारा; तार अधिकार गेल-मुस्लिम चौधरी ने अपना पद गवाँ दिया; मरे से देखिया-हिरण्य दास से अत्यन्त ईर्ष्या करने लगा।

अनुवाद

जब रघुनाथ दास के ताऊ हिरण्य दास ने कर वसूलने के लिए सरकार से समझौता किया, तो मुसलमान चौधुरी या कर संग्राहक अपना पद खोने के कारण उससे अत्यधिक ईर्ष्या करने लगा।

बार लक्ष देय राजाय, साधे बिश लक्ष ।

से 'तुरुक्' किछु ना पाजा हैल प्रतिपक्ष ॥19॥

बार लक्ष-1,200,000 सिक्के; देय-देते थे; राजाय-मुस्लिम राज्य को; साधे- एकत्रित करते; बिश लक्ष-20,00,000 सिक्के; से तुरुक्-वह तुर्क; किछु-कुछ; ना पाजा-न पाकर; हैल प्रतिपक्ष-उनका शत्रु बन गया।

अनुवाद

हिरण्यदास बीस लाख रुपये एकत्र करते थे, अतएव उन्हें सरकार को पन्द्रह लाख रुपये देने चाहिए थे। किन्तु वे केवल बारह लाख रुपये देते थे और इस तरह तीन लाख रुपये अधिक लाभ उठाते थे। यह देखकर मुसलमान चौधुरी जो कि तुर्क था उनका प्रतिद्वन्द्वी बन गया।

राज-घरे कैफियत् दिया उज्जीरे आनिल ।

हिरण्य-दास पलाइल, रघुनाथेरे बान्धिल ॥20॥

राज-घरे-राजकोष को; कैफियत् दिया-एक गुप्त हिसाब भेजकर; उज्जीरे आनिल-अधिकारी मन्त्री को बुला लाया; हिरण्य-दास पलाइल-हिरण्य दास भाग गये; रघुनाथेरे बान्धिल-उसने रघुनाथ दास को बन्दी बना लिया।

अनुवाद

सरकारी खजाने को गुप्त हिसाब भेजकर चौधुरी कार्यकारी मन्त्री को ले आया। हिरण्यदास को पकड़ने के उद्देश्य से चौधुरी आया, किन्तु वे घर छोड़ चुके थे। अतएव चौधुरी ने रघुनाथ दास को बन्दी बना लिया।

प्रति-दिन रघुनाथे करये भर्त्सना ।

‘बाप-ज्येठारे आन’, नहे पाइबा यातना ॥21॥

प्रति-दिन-रोज;रघुनाथे-रघुनाथ दास को; करये भर्त्सना-वह डाँटता; बाप- ज्येठारे आने-अपने पिता और तारु को लाओ; नहे-अन्यथा; पाइबा यातना-तुम्हें दण्ड मिलेगा।

अनुवाद

प्रतिदिन वह मुसलमान रघुनाथ दास की भर्त्सना करता और उनसे कहता, “अपने पिता तथा उसके बड़े भाई (तारु) को ले आओ, अन्यथा तुम्हें दण्ड दिया जायेगा।”

मारिते आनये यदि देखे रघुनाथे ।

मन फिरि' याय, तबे ना पारे मारिते ॥22॥

मारिते-मारने के लिए; आनये-लाता; यदि-जब; देखे-देखता; रघुनाथे-रघुनाथ दास को; मन-उसका मन; फिरि'
याय-बदल जाता; तबे-उस समय; ना पारे मारिते- वह मार नहीं पाता।

अनुवाद

चौधुरी उन्हें पीटना चाहता था, किन्तु जब वह रघुनाथ के मुख की ओर देखता, तो उसका मन बदल
जाता और वह उन्हें पीट नहीं पाता था।

विशेषे कायस्थ-बुद्धये अन्तरे करे डर ।

मुखे तर्जे गर्जे, मारिते सभय अन्तर ॥23॥

विशेषे-विशेष रूप से; कायस्थ-बुद्धये-एक कायस्थ जानकर; अन्तरे-अपने हृदय में; करे डर-भयभीत होता;
मुखे-अपने मुख से; तर्जे गर्जे-डराता; मारिते-मारने में; स-भय-भय; अन्तर-हृदय में।

अनुवाद

निस्सन्देह, वह चौधुरी रघुनाथ दास से भयभीत था, क्योंकि रघुनाथ दास कायस्थ जाति के थे। यद्यपि
चौधुरी उसे मुख से डाँटता-डपटता था, किन्तु उन्हें पीटने से डरता था।

तात्पर्य

रघुनाथ दास उच्चकुलीन कायस्थ परिवार के थे। स्थानीय लोगों पर उनका काफी प्रभाव था, इसलिए वह चौधुरी
उन्हें पीटने से डरता था। ऊपर से वह रघुनाथ दास को डाँटता-डपटता था, किन्तु उन्हें पीटता नहीं था। भारत में सामान्यतया
कायस्थ जाति के लोग अत्यन्त बुद्धिमान तथा व्यापार प्रबन्ध में पटु होते हैं। पहले वे अधिकांशतः सरकारी अफसर थे।
उनका उल्लेख याज्ञवल्क्य तक ने किया है, जिसका उद्धरण श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अमृत-प्रवाह-भाष्य में दिया है :

चाटतष्करदुवृतै महासाहसिकादिभिः ।

पीड़्यमाना प्रजा रक्षेत् कायस्थैश्च विशेषतः ॥

इस श्लोक से प्रतीत होता है कि कायस्थ जाति के सरकारी अधिकारी कभी-कभी नागरिकों को डाँटते-फटकारते थे, अतः राजा का कर्तव्य होता था कि कायस्थों के अत्याचार से जनता की रक्षा करे। बंगाल में कायस्थ जाति का सम्मान प्रायः ब्राह्मणों जैसा होता है, किन्तु उत्तरी भारत में कायस्थों को शूद्र माना जाता है, क्योंकि ये सामान्यतः माँस खाते हैं तथा मदिरा पीते हैं। जो भी हो, इतिहास से यही प्रतीत होता है कि कायस्थ अत्यन्त बुद्धिमान होते हैं। इसीलिए मुसलमान चौधुरी रघुनाथ दास से भयभीत था, क्योंकि वे कायस्थ जाति के थे।

तबे रघुनाथ किछु चिन्तिला उपाय ।

विनति करिया कहे सेइ म्लेच्छ-पाय ॥24॥

तबे-तब; रघुनाथ-रघुनाथ दास गोस्वामी; किछु-कुछ; चिन्तिला-विचार किया; उपाय-उपाय; विनति करिया-अत्यन्त विनम्रतापूर्वक; कहे-वे कहते हैं; सेइ म्लेच्छ- उस मुस्लिम चौधरी के; पाय-चरणों में।

अनुवाद

जब यह हो रहा था, तो रघुनाथ दास ने इसका समाधान निकालने की एक युक्ति सोची। अतः उन्होंने मुसलमान चौधरी के चरणों पर यह अनुनय किया।

आमार पिता, ज्येठा हय तोमार दुइ भाइ ।

भाइ-भाइये तोमरा कलह कर सर्वदाइ ॥25॥

आमार पिता-मेरे पिता; ज्येठा-और उनके बड़े भाई; हय-हैं; तोमार-आपके; दुइ भाइ-दो भाई; भाइ-भाइये-भाई-भाई के बीच; तोमरा-आप सबका; कलह कर-झगड़ा; सर्वदाई-सदैव।

अनुवाद

“हे महोदय, मेरे पिता तथा उनके बड़े भाई (ताऊ) दोनों ही आपके भाई हुए। सारे भाई किसी न किसी बात के लिए सदैव झगड़ते आये हैं।”

कभु कलह, कभु प्रीति—इहार निश्चय नाई।

कालि पुनः तिन भाइ हइबा एक-ठाजि ॥ 26॥

कभु-कभी; कलह-लड़ाई; कभु-कभी; प्रीति-अति अन्तरंग मैत्रीपूर्ण व्यवहार; इहार-इन सबका; निश्चय नाई-कोई निश्चय नहीं; कालि-अगले दिन; पुनः-फिर; तिन भाइ-तीनों भाई; हइबा-हो जायेंगे; एक-ठाजि-इकट्ठे।

अनुवाद

“कभी भाई-भाई परस्पर लड़ते हैं, तो कभी मैत्रीपूर्ण व्यवहार करते हैं। इसका कोई निश्चय नहीं कि ऐसे बदलाव कब आ जाए। इस तरह मुझे पूरा विश्वास है कि आज आप लड़ रहे हैं, किन्तु कल आप तीनों भाई शान्ति से एक स्थान पर बैठे होंगे।”

आमि यैछे पितार, तैछे तोमार बालक ।

आमि तोमार पाल्य, तुमि आमार पालक ॥27॥

आमि-मैं; यैछे—जिस प्रकार; पितार-अपने पिता का; तैछे—उसी प्रकार; तोमार-आपका; बालक-पुत्र; आमि-मैं; तोमार-आपका; पाल्य-पालन योग्य व्यक्ति; तुमि-आप; आमार-मेरे; पालक-पालक।

अनुवाद

जिस तरह मैं अपने पिता का पुत्र हूँ, उसी तरह आपका भी हूँ। मैं आपके आश्रित हूँ और आप मेरे पालनकर्ता हैं।

“पालक हवा पाल्येरे ताड़िते ना युयाय ।

तुमि सर्व-शास्त्र जान ‘जिन्दा-पीर’-प्राय” ॥28॥

पालक हवा-एक पालक होकर; पाल्येरे-आश्रित को; ताड़िते-दण्ड देना; ना युयाय-अच्छा नहीं है; तुमि-आप; सर्व-शास्त्र—सभी शास्त्र; जान-जानते हैं; जिन्दा-पीर-एक जीवित साधु; प्राय-के समान।

अनुवाद

“पालनकर्ता के लिए शोभा नहीं देता कि अपने द्वारा पाले जाने वाले व्यक्ति को दण्ड दे। आप सभी शास्त्रों में निपुण हैं। निस्सन्देह, आप एक जीवन्त सन्त के समान हैं।”

एत शुनि' सेइ म्लेच्छेर मन आर्द्र हैन ।

दाडि वाहि' अश्रु पड़े, काँदिते लागि ल ॥ 29॥

एत शुनि'-यह सुनकर; सेइ म्लेच्छेर-उस मुस्लिम का; मन-मन; आर्द्र हैल-नर्म हो गया; दादि वाहि'-उसकी दाढ़ी से बहकर; अश्रु पड़े-आँसु गिरने लगे; काँदिते लागि ल-रोने लगा।

अनुवाद

रघुनाथ दास की याचनापूर्ण वाणी सुनकर उस मुसलमान का हृदय पिघल गया। वह रोने लगा और उसके आँसू उसकी दाढ़ी से लुढ़क पड़े।

म्लेच्छ बले, —“आजि हैते तुमि—मोर 'पुत्र' ।

आजि छाड़ाइमु तोमा' करि' एक सूत्र" ॥30॥

म्लेच्छ बले-मुस्लिम ने कहा; आजि हैते-आज से; तुमि-तुम; मोर पुत्र-मेरा पुत्र; आजि-आज; छाड़ाइमु तोमा'-मैं तुम्हें मुक्त कर दूँगा; करि' एक सूत्र-किसी न किसी विधि से।

अनुवाद

मुसलमान चौधरी ने रघुनाथ दास से कहा, “आज से तुम मेरे पुत्र हुए। मैं आज तुम्हें किसी न किसी तरह छोड़ाकर रहूँगा।”

उजिरे कहिया रघुनाथे छोड़ाइल ।

प्रीति करि' रघुनाथे कहिते लागि ल ॥31॥

उजिरे-मन्त्री को; कहिया-कहकर; रघुनाथे छोड़ाइल-रघुनाथ दास को छोड़वा दिया; प्रीति करि'-अत्यन्त स्नेहपूर्वक; रघुनाथे-रघुनाथ दास को; कहिते लागि ल-कहने लगा।

अनुवाद

मन्त्री को सूचित करके चौधरी ने रघुनाथ दास को छोड़ दिया और तब उनसे अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहने लगा।

तोमार ज्येठा निर्बुद्धि अष्ट-लक्ष खाय ।

आमि—भागी, आमारे किछु दिबारे युयाय ॥32॥

तोमार ज्येठा-तुम्हारे पिता का बड़ा भाई; निर्बुद्धि-बुद्धि विहीन; अष्ट-लक्ष खाय-8,00,000 सिक्के खाता है; आमि-मैं; भागी-भागीदार; आमारे-मुझे; किछु-कुछ; दिबारे-देना; युयाय-उचित है।

अनुवाद

उसने कहा, “तुम्हारे पिता का बड़ा भाई (तुम्हारा ताऊ) कम बुद्धि वाला है। वह आठ लाख रुपयों का भोग करता है, किन्तु क्योंकि मैं उसका भागीदार हूँ, अतएव उसे उसका कुछ हिस्सा मुझे भी देना चाहिए।”

याह तुमि, तोमार ज्येठारे मिलाह आमारे ।

ये-मते भाल हय करुन, भार दिलुँ तारै ॥ 33॥

याह-जाओ; तुमि-तुम; तोमार-अपने; ज्येठारे-ताऊ का; मिलाह आमारे-मुझसे मिलन करवाओ; ये-मते-किसी भी विधि से; भाल-अच्छा; हय-है; करुन-उसे करने दो; भार दिलुँ तारै-मैं पूर्णतया उस पर निर्भर रहूँगा।

अनुवाद

“अब तुम जाकर मेरे तथा अपने ताऊ के बीच भेंट कराओ। वह जो भला समझता हो वही करो। मैं पूरी तरह उसके निर्णय पर आश्रित रहूँगा।”

रघुनाथ आसि' तबे ज्येठारे मिलाइल ।

म्लेच्छ-सहित वश कैल—सब शान्त हैल ॥34॥

रघुनाथ-रघुनाथ दास ने; आसि-आकर; तबे-तब; ज्येठारे मिलाइल-चौधरी और अपने पिता के बड़े भाई की एक भेंट रखवाई; म्लेच्छ-सहित-मुस्लिम के साथ; वश कैल-उन्होंने समझौता किया; सब-सब कुछ; शान्त हैल-शान्त हो गया।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने अपने ताऊ तथा चौधरी की भेंट का प्रबन्ध किया। उन्होंने कलह का समाधान कर दिया और सब शान्त हो गया।

एइ-मत रघुनाथेर वत्सरेक गेल ।

द्वितीय वत्सरे पलाइते मन कैल ॥ 35 ॥

एइ-मत-इस प्रकार; रघुनाथेर-रघुनाथ दास का; वत्सरेक-एक वर्ष; गेल-बीता गया; द्वितीय वत्सरे-अगले साल; पलाइते-घर से भागने का; मन कैल-विचार किया।

अनुवाद

इस तरह रघुनाथ दास ने पूरा एक वर्ष अच्छे व्यापारी प्रबन्धक के रूप में बिताया, किन्तु अगले वर्ष उन्होंने पुनः घर छोड़ने का निश्चय किया।

रात्रे उठि' एकेला चलिला पलाजा ।

दूर हैते पिता तरै आनिल धरिया ॥ 36॥

रात्रे-रात को; उठि'-उठकर; एकेला-अकेले; चलिला-निकले; पलाजा-भागने; दूर हैते-कुछ दूरी से; पिता-उनके पिता; तरै-उन्हें; आनिल-वापस ले आये; धरिया-पकड़कर।

अनुवाद

एक रात वे अकेले उठे और चल पड़े, किन्तु उनके पिता ने दूर स्थान पर उन्हें पकड़ लिया और वे उन्हें लौटा ले आये।

एङ-मते बारे बारे पलाय, धरि' आने ।

तबे तार्र माता कहे तार्र पिता सने ॥37॥

एङ-मते-इस प्रकार; बारे बारे-बारम्बार; पलाय-वे भाग जाते; धरि आने-उन्हें वापस लाते; तबे-तब; तार्र माता-उनकी माता; कहे-कहती है; तार्र पिता सने-उनके पिता से।

अनुवाद

यह प्रायः प्रतिदिन का व्यापार बन गया था। रघुनाथ घर से भाग जाते और उनके पिता उन्हें फिर लौटा ले आते। तब रघुनाथ दास की माता ने उनके पिता (अपने पति) से कहा।

“पुत्र ‘बातुल’ हड़ल, इहाय राखह बान्धिया” ।

तार्र पिता कहे तारे निर्विण्ण हज्रा ॥38॥

पुत्र-पुत्र; बातुल हड़ल-पागल हो गया है; इहाय-उसे; राखह बान्धिया-बाँधकर रखो; तर पिता-उसके पिता; कहे-कहते हैं; तारे-उसे (माता को); निर्विण्ण हज्रा-बहुत दुःखी होकर।

अनुवाद

माताने कहा, “हमारा पुत्र पागल हो गया है। उसे रस्सी से बाँधकर रखो।” उनके पिता अत्यन्त दुःखी होकर अपनी पत्नी से बोले।

“इन्द्र-सम ऐश्वर्य, स्त्री अप्सरा-सम ।

ए सब बान्धिते नारिलेक यार्र मन” ॥ 39॥

इन्द्र-सम-स्वर्ग के राजा इन्द्र के समान; ऐश्वर्य-भौतिक ऐश्वर्य; स्त्री-पत्नी; अप्सरा-सम-स्वर्ग की अप्सरा के समान; ए सब-ये सब; बान्धिते-बाँधने में; नारिलेक-समर्थ नहीं हुए; यार्र मन-जिसका मन।

अनुवाद

हमारे पुत्र रघुनाथ दास के पास स्वर्ग के राजा इन्द्र के जैसा ऐश्वर्य है और उसकी पत्नी अप्सरा जैसी सुन्दर है। फिर भी यह सब उसके मन को बाँध नहीं सका।

दड़ि बन्धने तौरै राखिबा के-मते? ।

जन्म-दाता पिता नारे ‘प्रारब्ध’ खण्डाड़ते ॥40॥

दड़ि बन्धने-रस्सियों के बन्धनों द्वारा; तौरै-उसे; राखिबा-तुम रखोगी; के मते-कैसे; जन्म-दाता पिता-जन्म देने वाला पिता; नारे-समर्थ नहीं है; प्रारब्ध-पूर्व कर्मों का फल; खण्डाड़ते-नष्ट करने में।

अनुवाद

तो फिर हम इस बालक को रस्सियों से बाँधकर घर पर कैसे रख सकते हैं? किसी के पिता के लिए भी यह सम्भव नहीं है कि किसी के विगत कर्मों के फल को निरस्त कर दे।

“चैतन्य-चन्द्रेर कृपा हाछे इँहारे ।

चैतन्य-चन्द्रेर ‘बातुल’ के राखिते पारे?” ॥41॥

चैतन्य-चन्द्रेर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की; कृपा-कृपा; हाछे इँहारे इस पर हो गई है; चैतन्य-चन्द्रेर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के; बातुल-पागल को; के-कौन; राखिते पारे-रख सकता है।

अनुवाद

“श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस पर पूर्ण कृपा की है। चैतन्यचन्द्र के पागल को घर पर कौन रख सकता है?”

तबे रघुनाथ किछु विचारिला मने ।

नित्यानन्द-गोसाजिर पाश चलिला आर दिने ॥42॥

तबे-तत्पश्चात्; रघुनाथ-रघुनाथ दास ने; किछु-कुछ; विचारिला मने-अपने मन में विचार किया; नित्यानन्द-गोसाजिर पाश-नित्यानन्द गोसांई के पास; चलिला-गये; आर दिने-अगले दिन।

अनुवाद

तब रघुनाथ दास ने अपने मन में कुछ विचार किया और अगले दिन वे नित्यानन्द गोसांई के पास गये।

पानिहाटि-ग्रामे पाइला प्रभुर दरशन ।

कीर्तनीया सेवक सङ्गे आर बहु-जन ॥43॥

पानिहाटि-ग्रामे-पाणिहाटि नामक गाँव में; पाइला-पाए; प्रभुर दरशन-नित्यानन्द प्रभु के दर्शन; कीर्तनीया सेवक-संकीर्तन करने वाले और सेवक; सङ्गे-साथ; आर-और; बहु-जन-अन्य अनेक लोग।

अनुवाद

पानिहाटि गाँव में रघुनाथ दास की भेंट नित्यानन्द प्रभु से हुई, जिनके साथ अनेक कीर्तन करने वाले, सेवक तथा अन्य लोग थे।

गङ्गा-तीरे वृक्ष-मूले पिण्डार उपरे ।

वसियाछेन-येन कोटी सूर्योदय करे ॥44॥

गङ्गा-तीरे-गंगा के किनारे; वृक्ष-मूले-एक वृक्ष के नीचे; पिण्डार उपरे-एक शिला के ऊपर; वसियाछेन-बैठे हुए; येन-जैसे; कोटी सूर्य-करोड़ों सूर्य; उदय करे-उदय हो रहे हों।

अनुवाद

गंगानदी के तट पर एक वृक्ष के नीचे एक शिला पर बैठे हुए नित्यानन्द प्रभु करोड़ों उदय होते सूर्यों के समान तेज युक्त प्रतीत हो रहे थे।

तले उपरे बहु-भक्त हाछे वेष्टित ।

देखि' प्रभुर प्रभाव रघुनाथ—विस्मित ॥ 45 ॥

तले-भूमि के उपरे-ऊपर; बहु-भक्त-अनेक भक्त; हाछे वेष्टित-वे घिरे हुए थे; देखि'-देखकर; प्रभुर प्रभाव-
नित्यानन्द प्रभु का प्रभाव; रघुनाथ-रघुनाथ दास; विस्मित-विस्मित हो गये।

अनुवाद

उन्हें घेरकर भूमि पर अनेक भक्त बैठे हुए थे। नित्यानन्द प्रभु के प्रभाव को देखकर रघुनाथ दास
आश्चर्यचकित हो गये।

दण्डवत् हजा सेइ पड़िला कत-दूरे ।

सेवक कहे,—‘रघुनाथ दण्डवत् करे’ ॥ 46॥

दण्डवत् हजा—एक दण्ड के समान गिरकर; सेइ-वे; पड़िला कत-दूर-दूर से गिरते हैं; सेवक कहे-नित्यानन्द प्रभु
के सेवक ने कहा; रघुनाथ-रघुनाथ दास; दण्डवत् करे-प्रणाम कर रहा है।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने दूर स्थान पर ही दण्ड की तरह गिरकर नमस्कार किया और नित्यानन्द प्रभु के सेवक ने
इंगित किया, “रघुनाथ दास आपको नमस्कार कर रहा है।”

शुनि' प्रभु कहे,—“चोरा दिलि दरशन ।

आय, आय, आजि तोर करिमु दण्डन” ॥47॥

शुनि'-सुनकर; प्रभु कहे-नित्यानन्द प्रभु ने कहा; चोरा-चोर; दिलि दरशन—तुम मुझे मिलने आये हो; आय आय—
इधर आओ, इधर आओ; आजि-आज; तोर-तुम्हें; करिमु-मैं दूँगा; दण्डन—दण्ड।

अनुवाद

यह सुनकर नित्यानन्द प्रभु ने कहा, “तुम चोर हो। अब तुम मुझे मिलने आये हो। यहाँ आओ, यहाँ
आओ। आज मैं तुम्हें दण्ड दूँगा!”

प्रभु बोलाय, तेंहो निकटे ना करे गमन ।

आकर्षिया तारं माथे प्रभु धरिला चरण ॥48॥

प्रभु बोलाय-प्रभु बुलाते हैं; तेंहो-वे; निकटे-पास; ना करे गमन-नहीं आते; आकर्षिया-उन्हें पास बुलाकर; तारं माथे-उनके सिर पर; प्रभु-नित्यानन्द प्रभु: धरिला चरण-अपने चरण रखते हैं।

अनुवाद

प्रभु ने उन्हें बुलाया, किन्तु रघुनाथ दास उनके निकट नहीं गये। तब प्रभु ने उन्हें बलपूर्वक पकड़ लिया और उनके सिर पर अपना चरणकमल रख दिया।

कौतुकी नित्यानन्द सहजे दयामय ।

रघुनाथे कहे किछु हजा सदय ॥49॥

कौतुकी-अत्यंत विनोदी; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द; सहजे-स्वभाव से; दया-मय-अत्यन्त दयालु; रघुनाथे-रघुनाथ दास से; कहे-कहते हैं; किछु-कुछ; हजा स- दय-कृपापूर्वक।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु स्वभाव से अत्यन्त दयालु तथा विनोदी थे। दयालु होने के कारण वे रघुनाथ दास से इस प्रकार बोले।

“निकटे ना आइस, चोरा, भाग’ दूरे दूरे ।

आजि लाग्पाजाछि, दण्डिमु तोमारे” ॥50॥

निकटे-समीप; ना आइस-तुम नहीं आते; चोरा-चोर; भाग-तुम भाग जाते हो; दूरे दूरे-दूर; आजि-आज; लाग् पाजाछि-मैंने पकड़ लिया; दण्डिमु तोमारे-मैं तुम्हें दण्ड दूँगा।

अनुवाद

तुम चोर की भाँति हो, क्योंकि पास आने के बदले तुम दूर रहते हो। अब चूँकि मैंने तुम्हें पकड़ लिया है, इसलिए तुम्हें दण्ड दूँगा।

“दधि, चिड़ा भक्षण कराह मोर गणे” ।

शुनि’ आनन्दित हैल रघुनाथ मने ॥51॥

दधि-दही; चिड़ा-चिड़ा; भक्षण कराह-खिलाओ; मोर गणे-मेरे संगियों को; शुनि’-सुनकर; आनन्दित हैल-अत्यन्त प्रसन्न हो गये; रघुनाथ-रघुनाथ दास; मने-मन में ।

अनुवाद

“तुम उत्सव मनाओ और मेरे सभी संगियों को दही तथा चिउड़ा खिलाओ।” यह सुनकर रघुनाथ दास अत्यधिक प्रसन्न हुए।

सेइ-क्षणे निज-लोक पाठाइला ग्रामे ।

भक्ष्य-द्रव्य लोक सब ग्राम हैते आने ॥52॥

सेइ-क्षणे-तुरन्त; निज-लोक-अपने सेवकों को; पाठाइला ग्रामे-उन्होंने समीप के गाँव में भेजा; भक्ष्य-द्रव्य-खाद्य पदार्थ; लोक सब-सभी लोग; ग्राम हैते-गाँव से; आने-लाए।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने तुरन्त ही अपने आदमियों को समस्त प्रकार की खाद्य वस्तुएँ खरीदकर लाने के लिए गाँव में भेजा।

चिड़ा, दधि, दुग्ध, सन्देश, आर चिनि, कला ।

सब द्रव्य आनाजा चौदिके धरिला ॥53॥

चिड़ा-चिड़ा; दधि-दही; दुग्ध-दूध; सन्देश-सन्देश (एक मिठाई); आर-और; चिनि-शक्कर; कला-केला; सब-सभी; द्रव्य-पदार्थ; आनाजा-मँगकर; चौदिके-चारों ओर; धरिला-रख दिये।

अनुवाद

रघुनाथ दास चिउड़ा, दही, दूध, मिठाइयाँ, चीनी, केले तथा अन्य खाद्य सामग्रियाँ ले आये और उन्हें चारों ओर रख दिया।

‘महोत्सव’-नाम शुनि’ ब्राह्मण-सज्जन ।

आसिते लागिल लोक असङ्ख्य-गणन ॥54॥

महोत्सव-महोत्सव; नाम-नाम; शुनि-सुनकर; ब्राह्मण-सत्-जन-ब्राह्मण और अन्य सज्जन; आसिते लागिल-आने लगे; लोक-लोग; असङ्ख्य-गणन-असंख्य।

अनुवाद

ज्योंही लोगों ने सुना कि उत्सव होने जा रहा है, त्योंही सभी प्रकार के ब्राह्मण तथा अन्य सज्जन पधारने लगे। इस तरह से असंख्य लोग इकडे हो गये।

आर ग्रामान्तर हैते सामग्री आनिल ।

शत दुइ-चारि होल्ना ताँहा आनाइल ॥55॥

आर-तथा; ग्राम-अन्तर हैते-अन्य गाँवों से; सामग्री-सामान; आनिल-लाकर; शत-सौ; दुइ-चारि-दो से चार; होल्ना-मिट्टी के गोल घड़े; ताँहा-वहाँ; आनाइल-मंगवाएँ।

अनुवाद

भीड़ बढ़ती देखकर रघुनाथ दास ने अन्य गाँवों से और खाद्य पदार्थ मँगाने का प्रबन्ध किया। वे दो-चार सौ बड़े गोल मिट्टी के घड़े भी ले आये।

बड़ बड़ मृत्कुण्डिका आनाइल पाँच साते ।

एक विप्र प्रभु लागि’ चिड़ा भिजाय ताते ॥56॥

बड़े बड़े-बड़े बड़े; मृत्-कुण्डिका-मिट्टी के बर्तन; आनाइल-मंगवाएँ; पाँच साते-पाँच या सात; एक विप्र-एक ब्राह्मण; प्रभु लागि’-नित्यानन्द प्रभु के लिए; चिड़ा-चिड़ा; भिजाय-भिगोने लगा; ताते-उनमें।

अनुवाद

उन्होंने पाँच-सात बड़े-बड़े मिट्टी के पात्र भी मंगवाये और एक ब्राह्मण इन पात्रों में नित्यानन्द प्रभु की तुष्टि हेतु चिउड़ा भिगोने लगा।

एक-ठाजि तप्त-दुग्धे चिड़ा भिजाजा ।

अर्धेक छानिल दधि, चिनि, कला दिया ॥57॥

एक-ठाजि-एक तरफ; तप्त-दुग्धे-गर्म दूध में; चिड़ा-चिड़ा; भिजाजा-भिगोया; अर्धेक-उसका आधा; छानिल-मिलाया; दधि-दही; चिनि-शक्कर; कला-केला; दिया-डाल दिया।

अनुवाद

एक स्थान पर इन बड़े पात्रों में गर्म दूध में चिउड़ा भिगोया गया। तब आधा चिउड़ा दही, चीनी तथा केलों के साथ मिलाया गया।

आर अर्धेक घनावृत-दुग्धेते छानिल ।

चाँपा-कला, चिनि, घृत, कर्पूर ताते दिल ॥58॥

आर अर्धेक-आधा; घन-आवृत-गाढ़े, दुग्धेते-दूध में; छानिल-मिलाया; चाँपा-कला-चाँपा केला (एक विशेष प्रकार का केला); चिनि-शक्कर; घृत-घी; कर्पूर-कपूर; ताते दिल-उसमें डाल दिया।

अनुवाद

आधे भाग को गाढ़े दूध में तथा विशेष प्रकार के केले में, जो चाँपा-कला कहलाता है, मिलाया गया। तब चीनी, घी तथा कपूर डाला गया।

धुति परि' प्रभु यदि पिण्डाते वसिला ।

सात-कुण्डी विप्र ताँर आगेते धरिला ॥59॥

धृति परि'-नये वस्त्र पहनकर; प्रभु-भगवान् नित्यानन्द; यदि-जब; पिण्डाते वसिला-एक उच्च आसन पर बैठे;
सात-कुण्डी-सात बड़े-बड़े मिट्टी के घड़े; विप्र-ब्राह्मण ने; ताँ आगेते-उनके सामने; धरिला-रख दियो

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु अपनी वस्त्र बदल चुके और चबूतरे पर बैठ गये, तब वह ब्राह्मण उनके सामने सात
बड़े-बड़े पात्र ले आया।

चबुतरा-उपरे व्रत प्रभुर निज-गणे ।

बड़ बड़ लोक वसिला मण्डली-रचने ॥60॥

चबुतरा-उपरे-उच्च स्थान पर; व्रत-सभी; प्रभुर निज-गणे-प्रभु के अति अन्तरंग साथी; बड़ बड़ लोक-बड़े बड़े
लोग; वसिला-बैठ गये; मण्डली-रचने-एक गोल घेरा बनाकर।

अनुवाद

इस चबूतरे पर श्री नित्यानन्द प्रभु के सभी सर्वाधिक प्रमुख संगी तथा साथ ही अन्य बड़े लोग उनके
चारों ओर एक गोलाकार में बैठ गये।

रामदास, सुन्दरानन्द, दास-गदाधर ।

मुरारि, कमलाकर, सदाशिव, पुरन्दर ॥ 61॥

रामदास-रामदास; सुन्दरानन्द-सुन्दरानन्द; दास-गदाधर-गदाधर दास; मुरारि-मुरारि; कमलाकर-कमलाकर;
सदाशिव-सदाशिव; पुरन्दर-पुरन्दर।

अनुवाद

इनमें रामदास, सुन्दरानन्द, गदाधर दास, मुरारि, कमलाकर, सदाशिव तथा पुरन्दर सम्मिलित थे।

धनञ्जय, जगदीश, परमेश्वर-दास ।

महेश, गौरीदास, होड़-कृष्णदास ॥62॥

धनञ्जय-धनंजय; जगदीश-जगदीश; परमेश्वर-दास-परमेश्वर दास; महेश-महेश; गौरीदास-गौरीदास; होड़-कृष्णदास-होड़ कृष्णदास।

अनुवाद

धनंजय, जगदीश, परमेश्वर दास, महेश, गौरीदास तथा होड़ कृष्णदास भी उसमें थे।

उद्धारण दत्त आदि यत निज-गण ।

उपरे वसिला सब, के करे गणन? ॥63॥

उद्धारण दत्त-उद्धारण दत्त; आदि-और ऐसे अन्य व्यक्ति; यत निज गण-सभी अन्तरंग लोग; उपरे-ऊपर; वसिला-बैठ गये; सब-सभी; के-कौन; करे गणन-गिन सकता है।

अनुवाद

इसी तरह उद्धारण दत्त ठाकुर तथा नित्यानन्द प्रभु के अन्य निजी संगी उनके साथ उस चबूतरे के ऊपर बैठे। उन सब की गणना कोई नहीं कर सकता था।

तात्पर्य

यहाँ पर उल्लिखित भक्तों का वर्णन श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने अनुभाष्य में किया है। अधिक जानकारी के लिए आदिलीला के निम्नलिखित सन्दर्भों को देखें। रामदास 10.116-118, 11.13-16। सुन्दरानन्द 11.23, गदाधर दास 10.53, 11.13-15 तथा 11.17। यहाँ पर उल्लिखित मुरारि, मुरारि गुप्त से भिन्न हैं। उनका पूरा नाम मुरारि चैतन्य दास है और वे नित्यानन्द प्रभु के निजी पार्षद हैं। इसी तरह श्लोक 11.20 भी देखें। कमलाकर 11.24, सदाशिव 11.38, पुरन्दर 11.28, धनंजय 11.31, जगदीश 11.30, परमेश्वर 11.29, महेश 11.32, गौरीदास 11.26, होड़ कृष्णदास 11.47 तथा उद्धारण दत्त ठाकुर 11.41।

शुनि' पण्डित भट्टाचार्य यत विप्र आइला ।

मान्य करि' प्रभु सबारे उपरे वसाइला ॥64॥

शुनि'-सुनकर; पण्डित भट्टाचार्य-विद्वान और पुजारी; यत-सभी; विप्र-ब्राह्मण; आइला-आ गये; मान्य करि'-सम्मान देकर; प्रभु-भगवान् नित्यानन्द प्रभु ने; सबारे- उन सभी को; उपरे वसाइला-ऊपर बिठाया।

अनुवाद

उत्सव के विषय में सुनकर सभी प्रकार के विद्वान, ब्राह्मण तथा पुरोहित वहाँ आये। भगवान् नित्यानन्द ने उन सबका सम्मान किया और अपने साथ चबूतरे पर बैठाया।

दुइ दुइ मृत्कुण्डिका सबार आगे दिल ।

एके दुग्ध-चिड़ा, आरे दधि-चिड़ा कैल ॥65॥

दुइ दुइ-दो-दो; मृत्-कुण्डिका-मिट्टी के पात्र; सबार आगे-सभी के सामने; दिल-दिये; एके-एक में; दुग्ध-चिड़ा-चिड़ा और दूध का मिश्रण; आरे-दूसरे में; दधि-चिड़ा-चिड़ा और दही; कैल-डाला।

अनुवाद

हर एक को दो दो मिट्टी के पात्र दिये गये। एक में चिउड़ा के साथ गाढ़ा दूध रखा था और दूसरे में दही के साथ चिउड़ा था।

आर यत लोक सब चौतरा-तलाने ।

मण्डली-बन्धे वसिला, तार ना हय गणने ॥66॥

आर-अन्य; यत-जितने भी; लोक-लोग; सब-सब; चौतरा-तलाने-मंच के नीचे; मण्डली-बन्धे-मंडली बनाकर; वसिला-बैठ गये; तार-उनकी; ना हय गणने- गिनती नहीं की जा सकती थी।

अनुवाद

अन्य सारे लोग चबूतरे के चारों ओर मण्डली बनाकर बैठे। कोई यह नहीं गिन सका कि कुल कितने लोग थे।

एकेक जनारे दुइ दुइ होलना दिल ।

दधि-चिड़ा दुग्ध-चिड़ा, दुइते भिजाइल ॥ 67॥

एकेक जनारे-उनमें से प्रत्येक को; दुइ दुइ-दो दो; होलना दिल-मिट्टी के पात्र दिये गये; दधि-चिड़ा-चिड़ा और दही; दुग्ध-चिड़ा-चिड़ा गाढ़े दूध के साथ; दुइते-दो पात्रों में; भिजाइल-भिगोये गये।

अनुवाद

हर एक को दो दो मिट्टी के पात्र दिये गये-एक में दही में भिगोया चिउड़ा था और दूसरे में गाढ़े दूध में भिगोया चिउड़ा था।

कोन कोन विप्र उपरे स्थान ना पाजा ।

दुइ होलनाय चिड़ा भिजाय गङ्गा-तीरे गया ॥68॥

कोन कोन-कुछ; विप्र-ब्राह्मण; उपरे-मंच पर; स्थान ना पाजा-स्थान न पाकर; दुइ होलनाय-दो पात्रों में; चिड़ा भिजाय-चिड़ा भिगोकर; गङ्गा-तीरे-गंगा के किनारे; गया-गये।

अनुवाद

कुछ ब्राह्मण जिन्हें चबूतरे पर स्थान नहीं मिल पाया, अपने दो-दो मिट्टी के पात्र लेकर गंगा के किनारे चले गये और वहीं अपना चिउड़ा भिगोया।

तीरे स्थान ना पाजा आर कत जन ।

जले नामि' दधि-चिड़ा करये भक्षण ॥69॥

तीरे-किनारे पर; स्थान-स्थान; ना पाजान पाकर; आर-अन्य; कत-कुछ; जन-व्यक्ति; जले नामि'-पानी में उतरकर; दधि-चिड़ा-दही और चिड़ा; करये भक्षण-खाने लगे।

अनुवाद

अन्य लोग जिन्हें गंगा के किनारे भी स्थान नहीं मिल सका, वे जल में प्रवेश कर गये और वहीं दोनों प्रकार का चिउड़ा खाने लगे।

केह उपरे, केह तले, केह गङ्गा-तीरे ।

बिश-जन तिन-ठाजि परिवेशन करे ॥ 70 ॥

केह उपरे-कुछ मंच पर; केह तले-कुछ मंच के नीचे; केह गङ्गा-तीरे-कुछ गंगा किनारे; बिश-जन-बीस लोग; तिन-ठाजि-तीन स्थानों पर; परिवेशन करे-बाँट रहे

अनुवाद

इस तरह कुछ तो चबूतरे के ऊपर बैठे, कुछ चबूतरे के नीचे और कुछ गंगा के किनारे बैठे और उन सबको भोजन बाँटने वाले बीस व्यक्तियों द्वारा दो-दो पात्र दिये गये।

हेन-काले आइला तथा राघव पण्डित ।

हासिते लागिला देखि' हजा विस्मित ॥ 71॥

हेन-काले-इस समय; आइला-आ गये; तथा-वहाँ; राघव पण्डित-राघव पण्डित नामक महान् विद्वान्; हासिते लागिला-हँसने लगे; देखि'-देखकर; हजा विस्मित-हैरान होकर।

अनुवाद

उसी समय राघव पण्डित वहाँ आ गये। वह स्थिति को देखकर अत्यन्त आश्चर्य से हँसने लगे।

नि-सक्कि नाना-मत प्रसाद आनिल ।

प्रभुरे आगे दिया भक्त-गणे बाँटि दिल ॥72॥

नि-सक्कि-घी में पका हुआ भोजन; नाना-मत-अनेक प्रकार के प्रसाद-भगवान् का प्रसाद; आनिल-वे लाये; प्रभुरे आगे-नित्यानन्द प्रभु के समक्ष; दिया-रखकर; भक्त- गणे-सभी भक्तों को; बाँटि दिल-बाँटा।

अनुवाद

वे अपने साथ घी में पकाये हुए अनेक प्रकार के पकवान लाए थे, जिन्हें उन्होंने नित्यानन्द प्रभु को भेंट किया। यह प्रसाद पहले नित्यानन्द प्रभु के समक्ष रखा गया और तब भक्तों में वितरित कर दिया गया।

प्रभु ने कहे,—“तोमा लागि” भोग लागाइल ।

तुमि इहाँ उत्सव कर, घरे प्रसाद रहिल” ॥73॥

प्रभु ने कहे—उन्होंने नित्यानन्द प्रभु से कहा; तोमा लागि—आपके लिए; भोग लागाइल—मैंने श्री विग्रह को भोग अर्पित किया; तुमि—आप; इहाँ—यहाँ; उत्सव कर—एक उत्सव में व्यस्त हैं; घरे—घर पर; प्रसाद—प्रसाद; रहिल—पड़ा है।

अनुवाद

राघव पण्डित ने नित्यानन्द प्रभु से कहा, “हे महोदय, मैं आपके लिए पहले ही भोजन अर्चाविग्रह को अर्पित कर चुका हूँ, किन्तु आप यहाँ उत्सव में लगे हैं, इसलिए भोजन अछूता पड़ा है।”

प्रभु ने कहे,—“ए-द्रव्य दिने करिये भोजन ।

रात्र्ये तोमार घरे प्रसाद करिमु भक्षण” ॥74॥

प्रभु ने कहे—नित्यानन्द प्रभु ने कहा; ए-द्रव्य—यह भोजन; दिने—दिन के समय; करिये भोजन—मुझे खाने दो; रात्र्ये—रात को; तोमार घरे—तुम्हारे घर पर; प्रसाद—प्रसाद; करिमु भक्षण—मैं खाऊँगा।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने उत्तर दिया, “दिन में मुझे यह सारा भोजन खाने दो और रात में मैं तुम्हारे घर पर भोजन करूँगा।”

“गोप-जाति आमि बहु गोप-गण सङ्गे ।

आमि सुख पाइ एइ पुलिन-भोजन-रङ्गे” ॥ 75 ॥

गोप-जाति-गोपबालकों की जाति का; आमि-मैं; बहु-अनेक; गोप-गण- ग्वालबाल; सङ्गे-साथ; आमि-मैं;
सुख पाइ-अत्यन्त प्रसन्न हूँ; एङ्-इस; पुलिन-नदी किनारे; भोजन-रङ्गे-भोजन के आनन्द में।

अनुवाद

“मैं ग्वालों की जाति का हूँ, इसलिए सामान्यतया मेरे साथ अनेक ग्वाल संगी रहते हैं। जब हम नदी
के रेतीले तट पर इस तरह के वन्य-भोजन में एकसाथ खाते हैं, तो मैं प्रसन्न होता हूँ।”

राघवे वसाजा दुइ कुण्डी देओयाइला ।

राघव द्विविध चिड़ा ताते भिजाइला ॥76॥

राघवे-राघव पण्डित को; वसाजा -बिठाकर; दुइ-दो; कुण्डी-पात्र; देओयाइला-उन्हें दिलवाएँ; राघव-राघव
पण्डित ने; द्वि-विध-दो प्रकार के; चिड़ा-चिड़ा; ताते-उनमें; भिजाइला-भिगोये।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने राघव पण्डित को बैठाया और उन्हें भी दो पात्र दिलाए। इनमें दो प्रकार के चिउड़े
भिगोये हुए थे।

सकल-लोकेर चिड़ा पूर्ण यबे हइल ।

ध्याने तबे प्रभु महाप्रभुरे आनिल ॥77॥

सकल-लोकेर-सभी का; चिड़ा-चिड़ा; पूर्ण-पूर्ण; यबे-जब; हइल-हो गया; ध्याने-ध्यान में; तबे-उस समय; प्रभु-
भगवान् नित्यानन्द प्रभु; महाप्रभुरे आनिल-श्रीचैतन्य महाप्रभु को ले आये।

अनुवाद

जब हर एक को चिउड़ा परोसा जा चुका, तो नित्यानन्द प्रभु ध्यान में श्री चैतन्य महाप्रभु को ले आये।

महाप्रभु आइला देखि निताई उठिला ।

तारै लजा सबार चिड़ा देखिते लागिला ॥78॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु को; आइला-आये; देखि-देखकर; निताइ-नित्यानन्द प्रभु; उठिला-खड़े हो गये; तारै लजा-उनके साथ; सबार-सभी को; चिड़ा-चिड़ा; देखिते लागिला देखने लगे।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु आये, तो नित्यानन्द प्रभु उठ खड़े हुए। तब उन्होंने देखा कि किस तरह अन्य लोग दही तथा घनीभूत दूध के साथ चिउड़ा का आनन्द ले रहे हैं।

सकल कुण्डीर, होल्लार चिड़ार एक एक ग्रास ।

महाप्रभुर मुखे देन करि' परिहास ॥79॥

सकल कुण्डीर-सभी पात्रों से; होल्लार-बड़े पात्रों से; चिड़ार-चिउड़े का; एक एक ग्रास-एक ग्रास; महाप्रभुर मुखे-श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख में; देन-डालकर; करि' परिहास-मजाक करने लगे।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु ने प्रत्येक पात्र से चिउड़े का एक ग्रास लिया और उसे परिहास वश श्री चैतन्य महाप्रभु के मुँह में ठूस दिया।

हासि' महाप्रभु आर एक ग्रास लजा ।

तारै मुखे दिया खाओयाय हासिया हासिया ॥80॥

हासि'-हँसकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आर-दूसरा; एक ग्रास-एक ग्रास; लजा-लेकर; तारै मुखे-भगवान् नित्यानन्द प्रभु के मुख में; दिया-डालकर; खाओयाय खिलाकर; हासिया हासिया-हँसते हुए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी हँसते-हँसते भोजन का एक कौर लिया, उसे नित्यानन्द प्रभु के मुँह में डाल दिया और नित्यानन्द को खिलाते समय हँसने लगे।

एइ-मत नितार्ई बुले सकल मण्डले ।

दाण्डाजा रङ्ग देखे वैष्णव सकले ॥81॥

एइ-मत-इस प्रकार; नितार्ई बुले-नित्यानन्द प्रभु गुजर रहे थे; सकल मण्डले सभी दिलों के बीच से; दाण्डाजा-खड़े हुए; रङ्ग देखे-मनोरंजन देख रहे थे; वैष्णव सकले-सभी वैष्णव।

अनुवाद

इस तरह नित्यानन्द प्रभु भोजन करने वालों की सभी मंडलियों में से होकर घूम रहे थे और वहाँ पर खड़े सारे वैष्णव यह कौतुक देख रहे थे।

कि करिया बेड़ाय,—इहा केह नाहि जाने ।

महाप्रभुर दर्शन पाय कोन भाग्यवाने ॥82॥

कि करिया-क्या कर रहे थे; बेड़ाय-चलते हुए; इहा-यह; केह नाहि जाने-कोई समझ न सका; महाप्रभुर दर्शन पाय-श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन कर पाए; कोन भाग्यवाने-कुछ भाग्यशाली लोग।

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु घूम रहे थे, तब वे क्या कर रहे थे यह कोई नहीं समझ सका। किन्तु कुछ लोग जो बड़े भाग्यशाली थे, यह देख सके कि श्री चैतन्य महाप्रभु भी वहाँ उपस्थित थे।

तबे हासि नित्यानन्द वसिला आसने ।

चारि कुण्डी आरोया चिड़ा राखिला डाहिने ॥83॥

तबे हासि—फिर हँसकर; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द प्रभु; वसिला आसने-अपने आसन पर बैठ गये; चारि कुण्डी-चार मिट्टी के पात्र; आरोया चिड़ा-उबले धान से नहीं बनाया हुआ चिड़ा; राखिला डाहिने-उन्होंने अपनी दाई ओर रखा।

अनुवाद

तब नित्यानन्द प्रभु हँसे और बैठ गये। उन्होंने अपने दाहिनी ओर चार पात्र रखे जिनका चिउड़ा उबले चावल से नहीं बनाया गया था।

आसन दिया महाप्रभुरे ताहाँ वसाइला ।

दुइ भाइ तबे चिड़ा खाइते लागिला ॥84॥

आसन दिया-आसन देकर; महाप्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; ताहाँ-वहाँ; वसाइला-बिठाया; दुइ भाइ-दोनों भाई; तबे-उस समय; चिड़ा-चिड़ा; खाइते लागिला-खाने लगे।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने श्री चैतन्य महाप्रभु को स्थान दिया और उन्हें बैठाया। तब दोनों भाई एकसाथ चिउड़ा खाने लगे।

देखि' नित्यानन्द-प्रभु आनन्दित हैला ।

कत कत भावावेश प्रकाश करिला ॥85॥

देखि'-देखकर; नित्यानन्द-प्रभु-भगवान् नित्यानन्द प्रभु; आनन्दित हैला-अत्यन्त प्रसन्न हो गये; कत कत-बहुत से; भाव-आवेश-प्रेमभाव; प्रकाश करिला-उन्होंने प्रकाशित किये।

अनुवाद

अपने साथ चैतन्य महाप्रभु को खाते देखकर नित्यानन्द प्रभु अत्यधिक प्रसन्न हुए और उन्होंने नाना प्रकार के भावावेश प्रदर्शित किये।

आज्ञा दिला,—“हरि बलि' करह भोजन”।

‘हरि’ ‘हरि’-ध्वनि उठि’ भरिल भुवन ॥86॥

आज्ञा दिला-उन्होंने आदेश दिया; हरि बलि'-‘हरि’ बोलते हुए; करह भोजन-आप सब खाइये; हरि हरि-ध्वनि-‘हरि, हरि’ की गूँज; उठि'-उठकर; भरिल भुवन-समस्त ब्रह्मण्ड में भर गई।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु ने आज्ञा दी, “सभी लोग हरिनाम का कीर्तन करते हुए भोजन करें।” “हरि, हरि” की ध्वनि की गूँज से तुरन्त ही सारा ब्रह्माण्ड भर गया।

‘हरि’ ‘हरि’ बलि’ वैष्णव करये भोजन ।

पुलिन-भोजन सबार हड़ल स्मरण ॥87॥

हरि हरि बलि’—“हरि, हरि” बोलते हुए; वैष्णव-सभी वैष्णव; करये भोजन-खाने लगे; पुलिन-भोजन-यमुना के किनारे भोजन; सबार हड़ल स्मरण-सभी को स्मरण आ गया।

अनुवाद

जब सारे वैष्णव “हरि, हरि” बोलकर भोजन कर रहे थे, तो उन्हें स्मरण हो आया कि किस तरह कृष्ण तथा बलराम अपने ग्वालबाल साथियों के साथ यमुना के तट पर भोजन करते थे।

नित्यानन्द महाप्रभु कृपालु, उदार ।

रघुनाथेर भाग्ये एत कैला अङ्गीकार ॥88॥

नित्यानन्द महाप्रभु-भगवान् नित्यानन्द प्रभु और भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; कृपालु दयावान्; उदार-उदार; रघुनाथेर भाग्ये-रघुनाथ दास के महान् सौभाग्य द्वारा; एत-यह सब; कैला अङ्गीकार-उन्होंने स्वीकार किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु अत्यन्त दयालु तथा उदार हैं। यह तो रघुनाथदास का सौभाग्य था कि उन्होंने ये सब व्यवहार स्वीकार कर लिए।

नित्यानन्द-प्रभाव-कृपा जानिबे को जन? ।

महाप्रभु आनि’ कराय पुलिन-भोजन ॥89॥

नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु का प्रभाव-कृपा-प्रभाव और कृपा; जानिबे-जान सकता है; को जन-कौन; महाप्रभु
आनि'—श्री चैतन्य महाप्रभु को बुलाकर; कराय पुलिन-भोजन-उन्हें नदी किनारे भोजन करवाते हैं।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के प्रभाव तथा कृपा को कौन समझ सकता है? वे इतने शक्तिशाली हैं कि उन्होंने श्री
चैतन्य महाप्रभु को गंगा तट पर चिउड़ा खाने आने के लिए प्रेरित किया।

श्री-रामदासादि गोप प्रेमाविष्ट हैला ।

गङ्गा-तीरे 'यमुना-पुलिन' ज्ञान कैला ॥90॥

श्री-रामदास-आदि-श्री रामदास आदि; गोप-ग्वालबाल; प्रेम-आविष्ट हैला- प्रेमभाव में आविष्ट हो गये; गङ्गा-
तीरे-गंगा नदी के किनारे को; यमुना-पुलिन-यमुना नदी का किनारा; ज्ञान कैला-उन्होंने माना।

अनुवाद

श्री रामदास इत्यादि जितने ग्वालबाल अन्तरंग भक्त थे, वे प्रेमावेश में डूब गये। वे गंगा के तट को
यमुना का तट समझ बैठे।

महोत्सव शुनि' पसारि नाना-ग्राम हैते ।

चिड़ा, दधि, सन्देश, कला आनिल बेचिते ॥91॥

महोत्सव शुनि'—महोत्सव के बारे में सुनकर; पसारि-दुकानदार; नाना-ग्राम-अनेक गाँव; हैते-से; चिड़ा-चिड़ा;
दधि-दही; सन्देश-सन्देश (मिठाई); कला केला; आनिल-लाए; बेचिते-बेचने के लिए।

अनुवाद

जब अनेक अन्य गाँव के दुकानदारों ने महोत्सव के बारे में सुना, तो वे चिउड़ा, दही, सन्देश, मिठाई
तथा केला बेचने के लिए वहाँ आ गये।

यत द्रव्य लजा आइसे, सब मूल्य करि' लय ।

तार द्रव्य मूल्य दिया ताहारे खाओयाय ॥ 92॥

यत द्रव्य-सभी वस्तुएँ; लजा-लेकर; आइसे-आये; सब-सब; मूल्य करि लय-रघुनाथ ने खरीद ली; तार द्रव्य-उनके वस्तुओं का; मूल्य दिया-मूल्य चुकाकर; ताहारे खाओयाय-उन्हें ही खिला दी।

अनुवाद

जैसे ही वे सभी प्रकार की भोज्य सामग्री लेकर आये, रघुनाथदास ने सारी की सारी खरीद ली। उन्होंने उन्हें उनके सामान का मूल्य चुकता किया और बाद में वही भोजन उन्हें खिला दिया।

कौतुक देखिते आइल यत यत जन ।

सेइ चिड़ा, दधि, कला करिल भक्षण ॥ 93॥

कौतुक-ये मनोरंजक घटनाएँ; देखिते-देखने के लिए; आइल-आये; यत यत जन-जो-जो लोग; सेइ-वे; चिड़ा-चिड़ा; दधि-दही; कला-केला; करिल भक्षण-खाए।

अनुवाद

जो भी यह देखने के लिए आया कि ये कैसे कुतूहलवर्धक कार्य हो रहे हैं, उन्हें भी चिउड़ा, दही तथा केला खिलाया गया।

भोजन करि' नित्यानन्द आचमन कैला ।

चारि कुण्डीर अवशेष रघुनाथे दिला ॥94॥

भोजन करि'-भोजन समाप्त करके; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु ने; आचमन कैला-अपने हाथ मुँह धोये; चारि कुण्डीर-चारों पात्रों में; अवशेष-जो कुछ बचा था; रघुनाथे दिला-रघुनाथ दास को दे दिया।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने भोजन करने के बाद हाथ तथा मुख धोये और रघुनाथ दास को चार पात्रों में बचा हुआ भोजन दिया।

आर तिन कुण्डिकाय अवशेष छिल ।

ग्रासे-ग्रासे करि' विप्र सब भक्ते दिल ॥95॥

आर-अन्य; तिन कुण्डिकाय-तीन पात्रों में; अवशेष छिल-अवशिष्ट भोजन था; ग्रासे-ग्रासे-ग्रास-ग्रास; करि'-करके; विप्र-एक ब्राह्मण ने; सब भक्ते-सभी भक्तों को; दिल-दिया।

अनुवाद

भगवान् नित्यानन्द के तीन अन्य बड़े पात्रों में भोजन बचा रहा, जिसे एक ब्राह्मण ने सारे भक्तों को एक-एक ग्रास देकर बाँट दिया।

पुष्प-माला विप्ल आनि' प्रभु-गले दिल ।

चन्दन आनिया प्रभुर सर्वाङ्गे लेपिल ॥96॥

पुष्प-माला-एक फूलों का हार; विप्र-एक ब्राह्मण ने; आनि'-लाकर; प्रभु-गले- भगवान् नित्यानन्द प्रभु के गले में; दिल-डाला; चन्दन आनिया-चन्दन लेप लाकर; प्रभुर-नित्यानन्द प्रभु के; सर्वाङ्गे लेपिल-समस्त शरीर पर लेप कर दिया।

अनुवाद

तब एक ब्राह्मण एक फूल की माला ले आया, उसने उसे नित्यानन्द प्रभु के गले में डाल दी और उनके सारे शरीर में चन्दन का लेप किया।

सेवक ताम्बूल लजा करे समर्पण ।

हासिया हासिया प्रभु करये चर्वण ॥97॥

सेवक-सेवक ने; ताम्बूल-पान; लजा-लाकर; करे समर्पण-अर्पित किया; हासिया हासिया-हँसकर; प्रभु-भगवान् नित्यानन्द प्रभु ने; करये चर्वण-चबाया।

अनुवाद

जब नौकर पान ले आया और नित्यानन्द प्रभु को भेंट किया, तो प्रभु हँसने लगे और पान चबाने लगे।

माला-चन्दन-ताम्बूल शेष ये आछिल ।

श्री-हस्ते प्रभु ताहा सबाकारे बाँटि' दिल ॥98॥

माला-चन्दन-ताम्बूल-फूलों का हार, चन्दन का लेप तथा पान का; शेष ये आछिल-जो कुछ अवशेष बचा; श्री-हस्ते-अपने हाथों से; प्रभु-भगवान् नित्यानन्द प्रभु ने; ताहा-वह; सबाकारे-सबको; बाँटि' दिल-बाँट दिया।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने अपने हाथों से सारे भक्तों में बची हुई फूलमालाएँ, चन्दन लेप तथा पान बाँट दिये।

आनन्दित रघुनाथ प्रभुर 'शेष' पाजा ।

आपनार गण-सह खाइला बाँटिया ॥99॥

आनन्दित-अति आनन्दित होकर; रघुनाथ-रघुनाथ दास; प्रभुर शेष पाजा-भगवान् नित्यानन्द प्रभु का शेष प्राप्त करके; आपनार गण-अपने संगियों के; सह-साथ; खाइला-खाया; बाँटिया-बाँटकर।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के बचे भोजन का शेष पाकर अत्यन्त प्रसन्न रघुनाथ दास ने कुछ तो खाया और शेष अपने निजी संगियों में बाँट दिया।

एइ त कहिलुँ नित्यानन्देर विहार ।

‘चिड़ा-दधि-महोत्सव’-नामे ख्याति यार ॥ 100॥

एइ त'-इस प्रकार; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया है; नित्यानन्देर विहार-भगवान् नित्यानन्द प्रभु की लीलाएँ; चिड़ा-दधि-महोत्सव-चिड़ा-दही खाने का महोत्सव; नामे-नाम से; ख्याति-प्रसिद्धि; यार-जिसकी।

अनुवाद

इस तरह मैंने चिड़ा-दही महोत्सव के सम्बन्ध में नित्यानन्द प्रभु की लीलाओं का वर्णन किया है।

प्रभु विश्राम कैला, यदि दिन-शेष हैल ।

राघव-मन्दिरे तबे कीर्तन आरम्भिल ॥101॥

प्रभु-नित्यानन्द प्रभु ने; विश्राम कैला-विश्राम किया; यदि-जब; दिन-शेष हैल-दिन समाप्त हो गया; राघव-मन्दिरे-राघव पण्डित के मन्दिर में; तबे-उस समय; कीर्तन आरम्भिल-पवित्र नाम का संकीर्तन करना प्रारम्भ किया।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने दिन में आराम किया और जब दिन का अन्त हो गया, तो वे राघव पण्डित के मन्दिर गये और वहाँ भगवान् के पवित्र नाम का संकीर्तन करना प्रारम्भ कर दिया।

भक्त सब नाचा नित्यानन्द-राय ।

शेषे नृत्य करे प्रेमे जगत् भासाय ॥102॥

भक्त सब-सभी भक्तों को; नाचाज्ञा-नचाया; नित्यानन्द-राय-भगवान् नित्यानन्द प्रभु ने; शेषे-अन्त में; नृत्य करे-नाचना प्रारम्भ किया; प्रेमे-प्रेमभाव में; जगत् भासाय-समस्त संसार को डुबा दिया।

अनुवाद

सर्वप्रथम नित्यानन्द प्रभु ने सारे भक्तों को नाचने के लिए प्रेरित किया और अन्त में वे स्वयं भी नाचने लगे। इस तरह उन्होंने सारे जगत् को प्रेमावेश से आप्लावित कर दिया।

महाप्रभु तारै नृत्य करेन दरशन ।

सबे नित्यानन्द देखे, ना देखे अन्य-जन ॥103॥

महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; तारै-उनका; नृत्य-नर्तन; करेन दरशन-देख रहे थे; सबे-सब; नित्यानन्द देखे-नित्यानन्द प्रभु देख पाए; ना देखे-नहीं देख पाए; अन्य-जन-अन्य लोग।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु श्री नित्यानन्द प्रभु का नृत्य देख रहे थे। नित्यानन्द प्रभु तो इसे देख सके, किन्तु अन्य लोग नहीं देख पाये।

नित्यानन्दे नृत्य,—येन ताँहार नर्तने।

उपमा दिबार नाहि ए-तिन भुवने ॥104॥

नित्यानन्दे नृत्य-भगवान् नित्यानन्द प्रभु का नृत्य; येन-समान; ताँहार नर्तने-श्री चैतन्य महाप्रभु के नृत्य के; उपमा दिबार नाहि-कोई उपमा नहीं दी जा सकती; ए-तिन भुवने-इन तीनों भुवनों में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के नृत्य की तरह नित्यानन्द प्रभु के नृत्य की तुलना इन तीनों जगत्‌ओं से किसी भी वस्तु से नहीं की जा सकती।

नृत्येर माधुरी केबा वर्णिबारे पारे ।

महाप्रभु आइसे येइ नृत्य देखिबारे ॥105॥

नृत्येर माधुरी नृत्य की मधुरता; केबा-कौन; वर्णिबारे पारे-वर्णन कर सकता है; महाप्रभु आइसे-श्री चैतन्य महाप्रभु आते हैं; येइ-वह; नृत्य-नृत्य; देखिबारे-देखने के लिए।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के नृत्य की मधुरता का वर्णन उचित प्रकार से कोई नहीं कर सकता। श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं चलकर इसे देखने आते हैं।

नृत्य करि' प्रभु यबे विश्राम करिला ।

भोजनेर लागि' पण्डित निवेदन कैला ॥106॥

नृत्य करि'-नृत्य करके; प्रभु-नित्यानन्द प्रभु ने; यबे-जब; विश्राम करिला-विश्राम किया; भोजनेर लागि'-उनसे भोजन के लिए; पण्डित-राघव पण्डित ने; निवेदन कैला-प्रार्थना की।

अनुवाद

नृत्य के बाद जब नित्यानन्द प्रभु विश्राम कर चुके, तो राघव पण्डित ने उनसे निवेदन किया कि वे रात्रि का भोजन कर लें।

भोजने वसिला प्रभु निज-गण लजा ।

महाप्रभुर आसन डाहिने पातिया ॥107॥

भोजने-भोजन करने के लिए; वसिला-बैठ गये; प्रभु-भगवान् नित्यानन्द प्रभु; निज-गण लजा-अपने संगीगणों के साथ; महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; आसन- आसन; डाहिने पातिया-दाई और बिछाते हैं।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु अपने निजी संगियों के साथ भोजन करने बैठ गये और श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए अपने दाहिनी ओर आसन बना दिया।

महाप्रभु आसि' सेइ आसने वसिल ।

देखि' राघवेर मने आनन्द बाडिल ॥108॥

महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; आसि'-आकर; सेइ आसने—उस आसन पर; वसिल-बैठ गये; देखि'-देखकर; राघवेर मने-राघव पण्डित के मन में; आनन्द-महान् आनन्द; बाडिल-बढ़ गया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ पर आये और अपने आसन पर बैठ गये। यह देखकर राघव पण्डित को अत्यधिक आनन्द हुआ।

दुइ-भाइ-आगे प्रसाद आनिया धरिला ।

सकल वैष्णवे पिछे परिवेशन कैला ॥ 109॥

दुइ-भाइ-आगे-दोनों भाइयों के सामने; प्रसाद-भगवान् कृष्ण को अर्पित भोग का शेष; आनिया-लाकर; धरिला-रख दिया; सकल वैष्णवे-सभी वैष्णवों को; पिछे- उसके बाद; परिवेशन कैला-बाँटने लगे।

अनुवाद

राघव पण्डित दोनों भाइयों के समक्ष प्रसाद ले आये और उसके बाद अन्य सभी वैष्णवों को प्रसाद वितरित किया।

नाना-प्रकार पिठा, पायस, दिव्य शाल्यन्न ।

अमृत निन्दये ऐछे विविध व्यञ्जन ॥ 110॥

नाना-प्रकार पिठा-अनेक प्रकार की मिठाईयाँ; पायस-खीर; दिव्य शाल्यन्न-उत्कृष्ट भात; अमृत-अमृत को; निन्दये-लज्जित करने वाले; ऐछे-ऐसे; विविध व्यञ्जन-विविध व्यंजन।

अनुवाद

उसमें तरह-तरह की मिठाईयाँ, खीर तथा उत्तम पकाए चावल थे, जो अमृत के भी स्वाद को मात करने वाले थे। कई प्रकार की सब्जियाँ भी थीं।

राघव-ठाकुरे प्रसाद अमृतेर सार ।

महाप्रभु याहा खाइते आइसे बार बार ॥111॥

राघव-ठाकुरे-राघव पण्डित का; प्रसाद-भगवान् को अर्पित अन्न, प्रसाद; अमृतेर सार-अमृत का सार; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; याहा-जिसे; खाइते-खाने के लिए; आइसे-आते थे; बार बार-बारम्बार।

अनुवाद

राघव पण्डित द्वारा तैयार किया गया तथा अर्चाविग्रह को भेंट किया गया भोजन अमृत के सार के तुल्य था। श्री चैतन्य महाप्रभु ऐसा प्रसाद खाने के लिए वहाँ बारम्बार आये।

पाक करि' राघव यबे भोग लागाय ।

महाप्रभुर लागि' भोग पृथक्वाड्य ॥112॥

पाक करि'-पकाने के बाद; राघव-राघव पण्डित; यबे-जब; भोग लागाय-भोगों को श्री विग्रह को अर्पित करते हैं; महाप्रभुर लागि'-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए; भोग-भोग; पृथक्-अलग से; बाड्य-लगाते हैं।

अनुवाद

जब राघव पण्डित भोजन पकाने के बाद उसे अर्चाविग्रह को अर्पित करते, तब वे श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए अलग भोग लगाते।

प्रति-दिन महाप्रभु करेन भोजन ।

मध्ये मध्ये प्रभु तौरै देन दरशन ॥113॥

प्रति-दिन-रोज; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन भोजन-खाते हैं; मध्ये मध्ये-कभी-कभी; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तौरै-उन्हें; देन दरशन-अपने दर्शन देते।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रतिदिन राघव पण्डित के घर भोजन करते। कभी-कभी वे राघव पण्डित को अपना दर्शन पाने का अवसर प्रदान करते।

दुइ भाइरे राघव आनि' परिवेशे ।

यत्न करि' खाओयाय, ना रहे अवशेषे ॥ 114॥

दुइ भाइरे—दोनों भाइयों को; राघव-राघव पण्डित; आनि'—बुलाकर; परिवेशे- परोसते; यत्न करि'-अत्यन्त सावधानीपूर्वक; खाओयाय-उन्हें खिलाते; ना रहे अवशेषे- कुछ भी अवशेष न बचता।

अनुवाद

राघव पण्डित प्रसाद लाकर दोनों भाइयों को देते और बड़ी ही सावधानी से उन्हें खिलाते। वे सारा प्रसाद खा जाते, जिससे कोई शेष नहीं बचता था।

कत उपहार आने, हेन नाहि जानि ।

राघवेर घरे रान्धे राधा-ठाकुराणी ॥115॥

कत उपहार-अनेक उपहार; आने-लाते; हेन-इतने; नाहि जानि-मैं नहीं समझ सकता; राघवेर घरे-राघव पण्डित के घर पर; रान्धे-पकाती; राधा-ठाकुराणी-परम माता, श्रीमती राधारानी।

अनुवाद

वे इतने सारे प्रसाद ले आते कि लोग उन्हें ठीक से जान नहीं पाते थे। निस्सन्देह, यह सच था कि परम माता राधारानी स्वयं आकर राघव पण्डित के घर भोजन पकातीं।

दुर्वासार ठाजि तेंहो पाजाछेन वर ।

अमृत हइते पाक तौर अधिक मधुर ॥116॥

दुर्वासार ठाजि-दुर्वासा मुनि से; तेंहो-उन्हें; पाजाछेन वर-वरदान प्राप्त हुआ था; अमृत हइते-अमृत से भी; पाक-भोजन; तौर-उनका; अधिक मधुर-अधिक मधुर।

अनुवाद

श्रीमती राधारानी को दुर्वासा मुनि से यह वर मिला था कि वे जो कुछ भी पकायेंगी, वह अमृत से भी अधिक मधुर होगा। उनकी पाक-विद्या का यह विशेष गुण है।

सुगन्धि सुन्दर प्रसाद-माधुर सार ।

दुइ भाइ ताहा खाजा सन्तोष अपार ॥117॥

सु-गन्धि-सुगन्धित; सुन्दर-सुन्दर; प्रसाद-प्रसाद; माधुर्य सार-समस्त मधुरता का सार; दुइ भाइ-दोनों भाई; ताहा-वह; खाजा-खाते; सन्तोष अपार-अत्यन्त सन्तुष्ट होकर।

अनुवाद

यह भोजन सुगन्धित एवं देखने में सुहावना होता और समस्त मधुरता का सार होता। इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु दोनों भाई परम सन्तोष के साथ भोजन करते।

भोजने वसिते रघुनाथे कहे सर्व-जन ।

पण्डित कहे,—‘इँह पाछे करिबे भोजन’ ॥118॥

भोजने-खाने के लिए; वसिते-बैठना; रघुनाथे-रघुनाथ दास से; कहे-निवेदन किये; सर्व-जन-सभी लोग; पण्डित कहे-राघव पण्डित ने कहा; इँह-यह; पाछे-बाद में; करिबे भोजन-प्रसाद खाएँगे।

अनुवाद

वहाँ पर उपस्थित सारे भक्तों ने रघुनाथ दास से प्रार्थना की कि वे बैठकर प्रसाद ग्रहण करें, किन्तु राघव पण्डित ने उन्हें बताया कि, “वे बाद में प्रसाद ग्रहण करेंगे।”

भक्त-गण आकण्ठ भरिया करिल भोजन ।

‘हरि’ ध्वनि करि’ उठि’ कैला आचमन ॥ 119॥

भक्त-गण-सभी भक्तों ने; आकण्ठ-गले तक; भरिया-भरकर; करिल भोजन- प्रसाद ग्रहण किया; हरि ध्वनि-हरि के पवित्र नाम की ध्वनि; करि-करते हुए; उठि’-उठकर; कैला आचमन-अपने मुख और हाथ धोने लगे।

अनुवाद

सारे भक्तों ने इतना प्रसाद खाया कि उनके गले तक भोजन भर गया। तत्पश्चात् हरि के पवित्र नाम का उच्चारण करते हुए सभी उठ खड़े हुए और सबने अपने-अपने हाथ-मुँह धोये।

भोजन करि’ दुइ भाइ कैला आचमन ।

राघव आनि’ पराइला माल्य-चन्दन ॥120॥

भोजन करि’—खाने के बाद; दुई भाइ-दोनों भाइयों ने; कैला आचमन-अपने हाथ-मुँह धोये; राघव-राघव पण्डित ने; आनि’—लाकर; पराइला—उन्हें पहनाया; माल्य-चन्दन-फूलों के हार तथा चन्दन लेप ।

अनुवाद

भोजन के बाद दोनों भाइयों ने हाथ-मुँह धोये। तब राघव पण्डित फूल की मालाएँ तथा चन्दन लेप ले आये और उन्हें सुसज्जित किया।

बिड़ा खाओयाइला, कैला चरण वन्दन ।

भक्त-गणे दिला बिड़ा, माल्य-चन्दन ॥ 121॥

बिड़ा खाओयाइला-उन्होंने पान खिलाया; कैला चरण वन्दन—चरणकमलों में प्रणाम किया; भक्त-गणे-भक्तों को; दिला—दिये; बिड़ा-पान; माल्य-चन्दन-हार तथा चन्दन लेप।

अनुवाद

राघव पण्डित ने उन्हें पान का बीड़ा खिलाया और उनके चरणकमलों की वन्दना की। उन्होंने भक्तों को भी पान, फूल-मालाएँ तथा चन्दन लेप दिया।

राघवेर कृपा रघुनाथेर उपरे ।

दुइ भाइएर अवशिष्ट पात्र दिला तारै ॥ 122॥

राघवेर-राघव पण्डित की; कृपा-दया; रघुनाथेर उपरे—रघुनाथ दास के प्रति; दुई भाइएर-दोनों भाइयों के; अवशिष्ट-भोजन के शेष; पात्र-वर्तन; दिला तारै—उन्हें दे दिये।

अनुवाद

रघुनाथ दास के ऊपर विशेष कृपालु होने के कारण राघव पण्डित ने उन्हें दोनों भाइयों द्वारा छोड़े गये उच्छिष्ट की थालियाँ दीं।

कहिला,-“चैतन्य गोसात्रि करियाछेन भोजन ।

ताँर शेष पाइले, तोमार खण्डिल बन्धन” ॥123॥

कहिला-उन्होंने कहा; चैतन्य गोसाजि-भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने; करियाछेन भोजन-खाया है; ताँर शेष-उनका शेष; पाइले-यदि तुम ग्रहण करते हो; तोमार- तुम्हारा; खण्डिल-कट जायेगा; बन्धन-बन्धन।

अनुवाद

उन्होंने कहा, “श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह भोजन किया है। यदि तुम उनके शेष को ग्रहण करोगे, तो तुम अपने परिवार के बन्धन से छूट जाओगे।”

भक्त-चित्ते भक्त-गृहे सदा अवस्थान ।

कभु गुप्त, कभु व्यक्त, स्वतन्त्र भगवान् ॥ 124॥

भक्त-चित्ते-एक भक्त के हृदय में; भक्त-गृहे-भक्त के घर पर; सदा अवस्थान- सदैव निवास करते हैं; कभु गुप्त- कभी गुप्त रूप से; कभु व्यक्त-कभी प्रकट होकर; स्वतन्त्र-पूर्णतया स्वतन्त्र; भगवान्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सदैव या तो भक्त के हृदय में या उसके घर में निवास करते हैं। यह बात कभी छिपी रहती है और कभी प्रकट होती है, क्योंकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हैं।

सर्वत्र व्यापक प्रभुर सदा सर्वत्र वास ।

इहाते संशय यार, सेइ याय नाश ॥125॥

सर्वत्र-सब जगह; व्यापक-व्याप्त; प्रभुर-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का; सदा-सदैव; सर्वत्र सर्वत्र, सब जगह; वास- निवास; इहाते-इस विषय में; संशय-सन्देह; यार-जिसका; सेइ-वह; याय नाश-नष्ट हो जाता है।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सर्वव्यापी हैं, अतएव वे सर्वत्र निवास करते हैं। जो इसमें सन्देह करता है, उसका विनाश हो जाता है।

प्राते नित्यानन्द प्रभु गङ्गा-स्नान करिया ।

सेइ वृक्ष-मूले वसिला निज-गण लजा ॥126॥

प्रातः-प्रातः काल में; नित्यानन्द प्रभु-भगवान् नित्यानन्द प्रभु: गङ्गा स्नान-गंगा में स्नान; करिया-करके; सेइ वृक्ष-मूले-उसी वृक्ष के नीचे; वसिला-बैठ गये; निज-गण लजा-अपने संगियों के साथ।

अनुवाद

प्रातः काल गंगा स्नान करने के बाद नित्यानन्द प्रभु अपने संगियों के साथ उसी वृक्ष के नीचे बैठ गये, जहाँ वे पहले बैठ चुके थे।

रघुनाथ आसि' कैला चरण वन्दन ।

राघव-पण्डित-द्वारा कैला निवेदन ॥127॥

रघुनाथ-रघुनाथ दास ने; आसि'-आकर; कैला चरण वन्दन-उनके चरणकमलों की वन्दना की; राघव-पण्डित-द्वारा-राघव पण्डित के माध्यम से; कैला निवेदन-अपनी इच्छा व्यक्त की।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने वहाँ जाकर नित्यानन्द प्रभु के चरणकमलों की पूजा की। उन्होंने राघव पण्डित के द्वारा अपनी इच्छा निवेदित की।

“अधम, पामर मुइ हीन जीवाधम! ।

मोर इच्छा हय-पाड चैतन्य-चरण” ॥128॥

अधम-सबसे पतित; पामर-सर्वाधिक पापी; मुइ-मैं; हीन-हीन; जीव-अधम-सभी जीवों से नीच; मोर-मेरी; इच्छा-इच्छा; हय-है; पाड-मैं प्राप्त कर सकें; चैतन्य-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण॥

अनुवाद

“मैं मनुष्यों में अधम, अत्यन्त पापी, पतित तथा तिरस्कृत हूँ। तो भी मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण पाने का इच्छुक हूँ।”

वामन हजा येन चान्द धरिबारे चाय ।

अनेक यत्न कैनु, ताते कभु सिद्ध नय ॥129॥

वामन हजा-एक बौना होते हुए; येन-जैसे; चान्द-चन्द्रमा; धरिबारे-पकड़ना; चाय-चाहे; अनेक यत्न-अनेक प्रयास; कैनु-मैंने किये; ताते-उनमें; कभु सिद्ध नय-मैं सफल नहीं हुआ।

अनुवाद

चाँद पकड़ने के इच्छुक किसी बौने की तरह मैंने अनेक बार भरसक प्रयत्न किये, किन्तु कभी सफल नहीं हुआ।

यत-बार पलाइ आमि गृहादि छाड़िया ।

पिता, माता—दुइ मोरे राखये बान्धिया ॥130॥

यत-बार-जितनी बार; पलाइ-भागा; आमि—मैं; गृह-आदि छाड़िया-अपने घर से सम्बन्ध को त्यागकर; पिता माता-पिता और माता; दुइ-दोनों ने; मोरे-मुझे; राखये बान्धिया-बाँध दिया।

अनुवाद

जितनी बार मैंने भाग जाना और अपने घरेलू सम्बन्ध तोड़ देना चाहा, उतनी बार मेरे पिता तथा माता ने दुर्भाग्यवश मुझे बाँधकर रखा।

तोमार कृपा विना केह ‘चैतन्य’ ना पाय ।

तुमि कृपा कैले तौरे अधमेह पाय ॥131॥

तोमार कृपा-आपकी कृपा; विना-बिना; केह-कोई भी; चैतन्य-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; ना पाय-नहीं पा सकते; तुमि कृपा कैले-यदि आप कृपा करें; तौरे-उस पर; अधमेह-एक पतित जीव भी; पाय-प्राप्त कर सकता है।

अनुवाद

“आपकी कृपा के बिना कोई भी श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण प्राप्त नहीं कर सकता, किन्तु यदि आप कृपालु हों, तो अधम से अधम व्यक्ति भी उनके चरणकमलों की शरण पा सकता है।”

अयोग्य मुड़ निवेदन करिते करि भय ।

मोरे ‘चैतन्य’ देह’ गोसाजि हजा सदय ॥132॥

अयोग्य-अयोग्य; मुड़-मैं; निवेदन करिते-अपनी इच्छा प्रकट करते; करि भय-मैं भयभीत हूँ; मोरे-मुझे; चैतन्य देह’—कृपया श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण दे दीजिए; गोसाजि-मेरे प्रभु; हजा स-दय-दया करके।

अनुवाद

“यद्यपि मैं अयोग्य हूँ और यह याचना करते हुए अत्यधिक भयभीत हूँ, तो भी मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप मुझे श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में शरण प्रदान करके मेरे प्रति विशेष कृपालु हों।”

“मोर माथे पद धरि’ करह प्रसाद ।

निर्विघ्ने चैतन्य पाड—कर आशीर्वाद” ॥133॥

मोर माथे-मेरे सिर पर; पद धरि’-अपने चरण रखकर; करह प्रसाद-मुझे कृपा दीजिये; निर्विघ्ने-बिना कठिनाई के; चैतन्य पाड-मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण प्राप्त कर सकें; कर आशीर्वाद-यह आशीर्वाद दीजिए।

अनुवाद

“आप मेरे सिर पर अपने चरण रखकर मुझे यह आशीर्वाद दें कि मैं बिना कठिनाई के श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण प्राप्त कर सकें। मैं आपसे इसी आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करता हूँ।”

शुनि’ हासि’ कहे प्रभु सब भक्त-गणे ।

“इहार विषय-सुख-इन्द्र-सुख-समे” ॥134॥

शुनि'—सुनकर; हासि'—मुस्कराकर; कहे-कहते हैं; प्रभु-नित्यानन्द प्रभु; सब भक्त-गणे-सभी भक्तों को; इहार-रघुनाथ दास के; विषय सुख-भौतिक सुख; इन्द्र- सुख-स्वर्ग के राजा इन्द्र के भौतिक सुखों के; सम-समान।

अनुवाद

रघुनाथ दास की यह याचना सुनकर नित्यानन्द प्रभु हँसे और सारे भक्तों से बोले, “रघुनाथ दास के भौतिक सुख का स्तर स्वर्ग के राजा इन्द्र के सुख के तुल्य है।

चैतन्य-कृपाते सेह नाहि भाय मने ।

सबे आशीर्वाद कर—पाउक चैतन्य-चरणे ॥135॥

चैतन्य-कृपाते-श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा द्वारा; सेह-भौतिक सुखों के ऐसे योग को; नाहि भाय-वह मूल्यवान नहीं समझता; मने-मन में; सबे-आप सभी; आशीर्वाद कर-आशीर्वाद दीजिए; पाउक-इसे मिले; चैतन्य-चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

“श्री चैतन्य महाप्रभु की रघुनाथ दास पर कृपा होने से, इतना भौतिक सुख प्राप्त होने पर भी उसे यह अच्छा नहीं लगता। इसलिए तुम सारे लोग उस पर कृपालु होकर उसे आशीर्वाद दो कि वह शीघ्र ही श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण प्राप्त करें।”

“कृष्ण-पाद-पद्म-गन्ध येइ जन पाय ।

ब्रह्मलोक-आदि-सुख तारै नाहि भाय” ॥136॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण के; पाद-पद्म-चरणकमलों की; गन्ध-सुगन्ध; येइ जन-जो कोई भी; पाय-प्राप्त करता है; ब्रह्म-लोक-ब्रह्मलोक; आदि-आदि के; सुख-सुख; तारै-उसे; नाहि भाय-अच्छे नहीं लगते।

अनुवाद

“जो व्यक्ति कृष्ण के चरणकमलों की सुगन्ध का अनुभव करता है, वह सर्वोच्च लोक ब्रह्मलोक में प्राप्त सुख को भी कोई महत्त्व प्रदान नहीं करता। तो फिर स्वर्गिक सुख की क्या बात है?

यो दुस्त्यजान्दार-सुतान्सुहृद्राज्यं हृदि-स्पृशः ।

जहौ युवैव मल-वदुत्तम-श्लोक-लालसः ॥137॥

यः-जो (महाराज भरत); दुस्त्यजान्-त्यागने में कठिन; दार-सुतान्-पत्नी और सन्तान; सुहृत्-मित्र; राज्यम्-राज्य; हृदि-स्पृशः-हृदय की गहराइयों को प्रिय; जहौ- त्यागकर; युवा-युवा; एव-उस अवस्था में; मल-वत्-विष्टा के समान; उत्तम-श्लोक- लालसः-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दिव्य गुणों, लीलाओं और संग की लालसा के कारण।

अनुवाद

“पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की कृपा प्राप्त करने के इच्छुक लोगों द्वारा उनकी उत्तम स्तुतियाँ की जाती हैं। इसलिये वे उत्तमश्लोक कहलाते हैं। भगवान् कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए अत्यन्त उत्सुक होने के कारण राजा भरत ने युवावस्था में ही अपनी अत्यन्त आकर्षक पत्नी, स्नेहिल बच्चों, प्रिय मित्रों तथा ऐश्वर्ययुक्त साम्राज्य का उसी तरह परित्याग कर दिया, जिस तरह मल को त्याग दिया जाता है।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (5.14.43) से है।

तबे रघुनाथे प्रभु निकटे बोलाइला ।

ताँर माथे पद धरि कहिते लागिला ॥138॥

तबे-फिर; रघुनाथे-रघुनाथ दास को; प्रभु-नित्यानन्द प्रभु ने; निकटे बोलाइला-पास बुलाकर; ताँर माथे-उनके सिर पर; पद धरि'-अपने चरण रखकर; कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

तब नित्यानन्द प्रभु ने रघुनाथ दास को अपने पास बुलाया, उनके सिर पर अपने चरण रखे और उनसे बोले।

“तुमि ग्रे कराइला एइ पुलिन-भोजन ।

तोमाय कृपा करि’ गौर कैला आगमन” ॥139॥

तुमि-तुमने; ये-जो; कराइला-करवाया; एइ-यह; पुलिन-भोजन-गंगा के किनारे भोज; तोमाय-तुम पर; कृपा करि’-कृपा करके; गौर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु: कैला आगमन-आ गये।

अनुवाद

“हे रघुनाथ दास, चूँकि तुमने गंगा नदी के तट पर इस भोजन की व्यवस्था की है, इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु तुम पर मात्र अपनी कृपा दिखाने के लिए यहाँ आये।”

कृपा करि’ कैला चिड़ा-दुग्ध भोजन ।

नृत्य देखि’ राज्ये कैला प्रसाद भक्षण ॥140॥

कृपा करि’-अपनी अहैतुकी कृपा द्वारा; कैला-किया; चिड़ा-दुग्ध भोजन-चिड़ा और दूध का भोजन; नृत्य देखि’-नृत्य देखकर; राज्ये-रात को; कैला प्रसाद भक्षण- प्रसाद ग्रहण किया।

अनुवाद

“अपनी अहैतुकी कृपा से उन्होंने चिउड़ा तथा दूध खाया। तत्पश्चात् रात में भक्तों का नृत्य देखने के बाद उन्होंने भोजन किया।”

तोमा उद्धारिते गौर आइला आपने ।

छुटिल तोमार यत विघ्नादि-बन्धने ॥ 141॥

तोमा-तुम्हारा; उद्धारिते-उद्धार करने के लिए; गौर-श्री चैतन्य महाप्रभु, गौरहरि, आइला आपने-स्वयं आ गये; छुटिल-छूट गये; तोमार तुम्हारे; यत-सभी प्रकार के; विघ्न-आदि-बन्धने-बन्धन के विघ्न।

अनुवाद

“श्री चैतन्य महाप्रभु गौरहरि तुम्हारा उद्धार करने के लिए स्वयं यहाँ आये। अब समझ लो कि तुम्हारे बन्धन के सारे अवरोध दूर हो गये।”

स्वरूपे स्थाने तोमा करिबे समर्पणे ।

‘अन्तरङ्ग’ भृत्य बलि’ राखिबे चरणे ॥142॥

स्वरूपे स्थाने—स्वरूप दामोदर को; तोमा-तुम्हें; करिबे समर्पणे-वे सौंप देंगे; अन्तरङ्ग—अत्यन्त अन्तरंग; भृत्य-सेवक; बलि’—मानकर; राखिबे चरणे-अपने चरणकमलों में रखेंगे।

अनुवाद

“श्री चैतन्य महाप्रभु तुम्हें स्वीकार कर लेंगे और अपने सचिव स्वरूप दामोदर के अधीन तुम्हें रख देंगे। इस तरह तुम उनके सर्वश्रेष्ठ विश्वस्त अन्तरंग सेवकों में से एक बन जाओगे और श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण प्राप्त करोगे।”

“निश्चिन्त हवा याह आपन-भवन ।

अचिरे निर्विघ्ने पाबे चैतन्य-चरण” ॥143॥

निश्चिन्त-चिन्तामुक्त; हवा—होकर; याह-जाओ; आपन-भवन-अपने घर; अचिरे—अति शीघ्र; निर्विघ्ने—बिना विघ्न के; पाबे-तुम प्राप्त कर लोगे; चैतन्य-चरण-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

“इस तरह आश्वस्त होकर तुम अपने घर लौट जाओ। तुम शीघ्र ही, बिना किसी अवरोध के श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण प्राप्त करोगे।”

सब भक्त-द्वारे तारै आशीर्वाद कराइला ।

ताँ-सबार चरण रघुनाथ वन्दिला ॥ 144॥

सब-सभी; भक्त-द्वारे-भक्तों द्वारा; तारै आशीर्वाद कराइला-उन्हें आशीर्वाद दिलवाया; ताँ-सबार-उन सभी के; चरण-चरणकमलों में; रघुनाथ—रघुनाथ दास ने; वन्दिला-वन्दना की।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु ने समस्त भक्तों से रघुनाथ दास को आशीर्वाद दिलवाया और रघुनाथ दास ने उन सबके चरणकमलों की सादर वन्दना की।

प्रभु-आज्ञा लजा वैष्णवेर आज्ञा लइला ।

राघव-सहिते निभृते युक्ति करिला ॥145॥

प्रभु-आज्ञा-नित्यानन्द प्रभु की आज्ञा; लजा-लेकर; वैष्णवेर आज्ञा-सभी वैष्णवों की आज्ञा; लइला-उन्होंने ली; राघव-सहिते-राघव पण्डित के साथ; निभृते-एकान्त स्थान में; युक्ति करिला-उन्होंने विचार-विमर्श किया।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु से तथा उसके बाद अन्य सारे वैष्णवों से आज्ञा लेकर रघुनाथ दास ने राघव पण्डित से गुप्त मन्त्रणा की।

युक्ति करि' शत मुद्रा, सोणा तोला-साते ।

निभृते दिला प्रभुर भाण्डारीर हाते ॥146॥

युक्ति करि'-विचार-विमर्श करके; शत मुद्रा-एक सौ मुद्राएँ; सोणा-सोने की; तोला-साते-सात तौले के (लगभग ढाई औंस); निभृते-गुप्त रूप से; दिला-दे दी; प्रभुर-नित्यानन्द प्रभु के; भाण्डारीर-खजांची के; हाते-हाथ में।

अनुवाद

राघव पण्डित से परामर्श लेकर उन्होंने चुपके से नित्यानन्द प्रभु के खजांची के हाथ में एक सौ स्वर्णमुद्राएँ तथा लगभग सात तोला सोना दे दिया।

तारै निषेधिला,-“प्रभुरे एबे ना कहिबा ।

निज-घरे याबेन यबे तबे निवेदिबा” ॥147॥

तारै-उसे; निषेधिला-मना किया; प्रभुरे-नित्यानन्द प्रभु को; एबे-अभी; ना कहिबा-मत बताना; निज-घरे-अपने घर; याबेन-लौट जायेंगे; यबे-जब; तबे-तब; निवेदिबा-कृपया उन्हें बताइएगा।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने खजांची को मना कर दिया कि इसके विषय में अभी नित्यानन्द प्रभु से मत कहना, किन्तु जब वे अपने घर चले जाएँ, तब इस भेंट के बारे में उन्हें बता देना।

तबे राघव-पण्डित तारै घरे लजा गेला ।

ठाकुर दर्शन कराजा माला-चन्दन दिला ॥148॥

तबे-फिर; राघव-पण्डित-राघव पण्डित; तारै-उन्हें; घरे लजा गेला-अपने घर ले गये; ठाकुर दर्शन कराजा-उन्हें श्री विग्रह के दर्शन करवाकर; माला-चन्दन-माला और चन्दन लेप; दिला-दिया।

अनुवाद

तत्पश्चात् राघव पण्डित रघुनाथ दास को अपने घर ले गये। उन्हें अर्चाविग्रह का दर्शन कराने के बाद उन्होंने रघुनाथ दास को एक माला तथा कुछ चन्दन लेप दिया।

अनेक 'प्रसाद' दिला पथे खाइबारे ।

तबे पुनः रघुनाथ कहे पण्डितेरे ॥149॥

अनेक प्रसाद-बहुत प्रसाद; दिला-दिया; पथे खाइबारे-मार्ग में खाने के लिए; तबे-तब; पुनः-फिर; रघुनाथ कहे-रघुनाथ दास ने कहा; पण्डितेरे-राघव पण्डित से।

अनुवाद

उन्होंने रघुनाथ दास को रास्ते में खाने के लिए बहुत सारा प्रसाद दिया। तब रघुनाथ दास ने पुनः राघव पण्डित से कहा।

“प्रभुर सङ्गे यत महान्त, भृत्य, आश्रित जन ।

पूजिते चाहिये आमि सबार चरण” ॥150॥

प्रभुर सङ्गे-नित्यानन्द प्रभु के साथ; व्रत-सभी; महान्त-महान् भक्त; भृत्य-सेवक; आश्रित जन-आश्रित लोग; पूजिते-पूजना; चाहिये-चाहता हूँ; आमि-मैं; सबार चरण-उन सभी के चरणकमलों को।

अनुवाद

“मैं नित्यानन्द प्रभु के समस्त महान् भक्तों, सेवकों तथा आश्रित जनों की पूजा के रूप में उनको कुछ धन देना चाहता हूँ।”

बिश, पञ्च-दश, बार, दश, पञ्च हय ।

मुद्रा देह' विचारि' यार यत योग्य हय ॥151॥

बिश-बीस; पञ्च-दश-पंद्रह; बार-बारह; दश-दस; पञ्च-पाँच; हय-हैं; मुद्रा-मुद्राएँ; देह'-दीजिए; विचार-विचार कर; यार-जिसके लिए; यत-जितनी; योग्य हय-योग्य हो।

अनुवाद

“आप जिसे जिस योग्य समझो, उनमें से हर एक को बीस, पन्द्रह, बारह, दस या पाँच मुद्राएँ दे दो।”

सब लेखा करिया राघव-पाश दिला ।

यार नामे यत राघव चिठि लेखाइला ॥ 152॥

सब-सब; लेखा करिया-लिखकर; राघव-पाश दिला-राघव पण्डित सौंप दिया; यार नामे-किसके नाम पर; यत-कितना; राघव-राघव पण्डित ने; चिठि-सूची; लेखाइला-लिखी।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने दी जाने वाली राशि का विवरण प्रस्तुत किया और उसे राघव पण्डित को दे दिया, जिसने एक सूची बनाई कि प्रत्येक भक्त को कितनी कितनी राशि दी जानी है।

एक-शत मुद्रा आर सोणा तोला-द्वय ।

पण्डितेर आगे दिल करिया विनय ॥153॥

एक-शत मुद्रा-एक सौ मुद्राएँ; आर-और; सोणा-सोना; तोला-द्वय-दो तोला; पण्डितेर आगे-राघव पण्डित के समक्ष; दिल-रख दिया; करिया विनय-अत्यन्त विनम्रतापूर्वक।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने अत्यन्त विनयपूर्वक राघव पण्डित के समक्ष अन्य सारे भक्तों को देने के लिए एक सौ स्वर्ण मुद्राएँ तथा लगभग दो तोला सोना रख दिया।

ताँर पद-धूलि लजा स्वगृहे आइला ।

नित्यानन्द-कृपा पाजा कृतार्थ मानिला ॥ 154॥

ताँर-उनके; पद-धूलि-चरणों की धूल; लजा-लेकर; स्व-गृहे आइला-अपने घर लौट आये; नित्यानन्द-कृपा-भगवान् नित्यानन्द प्रभु की कृपा; पाजा-प्राप्त कर; कृतार्थ मानिला-उन्होंने अत्यन्त कृतार्थ अनुभव किया।

अनुवाद

राघव पण्डित के चरणों की धूल लेने के बाद रघुनाथ दास अपने घर लौट आये और नित्यानन्द प्रभु के प्रति अतीव कृतज्ञता प्रकट की कि उन्होंने अपना कृपापूर्ण आशीर्वाद प्रदान किया है।

सेइ हैते अभ्यन्तरे ना करेन गमन ।

बाहिरे दुर्गा-मण्डपे याजा करेन शयन ॥155॥

सेइ हैते-उन दिन से; अभ्यन्तरे-आन्तरिक कक्षों में; ना करेन गमन-नहीं गये; बाहिरे-बाहर; दुर्गा-मण्डपे-जिस स्थान पर दुर्गा देवी की पूजा की जाती थी; याजा-जाकर; करेन शयन-वह सोते।

अनुवाद

उसी दिन से वे घर के भीतरी भाग में नहीं गये। उल्टे वे दुर्गामण्डप में सोने लगे।

ताँहा जागि' रहे सब रक्षक-गण ।

पलाइते करेन नाना उपाय चिन्तन ॥156॥

ताँहा-वहाँ; जागि'-जागते; रहे-रहते; सब-सभी; रक्षक-गण-पहरेदार; पलाइते-भागने के लिए; करेन-करते; नाना-अनेक; उपाय-उपाय; चिन्तन-विचार।

अनुवाद

किन्तु रखवाले उनकी पूरी चौकसी रखते थे। रघुनाथ दास अनेक उपाय सोचते जिससे वे उनकी निगरानी से भाग निकलें।

हेन-काले गौड़-देशेर सब भक्त-गण ।

प्रभुरे देखिते नीलाचले करिला गमन ॥157॥

हेन-काले-उस समय; गौड़-देशेर-बंगाल के; सब-सभी; भक्त-गण-भक्त; प्रभुरे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के; देखिते-दर्शन के लिए; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी; करिला गमन-गये।

अनुवाद

उसी समय बंगाल के सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने जगन्नाथ पुरी जा रहे थे।

ताँ-सबार सङ्गे रघुनाथ याइते ना पारे ।

प्रसिद्ध प्रकट सङ्ग, तबहिं धरा पड़े ॥ 158॥

ताँ-सबार-उन सबके; सङ्गे-साथ; रघुनाथ-रघुनाथ दास; याइते ना पारे-नहीं जा सके; प्रसिद्ध-विख्यात; प्रकट-ज्ञात; सङ्ग-संघ; तबहिं तुरन्त; धरा पड़े-वे पकड़े जाते।

अनुवाद

रघुनाथ दास उनके साथ नहीं जा सकते थे, क्योंकि वे इतने प्रसिद्ध थे कि यदि वह उनके साथ जाते तो पकड़ लिए जाते।

एइ-मत चिन्तिते दैवे एक-दिने ।

बाहिरे देवी-मण्डपे करियाछेन शयने ॥ 159॥

दण्ड-चारि रात्रि यबे आछे अवशेष ।

यदुनन्दन-आचार्य तबे करिला प्रवेश ॥ 160॥

एइ-मत-इस प्रकार; चिन्तिते-विचार करते हुए; दैवे-भाग्य से; एक दिने-एक दिन; बाहिरे घर के बाहर; देवी-मण्डपे-दुर्गा मण्डप पर; करियाछेन शयने-सो रहे थे; दण्ड-चारि-चार दण्ड (96 मिनट); रात्रि-रात; यबे-जब; आछे अवशेष-रह गये; यदुनन्दन-आचार्य-यदुनन्दन आचार्य नामक पुजारी; तब-तब; करिला प्रवेश-प्रवेश किया।

अनुवाद

इस प्रकार रघुनाथ दास ने गम्भीरतापूर्वक विचार किया कि किस तरह भाग निकला जाए और एक रात जब वह दुर्गामण्डप में सो रहे थे, तो पुरोहित यदुनन्दन आचार्य घर के भीतर गये। तब केवल चार दण्ड रात्रि शेष थी।

वासुदेव-दत्तेर तेंह हय 'अनुगृहीत' ।

रघुनाथेर 'गुरु' तेंहो हय 'पुरोहित' ॥161॥

वासुदेव-दत्तेर-वासुदेव दत्त की; तेंह-उन्हें; हय अनुगृहीत-कृपा प्राप्त थी; रघुनाथेर-रघुनाथ दास के; गुरु-आध्यात्मिक गुरु; तेंहो-वे; हय-थे; पुरोहित-पुजारी।

अनुवाद

यदुनन्दन आचार्य रघुनाथ दास के पुरोहित और गुरु थे। यद्यपि वे ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न थे, किन्तु उन्होंने वासुदेव दत्त की कृपा स्वीकार की थी।

अद्वैत-आचार्येर तेंह 'शिष्य अन्तरङ्ग' ।

आचार्य-आज्ञाते माने-चैतन्य 'प्राण-धन' ॥162॥

अद्वैत-आचार्येर-अद्वैत आचार्य के; तेंह-यदुनन्दन आचार्य; शिष्य-शिष्य; अन्तरङ्ग-अति अन्तरंग; आचार्य-आज्ञाते-अद्वैत आचार्य के आदेश पर; माने—उन्होंने मान लिया; चैतन्य प्राण-धन-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने प्राण और आत्मा के रूप में।

अनुवाद

यदुनन्दन आचार्य ने प्रामाणिक रूप से अद्वैत आचार्य से दीक्षा ली थी। इस तरह वे श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने जीवन और प्राण मानते थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि यद्यपि श्री अद्वैत आचार्य के आदेश का पालन न करने वाले नास्तिक भी अपने आपको अद्वैत आचार्य का अनुयायी कहते हैं, किन्तु वे श्री चैतन्य महाप्रभु को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के रूप में स्वीकार नहीं करते। यदुनन्दन आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के सर्वाधिक अन्तरंग अनुयायियों में से एक थे और अद्वैत आचार्य के दीक्षित शिष्य थे। वे वैष्णवों को जन्म के अनुसार वर्गीकरण करने की भावुक प्रथा से ग्रस्त नहीं थे। इसलिए यदुनन्दन आचार्य ने भी वासुदेव दत्त को अपना गुरु मान लिया था, यद्यपि वे ब्राह्मण परिवार में नहीं जन्मे थे।

अङ्गने आसिया तेंहो यबे दाण्डाइला ।

रघुनाथ आसि' तबे दण्डवत् कैला ॥163॥

अङ्गने-आँगन में; आसिया-प्रवेश करके; तेंहो-यदुनन्दन आचार्य; यबे-जब; दाण्डाइला-खड़े हो गये; रघुनाथ-रघुनाथ दास ने; आसि'-आकर; तबे-उस समय; दण्डवत् कैला-दण्डवत् प्रणाम किया।

अनुवाद

जब यदुनन्दन आचार्य रघुनाथदास के घर में जाकर आँगन में खड़े हुए, तो रघुनाथ दास वहाँ गये और उन्होंने उनके चरणों में गिरकर नमस्कार किया।

ताँर एक शिष्य ताँर ठाकुरे सेवा करे ।

सेवा छाड़ियाछे, तारे साधिबार तरे ॥164॥

ताँर-उनका; एक-एक; शिष्य-शिष्य; ताँर-उनके; ठाकुरे-विग्रह की; सेवा-सेवा; करे-करता; सेवा छाड़ियाछे-उसने वह सेवा छोड़ दी; तारे-उसे; साधिबार तरे-प्रेरित करने के लिए।

अनुवाद

यदुनन्दन आचार्य का एक शिष्य अर्चाविग्रह की पूजा करता आ रहा था, किन्तु उसने वह सेवा छोड़ दी थी। यदुनन्दन आचार्य चाहते थे कि रघुनाथ दास उसे वही सेवा पुनः करने के लिए प्रेरित करें।

रघुनाथे कहे,—“तारे करह साधन ।

सेवा येन करे, आर नाहिक ब्राह्मण” ॥165 ॥

रघुनाथे कहे-उन्होंने रघुनाथ दास से कहा; तारे-उसे; करह साधन-सेवा जारी रखने के लिए प्रेरित करना; सेवा-सेवा; येन-वह; करे-वह करे; आर-अन्य; नाहिक- नहीं है; ब्राह्मण-ब्राह्मण।

अनुवाद

यदुनन्दन आचार्य ने रघुनाथ दास से अनुरोध किया, “तुम उस ब्राह्मण को फिर से सेवा करने के लिए प्रेरित करके लाओ, क्योंकि सेवा करने के लिए अन्य कोई ब्राह्मण नहीं है।”

एत कहि’ रघुनाथे लजा चलिला ।

रक्षक सब शेष-रात्रे निद्राय पड़िला ॥166॥

एत कहि’-यह कहकर; रघुनाथे लजा-रघुनाथ दास को लेकर; चलिला-वे चले गये; रक्षक सब-सारे पहरदार; शेष-रात्रे-रात के अन्त में; निद्राय पड़िला-सो गये।

अनुवाद

यह कहकर यदुनन्दन आचार्य ने रघुनाथ दास को अपने साथ ले लिया और दोनों बाहर चले गये। उस समय तक सारे पहरदार गहरी नींद में सोये हुए थे, क्योंकि रात का अन्तिम प्रहर था।

आचार्येर घर इहार पूर्व-दिशाते ।

कहिते शुनिते दुँहै चले सेइ पथे ॥167॥

आचार्येर घर-यदुनन्दन आचार्य का घर; इहार-इससे; पूर्व-दिशाते-पूर्व दिशा में; कहिते-कहते हुए; शुनिते-सुनते हुए; है-वे दोनों; चले गये; सेइ पथे-उस मार्ग पर।

अनुवाद

रघुनाथ दास के घर से पूर्व की ओर यदुनन्दन आचार्य का घर था। वे दोनों घर की ओर जाते हुए एक दूसरे से बातें करते गये।

अर्ध-पथे रघुनाथ कहे गुरु चरणे ।

‘आमि सेइ विप्रे साधि’ पाठाइमु तोमा स्थाने ॥168॥

अर्ध-पथे-आधे रास्ते में; रघुनाथ कहे-रघुनाथ दास ने कहा; गुरु चरणे-अपने गुरुदेव के चरणकमलों में; आमि-मैं; सेइ-उस; विप्रे-ब्राह्मण को; साधि-मनाकर; पाठाइमु-भेज दूँगा; तोमा स्थाने-आपके घर।

अनुवाद

आधी दूर जाकर रघुनाथ दास ने अपने गुरु के चरणों में निवेदन किया, “मैं उस ब्राह्मण के घर जाऊँगा, उसे लौट आने के लिए प्रेरित करूँगा तथा उसे आपके घर भेज दूँगा।

तुमि सुखे घरे याह-मोरे आज्ञा हय ।

एइ छले आज्ञा मागि’ करिला निश्चय ॥169 ॥

तुमि-आप; सुखे-सुखपूर्वक; घरे याह-अपने घर जाइये; मोरे-मुझे; आज्ञा-आज्ञा; हय-है; एइ छले-इस बहाने; आज्ञा मागि’-आज्ञा माँगकर; करिला निश्चय-निश्चय किया।

अनुवाद

“आप निश्चिन्त होकर घर जा सकते हैं। आपकी आज्ञानुसार मैं उस ब्राह्मण को मना लाऊँगा।” इस निवेदन के साथ उनकी अनुमति लेकर रघुनाथ दास ने चले जाने का निश्चय किया।

“सेवक रक्षक आर केह नाहि सङ्गे ।

पलाइते आमार भाल एइत प्रसङ्गे” ॥170॥

सेवक-सेवक; रक्षक-पहरेदार; आर-और; केह नाहि-कोई नहीं है; सङ्गे-साथ; पलाइते-भागने के लिए; आमार-मेरे; भाल-अच्छा; एइत-यह; प्रसङ्गे-अवसर।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने सोचा, “भाग जाने का यह सबसे अच्छा अवसर है, क्योंकि इस समय मेरे साथ न तो कोई नौकर है, न ही पहरेदार।”

एत चिन्ति' पूर्व-मुखे करिला गमन ।

उलटिया चाहे पाछे,—नाहि कोन जन ॥171॥

एत चिन्ति'-यह सोचकर; पूर्व-मुखे-पूर्व की ओर; करिला गमन-आगे बढ़ने लगे; उलटिया-मुड़कर; चाहे-देखते; पाछे-पीछे; नाहि कोन जन-वहाँ कोई नहीं था।

अनुवाद

इस तरह सोचते हुए वे पूर्व की दिशा में तेजी से बढ़ते गये। कभी-कभी वे घूमकर पीछे देख लेते, किन्तु कोई उनका पीछा नहीं कर रहा था।

श्री-चैतन्य-नित्यानन्द-चरण चिन्तिया ।

पथ छाड़ि' उपपथे यायेन धात्रा ॥ 172 ॥

श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु के; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द प्रभु के; चरण-चरणकमलों का; चिन्तिया-चिन्तन करते हुए; पथ छाड़ि'-साधारण मार्ग छोड़कर; उपपथे-उस मार्ग से जिसका सामान्यतः प्रयोग नहीं होता; यायेन धात्रा-वे अत्यन्त तेजी से गये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु के चरणकमलों का ध्यान करते हुए उन्होंने आम रास्ता छोड़ दिया और गौण रास्ते से होकर, जो सामान्यतः उपयोग में नहीं लिया जाता था, शीघ्रता से आगे बढ़ने लगे।

ग्रामे-ग्रामेर पथ छाड़ि' याय वने वने ।

काय-मनो-वाक्ये चिन्ते चैतन्य-चरणे ॥173॥

ग्रामे-ग्रामेर-गाँव गाँव के; पथ-सामान्य मार्ग; छाड़ि'-छोड़कर; याय-जाते; वने वने-जंगलों से; काय-मनः-वाक्ये-शरीर, मन तथा वचनों से; चिन्ते-ध्यान करते; चैतन्य चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

वे एक गाँव से दूसरे गाँव के आम रास्ते को छोड़ते हुए अपने प्राणों तथा मन से श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का ध्यान करते हुए जंगलों से होते हुए आगे चलते गये।

पञ्च-दश-क्रोश-पथ चलि' गेला एक-दिने ।

सन्ध्या-काले रहिला एक गोपेर बाथाने ॥174॥

पञ्च-दश-क्रोश-लगभग तीस मील; पथ चलि'—मार्ग पर चलकर; गेला-गये; एक-दिने—एक दिन में; सन्ध्या-काले-शाम को; रहिला-रूके; एक गोपेर-एक ग्वाले की; बाथाने-गोशाला में।

अनुवाद

एक दिन में लगभग तीस मील चले और शाम को उन्होंने एक ग्वाले की गोशाला में विश्राम किया।

उपवासी देखि' गोप दुग्ध आनि' दिला ।

सेइ दुग्ध पान करि' पड़िया रहिला ॥ 175 ॥

उपवासी-उपवास करते; देखि'—देखकर; गोप-ग्वाले ने; दुग्ध-दूध; आनि'—लाकर; दिला-दिया; सेइ दुग्ध-वह दूध; पान करि'—पीकर; पड़िया-लेटकर; रहिला-रह गये।

अनुवाद

जब उस ग्वाले ने देखा कि रघुनाथ दास उपवास कर रहे हैं, तो उसने उन्हें कुछ दूध दिया। रघुनाथ दास ने वह दूध पिया और रात भर विश्राम करने के लिए वहाँ लेट गये।

एथा तार्र सेवक रक्षक तार्र ना देखियो ।

तार्र गुरु-पाशे वार्ता पुछिलेन गया ॥176॥

एथा-यहाँ, उनके घर पर; तार्र—उनके; सेवक-सेवक; रक्षक—पहरेदार; तार्र—उन्हें; ना देखिया-न देखकर; तार्र गुरु-पाशे-उनके गुरु के पास; वार्ता—खबर; पुछिलेन-पूछने के लिए; गया-गये।

अनुवाद

रघुनाथ दास के घर में जब नौकर तथा पहरेदार ने उन्हें नहीं देखा, तो तुरन्त ही वे उनके गुरु यदुनन्दन आचार्य के पास उनके विषय में पूछने गये।

तैंह कहे, ‘आज्ञा मागि’ गेला निज-घर’ ।

‘पलाइल रघुनाथ’—उठिल कोलाहल ॥ 177॥

तैंह कहे-उन्होंने कहा; आज्ञा मागि’-मुझसे आज्ञा लेकर; गेला-गया है; निज घर-अपने घर; पलाइल रघुनाथ-रघुनाथ भाग गया; उठिल-गूँज उठी; कोलाहल-उच्च ध्वनि।

अनुवाद

यदुनन्दन आचार्य ने कहा, “वह मुझसे आज्ञा माँगकर घर लौट गया।” इस तरह वहाँ कोलाहल उठने लगा, क्योंकि हर व्यक्ति चिल्ला रहा था कि, “अब रघुनाथ भाग गया है।”

ताँर पिता कहे,—“गौड़ेर सब भक्त-गण ।

प्रभु-स्थाने नीलाचले करिला गमन” ॥ 178॥

ताँर-उनके; पिता-पिता ने; कहे-कहा; गौड़ेर-बंगाल के; सब-सभी; भक्त गण-भक्तगण; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के पास; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी; करिला गमन-गये हैं।

अनुवाद

रघुनाथ दास के पिता ने कहा, “अब बंगाल के सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने जगन्नाथपुरी गये हैं।”

सेइ-सङ्गे रघुनाथ गेल पलाजा ।

दश जन याह, तारे आनह धरिया” ॥ 179॥

सेइ-सङ्गे-उनके साथ; रघुनाथ-रघुनाथ दास; गेल पलाजा-भाग गया; दश जन-दस लोग; याह-जाकर; तारे-उसे; आनहलाओ; धरिया-पकड़कर।

अनुवाद

“रघुनाथ दास उन्हीं के साथ भाग गया है। दस व्यक्ति तुरन्त उसे पकड़ने के लिए जायें और उसे लौटा ले आयें।”

शिवानन्द पत्री दिल विनय करिया ।

‘आमार पुत्रे तुमि दिबा बाहुड़िया’ ॥180॥

शिवानन्द-शिवानन्द सेन को; पत्री-एक पत्र; दिल-भेजा; विनय करिय-निवेदनपूर्वक; आमार पुत्रे-मेरे पुत्र को; तुमि-आप; दिबा-कृपया दे दीजिए; बाहुड़िया-वापस।

अनुवाद

रघुनाथ दास के पिता ने शिवानन्द सेन के नाम एक चिट्ठी लिखी और उनसे अत्यन्त विनयपूर्वक अनुरोध किया, “कृपया मेरे पुत्र को लौटाकर भेज दें।”

झाङ्करा पर्यन्त गेल सेइ दश जने ।

झाङ्कराते पाइल गया वैष्णवेर गणे ॥181॥

झाङ्करा पर्यन्त-झाँकरा नामक स्थान तक; गेल-गये; सेइ दश जने-वे दस लोग; झाङ्कराते-झाँकरा में; पाइल-मिले; गया-जाकर; वैष्णवेर गणे-वैष्णवों के एक समूह से।

अनुवाद

झाँकरा में दसों व्यक्ति वैष्णवों की एक टोली के साथ हो गये, जो नीलाचल जा रही थी।

पत्री दिया शिवानन्दे वार्ता पुछिल ।

शिवानन्द कहे,–‘तेह एथा ना आइल’ ॥182॥

पत्री-पत्र; दिया-दिया; शिवानन्दे-शिवानन्द सेन को; वार्ता-खबर; पुछिल-पूछे; शिवानन्द कहे-शिवानन्द सेन ने कहा; तेह-वह; एथायहाँ; ना आइल-नहीं आया।

अनुवाद

उन लोगों ने वह चिट्ठी देकर शिवानन्द सेन से रघुनाथ दास के विषय में पूछा, किन्तु शिवानन्द सेन ने उत्तर दिया कि, “वह यहाँ नहीं आया।”

बाहुड़िया सेइ दश जन आइल घर ।

ताँर माता-पिता हइल चिन्तित अन्तर ॥183॥

बाहुड़िया-लौटकर; सेइ-वे; दश जन-दस लोग; आइल घर-घर वापस आ गये; ताँर-उनके; माता-पिता-माता पिता; हइल-हो गये; चिन्तित-चिन्ताग्रस्त; अन्तर-अपने मन में।

अनुवाद

दसों लोग घर लौट आये। रघुनाथ दास के माता-पिता अत्यधिक चिन्तित हो उठे।

एथा रघुनाथ-दास प्रभाते उठिया ।

पूर्व-मुख छाड़ि' चले दक्षिण-मुख हजा ॥ 184॥

एथा-यहाँ; रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास; प्रभाते-प्रातः काल में; उठिया-उठकर; पूर्व-मुख-पूर्व दिशा; छाड़ि'-छोड़कर चले-चलने लगे; दक्षिण-मुख-दक्षिण दिशा को; हजा-होकर।

अनुवाद

रघुनाथ दास, जो ग्वाले के घर में विश्राम कर रहे थे, प्रातःकाल जल्दी जगे और पूर्व दिशा में जाने के स्थान पर उन्होंने अपना मुँह दक्षिण की ओर मोड़ा और आगे बढ़ने लगे।

छत्रभोग पार हजा छाड़िया सराण ।

कुग्राम दिया दिया करिल प्रयाण ॥ 185॥

छत्र-भोग-छत्रभोग नामक स्थान; पार हजा-पार करके; छाड़िया-छोड़कर; सराण-राजमार्ग; कुग्राम दिया दिया-गाँव के मार्गों से होते हुए; करिल प्रयाण-आगे बढ़ते रहे।

अनुवाद

छत्रभोग पार करने के बाद वे आम रास्ते से न जाकर ऐसे रास्ते से गये, जो एक गाँव से दूसरे गाँव होकर जाता था।

तात्पर्य

छत्रभोग अब छाड़खाड़ि कहलाता है और पश्चिम बंगाल के चौबीस परगना जिले में है। यह सुविख्यात गाँव जयनगर मजिलपुर के निकट स्थित है। पहले इस भाग से होकर गंगा नदी या इसकी कुछ शाखाएँ बहती थीं। कभी-कभी भूल से छत्रभोग को बेनापोल में काँसाइ-नदी पर स्थित गाँव के रूप में मान लिया जाता है।

भक्षण अपेक्षा नाहि, समस्त दिवस गमन ।

क्षुधा नाहि बाधे, चैतन्य-चरण-प्राप्त्ये मन ॥186॥

भक्षण अपेक्षा नाहि-खाने की परवाह नहीं की; समस्त दिवस-पूरा दिन; गमन-यात्रा करते; क्षुधा-भूख; नाहि बाधे-बाधा नहीं बनी; चैतन्य-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों को प्राप्त्ये-प्राप्त करने का; मन-मन।

अनुवाद

भोजन की परवाह न करके वे सारा दिन चलते रहते। भूख बाधक न थी, क्योंकि उनका मन श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण पाने पर केन्द्रित था।

कभु चर्वण, कभु रन्धन, कभु दुग्ध-पान ।

यबे येइ मिले, ताहे राखे निज प्राण ॥187॥

कभु चर्वण-कभी चबाकर; कभु रन्धन-कभी पकाकर; कभु दुग्ध-पान-कभी दूध पीकर; यबे-जब; येइ-जो कुछ; मिले-मिलता; ताहे-उस प्रकार; राखे-रखते; निज प्राण-अपने प्राण।

अनुवाद

कभी वे चबैना चबाते, कभी वे भोजन पकाते और कभी दूध पी लेते। इस तरह जहाँ वे जाते, उन्हें जो कुछ भी मिल जाता उसी से प्राणों की रक्षा करते।

बार दिने चलि' गेला श्री-पुरुषोत्तम ।

पथे तिन-दिन मात्र करिला भोजन ॥188॥

बार दिने-बारह दिन तक; चलि'—यात्रा करके; गेला—पहुँचे; श्री-पुरुषोत्तम-जगन्नाथ पुरी या पुरुषोत्तम क्षेत्र, नीलाचल; पथे-मार्ग में; तिन-दिन-तीन दिन; मात्र-केवल; करिला भोजन-उन्होंने भोजन किया।

अनुवाद

वे बारह दिनों में जगन्नाथपुरी पहुँचे, किन्तु रास्ते में उन्होंने तीन दिन ही भोजन किया।

स्वरूपादि-सह गोसाजि आछेन वसिया ।

हेन-काले रघुनाथ मिलिल आसिया ॥189॥

स्वरूप-आदि-सह-स्वरूप दामोदर आदि भक्तों के संग में; गोसाजि-भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु; आछेन वसिया—बैठे हुए थे; हेन-काले—इस समय; रघुनाथ—रघुनाथ दास; मिलिल-मिले; आसिया-आकर।

अनुवाद

जब रघुनाथ दास श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले, तब महाप्रभु स्वरूप दामोदर इत्यादि अपने संगियों के साथ बैठे हुए थे।

अङ्गनेते दूरे रहि' करेन प्रणिपात ।

मुकुन्द-दत्त कहे,—‘एइ आइल रघुनाथ’ ॥190॥

अङ्गनेते-आँगन में; दूरे रहि'—स्वयं को दूर रखते हुए; करेन प्रणिपात-प्रणाम किया; मुकुन्द-दत्त कहे-मुकुन्द दत्त ने कहा; एइ—यह; आइल-आ गया; रघुनाथ-रघुनाथ दास।

अनुवाद

आँगन में कुछ दूर रुककर उन्होंने दण्डवत् प्रणाम किया। तब मुकुन्द दत्त ने कहा, “यह रघुनाथ आ गया।”

प्रभु कहेन,—‘आइस’, तेंहो धरिला चरण ।

उठि' प्रभु कृपाय तारै कैला आलिङ्गन ॥191॥

प्रभु कहेन-महाप्रभु ने कहा; आइस-इधर आओ; तेंहो-उन्होंने (रघुनाथ ने); धरिला चरण-उनके चरणकमल पकड़ लिए; उठि'-उठकर; प्रभु-महाप्रभु ने; कृपाय-कृपापूर्वक; तौर-उन्हें; कैला आलिङ्गन-गले से लगा लिया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने ये शब्द सुनते ही तुरन्त रघुनाथ दास का स्वागत किया। उन्होंने कहा, “यहाँ आओ।” तब रघुनाथ दास ने उनके चरणकमल पकड़ लिए, किन्तु महाप्रभु खड़े हो गये और अपनी अहैतुकी कृपा से उनका आलिंगन कर लिया।

स्वरूपादि सब भक्तेर चरण वन्दिला ।

प्रभु-कृपा देखि' सबै आलिङ्गन कैला ॥192॥

स्वरूप-आदि-स्वरूप दामोदर आदि; सब भक्तेर-सभी भक्तों के; चरण वन्दिला-चरणकमलों में प्रार्थनाएँ की; प्रभु-कृपा-चैतन्य महाप्रभु की कृपा; देखि'-देखकर; सबे-उन सबने; आलिङ्गन कैला-आलिंगन किया।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने स्वरूप दामोदर गोस्वामी इत्यादि सारे भक्तों के चरणकमलों की वन्दना की। उन्होंने भी, यह देखकर कि रघुनाथ दास पर महाप्रभु ने विशेष कृपा की है, उनका आलिंगन किया।

प्रभु कहे,—“कृष्ण-कृपा बलिष्ठ सबा हैते ।

तोमारे काड़िल विषय-विष्टा-गर्त हैते” ॥193॥

प्रभु कहे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; कृष्ण-कृपा-भगवान् कृष्ण की कृपा; बलिष्ठ-अत्यन्त शक्तिशाली; सबा हैते-सबसे; तोमारे-तुम पर; काड़िल-उन्होंने निकाल दिया; विषय-भौतिक आनन्द; विष्टा-विष्टा; गर्त-नाली; हैते-से।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “भगवान् कृष्ण की कृपा सबसे प्रबल होती है। इसलिए भगवान् ने तुम्हें भौतिकतावादी जीवन की खाई से उबार लिया है, जो उस छेद के समान है, जिसमें लोग मल त्याग करते हैं।”

तात्पर्य

कर्म के नियम के अनुसार हर व्यक्ति को किसी भौतिक मानदण्ड के अनुसार दुःख या सुख भोगना पड़ता है, किन्तु भगवान् कृष्ण की कृपा इतनी प्रबल है कि मनुष्य के सारे विगत कर्मफलों को बदल सकती है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण-कृपा की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया। यह कृपा अन्य किसी वस्तु से अधिक प्रबल है, क्योंकि इसने रघुनाथ दास को भौतिकतावादी जीवन के प्रबल बन्धन से बचाया, जिसकी तुलना महाप्रभु ने उस छेद से की है, जहाँ लोग मल त्याग करते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह निर्णय दिया कि जो लोग भौतिकतावादी जीवन में लिप्त रहते हैं, वे मल में रहने वाले उन कीड़ों के समान हैं, जो उसे त्याग नहीं सकते। एक गृहव्रत जिसने सुविधापूर्ण घर, जो वास्तव में दुःख से भरा होता है, उसमें रहने का दृढ़ संकल्प किया है, वह गर्हित अवस्था में रहता है। केवल कृष्ण की कृपा ही उसे ऐसे कष्ट से बचा सकती है। कृष्ण की कृपा के बिना घृणित भव-पाश से निकल पाना सम्भव नहीं है। बेचारा जीव अपनी इच्छा से भौतिकतावादी स्थिति को त्याग नहीं पाता। जब कृष्ण की विशेष कृपा होती है, तभी वह उसे त्याग पाता है। श्री चैतन्य महाप्रभु भलीभाँति जानते थे कि रघुनाथ दास पहले ही मुक्त हो चुका है, फिर भी उन्होंने जोर देकर कहा कि धनी पिता का पुत्र होने के कारण रघुनाथ दास का विलासपूर्ण जीवन, जिसमें सुन्दर पत्नी तथा अनेक नौकर हैं, मल की खाई के तुल्य है। इस तरह महाप्रभु ने विशेष रूप से इंगित किया कि भौतिक सुविधाओं तथा पारिवारिक जीवन से अत्यन्त सुखी सामान्य लोग मल के कीटों से किसी तरह भी श्रेष्ठ नहीं हैं।

रघुनाथ मने कहे,—कृष्ण नाहि जानि ।

तव कृपा काड़िल आमा,—एइ आमि मानि’ ॥194॥

रघुनाथ-रघुनाथ दास ने; मने कहे-अपने मन में उत्तर दिया; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; नाहि जानि-मैं नहीं जानता; तव-आपकी; कृपा-कृपा ने; काड़िल-निकाला है; आमा-मुझे; एइ-यह; आमि मानि-मैं मानता हूँ।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने अपने मन में उत्तर दिया, “मैं नहीं जानता कि कृष्ण कौन हैं। हे प्रभु, मैं तो केवल इतना जानता हूँ कि आपकी कृपा ने मुझे पारिवारिक जीवन से बचा लिया है।”

प्रभु कहेन,—“तोमार पिता-ज्येठा दुइ जने ।

चक्रवर्ती-सम्बन्धे हाम ‘आजा’ करि’ माने” ॥195॥

प्रभु कहेन-भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने कहा; तोमार-तुम्हारे; पिता-ज्येठा-पिता और उनके बड़े भाई; दुइ जने-वे दोनों; चक्रवर्ती सम्बन्धे-नीलाम्बर चक्रवर्ती से सम्बन्ध के कारण; हाम-मैं; आजा करि'-अपने नाना के समान; माने-मानता हूँ।

अनुवाद

महाप्रभु ने आगे कहा, “तुम्हारे पिता तथा ताऊ दोनों ही मेरे नाना (मातामह) नीलाम्बर चक्रवर्ती के भाई जैसे हैं। अतएव मैं उन्हें अपना नाना (आजा) मानता हूँ।”

तात्पर्य

नीलाम्बर चक्रवर्ती श्री चैतन्य महाप्रभु के मातामह (नाना) थे और वे रघुनाथ दास के पिता तथा ताऊ से घनिष्ठतापूर्वक सम्बन्धित थे। नीलाम्बर चक्रवर्ती उन्हें अपना छोटा भाई कहकर पुकारते थे, क्योंकि वे दोनों ब्राह्मणों को अत्यधिक समर्पित और सम्मानित जन थे। इसी तरह वे लोग भी उन्हें दादा चक्रवर्ती कहकर पुकारते थे। किन्तु रघुनाथ दास भगभग श्री चैतन्य महाप्रभु की ही उम्र के थे। सामान्य रूप से नाती अपने नाना से परिहास कर सकता है। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने नाना और रघुनाथ के पिता तथा ताऊ के बीच सम्बन्ध का लाभ उठाया और वे इस तरह परिहास कर रहे थे।

चक्रवर्तीर दुहे हय भ्रातृ-रूप दास ।

अतएव तारे आमि करि परिहास ॥196॥

चक्रवर्तीर-नीलाम्बर चक्रवर्ती के; दुहे-दोनों; हय-हैं; भ्रातृ-रूप दास-छोटे भाई के रूप में सेवक; अतएव-इसलिए; तारे-उन्हें; आमि-मैं; करि परिहास-परिहासपूर्वक कुछ कहता हूँ।

अनुवाद

“चूँकि तुम्हारे पिता तथा ताऊ नीलाम्बर चक्रवर्ती के छोटे भाई हैं, अतएव मैं इस तरह से परिहास कर सकता हूँ।”

तोमार बाप-ज्येठा—विषय-विष्टा-गर्तेर कीड़ा ।

सुख करि' माने विषय-विषेर महा-पीड़ा ॥197॥

तोमार-तुम्हारा; बाप-पिता; ज्येठा-उसका बड़ा भाई; विषय-भौतिक सुख के; विष्ठा-मल के; गर्तेर-गड्डे के; कीड़ा-कीड़े; सुख करि'-सुख रूप में; माने-वे मानते हैं; विषय-भौतिक सुख के; विषेर-विष की; महा-पीड़ा-महान् पीड़ा को।

अनुवाद

“हे रघुनाथ दास, तुम्हारे पिता तथा ताऊ भौतिक भोग रूपी नाली के मल-कीटों के तुल्य हैं, क्योंकि जिसे वे सुख मानते हैं, वह भौतिक भोग के विष का महान् रोग है।”

तात्पर्य

जब मनुष्य भौतिक भोग में आसक्त रहता है, तो उसे अनेक कष्ट भी घेरे रहते हैं, फिर भी वह अपनी अधम स्थिति को सुख की स्थिति मानता है। ऐसे व्यक्ति के लिए इन्द्रिय भोग इतना प्रबल होता है कि वह उसे त्याग नहीं पाता, ठीक उसी तरह जिस तरह मल का कीड़ा मल को त्याग नहीं पाता। आध्यात्मिक दृष्टि में जब मनुष्य भौतिक भोग में अत्यधिक लिप्त रहता है, तब वह मल के कीड़े के समान ही होता है। यद्यपि यह स्थिति मुक्तात्माओं की दृष्टि में अत्यन्त दयनीय होती है, किन्तु भौतिकतावादी भोक्ता इसमें अत्यधिक आसक्त रहता है।

यद्यपि ब्रह्मण्य करे ब्राह्मणेर सहाय ।

‘शुद्ध-वैष्णव’ नहे, हये वैष्णवेर प्राय’ ॥ 198॥

यद्यपि-यद्यपि; ब्रह्मण्य करे-ब्राह्मणों को दान देते हैं; ब्राह्मणेर सहाय-ब्राह्मणों के महान् सहायक; शुद्ध-वैष्णव-शुद्ध वैष्णव; नहे-नहीं हैं; हये-वे; वैष्णवेर प्राय-प्रायः वैष्णव जैसे।

अनुवाद

“यद्यपि तुम्हारे पिता तथा ताऊ ब्राह्मणों को दान देते हैं और उनकी बहुत सहायता करते हैं, किन्तु तो भी वे शुद्ध वैष्णव नहीं हैं। हाँ, वे प्रायः वैष्णवों जैसे हैं।”

तात्पर्य

जैसाकि श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत प्रवाह भाष्य में कहा है। कुछ लोग, जो सामान्यतया धनी होते हैं, वे वैष्णवों जैसे वस्त्र पहनते हैं और ब्राह्मणों को दान देते हैं। वे अर्चाविग्रह पूजा के प्रति भी अनुरक्त रहते हैं, किन्तु

भौतिक भोग के प्रति आसक्ति के कारण वे शुद्ध वैष्णव नहीं हो सकते। अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्। शुद्ध वैष्णव में भौतिक भोग की इच्छा नहीं रहती। शुद्ध वैष्णव की यह मूलभूत योग्यता है। सामान्यतया धनी लोग नियमित रूप से अर्चाविग्रह की पूजा करते हैं, ब्राह्मणों को दान देते हैं। और सभी तरह से पुण्यशाली होते हैं, किन्तु वे शुद्ध वैष्णव नहीं हो सकते। अपनी वैष्णवता तथा दान के बाहरी दिखावे के बावजूद, उनकी आन्तरिक इच्छा भौतिक जीवन के उच्चतर स्तर के भोग की होती है। रघुनाथ दास के पिता गोवर्धन तथा ताऊ हिरण्यदास दोनों ब्राह्मणों को काफी दान देते थे। गौड़ीय जिले के सारे ब्राह्मण एक तरह से उन पर आश्रित थे। इस तरह उन्हें अत्यन्त पवित्र भद्र पुरुष माना जाता था। इस तरह वे सामान्य जनता के समक्ष अपने आपको वैष्णव के रूप में प्रस्तुत करते थे, जबकि शुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि से वे सामान्य मनुष्य थे, शुद्ध वैष्णव नहीं। वास्तविक वैष्णव उन्हें लगभग वैष्णव जैसे मानते थे, शुद्ध वैष्णव नहीं। दूसरे शब्दों में, वे कनिष्ठ अधिकारी थे, क्योंकि वे उच्च वैष्णव सिद्धान्तों से अनजान थे। फिर भी वे विषयी नहीं कहे जा सकते थे।

तथापि विषयेर स्वभाव करे महा-अन्ध ।

सेइ कर्म कराय, याते हय भव-बन्ध ॥199॥

तथापि-फिर भी; विषयेर स्वभाव-भौतिक विषयों का स्वभाव; करे महा-अन्ध-पूर्ण रूप से अन्धा बना देता है; सेइ कर्म कराय-उसे उस प्रकार कर्म करने में विवश करता है; याते-जिसके द्वारा; हय-हो जाता है; भव-बन्ध-जन्म और मृत्यु का बन्धन।

अनुवाद

“जो लोग भौतिकतावादी जीवन के प्रति आसक्त होते हैं और आध्यात्मिक जीवन के प्रति अन्धे बने रहते हैं, वे इस तरह कर्म करते हैं कि अपने कर्मों की क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जन्म-मृत्यु के चक्र में बँध जाते हैं।”

तात्पर्य

भगवद्गीता (3.9) में स्पष्ट कहा गया है- यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः-यदि कोई शुद्ध भक्त की तरह कर्म नहीं करता, तो वह जो भी कर्म करेगा उससे कर्मबन्धन का फल उत्पन्न होगा। श्रीमद्भागवत (5.5.4) में कहा गया है :

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म

यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति ।

न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयम्

असन्नपि क्लेशद आस देहः ॥

“इन्द्रिय भोग के कार्यों में बुरी तरह लगा हुआ भौतिकतावादी व्यक्ति यह नहीं जान पाता कि वह अपने आपको जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसा रहा है और उसका यह क्षणिक शरीर क्लेशों से भरा है।” विषयी व्यक्ति सदैव जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसा रहता है। ऐसा व्यक्ति यह नहीं जान सकता कि भक्ति कैसे की जाए; इसलिए वह कर्मी, ज्ञानी, योगी या अन्य रूप में अपनी इच्छानुसार कर्म करता है। किन्तु वह यह नहीं जानता कि कर्म, ज्ञान तथा योग के कार्यकलाप उसे जन्म-मृत्यु के चक्र में बाँधने वाले हैं।

“हेन ‘विषय’ हैते कृष्ण उद्धारिला तोमा’ ।

या कहन ना याय कृष्ण-कृपार महिमा” ॥200॥

हेन विषय-भौतिक सुख की ऐसी पतित अवस्था; हैते-से; कृष्ण-भगवान् कृष्ण ने; उद्धारिला तोमा’-तुम्हें निकाल दिया; कहन ना याय-वर्णन नहीं किया जा सकता; कृष्ण-कृपार-भगवान् कृष्ण की कृपा की; महिमा-महिमा का।

अनुवाद

“भगवान् कृष्ण ने तुम्हें स्वेच्छा से ऐसे गर्हित भौतिकतावादी जीवन से उबार लिया है। इसलिए भगवान् कृष्ण की अहैतुकी कृपा को व्यक्त नहीं किया जा सकता।”

तात्पर्य

ब्रह्म-संहिता (5.54) में कहा गया है कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजाम् । भगवान् कृष्ण इतने दयालु हैं कि वे अपने भक्तों के कर्मफल को रोक सकते हैं। इन्द्रगोप जैसे क्षुद्र कीट से लेकर स्वर्ग के राजा इन्द्र तक हर कोई सकाम कर्मों के फलों से बद्ध है।

यस्त्विन्द्रगोपमथवेन्द्रमहो स्वकर्म-

बन्धानुरूपफलभाजनमातनोति ।

कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजां

गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ॥

हर प्राणी चाहे वह एक कीड़ा हो या स्वर्ग का राजा, अपने कर्म तथा उसके फल के द्वारा बँधा हुआ है। किन्तु जब वह शुद्ध भक्त बन जाता है अर्थात् भौतिक इच्छाओं से तथा कर्म, ज्ञान और योग के बन्धन से मुक्त होता है, तब वह कृष्ण की अहैतुकी कृपा से कर्ममुक्त हो जाता है। भौतिकतावादी जीवन शैली से छुटकारा दिलाए जाने के लिए मनुष्य कृष्ण के प्रति यथेष्ट कृतज्ञता व्यक्त नहीं कर सकता।

रघुनाथेर क्षीणता-मालिन्य देखियो ।

स्वरूपेरे कहेन प्रभु कृपाई-चित्त हजा ॥201॥

रघुनाथेर-रघुनाथ दास का; क्षीणता-दुबलापन; मालिन्य-शरीर की अस्वच्छता; देखिया-देखकर; स्वरूपेरे कहेन-स्वरूप दामोदर गोस्वामी से कहा; प्रभु-भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने; कृपा-कृपापूर्वक; आर्द्र-द्रवित; चित्त-हृदय; हजा-होकर।

अनुवाद

रघुनाथ दास को दुर्बल तथा मैला कुचैला देखकर, क्योंकि उन्होंने बारह दिनों तक यात्रा की थी और उपवास रखा था, श्री चैतन्य महाप्रभु का हृदय अहैतुकी कृपा से द्रवित हो उठा और उन्होंने स्वरूप दामोदर से कहा।

एइ रघुनाथे आमि सँपिनु तोमारे ।

पुत्र-भृत्य-रूपे तुमि कर अङ्गीकारे ॥202॥

एइ रघुनाथे—इस रघुनाथ दास को; आमि-मैं; सँपिनु तोमारे तुम्हें सौंप रहा हूँ; पुत्र-पुत्र; भृत्य-सेवक; रूपे-जैसे; तुमि-तुम (स्वरूप दामोदर गोस्वामी); कर अङ्गीकारे—कृपया स्वीकार करो।

अनुवाद

उन्होंने कहा, “हे प्रिय स्वरूप, मैं इस रघुनाथ दास को तुम्हें सौंपता हूँ। तुम इसे कृपया अपने पुत्र अथवा दास के रूप में स्वीकार करो।”

तिन ‘रघुनाथ’-नाम हय आमार गणे ।

‘स्वरूपे रघु’-आजि हैते इहार नामे ॥203॥

तिन रघुनाथ—तीन रघुनाथ; नाम-नामक; हय-हैं; आमार गणे-मेरे संगियों में; स्वरूपे रघु-स्वरूप दामोदर का रघुनाथ; आजि हैते-आज से; इहार-इसका; नामे-नामा

अनुवाद

“अब मेरे संगियों में तीन रघुनाथ हैं। आज से यह रघुनाथ, स्वरूपे रघु(स्वरूप दामोदर का रघु) कहलाएगा।”

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के संगियों में तीन रघु थे-वैद्य रघुनाथ (देखें आदिलीला 11.22), भट्ट रघुनाथ तथा दास रघुनाथ। दास रघुनाथ स्वरूपे रघु (स्वरूप के रघुनाथ) नाम से विख्यात हुए।

एत कहि’ रघुनाथेर हस्त धरिला ।

स्वरूपे हस्ते तारै समर्पण कैला ॥ 204॥

एत कहि’-यह कहकर; रघुनाथेर-रघुनाथ दास का; हस्त धरिला-हाथ पकड़ लिया; स्वरूपे हस्ते-स्वरूप दामोदर के हाथ में; तारै-उन्हें; समर्पण कैला-अर्पित कर दिया।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुनाथ दास का हाथ पकड़ लिया और उसे स्वरूप दामोदर गोस्वामी के हाथों में सौंप दिया।

स्वरूप कहे,—‘महाप्रभु ने आज्ञा हैल’ ।

एत कहि’ रघुनाथे पुनः आलिङ्गिल ॥205॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने कहा; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु की; ये-जो भी; आज्ञा-आज्ञा; हैल-है; एत कहि-यह कहकर; रघुनाथे-रघुनाथ दास को; पुनः-दोबारा; आलिङ्गिल-उन्होंने आलिंगन किया।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने यह कहते हुए रघुनाथ दास को स्वीकार किया कि, “हे प्रभु, आपकी जो भी आज्ञा हो वह स्वीकार्य है।” तब उन्होंने रघुनाथ दास का फिर से आलिंगन किया।

चैतन्ये भक्त-वात्सल्य कहिते ना पारि ।

गोविन्देरे कहे रघुनाथे दया करि’ ॥ 206॥

चैतन्ये-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का; भक्त-वात्सल्य-भक्तों के प्रति स्नेह; कहिते ना पारि-मैं योग्य रूप से वर्णन नहीं कर सकता; गोविन्देरे-गोविन्द से; कहे-उन्होंने कहा; रघुनाथे-रघुनाथ दास पर; दया करि’-अत्यन्त कृपालु होकर।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के अपने भक्तों के प्रति वात्सल्य को ठीक से व्यक्त नहीं कर सकता। रघुनाथ दास के ऊपर दयालु होकर महाप्रभु ने गोविन्द से इस प्रकार कहा।

“पथे इँह करियाछे बहुत लङ्घन ।

कत-दिन कर इहार भाल सन्तर्पण” ॥207॥

पथे-मार्ग में; इँह-रघुनाथ दास ने; करियाछे-किया है; बहुत-बहुत; लङ्घन-उपवास तथा कठिन प्रयत्न; कत-दिन-कुछ दिन तक; कर-करो; इहार-इसका; भाल-अच्छा; सन्तर्पण-ध्यान।

अनुवाद

“रघुनाथ दास ने रास्ते में कई दिनों तक उपवास किया है और अनेक कष्ट उठाये हैं। इसलिए कुछ दिनों तक इसकी ठीक से देखभाल करो, जिससे वह जी भरकर खा सके।”

रघुनाथे कहे-“याजा, कर सिन्धु-स्नान ।

जगन्नाथ देखि' आसि' करह भोजन" ॥208॥

रघुनाथे कहे-उन्होंने रघुनाथ दास से कहा; याजा-जाकर; कर सिन्धु-स्नान-समुद्र स्नान करो; जगन्नाथ देखि'-
भगवान जगन्नाथ के दर्शन करके; आसि'-आने के बाद; करह भोजन-अपना भोजन करो।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुनाथ दास से कहा, “जाकर समुद्र में स्नान करो। उसके बाद मन्दिर में
भगवान जगन्नाथ का दर्शन करो और फिर यहाँ आकर भोजन करो।”

एत बलि' प्रभु मध्याह्न करिते उठिला ।

रघुनाथ-दास सब भक्तेरे मिलिला ॥209॥

एत बलि'-यह कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मध्याह्न करिते-अपने दोपहर के नित्यकर्म करने के लिए;
उठिला-उठ गये; रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास; सब-सभी; भक्तेरे-भक्तों से; मिलिला-मिले।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु उठे और अपना दोपहर का कृत्य करने चले गये। रघुनाथ वहाँ पर
उपस्थित सारे भक्तों से मिले।

रघुनाथे प्रभुर कृपा देखि, भक्त-गण ।

विस्मित हजा करे तार्र भाग्य-प्रशंसन ॥ 210॥

रघुनाथे-रघुनाथ दास के प्रति; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; कृपा-कृपा; देखि-देखकर; भक्त-गण-सभी भक्त;
विस्मित-आश्चर्यचकित; हजा-होकर; करे-करने लगे; तार्र-उनके; भाग्य-सौभाग्य की प्रशंसन-प्रशंसा।

अनुवाद

रघुनाथ दास पर श्री चैतन्य महाप्रभु की अहैतुकी कृपा देखकर सारे भक्त आश्चर्यचकित रह गये और
उन्होंने उनके सौभाग्य की प्रशंसा की।

रघुनाथ समुद्रे याजा स्नान करिला ।

जगन्नाथ देखि' पुनः गोविन्द-पाश आइला ॥211॥

रघुनाथ-रघुनाथ दास ने; समुद्रे-समुद्र में; यात्रा-जाकर; स्नान करिला-स्नान किया; जगन्नाथ देखि'-भगवान
जगन्नाथ के दर्शन करके; पुनः-फिर; गोविन्द-पाश आइला-गोविन्द के पास आये।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने समुद्र में स्नान किया और जगन्नाथजी के दर्शन किये। तब वे श्री चैतन्य महाप्रभु के
निजी सेवक गोविन्द के पास लौट आये।

प्रभुर अवशिष्ट पात्र गोविन्द तौर दिला ।

आनन्दित हवा रघुनाथ प्रसाद पाइला ॥212॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; अवशिष्ट पात्र-शेष प्रसाद का एक पात्र; गोविन्द महाप्रभु के सेवक, गोविन्द ने;
तौर-उन्हें; दिला-दिया; आनन्दित हवा-अत्यन्त प्रसन्न होकर; रघुनाथ-रघुनाथ दास ने; प्रसाद पाइला-प्रसाद ग्रहण
किया।

अनुवाद

गोविन्द ने रघुनाथ को श्री चैतन्य महाप्रभु की पत्तल में बचा शेष खाने को दिया, जिन्होंने उस प्रसाद
को परम सुखपूर्वक ग्रहण किया।

एइ-मत रहे तेंह स्वरूप-चरणे ।

गोविन्द प्रसाद तौर दिल पञ्च दिने ॥213॥

एइ-मत-इस प्रकार; रहे-रहे; तेंह-वे; स्वरूप-चरणे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी की शरण में; गोविन्द-श्री चैतन्य
महाप्रभु के सेवक, गोविन्द प्रसाद-श्री चैतन्य महाप्रभु के भोजन के शेष; तौर-उन्हें; दिल-दिये; पञ्च दिने-पाँच दिन तक।

अनुवाद

रघुनाथ दास स्वरूप दामोदर गोस्वामी की देखभाल में रहे और गोविन्द पाँच दिनों तक उन्हें श्री चैतन्य
महाप्रभु का शेष देता रहा।

आर दिन हैते 'पुष्प-अञ्जलि' देखियो ।

सिंह-द्वारे खाड़ा रहे भिक्षार लागिआ ॥214॥

आर दिन-अगले दिन; हैते-से; पुष्प-अञ्जलि-भगवान् को फूल अर्पित करने का उत्सव; देखिया-देखने के बाद;
सिंह-द्वारे-सिंह द्वार पर; खाड़ा रहे-खड़े हो गये; भिक्षार लागिआ-कुछ भिक्षा माँगने के लिए।

अनुवाद

छठे दिन से रघुनाथ दास सिंह द्वार पर खड़े होकर पुष्प-अञ्जलि उत्सव के बाद, जिसमें भगवान् को फूल अर्पित किये जाते हैं, भिक्षा माँगना शुरू किया।

जगन्नाथेर सेवक यत-‘विषयीर गण’ ।

सेवा सारि’ रात्र्ये करे गृहेते गमन ॥215॥

जगन्नाथेर-भगवान् जगन्नाथ के; सेवक-सेवक; व्रत-सभी; विषयीर गण-सामान्यतया विषयी नाम से प्रसिद्ध;
सेवा सारि’-अपनी सेवा समाप्त कर; रात्र्ये-रात को; करे-करते; गृहेते गमन-घर वापसी।

अनुवाद

जगन्नाथ जी के अनेक सेवक, जो विषयी कहलाते हैं, अपना नियत कार्य पूरा होने के बाद रात में अपने घर लौटते हैं।

सिंह-द्वारे अन्नार्थी वैष्णवे देखियो ।

पसारि ठाजि अन्न देन कृपा त’ करिया ॥216॥

सिंह-द्वारे-सिंह द्वार पर; अन्न-अर्थी-अन्न की आवश्यकता में; वैष्णवे-वैष्णवों को; देखिया-देखकर; पसारि
ठाजि-दुकानदारों से; अन्न देन-कुछ अन्न दिलवाते; कृपा त’ करिया-दयावश।

अनुवाद

यदि वे किसी वैष्णव को सिंह द्वार पर खड़े होकर भिक्षा माँगते देखते हैं, तो कृपा करके उसे कुछ खाने के लिए दुकानदार से दिलाने की व्यवस्था करा देते हैं।

एङ्-मत सर्व-काल आछे व्यवहार ।

निष्किञ्चन भक्त खाड़ा हय सिंह-द्वार ॥217॥

एङ्-मत-इस प्रकार; सर्व-काल-सब समय के लिए; आछे-है; व्यवहार-व्यवहार; निष्किञ्चन भक्त-एक भक्त जिसका कोई अन्य आश्रय नहीं है; खाड़ा हय-खड़ा होता है; सिंह-द्वार-सिंह द्वार नामक द्वार पर।

अनुवाद

इस तरह यह सदा से रीति है कि जिस भक्त के पास कोई दूसरा सहारा नहीं होता, वह सेवकों से भिक्षा पाने के लिए सिंहद्वार पर खड़ा रहता है।

सर्व-दिन करेन वैष्णव नाम-सङ्कीर्तन ॥

स्वच्छन्दे करेन जगन्नाथ दर्शन ॥218॥

सर्व-दिन-सम्पूर्ण दिन; करेन-करता है; वैष्णव-एक वैष्णव; नाम-सङ्कीर्तन-भगवान् के पवित्र नाम का संकीर्तन; स्वच्छन्दे-पूर्ण स्वतन्त्रतापूर्वक; करेन-करता है; जगन्नाथ दर्शन-जगन्नाथ भगवान् के दर्शन।

अनुवाद

इस तरह एक पूर्णरूपेण आश्रित वैष्णव सारा दिन भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करता है और पूर्ण स्वतन्त्र होकर जगन्नाथजी के दर्शन करता है।

केह छत्रे मागि' खाय, येबा किछु पाय ।

केह रात्रे भिक्षा लागि' सिंह-द्वारे रय ॥ 219॥

केह-कुछ; छत्रे-भिक्षास्थली पर; मागि'-भिक्षा माँगकर; खाय-खाते; ग्रेब-जो कुछ भी; किछु-थोड़ा; पाय-वे प्राप्त करते; केह-कुछ; रात्रे-रात को; भिक्षा लागि'-भिक्षा माँगने के लिए; सिंह-द्वारे रय-सिंहद्वार नामक द्वार पर खड़े रहते।

अनुवाद

यह प्रथा है कि कुछ वैष्णव दानशालाओं (छत्रों, लंगरों) से भिक्षा माँगकर जो भी मिलता है खाते हैं, जबकि अन्य लोग सिंहद्वार पर रात्रि के समय खड़े होकर सेवकों से भिक्षा माँगते हैं।

महाप्रभुर भक्त-गणेर वैराग्य प्रधान ।

याहा देखि' प्रीत हन गौर-भगवान् ॥220॥

महाप्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गणेर-भक्तों की; वैराग्य-विरक्ति; प्रधान-मुख्य सिद्धान्त; याहा देखि'-जिसे देखकर; प्रीत हन-प्रसन्न होते हैं; गौर-भगवान्-भगवान् गौरहरि, श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

वैराग्य ही मूलभूत सिद्धान्त है, जो श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों का जीवनाधार है। यह वैराग्य देखकर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य अत्यधिक तुष्ट होते हैं।

तात्पर्य

चाहे सामान्य भौतिकतावादी व्यक्ति हो या शुद्ध भक्त, यदि वह ध्यानपूर्वक अध्ययन करे, तो श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों के व्यवहार को समझ सकता है। इस तरह वह देखेगा कि श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त किसी प्रकार के भौतिक भोग में रंचमात्र भी आसक्त नहीं होते। वे इन्द्रिय भोग का पूरी तरह तिरस्कार करके भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा में लगे रहते हैं और बिना किसी भौतिक इच्छा के कृष्ण की सेवा में अपना तन-मन अर्पित कर देते हैं। उनकी भक्ति भौतिक इच्छाओं से रहित होती है, इसलिए भौतिक परिस्थितियाँ इसमें बाधक नहीं बनती। यद्यपि सामान्य लोगों को भक्तों की इस प्रवृत्ति को समझने में कठिनाई होती है, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।

प्रभुरे गोविन्द कहे,—“रघुनाथ ‘प्रसाद’ ना लय ।

रात्र्ये सिंह-द्वारे खाड़ा हजा मागि’ खाय” ॥221॥

प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु से; गोविन्द कहे-गोविन्द ने कहा; रघुनाथ-रघुनाथ दास; प्रसाद ना लय-प्रसाद नहीं लेता; रात्र्ये-रात को; सिंह-द्वारे-सिंह द्वार पर; खाड़ा हजा-खड़ा होकर; मागि'-भिक्षा माँगकर; खाय-खाता है।

अनुवाद

गोविन्द ने श्री चैतन्य महाप्रभु से कहा, “अब रघुनाथ यहाँ से प्रसाद नहीं लेता। अब वह सिंहद्वार पर खड़ा रहता है, जहाँ खाने के लिए वह भिक्षा माँग लेता है।”

शुनि' तुष्ट हजा प्रभु कहिते लागिल ।

भाल कैल, वैरागीर धर्म आचरिल ॥ 222॥

शुनि'-सुनकर; तुष्ट हजा-अत्यन्त सन्तुष्ट होकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कहिते लागिल-कहने लगे; भाल कैल-उसने अच्छा किया; वैरागीर-संन्यास आश्रम में स्थित व्यक्ति के; धर्म-कर्तव्यों का; आचरिल-आचरण किया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह सुना, तो वे अत्यधिक तुष्ट हुए। उन्होंने कहा, “रघुनाथ दास ने बहुत अच्छा किया है। उसने वैरागी के लिए उपयुक्त कर्म किया है।

वैरागी करिबे सदा नाम-सङ्कीर्तन ।

मागिया खात्रा करे जीवन रक्षण ॥223॥

वैरागी-संन्यास अवस्था में स्थित व्यक्ति को; करिबे करना चाहिए; सदा-सदैव; नाम-सङ्कीर्तन-भगवान् के पवित्र नाम का संकीर्तन; मागिया-भिक्षा माँगकर; खात्रा-खाकर; करे जीवन रक्षण-वह अपनी प्राण रक्षा करता है।

अनुवाद

“वैरागी को सदैव भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना चाहिए। उसे भिक्षा माँगकर खाना चाहिए और इस तरह अपना जीवन-निर्वाह करना चाहिए।”

तात्पर्य

हरि भक्ति विलास के बीसवें विलास के अन्त (366, 379, 382) में कहा गया है :

कृत्यान्येतानि तु प्रायो गृहिणां धनिनां सताम् ।

लिखितानि न तु त्यक्तपरिग्रहमहात्मनाम् ॥

प्रभाते चार्धरात्रे च मध्याह्न दिवस-क्षये ।

कीर्तयन्ति हरिं ये वै ते तरन्ति भवार्णवम् ॥

एवमेकान्तिनां प्रायः कीर्तनं स्मरणं प्रभोः ।

कुर्वतां परमप्रीत्या कृत्यमन्यन्न रोचते ॥

धनवान् गृहस्थ वैष्णव उस वैरागी के समान नहीं रह सकता, जो शुद्ध नाम की पूर्ण शरण ग्रहण करता है। ऐसे गृहस्थ को प्रातः, दोपहर तथा संध्या समय कृष्ण नाम का कीर्तन करना चाहिए। तभी वह अविद्या को पार कर सकेगा। किन्तु संन्यास आश्रम में स्थित शुद्ध भक्तों को, जो कि कृष्ण के चरणकमलों के पूर्ण शरणागत हैं, कृष्ण के चरणकमलों का सदैव चिन्तन करते हुए अतीव श्रद्धा एवं प्रेमपूर्वक पवित्र भगवन्नाम का कीर्तन करना चाहिए। उनके पास भगवान् के पवित्र नाम कीर्तन के अतिरिक्त अन्य कोई काम नहीं होना चाहिए। भक्ति सन्दर्भ (283) में श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं :

यद्यपि श्रीभागवतमते पञ्चरात्रादिवदर्शनमार्गस्यावश्यकत्वं नास्ति, तद् विनापि शरणापत्त्यादीनाम् एकतरेणापि पुरुषार्थसिद्धेरभिहितत्वात्।

“श्रीमद्भागवत का मत है कि अर्चाविग्रह की पूजा की प्रक्रिया वास्तव में आवश्यक नहीं है, जिस तरह पञ्चरात्र तथा अन्य शास्त्रों के विशेष सिद्धान्तों का पालन अनिवार्य नहीं है। भागवत का आदेश है कि अर्चाविग्रह की पूजा किये बिना भी मनुष्य अन्य किसी आध्यात्मिक विधि से मानव जीवन की पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकता है, जैसे कि भगवान् से संरक्षण पाने हेतु उनके चरणों में पूर्ण आत्म-समर्पण करना।”

वैरागी हजा येबा करे परापेक्षा ।

कार्य-सिद्धि नहे, कृष्ण करेन उपेक्षा ॥224॥

वैरागी हजा-त्यागी होकर; येबा-जो कोई भी; करे-करता है; पर-अपेक्षा—दूसरों का आश्रय; कार्य-सिद्धि नहे—वह सफल नहीं होता; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; करेन उपेक्षा-उपेक्षा करते हैं।

अनुवाद

“वैरागी (संन्यासी) को अन्यो पर आश्रित नहीं रहना चाहिए। यदि वह ऐसा करता है, तो वह असफल होगा और कृष्ण द्वारा उपेक्षित होगा।”

वैरागी हजा करे जिह्वार लालस ।

परमार्थ याय, आर हय रसेर वश ॥225॥

वैरागी हवा-त्यागी होकर; करे-करता है; जिह्वार-जीभ का; लालस-लालच; परम-अर्थ-जीवन का लक्ष्य; याय-चला जाता है; आर-तथा; हय-हो जाता है; रसेर वश-स्वाद का गुलाम।

अनुवाद

“यदि वैरागी अपनी जीभ के लिए विभिन्न प्रकार का भोजन चखने के लिए उत्सुक रहता है, तो उसका आध्यात्मिक जीवन समाप्त हो जायेगा और वह अपनी जीभ के स्वाद का गुलाम बन जायेगा।”

वैरागीर कृत्य—सदा नाम-सङ्कीर्तन ।

शाक-पत्र-फल-मूले उदर-भरण ॥ 226॥

वैरागीर त्यागी का; कृत्य-कर्तव्य; सदा-सदैव; नाम-सङ्कीर्तन-भगवान् के पवित्र नाम का संकीर्तन; शाक-सब्जियाँ; पत्र-पत्ते; फल-फल; मूले-मूल द्वारा; उदर-भरण-पेट भरना।

अनुवाद

“वैरागी का कर्तव्य है कि वह सदैव हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करे। उसे शाक, पत्ती, फल तथा कन्द जो भी मिल जाये, उसी से वह अपने उदर की तृप्ति करे।”

“जिह्वार लालसे येड़ इति-उति धाय ।

शिश्रोदर-परायण कृष्ण नाहि पाय” ॥ 227॥

जिह्वार-जीभ के; लालसे-लालच के कारण; येड़-जो कोई भी; इति-उति-यहाँ-वहाँ; धाय-जाता है; शिश्र-जननेन्द्रियों के; उदर-पेट के; परायण-फेर में; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; नाहि पाय-प्राप्त नहीं करता।

अनुवाद

“जो अपनी जीभ का दास है और जो इस प्रकार इधर-उधर घूमता रहता है एवं अपने जननांग तथा पेट के प्रति समर्पित होता है, वह कृष्ण को नहीं पा सकता।”

आर दिन रघुनाथ स्वरूप-चरणे ।

आपनार कृत्य लागि' कैला निवेदने ॥228॥

आर दिन-अगले दिन; रघुनाथ-रघुनाथ दास; स्वरूप-चरणे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी के चरणकमलों में;
आपनार-अपने; कृत्य-कर्तव्य; लागि'-के लिए; कैला निवेदने निवेदन किया।

अनुवाद

अगले दिन रघुनाथ दास ने अपने कर्तव्य के विषय में स्वरूप दामोदर के चरणकमलों में निवेदन किया।

“कि लागि' छाड़ाइला घर, ना जानि उद्देश ।

कि मोर कर्तव्य, प्रभु कर उपदेश” ॥229॥

कि लागि'-किस कारण से; छाड़ाइला घर-मैंने अपना घर-परिवार त्यागा है; ना जानि-मैं नहीं जानता; उद्देश-
उद्देश्य; कि-क्या; मोर कर्तव्य-मेरा कर्तव्य; प्रभु-मेरे प्रभु; कर उपदेश-कृपया मुझे उपदेश दीजिए।

अनुवाद

उन्होंने कहा, “मैं नहीं जानता कि मैंने गृहस्थ जीवन क्यों छोड़ा है? मेरा कर्तव्य क्या है? कृपया मुझे
उपदेश दें।”

प्रभुर आगे कथा-मात्र ना कहे रघुनाथ ।

स्वरूप-गोविन्द-द्वारा कहाय निज-बात् ॥ 230॥

प्रभुर आगे-श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष; कथा-मात्र-कोई बात; ना कहे-नहीं कहते; रघुनाथ-रघुनाथ दास;
स्वरूप-गोविन्द-द्वारा-गोविन्द और स्वरूप दामोदर के माध्यम से; कहाय-कहलवाते; निज-बात्-अपने मनोभावा

अनुवाद

रघुनाथ दास कभी भी महाप्रभु के समक्ष एक शब्द भी नहीं कहते। अपितु, वे स्वरूप दामोदर गोस्वामी
तथा गोविन्द के माध्यम से महाप्रभु को अपनी इच्छाएँ सूचित करते।

प्रभुर आगे स्वरूप निवेदिला आर दिने ।

रघुनाथ निवेदय प्रभुर चरणे ॥ 231॥

प्रभुर आगे-श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने; स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने; निवेदिला-विनति की; आर दिने-
अगले दिन; रघुनाथ निवेदय-रघुनाथ दास की विनती है; प्रभुर चरणे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में।

अनुवाद

अगले दिन स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से निवेदन किया, “रघुनाथ दास को आपके
चरणों में यह कहना है कि :

“कि मोर कर्तव्य, मुजि ना जानि उद्देश ।

आपनि श्री-मुखे मोरे कर उपदेश” ॥232॥

कि-क्या; मोर कर्तव्य-मेरा कर्तव्य; मुजि-मैं; ना जानि-नहीं जानता; उद्देश-अपने जीवन का लक्ष्य; आपनि-अपने;
श्री-मुखे-दिव्य मुख से; मोरे-मुझे; कर उपदेश-उपदेश दीजिए।

अनुवाद

“मैं अपना कर्तव्य अथवा जीवन-लक्ष्य नहीं जानता। इसलिए आप कृपया अपने दिव्य मुख से मुझे
उपदेश दें।”

हासि' महाप्रभु रघुनाथरे कहिल ।

तोमार उपदेष्टा करि' स्वरूपेरे दिल ॥ 233॥

हासि-हँसकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; रघुनाथरे-रघुनाथ दास से; कहिल-कहा; तोमार-तुम्हारा; उपदेष्टा-
उपदेशकर्ता; करि-रूप में; स्वरूपेरे दिल-मैंने स्वरूप दामोदर गोस्वामी को बनाया है।

अनुवाद

हँसते हुए महाप्रभु ने रघुनाथ दास से कहा, “मैंने पहले ही स्वरूप दामोदर गोस्वामी को तुम्हारे उपदेशक
के रूप में नियुक्त कर दिया है।

‘साध्य’-‘साधन’-तत्त्व शिख इँहार स्थाने ।

आमि तत नाहि जानि, इँहो यत जाने ॥ 234॥

साध्य-कर्तव्य; साधन-उसे किस प्रकार करें; तत्त्व-सत्य; शिख-सीखो; ईहार स्थाने-इनसे; आमि-मैं; तत-इतना अधिक; नाहि जानि-नहीं जानता; ईहो-यह; यत-जितना; जाने-जानते हैं।

अनुवाद

तुम उनसे अपने कर्तव्य तथा उसे सम्पन्न करने की विधि सीख सकते हो। मैं उनके जितना नहीं जानता।

तथापि आमार आज्ञाय श्रद्धा यदि हय ।

आमार एइ वाक्ये तबे करिह निश्चय ॥ 235॥

तथापि-फिर भी; आमार आज्ञाय-मेरे आदेश में; श्रद्धा-श्रद्धा; यदि यदि; हय-है; आमार-मेरे; एइ-इन; वाक्ये-वाक्यों द्वारा; तबे-तब; करिह निश्चय-तुम निश्चय कर सकते हो।

अनुवाद

फिर भी यदि तुम श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक मुझसे उपदेश लेना चाहते हो, तो तुम निम्नलिखित शब्दों से अपने कर्तव्य निश्चित कर सकते हो।

ग्राम्य-कथा ना शुनिबे, ग्राम्य-वार्ता ना कहिबे ।

भाल ना खाइबे आर भाल ना परिबे ॥ 236॥

ग्राम्य-कथा-सामान्य लोगों की सांसारिक बातें; ना शुनिबे-कभी मत सुनो; ग्राम्य-वार्ता-सांसारिक बातें; ना कहिबे-मत कहो; भाल-अच्छा; ना खाइबे-मत खाओ; आर-और; भाल-आकर्षक; ना परिबे-वस्त्र मत पहनो।

अनुवाद

“न तो सामान्य लोगों की तरह बोलो और न वे जो कहें उसे सुनो। तुम न तो स्वादिष्ट भोजन करो, न ही सुन्दर वस्त्र पहनो।”

अमानी मानद हवा कृष्ण-नाम सदा ल'बे ।

ब्रजे राधा-कृष्ण-सेवा मानसे करिबे ॥237॥

अमानी-सम्मान प्राप्ति की अभिलाषा न करके; मान-द-सभी को सम्मान देना; हवा-ऐसा बनकर; कृष्ण-नाम-भगवान् का पवित्र नाम; सदा-सदैव; ल 'बे-तुम्हें उच्चारण करना चाहिए; ब्रजे-वृन्दावन में; राधा-कृष्ण-सेवा-राधा और कृष्ण की सेवा; मानसे-मन में; करिबे-तुम्हें करनी चाहिए।

अनुवाद

कभी सम्मान की आशा मत करो, किन्तु अन्यो को सम्मान दो। सदैव भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का जप करो और अपने मन में वृन्दावन-वासी राधा तथा कृष्ण की सेवा करो।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में कहते हैं कि जब स्त्री-पुरुष विवाहित हो जाते हैं, तो बच्चे उत्पन्न होते हैं और इस तरह वे पारिवारिक जीवन में बँध जाते हैं। ऐसे पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित बातें ग्राम्य कथा है। विरक्त व्यक्ति न तो ऐसी बातें सुनता है, न कहता है। उसे स्वादिष्ट भोजन नहीं करना चाहिए, क्योंकि विरक्त व्यक्ति के लिए ऐसा भोजन अनुपयुक्त होता है। उसे अन्यो का सम्मान करना चाहिए, किन्तु अपने लिए सम्मान की आशा नहीं रखनी चाहिए। इस तरह उसे भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करना चाहिए तथा उसे यही सोचना चाहिए कि वृन्दावन में राधा तथा कृष्ण की सेवा किस तरह की जाए।

एइ त' सङ्क्षेपे आमि कैलुँ उपदेश ।

स्वरूपेर ठाजि इहार पाइबे विशेष ॥238॥

एइ-यह; त'-निश्चित रूप से; सङ्क्षेपे-संक्षेप में; आमि-मैंने; कैलुँ उपदेश-उपदेश दिया है; स्वरूपेर ठाजि-स्वरूप दामोदर से; इहार-उस उपदेश का; पाइबे-तुम्हें मिलेगा; विशेष-विस्तार।

अनुवाद

“मैंने संक्षेप में तुम्हें अपना उपदेश दे दिया है। अब तुम इनके विषय में स्वरूप दामोदर से विस्तार में जान सकोगे।”

तृणादपि सु-नीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।

अमानिना मान-देन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥239॥

तृणाद् अपि-मार्ग पर पड़े तिनके की अपेक्षा (से अधिक); सु-नीचेन-विनम्र होकर; तरोः—एक वृक्ष के; इव-समान;
सहिष्णुना-सहनशीलता द्वारा; अमानिना-मिथ्या अभिमान से गर्वित हुए बिना; मान-देन-सभी को सम्मान देकर;
कीर्तनीयः-जप किया जा सकता है; सदा-सदैव; हरिः-भगवान् का पवित्र नाम।

अनुवाद

“जो अपने आपको घास से भी तुच्छ समझता है, जो वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु है और जो निजी सम्मान की
आशा नहीं रखता, बल्कि अन्यो को सम्मान देने के लिए उद्यत रहता है, वह सदैव सरलतापूर्वक भगवान् के पवित्र नाम
का कीर्तन कर सकता है।”

एत शुनि' रघुनाथ वन्दिला चरण ।

महाप्रभु कैला तारै कृपा-आलिङ्गन ॥ 240॥

एत शुनि'-यह सुनकर; रघुनाथ-रघुनाथ दास ने; वन्दिला चरण-चरणकमलों की वन्दना की; महाप्रभु श्री चैतन्य
महाप्रभु ने; कैला-किया; तारै-उन्हें; कृपा-आलिङ्गन-कृपावश आलिंगन।

अनुवाद

यह सुनकर रघुनाथ दास ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की वन्दना की और महाप्रभु ने
कृपापूर्वक उनका आलिंगन किया।

पुनः समर्पिला तारै स्वरूपेर स्थाने ।

‘अन्तरङ्ग-सेवा’ करे स्वरूपेर सने ॥241॥

पुनः-फिर से; समर्पिला-समर्पित कर दिया; तारै-उन्हें; स्वरूपेर स्थाने-स्वरूप दामोदर को; अन्तरङ्ग-सेवा-
अत्यन्त गुह्य सेवा; करे-वे करते; स्वरूपेर सने-स्वरूप दामोदर के साथ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पुनः उन्हें स्वरूप दामोदर को सौंप दिया। इस प्रकार रघुनाथ दास स्वरूप दामोदर
गोस्वामी के साथ अत्यन्त गुह्य सेवा करने लगे।

तात्पर्य

अन्तरंग सेवा का अर्थ है अपने आध्यात्मिक शरीर में की गई सेवा। स्वरूप दामोदर गोस्वामी पहले ललिता देवी थे। रघुनाथ दास गोस्वामी ने भी, जो उनके सहायकों में से थे, अब अपने मन में राधा तथा कृष्ण की सेवा करनी प्रारम्भ कर दी।

हेन-काले आइला सब गौड़ेर भक्त-गण ।

पूर्ववत् प्रभु सबाय करिला मिलन ॥ 242॥

हेन-काले—इस समय; आइला-आ गये; सब-सभी; गौड़ेर भक्त-गण-बंगाल से भक्त; पूर्व-वत्-पहले की तरह; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सबाय-उन सभी से; करिला मिलन-मिले।

अनुवाद

इस बार बंगाल से सारे भक्त आये और पहले ही की तरह श्री चैतन्य महाप्रभु उन सबसे प्रेमपूर्वक मिले।

सबा लजा कैला प्रभु गुण्डिचा-मार्जन ।

सबा लजा कैला प्रभु वन्य-भोजन ॥243॥

सबा लजा—उन सब को लेकर; कैला-किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; गुण्डिचा-मार्जन-गुंडिचा मन्दिर की सफाई; सबा लजा—उन सबके साथ; कैला—किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; वन्य-भोजन-बगीचे में भोजन।

अनुवाद

पहले की ही तरह उन्होंने भक्तों के साथ मिलकर गुण्डिचा मन्दिर की सफाई की और बगीचे में वन भोज किया।

रथ-यात्राय सबा लजा करिला नर्तन ।

देखि' रघुनाथेर चमत्कार हैल मन ॥244॥

रथ-यात्राय-रथयात्रा के अवसर पर; सबा लजा-उन सबको लेकर; करिला नर्तन-नृत्य किया; देखि'—देखकर; रघुनाथेर-रघुनाथ दास का; चमत्कार—आश्चर्यचकित; हैल-हो गया; मन—मन।

अनुवाद

महाप्रभु ने पुनः रथयात्रा उत्सव के समय भक्तों के साथ नृत्य किया। यह देखकर रघुनाथ दास आश्चर्यचकित हो गये।

रघुनाथ-दास यबे सबारे मिलिला ।

अद्वैत-आचार्य तौरै बहु कृपा कैला ॥245॥

रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास; यबे-जब; सबारे मिलिला-सभी भक्तों से मिले; अद्वैत-आचार्य-अद्वैत आचार्य ने; तौरै-उन्हें; बहु-अत्यन्त; कृपा-कृपा; कैला-दी।

अनुवाद

जब रघुनाथ दास सभी भक्तों से मिले, तो अद्वैत आचार्य ने उन पर महती कृपा प्रदर्शित की।

शिवानन्द-सेन तौरै कहेन विवरण ।

तोमा लैते तोमार पिता पाठाइल दश जन ॥246॥

शिवानन्द-सेन-शिवानन्द सेन ने; तौरै-उन्हें; कहेन-कही; विवरण-सूचना; तोमा लैते-तुम्हें लाने के लिए; तोमार पिता-तुम्हारे पिता ने; पाठाइल-भेजे; दश जन-दस लोग।

अनुवाद

वे शिवानन्द सेन से भी मिले, जिन्होंने उन्हें बताया कि, “तुम्हारे पिता ने तुम्हें लेने के लिए दस व्यक्ति भेजे थे।”

तोमारे पाठाइते पत्री पाठाइल मोरे ।

झाङ्करा हइते तोमा ना पाजा गेल घरे ॥247॥

तोमारे-तुम्हें; पाठाइते-वापस भेजने के लिए; पत्री-पत्र; पाठाइल मोरे-मुझे भेजा; झाङ्करा हइते-झाँकरा से; तोमा-तुम्हें; ना पाजा-न पाकर; गेल घरे-घर लौट गये।

अनुवाद

“उन्होंने मुझे एक चिट्ठी लिखी कि मैं तुम्हें लौटा दें, किन्तु जब उन दस व्यक्तियों को तुम्हारे विषय में कोई सूचना नहीं मिली, तो वे झाँकरा से घर लौट गये।”

चारि मास रहि’ भक्त-गण गौड़े गेला ।

शुनि’ रघुनाथेर पिता मनुष्य पाठाइला ॥ 248॥

चारि मास-चार मास तक; रहि-रहकर; भक्त-गण-सभी भक्त; गौड़े गेला-बंगाल लौट गये; शुनि’-सुनकर; रघुनाथेर पिता-रघुनाथ दास के पिता ने; मनुष्य-एक व्यक्ति; पाठाइला-भेजा।

अनुवाद

जब बंगाल के सारे भक्त जगन्नाथपुरी में चार मास रुककर घर लौटे, तो रघुनाथ दास के पिता ने उनके आगमन के विषय में सुना। इसलिए उन्होंने शिवानन्द सेन के पास एक व्यक्ति को भेजा।

से मनुष्य शिवानन्द-सेनेरे पुछिल ।

महाप्रभुर स्थाने एक ‘वैरागी’ देखिल ॥249॥

से मनुष्य-वह व्यक्ति; शिवानन्द-सेनेरे-शिवानन्द सेन से; पुछिल-पूछा; महाप्रभुर स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर; एक वैरागी-एक वैरागी व्यक्ति; देखिल-क्या आपने देखा।

अनुवाद

उस आदमी ने शिवानन्द सेन से पूछा, “क्या आपने श्री चैतन्य महाप्रभु के निवासस्थान पर किसी वैरागी को देखा है?

गोवर्धनेर पुत्र तेहो, नाम-‘रघुनाथ’ ।

नीलाचले परिचय आछे तोमार साथ? ॥ 250॥

गोवर्धनेर-गोवर्धन का; पुत्र-बेटा; तेहो-वह; नाम-नाम; रघुनाथ-रघुनाथ दास; नीलाचले-नीलाचल में; परिचय आछे-क्या भेंट हुई; तोमार साथ-आपके साथ।

अनुवाद

“वह व्यक्ति गोवर्धन मजुमदार का पुत्र रघुनाथ दास है। क्या नीलाचल में उससे आपकी भेंट हुई?”

शिवानन्द कहे,—“तैंहो हय प्रभुर स्थाने ।

परम विख्यात तैंहो, केबा नाहि जाने” ॥251॥

शिवानन्द कहे-शिवानन्द सेन ने उत्तर दिया; तैंहो-वह; हय-है; प्रभुर स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; परम विख्यात-अत्यन्त विख्यात; तैंहो-वह; केबा-कौन; नाहि जाने-नहीं जानता।

अनुवाद

शिवानन्द सेन ने उत्तर दिया, “हाँ, महोदय, रघुनाथ दास श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ है और अत्यन्त विख्यात व्यक्ति है। उसे कौन नहीं जानता?”

स्वरूपेर स्थाने तारे करियाछेन समर्पण ।

प्रभुर भक्त-गणेर तैंहो हय प्राण-सम ॥252॥

स्वरूपेर स्थाने-स्वरूप दामोदर को; तारे-उसे; करियाछेन समर्पण-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने सौंप दिया है; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गणेर-सभी भक्तों में से; तैंहो-वह; हय-है; प्राण-प्राण; सम-समान।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसे स्वरूप दामोदर के संरक्षण में रख दिया है। रघुनाथ दास तो महाप्रभु के सभी भक्तों का प्राण बन चुका है।

रात्रि-दिन करे तैंहो नाम-सङ्कीर्तन ।

क्षण-मात्र नाहि छाड़े प्रभुर चरण ॥253॥

रात्रि-दिन-दिन-रात; करे-करता है; तैंहो-वह; नाम-सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन; क्षण-मात्र-एक क्षण के लिए भी; नाहि छाड़े-नहीं छोड़ता; प्रभुर चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

“वह दिन-रात हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करता है। वह क्षण भर के लिए भी श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण नहीं छोड़ता।”

परम वैराग्य तार, नाहि भक्ष्य-परिधान ।

यैछे तैछे आहार करि' राखये पराण ॥254॥

परम-सर्वश्रेष्ठ; वैराग्य-विरक्ति की भावना; तार-उसकी; नाहि-नहीं; भक्ष्य-खाना; परिधान-पहनना; यैछे तैछे-किसी भी तरह; आहार करि'-खाकर; राखये पराण-प्राण रक्षा करता है।

अनुवाद

“वह सर्वोपरि संन्यास आश्रम में है। वह खाने या पहनने की परवाह नहीं करता। वह जैसे-कैसे भोजन करता है और अपना जीवन यापन करता है।”

दश-दण्ड रात्रि गेले 'पुष्पाञ्जलि' देखिया ।

सिंह-द्वारे खाड़ा हय आहार लागिआ ॥ 255 ॥

दश-दण्ड-दस दंड (240 मिनट); रात्रि-रात; गेले-होने पर; पुष्पाञ्जलि-पुष्पांजलि; देखिया-देखकर; सिंह-द्वारे-सिंहद्वार पर; खाड़ा हय-खड़ा होता है; आहार लागिआ-खाने के लिए कुछ भिक्षा प्राप्त करने के लिए।

अनुवाद

वह दस दण्ड (चार घण्टे) रात बीत जाने पर पुष्पांजलि देख लेने के बाद सिंहद्वार पर खड़ा होकर खाने के लिए भिक्षा माँगता है।

“केह यदि देय, तबे करये भक्षण ।

कभु उपवास, कभु करये चर्वण” ॥256॥

केह-कोई; यदि-यदि; देय-देता है; तबे-तो; करये भक्षण-वह खाता है; कभु-कभी; उपवास-उपवास; कभु-कभी; करये चर्वण-वह चबाता है।

अनुवाद

“यदि कोई कुछ दे देता है, तो वह खा लेता है। कभी-कभी वह उपवास करता है और कभी वह चबैना चबाकर रह जाता है।”

एत शुनि' सेइ मनुष्य गोवर्धन-स्थाने ।

कहिल गिया सब रघुनाथ-विवरणे ॥257॥

एत शुनि' -यह सुनकर; सेइ मनुष्य-वह सन्देशवाहक; गोवर्धन-स्थाने-गोवर्धन मजुमदार के पास; कहिल-बताया; गिया-जाकर; सब-सब कुछ; रघुनाथ-विवरणे-रघुनाथ दास का विवरण।

अनुवाद

यह सुनकर वह सन्देशवाहक गोवर्धन मजुमदार के पास लौट गया और उसने रघुनाथ दास के बारे में उसे सब कुछ बतला दिया।

शुनि' तार्र माता पिता दुःखित हइल ।

पुत्र-ठाजि द्रव्य-मनुष्य पाठाइते मन कैल ॥ 258॥

शुनि' -सुनकर; तार्र-उनके; माता पिता-माता-पिता; दुःखित हइल-अत्यन्त दुःखी हुए; पुत्र-ठाजि-अपने पुत्र के पास; द्रव्य-मनुष्य-सम्पत्ति और सेवक; पाठाइते-भेजने की; मन कैल-इच्छा करने लगे।

अनुवाद

संन्यास आश्रम में रघुनाथ दास के व्यवहार का वर्णन सुनकर उसके माता-पिता अत्यन्त दुःखी थे। इसलिए उन्होंने उसकी सुविधा के लिए कुछ सामान देकर कुछ आदमी भेजने का निश्चय किया।

चारि-शत मुद्रा, दुइ भृत्य, एक ब्राह्मण ।

शिवानन्देर ठाजि पाठाइल तत-क्षण ॥ 259॥

चारि-शत मुद्रा-चार सौ मुद्राएँ; दुइ भृत्य-दो नौकर; एक ब्राह्मण-एक ब्राह्मण; शिवानन्देर ठाजि-शिवानन्द सेन के पास; पाठाइल-भेज दिये; तत-क्षण-उसी समय।

अनुवाद

रघुनाथ दास के पिता ने तुरन्त शिवानन्द सेन के पास चार सौ मुद्राएँ, दो नौकर तथा एक ब्राह्मण भेज दिया।

शिवानन्द कहे,—“तुम सब याइते नारिबा ।

आमि याइ यबे, आमार सङ्गे याइबा” ॥ 260॥

शिवानन्द कहे-शिवानन्द सेन ने कहा; तुम-तुम; सब-सब; याइते नारिबा-नहीं जा सकते; आमि याइ-मैं जाऊँगा; यबे-जब; आमार सङ्गे-मेरे साथ; याइबा-तुम आ सकते हो।

अनुवाद

शिवानन्द सेन ने उन सबसे बतलाया, “तुम लोग सीधे जगन्नाथपुरी नहीं जा सकते। जब मैं वहाँ जाऊँ, तब तुम लोग मेरे साथ चल सकते हो।”

एबे घर याह, यबे आमि सब चलिमु ।

तबे तोमा सबाकारे सङ्गे लजा यामु ॥261॥

एबे-अभी; घर याह-घर जाओ; यबे-जब; आमि-हम; सब-सब; चलिमु-जायेंगे; तबे-तब; तोमा सबाकारे-तुम सब को; सङ्गे-साथ; लजा-लेकर; यामु-मैं जाऊँगा।

अनुवाद

“अभी घर जाओ। जब हम सभी जायेंगे, तब तुम सबको अपने साथ ले लेंगे।”

एइ त’ प्रस्तावे श्री-कवि-कर्णपूर ।

रघुनाथ-महिमा ग्रन्थे लिखिला प्रचुर ॥262॥

एइ त’ प्रस्तावे-इस सन्दर्भ में; श्री-कवि-कर्णपूर-कवि कर्णपूर नामक कवि ने; रघुनाथ-महिमा-रघुनाथ दास की महिमा; ग्रन्थे-अपने ग्रन्थ (श्री चैतन्य चन्द्रोदय नाटक) में; लिखिला-लिखा; प्रचुर-विस्तार से।

अनुवाद

इस घटना का वर्णन करते हुए महान् कवि श्री कविकर्णपूर ने अपने ग्रन्थ 'श्री चैतन्य चन्द्रोदय नाटक' में रघुनाथ दास के महिमामय कार्यों के विषय में विस्तार से लिखा है।

आचार्यो यदुनन्दनः सु-मधुरः श्री-वासुदेव-प्रियस्

तच्छिष्यो रघुनाथ इत्यधिगुणः प्राणाधिको मादृशाम् ।

श्री-चैतन्य-कृपातिरेक-सतत-स्निग्धः स्वरूपानुगो

वैराग्यैक-निधिर्न कस्य विदितो नीलाचले तिष्ठताम् ॥ 263॥

आचार्यः यदुनन्दनः-यदुनन्दन आचार्य; सु-मधुरः-अत्यन्त भद्र आचरणशील; श्री-वासुदेव-प्रियः-श्री वासुदेव दत्त ठाकुर के अत्यन्त प्रिय; तत्-शिष्यः-उनका शिष्य; रघुनाथः-रघुनाथ दास; इति-अतः; अधिगुणः-गुणवान्; प्राण-अधिकः-प्राणों से अधिक प्रिय; मादृशाम्-मेरे जैसे श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी शिष्यों का; श्री-चैतन्य-कृपा-श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से; अतिरेक-अत्यन्त; सतत-स्निग्धः-सदैव आनन्ददायक; स्वरूप-अनुगः-स्वरूप दामोदर के चरणचिह्नों का अनुसरण करना; वैराग्य-वैराग्य का; एक-निधिः-समुद्र; न-नहीं; कस्य-किसके द्वारा; विदितः-ज्ञात होता है; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में; तिष्ठताम्-जो रह रहे थे।

अनुवाद

“रघुनाथ दास अत्यन्त विनीत तथा कांचनपल्ली निवासी वासुदेव दत्त को अत्यधिक प्रिय यदुनन्दन आचार्य के शिष्य हैं। अपने दिव्य गुणों के कारण रघुनाथ दास श्री चैतन्य महाप्रभु के हम सभी भक्तों को सदैव प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। उन पर श्री चैतन्य महाप्रभु की अत्यधिक कृपा है, इसलिए वे सदैव अत्यन्त प्रिय हैं। वे संन्यास आश्रम के लिए उत्तम आदर्श प्रस्तुत करने वाले हैं और स्वरूप दामोदर गोस्वामी के ये अत्यन्त प्रिय अनुयायी वैराग्य के सागर हैं। नीलाचल (जगन्नाथपुरी) के निवासियों में ऐसा कौन होगा जो उन्हें भलीभाँति न जानता हो?”

तात्पर्य

यह श्लोक कवि कर्णपूर कृत श्री चैतन्य चन्द्रोदय नाटक (10.3) में से लिया गया है।

यः सर्व-लोकैक-मनोऽभिरुच्या

सौभाग्य-भूः काचिदकृष्ट-पच्या ।

यत्रायमारोपण-तुल्य-कालं

तत्प्रेम-शाखी फलवानतुल्यः ॥ 264॥

यः-जो; सर्व-लोक-पुरी के सभी भक्तों का; एक-अग्रणी; मनः-मनों का; अभिरुच्या-स्नेह द्वारा; सौभाग्य-भूः-सौभाग्य का आधार; काचित्-अवर्णनीय; अकृष्ट-पच्या-बिना जोते ही उत्तम या बिना अभ्यास के ही दक्ष; यत्र-जिसमें; अयम्-यह; आरोपण-तुल्य-कालम्-बीज को बोने के समय; तत्-प्रेम-शाखी-श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रेम का वृक्ष; फल-वान्-फलयुक्त; अतुल्यः-अतुलनीय।

अनुवाद

“चूँकि वे सारे भक्तों को अत्यन्त मनोहर लगते हैं, इसलिए रघुनाथ दास गोस्वामी आसानी से सौभाग्य की उर्वर भूमि बन गये, जो श्री चैतन्य महाप्रभु का बीज बोने के लिए उपयुक्त थी। उसी समय यह बीज बो दिया गया और यह श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रेम रूपी अद्वितीय वृक्ष के रूप में बढ़कर फल उत्पन्न करने लगा।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्री चैतन्य चन्द्रोदय नाटक का अगला श्लोक (10.4) है।

शिवानन्द यैछे सेइ मनुष्ये कहिला ।

कर्णपूर सेइ-रूपे श्लोक वर्णिला ॥ 265 ॥

शिवानन्द-शिवानन्द सेन ने; यैछे-जैसे; सेइ-उस; मनुष्ये-सन्देशवाहक को; कहिला-कहा; कर्णपूर-महान् कवि कर्णपूर ने; सेइ रूपे-उसी प्रकार; श्लोक वर्णिला-श्लोक रचे।

अनुवाद

इन श्लोकों में महाकवि कवि-कर्णपूर वही जानकारी देते हैं, जो शिवानन्द सेन ने रघुनाथ दास के पिता के सन्देशवाहक को दी थी।

वर्षान्तरे शिवानन्द चले नीलाचले ।

रघुनाथेर सेवक, विप्र ताँर सङ्गे चले ॥ 266॥

वर्ष-अन्तरे-अगले वर्ष; शिवानन्द-शिवानन्द सेन; चले नीलाचले-जगन्नाथ पुरी जाने लगे; रघुनाथेर-रघुनाथ दास के; सेवक-सेवक; विप्र-तथा ब्राह्मण; ताँर सङ्गे-उनके साथ; चले-चल दिये।

अनुवाद

अगले वर्ष जब शिवानन्द सेन हमेशा की तरह जगन्नाथपुरी जाने लगे, तो रघुनाथ के नौकर तथा उनका रसोइया ब्राह्मण उनके साथ चल पड़े।

सेइ विप्र भृत्य, चारि-शत मुद्रा लजा ।

नीलाचले रघुनाथे मिलिला आसिया ॥ 267॥

सेइ विप्र-वह ब्राह्मण; भृत्य-सेवक; चारि-शत मुद्रा-चार सौ मुद्राएँ; लजा-लाकर; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में; रघुनाथे-रघुनाथ दास से; मिलिला-मिले; आसिया-आकर।

अनुवाद

वे सेवक तथा वह ब्राह्मण अपने साथ चार सौ मुद्रा जगन्नाथपुरी ले आये और वहाँ रघुनाथ दास से मिले।

रघुनाथ-दास अङ्गीकार ना करिल ।

द्रव्य लजा दुइ-जन ताहाडि रहिल ॥ 268॥

रघुनाथ-दास-रघुनाथ दास ने; अङ्गीकार ना करिल-स्वीकार नहीं किये; द्रव्य ला-धन लेकर; दुइ-जन-दो लोग; ताहाडि रहिल-वहीं रहे।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने अपने पिता द्वारा भेजा गया धन तथा आदमी स्वीकार नहीं किये। इसलिए एक नौकर तथा वह ब्राह्मण दोनों ही धन लेकर वहीं रुके रहे।

तबे रघुनाथ करि' अनेक यतन ।

मासे दुइ-दिन कैला प्रभुर निमन्त्रण ॥ 269॥

तबे-उस समय; रघुनाथ-रघुनाथ दास ने; करि' अनेक ग्रतन-अत्यन्त सावधानीपूर्वक; मासे-प्रत्येक मास; दुइ-दिन-दो दिन; कैला-किया; प्रभुर निमन्त्रण-श्री चैतन्य महाप्रभु को निमंत्रित।

अनुवाद

उसी समय रघुनाथ दास ने प्रतिमास दो दिन अपने घर पर श्री चैतन्य महाप्रभु को बड़े ध्यान से निमन्त्रित करना शुरू किया।

दुइ निमन्त्रणे लागे कौड़ि अष्ट-पण ।

ब्राह्मण-भृत्य-ठाजि करेन एतेक ग्रहण ॥ 270 ॥

दुइ निमन्त्रणे-इन दो निमन्त्रणों में; लागे-खर्च; कौड़ि अष्ट-पण-640 कोड़ियाँ; ब्राह्मण-भृत्य-ठाजि-ब्राह्मण और सेवक से; करेन-किया; एतेक-इतना ही; ग्रहण-स्वीकार।

अनुवाद

इन दोनों अवसरों पर 640 कौड़ियाँ खर्च होतीं। इसलिए वे उस नौकर तथा ब्राह्मण से इतनी ही राशि लेते।

एइ-मत निमन्त्रण वर्ष दुइ कैला ।

पाछे रघुनाथ निमन्त्रण छाड़ि' दिला ॥ 271॥

एइ-मत-इस प्रकार; निमन्त्रण-निमन्त्रण; वर्ष दुइ-दो वर्ष तक; कैला-लगातार; पाछे-अन्त में; रघुनाथ-रघुनाथ दास ने; निमन्त्रण-निमन्त्रण; छाड़ि' दिला-बन्द कर दिया।

अनुवाद

इस तरह रघुनाथ दास श्री चैतन्य महाप्रभु को दो वर्षों तक आमन्त्रित करते रहे, किन्तु दूसरे वर्ष के अन्त में उन्होंने यह बन्द कर दिया।

मास-दुइ यबे रघुनाथ ना करे निमन्त्रण ।

स्वरूपे पुछिला तबे शचीर नन्दन ॥ 272॥

मास-दुइ-दो मास तक; यबे-जब; रघुनाथ-रघुनाथ दास; ना करे निमन्त्रण-निमन्त्रण नहीं देते; स्वरूपे पुछिला-स्वरूप दामोदर से पूछते हैं; तबे-उस समय; शचीरनन्दन-शची माता के पुत्र, श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

जब रघुनाथ दास ने लगातार दो मास तक महाप्रभु को आमन्त्रित नहीं किया, तो शचीपुत्र महाप्रभु ने स्वरूप दामोदर से पूछा।

‘रघु केने आमाय निमन्त्रण छाड़ि’ दिल?’ ।

स्वरूप कहे,—“मने किछु विचार करिल” ॥273॥

रघु-रघुनाथ दास ने; केने-क्यों; आमाय-मुझे; निमन्त्रण-निमन्त्रण देना; छाड़ि’ दिल-छोड़ दिया; स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया; मने-उसके मन में; किछु-कुछ; विचार करिल-उसने विचार किया है।

अनुवाद

महाप्रभु ने पूछा, “रघुनाथ दास ने मुझे निमन्त्रण देना क्यों बन्द कर दिया है?” स्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया, “उसने मन में फिर से कुछ सोचा होगा।”

विषयीर द्रव्य लजा करि निमन्त्रण ।

प्रसन्न ना हय इहाय जानि प्रभुर मन ॥ 274॥

विषयीर द्रव्य-भौतिकतावादी लोगों द्वारा प्रदान की गई वस्तुएँ; लजा-लेकर; करि निमन्त्रण-मैं निमन्त्रित करता हूँ; प्रसन्न-सन्तुष्ट; ना हय-नहीं हैं; इहाय-इस कारण से; जानि-मैं समझ सकता हूँ; प्रभुर मन-श्री चैतन्य महाप्रभु का मन।

अनुवाद

“मैं भौतिकतावादी व्यक्तियों से सामग्री लेकर श्री चैतन्य महाप्रभु को आमन्त्रित करता हूँ। मैं जानता हूँ कि इससे महाप्रभु का मन प्रसन्न नहीं होता।”

मोर चित्त द्रव्य लइते ना हय निर्मल ।

एइ निमन्त्रणे देखि,—‘प्रतिष्ठा’-मात्र फल ॥ 275॥

मोर चित्त-मेरी चेतना; द्रव्य लइते-सम्पत्ति लेने के कारण; ना हय-नहीं है; निर्मल-शुद्ध; एइ निमन्त्रणे-इस निमन्त्रण द्वारा; देखि-मैं देखता हूँ; प्रतिष्ठा-सम्मान; मात्र केवल; फल-परिणाम।

अनुवाद

“मेरा मन मलिन है, क्योंकि मैं यह सारा सामान उन लोगों से लेता हूँ जो केवल धन में रुचि रखने वाले हैं। इसलिए ऐसे निमन्त्रण से मैं कुछ भौतिक यश ही प्राप्त करता हूँ।”

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है कि देहात्मबुद्धि में फसे लोग भौतिकतावादी कहलाते हैं। यदि हम ऐसे लोगों की भेंटे स्वीकार करके उन्हें भगवान् के समक्ष प्रस्तुत करते हैं तथा वैष्णवों को प्रसाद ग्रहण करने के लिए आमन्त्रित करते हैं, तो उससे हमें केवल भौतिक ख्याति मिल सकेगी, शुद्ध वैष्णव की सेवा के लिए कोई वास्तविक लाभ नहीं होगा। इसलिए मनुष्य को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरणों में पूर्णतया समर्पित होकर भगवान् की सेवा करनी चाहिए। यदि ईमानदारी से कमाये गये धन को भगवान् की सेवा में लगाया जाता है, तो वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की, गुरु की तथा वैष्णवों की वास्तविक सेवा है।

उपरोधे प्रभु मोर मानेन निमन्त्रण ।

ना मानिले दुःखी हइबेक मूर्ख जन ॥ 276॥

उपरोधे-विनति पर; प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; मोर-मेरा; मानेन-स्वीकार करते हैं; निमन्त्रण-निमन्त्रण; ना मानिले-यदि वे नहीं स्वीकार करते; दुःखी-अप्रसन्न; हइबेक-हो जायेगा; मूर्ख जन-मूर्ख व्यक्ति।

अनुवाद

“मेरे अनुरोध पर श्री चैतन्य महाप्रभु निमन्त्रण स्वीकार कर लेते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि यदि वे निमन्त्रण स्वीकार नहीं करते, तो मुझ जैसा मूर्ख व्यक्ति दुःखी होगा।”

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि जो लोग विद्वान हैं, किन्तु भौतिक भोग के प्रति आसक्त रहते हैं, जो भौतिक सम्पत्ति, कुलीन जन्म तथा विद्या के कारण गर्वित रहते हैं, वे अर्चाविग्रह की दिखावटी भक्ति कर सकते हैं और वैष्णवों को प्रसाद भी दे सकते हैं। किन्तु अपने अज्ञान के कारण वे यह समझ नहीं सकते कि चूँकि उनके मन भौतिकता से दूषित हैं, इसलिए न तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण, न ही वैष्णव जन उनकी भेंट स्वीकार करते हैं। यदि कोई ऐसे भौतिकतावादी लोगों से अर्चाविग्रह तथा वैष्णवों को भोजन भेंट करने के लिए धन लेता है, तो शुद्ध वैष्णव इसे स्वीकार नहीं करता। इससे भौतिकतावादियों को दुःख होता है, क्योंकि वे देहात्मबुद्धि में मग्न रहते हैं। इसलिए वे कभी-कभी वैष्णवों के विरुद्ध हो जाते हैं।

एत विचारिया निमन्त्रण छाड़ि' दिल ।

शुनि' महाप्रभु हासि' बलिते लागिल ॥ 277॥

एत विचारिया-यह सोचकर; निमन्त्रण-निमन्त्रण; छाड़ि' दिल-छोड़ दिया; शुनि'-सुनकर; महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; हासि-हँसकर; बलिते लागिल-कहने लगे।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने यह कहकर समाप्त किया कि, “इन सारी बातों पर विचार करके उसने आपको आमन्त्रित करना बन्द कर दिया है। यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु हँसे और कहने लगे।”

“विषयीर अन्न खाइले मलिन हय मन ।

मलिन मन हैले नहे कृष्णेर स्मरण” ॥278॥

अनला विषयीर-विषयी लोगों का; अन्न-अन्न; खाइले-यदि कोई खाता है; मलिन-दूषित; हय मन-मन हो जाता है; मलिन-दूषित; मन हैले-जब मन हो जाए; नहे-नहीं होता; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण का; स्मरण-स्मरण।

अनुवाद

“जब कोई किसी भौतिकतावादी द्वारा भेंट किया हुआ भोजन खाता है, तो उसका मन कलुषित हो जाता है और जब मन कलुषित हो जाता है, तो मनुष्य ठीक से कृष्ण का चिन्तन नहीं कर पाता।”

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का सुझाव है कि भौतिक रूप से आसक्त लोग और तथाकथित सहजिया वैष्णव, दोनों ही विषयी अर्थात् भौतिकतावादी हैं, जो सभी बातों को गम्भीरता से नहीं लेते। इनके द्वारा दिया हुआ भोजन खाने से कल्मष उत्पन्न होता है और ऐसे कल्मष से गम्भीर से गम्भीर भक्त भी भौतिकतावादी की तरह बन जाता है। संगति छः प्रकार की होती है-दान देना, दान लेना, भोजन ग्रहण करना, भोजन देना, एकान्त में बातें करना और गुप्त रूप से प्रश्न पूछना। सहजियों जो कभी-कभी वैष्णव कहे जाते हैं तथा अवैष्णवों-इन दोनों की संगति करने से बचना चाहिए। इनकी संगति दिव्य कृष्ण भक्ति को इन्द्रियतृप्ति में बदल देती है और जब इन्द्रियतृप्ति भक्त के मन में प्रवेश कर जाती है, तो वह कलुषित हो जाता है। जो भौतिकतावादी व्यक्ति इन्द्रियतृप्ति के लिए लालायित रहता है, वह कृष्ण के विषय में ठीक से नहीं सोच पाता।

विषयीर अन्न हय 'राजस' निमन्त्रण ।

दाता, भोक्ता—दुँहार मलिन हय मन ॥279॥

विषयीर-भौतिकतावादी व्यक्ति द्वारा दिया हुआ; अन्न-अन्न; हय-है; राजस-रजोगुण में; निमन्त्रण-निमन्त्रण; दाता-जो देता है; भोक्ता-जो व्यक्ति ऐसा दान ग्रहण करता है; दुँहार-उन दोनों का; मलिन-दूषित; हय मन-मन हो जाता है।

अनुवाद

“जब कोई व्यक्ति रजोगुण से दूषित किसी व्यक्ति का आमन्त्रण स्वीकार कर लेता है, तो भोजन देने वाला तथा उस भोजन को स्वीकार करने वाला दोनों ही मानसिक रूप से कलुषित हो जाते हैं।”

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि निमन्त्रण तीन प्रकार के होते हैं-सतोगुणी, रजोगुणी तथा तमोगुणी। शुद्ध भक्त का निमन्त्रण स्वीकार करना सतोगुणी है, और जो व्यक्ति पवित्र है, किन्तु भौतिकता में लिप्त है, उस व्यक्ति का निमन्त्रण स्वीकार करना रजोगुणी है एवं भौतिक दृष्टि से पापी व्यक्ति का निमन्त्रण स्वीकार करना तमोगुणी है।

“इँहार सङ्कोचे आमि एत दिन निल ।

भाल हैल-जानिया आपनि छाड़ि दिल” ॥280॥

ईंहार सङ्कोचे-उसकी आतुरता के कारण; आमि-मैंने; एत दिन-इतने दिन तक; निल-स्वीकार किया; भाल हैल-यह बहुत अच्छा है; जानिया-जानकर; आपनि-स्वयं ही; छाड़ि दिल-उसने छोड़ दिया।

अनुवाद

“रघुनाथ दास की उत्सुकता के कारण मैंने अनेक दिनों तक उसका निमन्त्रण स्वीकार किया। यह अच्छा हुआ कि रघुनाथ दास ने यह जानते हुए अब इस रीति को स्वयं त्याग दिया है।”

कत दिने रघुनाथ सिंह-द्वार छाड़िला ।

छत्रे याइ’ मागिया खाइते आरम्भ करिला ॥281॥

कत दिने कुछ दिन बाद; रघुनाथ-रघुनाथ दास ने; सिंह-द्वार छाड़िला-सिंहद्वार पर खड़ा होना छोड़ दिया; छत्रे याइ’-एक भिक्षा स्थल पर जाकर; मागिया-भिक्षा माँगकर; खाइते-खाना; आरम्भ करिला-उन्होंने प्रारम्भ किया।

अनुवाद

कुछ दिनों के बाद रघुनाथ दास ने सिंहद्वार पर खड़े होना बन्द कर दिया और उसके स्थान पर वे अन्नछत्र से भिक्षा माँगकर खाने लगे।

गोविन्द-पाश शुनि’ प्रभु पुछेन स्वरूपे ।

‘रघु भिक्षा लागि’ ठाड़ केने नहे सिंह-द्वारे’? ॥282॥

गोविन्द-पाश-गोविन्द से; शुनि’-सुनकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; पुछेन स्वरूपे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी से पूछे; रघु-रघुनाथ दास; भिक्षा लागि’-भिक्षा के लिए; ठाड़ केने नहे-खड़ा क्यों नहीं होता; सिंह-द्वारे-सिंहद्वार पर।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोविन्द से यह समाचार सुना, तो उन्होंने स्वरूप दामोदर से पूछा, “अब भिक्षा माँगने के लिए रघुनाथ दास सिंहद्वार पर क्यों नहीं खड़ा होता?”

स्वरूप कहे,—“सिंह-द्वारे दुःख अनुभविया ।

छत्रे मागि’ खाय मध्याह्न-काले गिया” ॥ 283॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने कहा; सिंह-द्वारे-सिंहद्वार पर; दुःख अनुभविया-दुःखी अनुभव कर; छत्रे-भिक्षा स्थली पर; मागि'-माँगकर; खाय-वह खाता है; मध्याह्न-काले-दिन में; गया-जाकर।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया, “रघुनाथ दास को सिंहद्वार पर खड़े होने से दुःख होता था। इसलिए वह अब दोपहर के समय अन्नछत्र में भिक्षा माँगने जाता है।”

प्रभु कहे,—“भाल कैल, छाड़िल सिंह-द्वार” ।

सिंह-द्वारे भिक्षा-वृत्ति-वेश्यार आचार ॥284॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; भाल कैल-उसने अच्छा किया; छाड़िल सिंह-द्वार-सिंहद्वार पर खड़ा होना छोड़ दिया; सिंह-द्वारे भिक्षा-वृत्ति-सिंहद्वार पर खड़े होकर भिक्षा माँगना; वेश्यार आचार-एक वेश्या का आचरण है।

अनुवाद

यह समाचार सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “उसने बहुत अच्छा किया कि सिंहद्वार पर खड़ा होना बन्द कर दिया। ऐसी भिक्षावृत्ति वेश्या के आचरण के समान है।”

तथा हि-किमर्थमयमागच्छति, अयं दास्यति, अनेन

दत्तमयमपरः । समेत्ययं दास्यति, अनेनापि न दत्तमन्यः

समेष्यति, स दास्यति इत्यादि ॥285॥

तथा हि-अतः; किम् अर्थम्-क्यों; अयम्-यह व्यक्ति; आगच्छति-आ रहा है; अयम्-यह व्यक्ति; दास्यति-देगा; अनेन-इस व्यक्ति ने; दत्तम्-दिया था; अयम्-यह; अपरः-दूसरा; समेति-पास आ रहा है; अयम्-यह व्यक्ति; दास्यति-देगा; अनेन-इस व्यक्ति ने; अपि-भी; न-नहीं; दत्तम्-दिया; अन्यः-दूसरा; समेष्यति-पास आयेगा; सः-वह; दास्यति-देगा; इति-अतः; आदि-इस प्रकार।

अनुवाद

“यह व्यक्ति आ रहा है। वह मुझे कुछ देगा। इस व्यक्ति ने मुझे पिछली रात में कुछ दिया था। अब एक दूसरा व्यक्ति इधर आ रहा है। वह मुझे कोई वस्तु दे सकता है। अभी जो व्यक्ति इधर से निकला, उसने मुझे कुछ नहीं दिया, किन्तु दूसरा व्यक्ति आयेगा और वह मुझे कुछ देगा।” संन्यास आश्रम में ऐसा व्यक्ति अपनी उदासीनता त्याग देता है और इस या उस व्यक्ति के दान पर आश्रित रहता है। इस तरह सोचते हुए वह वेश्या की वृत्ति ग्रहण कर लेता है।

“छत्रे याइ यथा-लाभ उदर-भरण ।

अन्य कथा नाहि, सुखे कृष्ण-सङ्कीर्तन” ॥ 286॥

छत्रे याइ—मुफ्त प्रसाद वितरण के स्थान पर जाकर; ग्रथा-लाभ-जो कुछ भी मिलता है; उदर-भरण-पेट भरने के लिए; अन्य-अन्य; कथा-बात; नाहि-नहीं है; सुखे-प्रसन्नता से; कृष्ण-सङ्कीर्तन-हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन।

अनुवाद

“यदि कोई व्यक्ति निःशुल्क भोजन देने वाले लंगर में जाकर जो भी मिले उससे पेट भरता है, तो अवांछित बातों का अवसर नहीं रह जाता और वह शान्तिपूर्वक हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन कर सकता है।”

एत बलि’ तारै पुनः प्रसाद करिला ।

‘गोवर्धनेर शिला’, ‘गुञ्जा-माला’ तारै दिला ॥287॥

एत बलि’-यह कहकर; तारै-उन्हें; पुनः-फिर; प्रसाद करिला-कृपा रूप कुछ दिया; गोवर्धनेर शिला-गोवर्धन पर्वत की एक शिला; गुञ्जा-माला-गुंज की एक माला; तारै दिला-उन्हें देकर।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोवर्धन पर्वत की एक शिला तथा गुंजामाला (छोटे शंखों की एक माला) देकर रघुनाथ दास पर पुनः कृपा की।

शङ्करानन्द-सरस्वती वृन्दावन हैते आइला ।

तेह सेइ शिला-गुञ्जा-माला लजा गेला ॥ 288 ॥

शङ्करानन्द-सरस्वती-श्री चैतन्य महाप्रभु का एक भक्त; वृन्दावन हैते-वृन्दावन से; आइला-आया था; तेह-वह;
सेइ-वे; शिला-गुञ्जा-माला-शिला और गुंज माला; लजा लेकर; गेला-आया था।

अनुवाद

पिछली बार जब शंकरानन्द सरस्वती वृन्दावन से आये थे, तो अपने साथ गोवर्धन पर्वत से एक शिला
तथा गुंजामाला (छोटे-छोटे शंखों की माला) लाये थे।

पार्श्वे गाँथा गुञ्जा-माला, गोवर्धन-शिला ।

दुइ वस्तु महाप्रभुर आगे आनि' दिला ॥289॥

पार्श्वे-एक ओर; गाँथा-बंधी हुई; गुञ्जा-माला-गुंजमाला; गोवर्धन-शिला-गोवर्धन शिला; दुइ वस्तु-दोनों वस्तुएँ;
महाप्रभुर आगे-श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने; आनि' दिला-प्रस्तुत की।

अनुवाद

उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को वे दोनों वस्तुएँ-शंखों की माला तथा गोवर्धन पर्वत की शिला-दी थीं।

दुइ अपूर्व-वस्तु पाजा प्रभु तुष्ट हैला ।

स्मरणेर काले गले परे गुञ्जा-माला ॥290॥

दुई-दो; अपूर्व-वस्तु-अद्भुत वस्तुएँ; पाजा-प्राप्त कर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तुष्ट हैला-अत्यन्त प्रसन्न हुए;
स्मरणेर काले-स्मरण के समय (जब वे हरे कृष्ण जप कर रहे थे); गले-गले में; परे-पहनते; गुञ्जा-माला-छोटे-छोटे शंखों
से बनी माला।

अनुवाद

इन दो असामान्य वस्तुओं को पाकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यधिक सुखी थे। वे जप करते समय उस
माला को अपने गले में डाल लिया करते थे।

गोवर्धन-शिला प्रभु हृदये-नेत्रे धरे ।

कभु नासाय घ्राण लय, कभु शिरे करे ॥291॥

गोवर्धन-शिला-गोवर्धन पर्वत की शिला; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; हृदये-हृदय पर; नेत्रे-आँखों पर; धरे-रखते;
कभु-कभी; नासाय-नाक से; घाण लय-पूँघते; कभु-कभी; शिरे करे-सिर पर रखते।

अनुवाद

महाप्रभु इस शिला को कभी अपने हृदय पर रखते तो कभी अपनी आँखों से लगाते। कभी वे अपनी
नाक से इसे सूँघते और कभी इसे अपने सिर पर रखते।

नेत्र-जले सेइ शिला भिजे निरन्तर ।

शिलारे कहेन प्रभु—‘कृष्ण-कलेवर’ ॥292॥

नेत्र-जले-आँखों की आसुओं से; सेइ-वह; शिला-शिला; भिजे-भीगी रहती; निरन्तर—सदैव; शिलारे-शिला को;
कहेन—कहते; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कृष्ण-कलेवर—भगवान् कृष्ण का शरीर।

अनुवाद

गोवर्धन पर्वत की यह शिला महाप्रभु के नेत्रों से निकलने वाले अश्रुओं से सदैव भीगी रहती थी। श्री
चैतन्य महाप्रभु कहा करते, “यह शिला साक्षात् कृष्ण का शरीर है।”

एइ-मत तिन-वत्सर शिला-माला धरिला ।

तुष्ट हजा शिला-माला रघुनाथे दिला ॥293॥

एइ-मत-इस प्रकार; तिन-वत्सर-तीन वर्ष तक; शिला-माला-शिला और गुंजमाला; धरिला-उन्होंने रखी; तुष्ट
हजा—जब वे अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये; शिला-माला-शिला और माला; रघुनाथे-रघुनाथ दास को; दिला-उन्होंने दे दी।

अनुवाद

वे उस शिला तथा माला को तीन वर्षों तक अपने पास रखे रहे। तब रघुनाथ दास के आचरण से
अत्यधिक प्रसन्न होकर महाप्रभु ने इन दोनों को उन्हें दे दिया।

प्रभु कहे,—“एइ शिला कृष्णेर विग्रह ।

इँहार सेवा कर तुमि करिया आग्रह” ॥294॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; एइ शिला-यह शिला; कृष्णेर विग्रह-भगवान् कृष्ण का स्वरूप; ईंहार-
इसकी; सेवा-उपासना; कर-करो; तुमि-तुम; करिया आग्रह-अत्यधिक उत्साहपूर्वक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुनाथ दास को यह उपदेश दिया, “यह शिला भगवान् कृष्ण का दिव्य स्वरूप
है। इस शिला की पूजा अतीव उत्सुकता से करना।”

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने अनुभाष्य में लिखते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु के मतानुसार गोवर्धन
शिला महाराज नन्द के पुत्र कृष्ण का साक्षात् स्वरूप थी। महाप्रभु ने इस शिला को तीन वर्षों तक धारण की। तब उन्होंने
रघुनाथ दास के हृदय में इस शिला के बारे में भक्ति उत्पन्न की। तब महाप्रभु ने वह शिला रघुनाथ दास को अपना
सर्वाधिक विश्वासपात्र सेवक स्वीकार करते हुए सौंप दी। किन्तु कुछ ईर्ष्यालु व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चूँकि
रघुनाथ दास का जन्म किसी ब्राह्मण कुल में नहीं हुआ था, इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसे अर्चाविग्रह को सीधे पूजने
का अधिकार नहीं दिया, अपितु उन्हें गोवर्धन से एक शिला प्रदान की। ऐसा विचार नारकी है। पद्मपुराण में कहा गया है-
अर्ये विष्णौ शिलाधीगुरुषु नरमतिवैष्णवे जातिबुद्धिः... यस्य वा नारकी सः-यदि कोई सोचता है कि पूज्य शालग्राम
शिला मात्र पत्थर है, कि गुरु सामान्य मनुष्य है अथवा भक्ति सम्प्रदाय का विश्वभर में प्रचार करने वाला शुद्ध वैष्णव
किसी जाति-पाँति का सदस्य है, तो वह नारकी अर्थात् नरक जाने का पात्र माना जाता है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह
उपदेश दिया कि गोवर्धन शिला पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर से अभिन्न है, तो उन्होंने ऐसे मूर्खा को अप्रत्यक्ष
यह उपदेश दिया कि किसी अन्य जाति-पाँति वाले वैष्णव से कभी ईर्ष्या न करें। मनुष्य को स्वीकार करना चाहिए कि
वैष्णव दिव्य होता है। इस तरह उसे बचाया जा सकता है, अन्यथा वह निश्चित रूप से नारकीय जीवन को प्राप्त होगा।

एइ शिलार कर तुमि सात्त्विक पूजन ।

अचिरात् पाबे तुमि कृष्ण-प्रेम-धन ॥295॥

एइ शिलार-इस शिला का; कर-करो; तुमि-तुम; सात्त्विक पूजन-एक दक्ष ब्राह्मण की भाँति पूजन, अथवा
सत्त्वगुण में; अचिरात्-अति शीघ्र; पाबे तुमि-तुम प्राप्त करोगे; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम भाव; धन-सम्पत्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा, “तुम आदर्श ब्राह्मण की तरह सत्त्वगुणी भाव से इस शिला की पूजा करो, क्योंकि ऐसी पूजा से तुम निश्चय ही अविलम्ब कृष्ण का भावमय प्रेम प्राप्त कर सकोगे।

एक कुँजा जल आर तुलसी-मञ्जरी ।

सात्त्विक-सेवा एई शुद्ध-भावे करि ॥296॥

एक-एक; कुँजा-पात्र; जल-जल; आर-और; तुलसी-मञ्जरी-तुलसी की मंजरी; सात्त्विक-सेवा-सत्त्वगुण में सेवा; एई-यह; शुद्ध-भावे-पूर्ण शुद्धता से; करि-करो।

अनुवाद

“ऐसी पूजा के लिए एक लोटा पानी तथा तुलसी वृक्ष की कुछ मंजरियों की आवश्यकता पड़ती है। यदि परम शुद्धि के साथ इसे सम्पन्न किया जाए, तो यह सत्त्वगुणी पूजा है।”

दुइ-दिके दुइ-पत्र मध्ये कोमल मञ्जरी ।

एइ-मत अष्ट-मञ्जरी दिबे श्रद्धा करि' ॥ 297॥

दुइ-दिके-दो तरफ; दुइ-पत्र-दो तुलसी के पत्ते; मध्ये-बीच में; कोमल मञ्जरी-अति कोमल तुलसी मंजरी; एइ-मत-इस प्रकार; अष्ट-मञ्जरी-आठ मंजरियाँ; दिबे-अर्पित करो; श्रद्धा करि'-श्रद्धा और प्रेम के साथ।

अनुवाद

“तुम्हें चाहिए कि तुम श्रद्धा तथा प्रेम के साथ तुलसी की आठ कोमल मंजरियाँ भेंट चढ़ाओ। और इन आठों में प्रत्येक ओर दो तुलसी की पत्तियाँ हों।”

श्री-हस्ते शिला दिया एइ आज्ञा दिला ।

आनन्दे रघुनाथ सेवा करिते लागिला ॥298॥

श्री-हस्ते-अपने दिव्य हाथ से; शिला-गोवर्धन शिला; दिया-देकर; एइ आज्ञा-यह आदेश; दिला-उन्होंने दिया; आनन्दे-अत्यन्त आनन्द में; रघुनाथ-रघुनाथ दास; सेवा करिते लागिला-सेवा करने लगे।

अनुवाद

इस तरह यह परामर्श देकर कि किस तरह पूजा की जाए, श्री चैतन्य महाप्रभु ने रघुनाथ दास को अपने दिव्य हाथ से गोवर्धन शिला प्रदान की। महाप्रभु की आज्ञा के अनुसार ही रघुनाथ दास परम प्रसन्नतापूर्वक शिला की पूजा करने लगे।

एक-वितस्ति दुइ-वस्त्र, पिंडा एक-खानि ।

स्वरूप दिलेन कुँजा आनिबारे पानि ॥299॥

एक-वितस्ति-लगभग छः इंच लम्बे; दुइ-वस्त्र-दो वस्त्र; पिंडा एक-खानि-एक लकड़ी का मंच; स्वरूप दिलेन-स्वरूप दामोदर ने दिया; कुँजा-एक पात्र; आनिबारे पानि-जल लाने के लिए।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने रघुनाथ दास को लगभग छह-छह इंच लम्बे दो वस्त्र, एक लकड़ी का पीढ़ा तथा जल रखने के लिए एक पात्र दिया।

एइ-मत रघुनाथ करेन पूजन ।

पूजा-काले देखे शिलाय 'ब्रजेन्द्र-नन्दन' ॥300॥

एइ-मत-इस प्रकार; रघुनाथ-रघुनाथ दास गोस्वामी; करेन पूजन-पूजा करने लगे; पूजा-काले-पूजा करते हुए; देखे-वे देखते हैं; शिलाय-गोवर्धन शिला में; ब्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज के पुत्र को।

अनुवाद

इस तरह रघुनाथ दास ने गोवर्धन शिला को पूजना प्रारम्भ कर दिया और जब वे पूजा करते, तो उस शिला में वे नन्द महाराज के पुत्र साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण का दर्शन करते।

‘प्रभुर स्वहस्त-दत्त गोवर्धन-शिला’ ।

एइ चिन्ति’ रघुनाथ प्रेमे भासि’ गेला ॥ 301॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; स्व-हस्त-अपने हाथों से; दत्त-दी हुई; गोवर्धन-शिला-गोवर्धन शिला; एइ चिन्ति’-यह सोचकर; रघुनाथ-रघुनाथ दास; प्रेमे-प्रेमभाव में; भासि’ गेला-डूब गये।

अनुवाद

यह सोचकर कि यह गोवर्धन शिला उन्हें किस तरह स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु के हाथों से प्राप्त हुई है, रघुनाथ दास सदैव प्रेमावेश से अभिभूत होते रहते।

जल-तुलसीर सेवाय तारं यत सुखोदय ।

षोडशोपचार-पूजाय तत सुख नय ॥ 302॥

जल-तुलसीर सेवाय-जल तथा तुलसी द्वारा पूजा करके; तारं-उनको; यत-जितना; सुख-उदय-दिव्य सुख का अनुभव होता; षोडश-उपचार-पूजाय-16 प्रकार की सामग्रियों द्वारा उपासना करने पर; तत-उतना; सुख-आनन्द; नये-नहीं है।

अनुवाद

केवल जल तथा तुलसी अर्पित करने से रघुनाथ दास को जितना दिव्य आनन्द मिला, उतना सोलह प्रकार की पूजा सामग्रियों से भी अर्चाविग्रह की पूजा करके प्राप्त नहीं किया जा सकता।

एङ्-मत कत दिन करेन पूजन ।

तबे स्वरूप-गोसाजि तारै कहिला वचन ॥303॥

एङ्-मत-इस प्रकार; कत दिन-कुछ दिनों तक; करेन पूजन-उन्होंने पूजा की; तबे-उस समय; स्वरूप-गोसाजि-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; तारै-उनसे; कहिला वचन-कुछ वचन कहे।

अनुवाद

जब रघुनाथ दास कुछ दिनों तक गोवर्धन शिला की पूजा कर चुके, तो एक दिन स्वरूप दामोदर ने उनसे इस प्रकार कहा।

“अष्ट-कौड़ि खाजा-सन्देश कर समर्पण ।

श्रद्धा करि’ दिले, सेङ् अमृतेर सम” ॥ 304॥

अष्ट-कौड़िर-आठ कौड़ि के; खाजा-सन्देश-खाजा और सन्देश (मिठाईयाँ); कर समर्पण-अर्पित करो; श्रद्धा करि-प्रेम तथा श्रद्धा के साथ; दिले-यदि तुम भोग लगाओ; सेइ-वह; अमृतेर सम-अमृत के समान।

अनुवाद

“तुम इस गोवर्धन शिला को आठ कौड़ियों के मूल्य की सर्वोत्तम खाजा तथा सन्देश मिठाईयाँ अर्पित करो। यदि तुम श्रद्धा तथा प्रेम से इन्हें अर्पित करोगे, तो वे अमृत तुल्य बन जायेंगी।”

तबे अष्ट-कौड़िर खाजा करे समर्पण ।

स्वरूप-आज्ञाय गोविन्द ताहा करे समाधान ॥305॥

तबे-तब; अष्ट-कौड़िर-आठ कौड़ि मूल्य के; खाजा-खाजा नामक मिठाई; करे समर्पण-अर्पित करते हैं; स्वरूप-आज्ञाय-स्वरूप दामोदर के आदेश पर; गोविन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु का सेवक; ताहा-वह; करे समाधान-व्यवस्था करता है।

अनुवाद

तत्पश्चात् रघुनाथ दास खाजा नाम की कीमती मिठाई का भोग लगाने लगे, जिसकी पूर्ति स्वरूप दामोदर की आज्ञा के अनुसार गोविन्द करता था।

रघुनाथ सेइ शिला-माला यबे पाइला ।

गोसाजिर अभिप्राय एइ भावना करिला ॥ 306॥

रघुनाथ-रघुनाथ दास गोस्वामी ने; सेइ शिला-वह शिला; मालामाला; यबे-जब; पाइला-प्राप्त की; गोसाजिर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; अभिप्राय-उद्देश्य; एइ-यह; भावना करिला-उन्होंने सोचा।

अनुवाद

जब रघुनाथ दास को श्री चैतन्य महाप्रभु से शिला तथा शंखों की माला प्राप्त हुई, तब वे महाप्रभु की आन्तरिक इच्छा समझ गये थे। अतः उन्होंने इस प्रकार सोचा।

शिला दिया गोसाजि समर्पिला ‘गोवर्धने’ ।

गुञ्जा-माला दिया दिला 'राधिका-चरणे' ॥307॥

शिला दिया-यह शिला देकर; गोसाजि-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; समर्पिला-दिया; गोवर्धने-गोवर्धन के निकट एक स्थान; गुञ्जा-माला दिया-गुंजा माला देकर; दिला-दिये; राधिका-चरणे-श्रीमती राधारानी के चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

“श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह गोवर्धन शिला देकर मुझे गोवर्धन पर्वत के निकट स्थान दिया है और शंख की माला देकर उन्होंने मुझे श्रीमती राधारानी के चरणकमलों में शरण दी है।”

आनन्दे रघुनाथेर बाह्य विस्मरण ।

काय-मने सेविलेन गौराङ्ग-चरण ॥308॥

आनन्दे-दिव्य आनन्द में; रघुनाथेर-रघुनाथ दास का; बाह्य विस्मरण-सब बाह्य विस्मृति हो गई; काय-मने-मन और देह से; सेविलेन-सेवा की; गौराङ्ग-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

रघुनाथ दास के आनन्द की कोई सीमा न थी। वे सारी बाह्य वस्तुएँ भूलकर अपने तन तथा मन से श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की सेवा करने लगे।

अनन्त गुण रघुनाथेर के करिबे लेखा? ।

रघुनाथेर नियम,—येन पाषाणेर रेखा ॥ 309॥

अनन्त गुण-असीमित दिव्य गुण; रघुनाथेर-रघुनाथ दास के; के-कौन; करिबे लेखा-लिख सकता है; रघुनाथेर-रघुनाथ दास के; नियम-कठोर नियम; येन-जैसे; पाषाणेर रेखा-पत्थर पर रेखा।

अनुवाद

भला रघुनाथ दास के असंख्य दिव्य गुणों की गणना कौन कर सकता है? उनके कठोर नियम पत्थर पर लकीर के समान थे।

तात्पर्य

यहाँ पर पाषाणेर-रेखा शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। रघुनाथ दास नियमों का इतनी कड़ाई से पालन करते कि उसकी तुलना पत्थर पर खिंची लकीरों से की जाती। जिस तरह ऐसी लकीरें कभी भी मिटाई नहीं जा सकतीं, उसी तरह रघुनाथ दास गोस्वामी द्वारा पालन किये जाने वाले नियमों को किसी भी परिस्थिति में बदला नहीं जा सकता था।

साढ़े सात प्रहर याय कीर्तन-स्मरणे ।

आहार-निद्रा चारि दण्ड सेह नहे कोन दिने ॥ 310॥

साढ़े सात प्रहर—7.5 पहर (1 पहर - 3 घंटे); याय-व्यतीत होते; कीर्तन-स्मरणे-हरे कृष्ण महामन्त्र के जप तथा कृष्ण के चरणकमलों का स्मरण करने में; आहार-निद्रा-खाना और सोना; चारि दण्ड—4 दण्ड (1 दण्ड - 24 मिनट); सेह-वह भी; नहे-नहीं; कोन दिने-किसी दिन।

अनुवाद

रघुनाथ दास चौबीस घंटों में से बाईस घंटे से अधिक हरे कृष्ण महामन्त्र का जप करने में तथा भगवान् के चरणकमलों का स्मरण करने में बिताते। वे डेढ़ घंटे से भी कम समय खाने तथा सोने में बिताते और किसी-किसी दिन तो वह भी सम्भव नहीं हो पाता था।

वैराग्येर कथा तारँ अब्धुत-कथन ।

आजन्म ना दिल जिह्वाय रसेर स्पर्शन ॥ 311॥

वैराग्येर—वैराग्य की; कथा—बातें; तारँ—उनकी; अब्धुत-कथन-आश्चर्यजनक विषय है; आ-जन्म-जन्म से; ना दिल-नहीं दिया; जिह्वाय-जीभ को; रसेर स्पर्शन—स्वाद।

अनुवाद

उनके वैराग्य से सम्बन्धित कथाएँ अब्धुत हैं। उन्होंने जीवन भर अपनी जीभ की तृप्ति नहीं होने दी।

छिण्डा कानि काँथा विना ना परे वसन ।

सावधाने प्रभुर कैला आज्ञार पालन ॥312॥

छिण्डा कानि-एक छोटा फटा कपड़ा; काँथा-कांथा सिली हुई चदर); विना-सिवाय; ना परे-नहीं पहनते; वसन-वस्त्र; सावधाने-अत्यन्त सावधानीपूर्वक; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; कैला-करते; आज्ञार पालन-आदेशों का पालन।

अनुवाद

उन्होंने पहनने के लिए एक छोटे से फटे वस्त्र तथा लपेटने के लिए गुदड़ी के अतिरिक्त किसी वस्तु का स्पर्श नहीं किया। इस तरह उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा का कठोरता के साथ पालन किया।

तात्पर्य

गुरु के आदेश का पालन कठोरतापूर्वक करना चाहिए। गुरु विभिन्न व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न आदेश देता है। उदाहरण के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु ने जीव गोस्वामी, रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी को प्रचार करने का आदेश दिया और रघुनाथ दास गोस्वामी को संन्यास आश्रम के विधि-विधानों का कड़ाई से पालन करने का आदेश दिया। छहों गोस्वामी श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशों का कड़ाई से पालन करते थे। भक्ति में उन्नति का यही नियम है। गुरु से आदेश मिलने पर मनुष्य को उसका कड़ाई से पालन करने का प्रयास करना चाहिए। यही सफलता की विधि है।

प्राण-रक्षा लागि' येबा करेन भक्षण ।

ताहा खाजा आपनाके कहे निर्वेद-वचन ॥313॥

प्राण-रक्षा लागि'-प्राण धारण करने मात्र के लिए; येबा-जितना; करेन भक्षण-वे खाते; ताहा खाजा-वे खाकर; आपनाके-स्वयं को; कहे-कहते; निर्वेद-वचन-तिरस्कार के वचन।

अनुवाद

वे जो भी खाते, शरीर तथा प्राण की रक्षा मात्र के लिए होता था और जब वे खाने बैठते, तो अपनी भर्सना इन शब्दों में करते।

आत्मानं चेद्विजानीयात्परं ज्ञान-धुताशयः ।

किमिच्छन्कस्य वा हेतोर्देहं पुष्पाति लम्पटः ॥314॥

आत्मानम्-आत्मा को; चेत् यदि; विजानीयात्-कोई समझता है; परम्-परम; ज्ञान-ज्ञान द्वारा; धुत-फेंकी हुई; आशयः-भौतिक इच्छाएँ; किम्-क्या; इच्छन्-इच्छा; कस्य-क्या; वा-या; हेतोः-कारण से; देहम्-भौतिक देह; पुष्पाति-पोषण करता है; लम्पटः-धूर्त।

अनुवाद

“यदि किसी का हृदय पूर्ण ज्ञान द्वारा शुद्ध हो चुका है और उसने परम ब्रह्म कृष्ण को समझ लिया है, तो उसे हर वस्तु प्राप्त हो जाती है। भला ऐसे व्यक्ति को अपने भौतिक शरीर का अच्छी तरह पोषण करने का प्रयास करते हुए लम्पट की तरह क्यों कार्य करना चाहिए?”

तात्पर्य

यह श्लोक (श्रीमद्भागवत 7.15.40) नारद ने युधिष्ठिर महाराज से गृहस्थ की भवबन्धन से मुक्ति के विषय में कहा था। आध्यात्मिक स्तर पर शरीर के लिए व्यर्थ चिन्ता नहीं की जाती। श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने कहा है-देहस्मृति नाहि यार, संसार बन्धन काहाँ तार। आध्यात्मिक पद को प्राप्त व्यक्ति यह नहीं सोचता कि वह शरीर है। इसलिए वह संन्यास आश्रम में दिव्य रूप में कठिन तपस्या कर सकता है। ऐसे वैराग्य का सर्वोत्तम उदाहरण रघुनाथ दास गोस्वामी हैं।

प्रसादान्न पसारि यत ना विकाय ।

दुइ-तिन दिन हैले भात सड़ि' याय ॥ 315॥

प्रसाद-अन्न-जगन्नाथ का प्रसाद; पसारि-दुकानदारों का; यत-जितना; ना विकाय-नहीं बिकता; दुइ-तिन दिन-दो या तीन दिन; हैले-बाद; भात-भात; सड़ि याय-सड़ जाता है।

अनुवाद

भगवान जगन्नाथ का प्रसाद दुकानदारों द्वारा बेचा जाता है। जो नहीं बिक पाता वह दो-तीन दिनों बाद सड़ जाता है।

सिंह-द्वारे गाभी-आगे सेड़ भात डारे ।

सड़ा-गन्धे तैलङ्गी-गाड़ खाड़ते ना पारे ॥ 316॥

सिंह-द्वारे-सिंहद्वार पर; गाभी-आगे-गायों के सामने; सेइ भात-वह अन्न; डारे-वे फेंक देते; सड़ा-गन्धे-दुर्गन्ध के कारण; तैलङ्गी-गाइ-तैलंगी की गाय; खाइते ना पारे-खा नहीं पाती थी।

अनुवाद

सारा सड़ा भोजन सिंहद्वार पर तैलंग गौओं के सामने फेंक दिया जाता है। उसकी सड़न की गन्ध के कारण गौवें तक इसे नहीं खा सकतीं।

सेइ भात रघुनाथ रात्रे घरे आनि' ।

भात पाखालिया फेले घरे दिया बहु पानि ॥317॥

सेइ भात-वही फेंका हुआ भात; रघुनाथ-रघुनाथ दास; रात्रे-रात को; घरे आनि'- घर लाकर; भात-भात; पाखालिया-धोकर; फेले-डालते; घरे-घर पर; दिया-डालकर; बह पानि-बहुत सा पानी।

अनुवाद

रात में रघुनाथ दास सड़ा चावल एकत्र करते और घर लाकर उसे प्रचुर पानी से धोते थे।

भितरेर दृढ़ येइ माजि भात पाय ।

लवण दिया रघुनाथ सेइ अन्न खाय ॥318॥

भितरेर-अन्दर से; दृढ़-सख्त हिस्सा; येइ-जो; माजि-भीतरी भाग; भात-चावल; पाय-वे प्राप्त करते; लवण दिया- थोड़े नमक के साथ; रघुनाथ-रघुनाथ दास गोस्वामी; सेइ अन्न-वह अन्न; खाय-खाते।

अनुवाद

तब वे चावल के कड़े भीतरी भाग को नमक मिलाकर खाते।

एक-दिन स्वरूप ताहा करिते देखिला ।

हासिया ताहार किछु मागिया खाइला ॥ 319॥

एक-दिन-एक दिन; स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; ताहा-वैसा; करिते-करते; देखिला-देखकर; हासिया-हँसकर; ताहार-उसका; किछु-कुछ भाग; मागिया खाइला-माँगे और खा लिए।

अनुवाद

एक दिन स्वरूप दामोदर ने रघुनाथ दास का यह कृत्य देख लिया, अतः वे हँसे और उस भोजन में से थोड़ा सा अंश माँगकर स्वयं उन्होंने खाया।

स्वरूप कहे,—“ऐछे अमृत खाओ निति-निति ।

आमा-सबाय नाहि देह’,—कि तोमार प्रकृति?” ॥320॥

स्वरूप कहे-स्वरूप दामोदर ने कहा; ऐछे-ऐसा; अमृत-अमृत; खाओ-तुम खाते हो; निति-निति-प्रतिदिन; आमा-सबाय-हम सबको; नाहि देह’-तुम नहीं देते; कि-क्या है; तोमार-तुम्हारा; प्रकृति-स्वभाव।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर ने कहा : “तुम प्रतिदिन ऐसा अमृत खाते हो, किन्तु हमें कभी नहीं देते। तुम्हारा स्वभाव कैसा है?”

गोविन्देर मुखे प्रभु से वार्ता शुनिला ।

आर दिन आसि’ प्रभु कहिते लागिला ॥321॥

गोविन्देर मुखे-गोविन्द के मुख से; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; से वार्ता-वह बात; शुनिला-सुनी; आर दिन-अगले दिन; आसि-आकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस बात का समाचार गोविन्द के मुख से सुना, तो वे अगले दिन वहाँ गये और इस प्रकार बोले।

‘काँहा वस्तु खाओ सबे, मोरे ना देह’ केने?’।

एत बलि’ एक ग्रास करिला भक्षणे ॥322॥

काँहा-क्या; वस्तु-वस्तुएँ; खाओ-तुम खाते हो; सबे-सब; मोरे-मुझे; ना देह केने-तुम क्यों नहीं देते; एत बलि’-यह कहकर; एक ग्रास-एक ग्रास; करिला भक्षणे-खा लिया।

अनुवाद

“तुम कौन सी अच्छी वस्तुएँ खा रहे हो? तुम मुझे कोई वस्तु क्यों नहीं देते?” यह कहकर उन्होंने बलपूर्वक एक ग्रास ले लिया और खाने लगे।

आर ग्रास लैते स्वरूप हातेते धरिला ।

‘तव योग्य नहे’ बलि’ बले काड़ि’ निला ॥ 323॥

आर-दूसरा; ग्रास ग्रास; लैते-लेते हुए; स्वरूप-स्वरूप दामोदर; हातेते-हाथ; धरिला-पकड़ लिए; तव-आपके; योग्य-योग्य; नहे-नहीं है; बलि’—कहकर; बले-बलपूर्वक; काड़ि’—छीनकर; निला—उन्होंने ले लिया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु दूसरा ग्रास उठा रहे थे, तब स्वरूप दामोदर ने उनका हाथ पकड़ लिया और बोले, “यह आपके योग्य नहीं है। इस तरह उन्होंने उस भोजन को बलपूर्वक ले लिया।”

प्रभु बले,—“निति-निति नाना प्रसाद खाइ ।

ऐछे स्वाद आर कोन प्रसादे ना पाइ” ॥ 324॥

प्रभु बले-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; निति-निति-दिन-प्रतिदिन; नाना प्रसाद-अनेक प्रकार के प्रसाद; खाइ-मैं खाता हूँ; ऐछे स्वाद-ऐसा अच्छा स्वाद; आर-अन्य; कोन—किसी; प्रसादे-जगन्नाथ प्रसाद में; ना पाइ—मुझे नहीं मिलता।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “निस्सन्देह, मैं हररोज तरह-तरह के प्रसाद खाता हूँ, किन्तु मैंने कभी ऐसा उत्तम प्रसाद नहीं खाया, जैसाकि रघुनाथ खा रहा है।”

एइ-मत महाप्रभु नाना लीला करे।

रघुनाथेर वैराग्य देखि सन्तोष अन्तरे ॥325॥

एइ-मत-इस प्रकार; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; नाना लीला-अनेक लीलाएँ; करे-करते; रघुनाथेर-रघुनाथ दास का; वैराग्य-वैराग्य; देखि—देखकर; सन्तोष अन्तरे-अर्न्तमन में सन्तुष्ट ।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथपुरी में अनेक लीलाएँ कीं। वे रघुनाथ दास को संन्यास आश्रम में कठिन तपस्या करते देखकर अत्यधिक तृष्ट थे।

आपन-उद्धार एइ रघुनाथ-दास ।

‘गौराङ्ग-स्तव-कल्प-वृक्षे’ करियाछेन प्रकाश ॥326॥

आपन-उद्धार-अपना उद्धार; एइ रघुनाथ-दास-यह रघुनाथ दास; गौराङ्ग-स्तव-कल्प-वृक्षे-अपनी गौराङ्ग स्तव कल्पवृक्ष नामक कविता; करियाछेन प्रकाश-वर्णित किया है।

अनुवाद

रघुनाथ दास ने ‘गौराङ्गस्तवकल्पवृक्ष’ नामक अपनी कविता में अपने उद्धार का वर्णन किया है।

महा-सम्पद्वादापि पतितमुद्धृत्य कृपया

स्वरूपे यः स्वीये कुजनमपि मां न्यस्य मुदितः ।

उरो-गुञ्जा-हारं प्रियमपि च गोवर्धन-शिलां

ददौ मे गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति ॥ 327॥

महा-सम्पत्-अत्यन्त भौतिक ऐश्वर्य से; दावात्-वन की आग से; अपि-यद्यपि; पतितम्-पतित; उद्धृत्य-उद्धार कर; कृपया-दया द्वारा; स्वरूपे-स्वरूप दामोदर गोस्वामी को; यः-वे जो (भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; स्वीये-अपने निजी संगी को; कु-जनम्-नीच व्यक्ति; अपि यद्यपि; माम्-मुझे; न्यस्य-सौंपकर; मुदितः-प्रसन्न; उरः-वक्ष का; गुञ्जा-हारम्-गुंजामाला, शंखों का हार; प्रियम्-प्रिय; अपि यद्यपि; च-तथा; गोवर्धन-शिलाम्-गोवर्धन शिला; ददौ-प्रदान की; मे-मुझे; गौराङ्गः-भगवान् गौराङ्ग; हृदये-मेरे हृदय में; उदयन्-प्रकट होकर; माम्-मुझे; मदयति-उन्मत्त करते हैं।

अनुवाद

“यद्यपि मैं पतित, अति अधम हूँ, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी कृपा से महान् भौतिक ऐश्वर्य की प्रज्ज्वलित दावाग्नि से मुझे उबार लिया है। उन्होंने परम प्रसन्नतापूर्वक मुझे अपने निजी संगी स्वरूप दामोदर

को सौंप दिया। महाप्रभु ने मुझे अपने वक्षस्थल पर पड़ी हुई गुंजामाला तथा गोवर्धन शिला दी, यद्यपि ये वस्तुएँ उन्हें अतीव प्रिय थीं। ऐसे श्री चैतन्य महाप्रभु मेरे हृदय के भीतर उदय होकर मुझे उन्मत्त बना देते हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक रघुनाथ दास गोस्वामी कृत श्री गौराङ्गस्तवकल्पवृक्ष (11) से लिया गया है।

एइ त कहिलुँ रघुनाथेर मिलन ।

इहा येइ शुने पाय चैतन्य-चरण ॥328॥

एइ-यही; त'-तो; कहिलै-मैंने वर्णन किया है; रघुनाथेर मिलन-रघुनाथ दास का मिलन; इहा-यह; येइ-जो कोई भी; शुने-सुनता है; पाय-प्राप्त करता है; चैतन्य-चरण-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल।

अनुवाद

इस तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु से रघुनाथ दास की भेंट का वर्णन किया है। जो कोई इस घटना के विषय में सुनता है, वह श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों को प्राप्त करता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥329॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; पदे-चरणकमलों में; यार-जिनकी; आश-आशा है; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा उनकी कृपा की कामना करते हुए उनके चरणचिह्नों पर चलकर मैं कृष्णदास श्री चैतन्य चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्यलीला के ‘श्री चैतन्य महाप्रभु से रघुनाथ दास गोस्वामी की भेंट’ शीर्षक छठे अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय सात

श्री चैतन्य महाप्रभु एवं वल्लभ भट्ट की भेंट

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत-प्रवाह-भाष्य में अध्याय सात का सारांश इस प्रकार से दिया है : इस अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु से वल्लभ भट्ट की भेंट का वर्णन हुआ है। इन दोनों महापुरुषों के बीच कुछ हास-परिहास हुआ। अन्त में श्री चैतन्य महाप्रभु ने वल्लभ भट्ट को सुधारा और कृपा करके उनका निमन्त्रण स्वीकार किया। इसके पूर्व, श्री चैतन्य महाप्रभु ने देखा था कि वल्लभ भट्ट गदाधर पण्डित से अत्यधिक अनुरक्त हैं। इसलिए उन्होंने गदाधर पण्डित से रुष्ट होने का अभिनय किया। बाद में जब वल्लभ भट्ट की महाप्रभु से घनिष्ठता हो गई, तो महाप्रभु ने उन्हें गदाधर पण्डित से उपदेश लेने के लिए कहा। इस तरह महाप्रभु ने गदाधर पण्डित के प्रति अपने प्रेम भाव को व्यक्त किया।

चैतन्य-चरणाम्भोज-मकरन्द-लिहो भजे ।

येषां प्रसाद-मात्रेण पामरोऽप्यमरो भवेत् ॥१॥

चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरण-अम्भोज-चरणकमलों के; मकरन्द-शहद को; लिहः-जो चखने (चाटने) में रत हैं; भजे-मैं वन्दना करता हूँ; येषाम्-जिनकी; प्रसाद-मात्रेण कृपा मात्र द्वारा; पामरः-एक पतित जीव; अपि-भी; अमरः-मुक्त; भवेत्-हो जाता है।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों को सादर नमस्कार करता हूँ। महाप्रभु के चरणकमलों से मधु को चाटने में लगे भक्तों की अहैतुकी कृपा से ही एक पतितात्मा तक सदा के लिए मुक्त हो जाता है।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।

जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; जय-जय हो; नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु की; जय-जय हो;
अद्वैत-चन्द्र-अद्वैत आचार्य की; जय-जय हो; गौर-भक्त-वृन्द-श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तगणों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैतचन्द्र की जय हो! और श्री
चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो।

वर्षान्तरे यत गौड़ेर भक्त-गण आइला ।

पूर्ववत् महाप्रभु सबारे मिलिला ॥3॥

वर्ष-अन्तरे-अगले वर्ष; व्रत-सभी; गौड़ेर-बंगाल के; भक्त-गण-भक्त; आइला-आये; पूर्व-वत्-पहले की तरह;
महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सबारे मिलिला-उन सबसे मिले।

अनुवाद

अगले वर्ष बंगाल के सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने गये और महाप्रभु पहले की ही तरह
उन सबसे मिले।

एइ-मत विलास प्रभुर भक्त-गण लजा ।

हेन-काले वल्लभ-भट्ट मिलिल आसिया ॥4॥

एइ-मत-इस प्रकार; विलास-लीलाएँ; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; भक्त-गण लजा-अपने भक्तों के साथ; हेन-
काले-इस समय; वल्लभ-भट्ट-वल्लभ भट्ट नामक महान् विद्वान्; मिलिल-मिले; आसिया-आकर।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों के साथ अपनी लीलाएँ करते रहे। तब एक विद्वान पण्डित,
जिनका नाम वल्लभ भट्ट था, महाप्रभु से मिलने जगन्नाथपुरी गये।

तात्पर्य

वल्लभ भट्ट के वर्णन हेतु मध्यलीला के अध्याय 19 के श्लोक 61 को देखें।

आसिया वन्दिल भट्ट प्रभुर चरणे ।

प्रभु 'भागवत-बुद्धये' कैला आलिङ्गने ॥5॥

आसिया-आकर; वन्दिल-वन्दना की; भट्ट-वल्लभ भट्ट ने; प्रभुर चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; भागवत-बुद्धये-उन्हें एक महान् भक्त मानकर; कैला आलिङ्गने-आलिंगन किया।

अनुवाद

जब वल्लभ भट्ट आये, तो उन्होंने महाप्रभु के चरणकमलों में नमस्कार किया। महाप्रभु ने उन्हें महान् भक्त के रूप में स्वीकार करते हुए उनका आलिंगन किया।

मान्य करि' प्रभु तारे निकटे वसाइला ।

विनय करिया भट्ट कहिते लागिला ॥6॥

मान्य करि'-अत्यन्त सम्मानपूर्वक; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; तारे-उन्हें; निकटे-पास; वसाइला-बैठाया, बिठाया; विनय करिया-अत्यन्त विनम्रतापूर्वक; भट्ट-वल्लभभट्ट; कहिते लागिला-कहने लगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने वल्लभ भट्ट को अत्यन्त सम्मानपूर्वक अपने निकट बैठाया। तब वल्लभ भट्ट अत्यन्त विनयपूर्वक कहने लगे।

बहु-दिन मनोरथ तोमा' देखिबारे ।

जगन्नाथ पूर्ण कैला, देखिलुँ तोमारे ॥7॥

बहु-दिन-बहुत समय से; मनोरथ-मेरी इच्छा; तोमा' देखिबारे-आपके दर्शन करने की; जगन्नाथ-भगवान् जगन्नाथ ने; पूर्ण कैला-पूर्ण कर दी; देखिलुँ तोमारे-मैंने आपके दर्शन प्राप्त किये हैं।

अनुवाद

“हे प्रभु, मैं बहुत समय से आपका दर्शन करना चाह रहा था। अब भगवान् जगन्नाथ ने मेरी यह इच्छा पूरी की है, इसलिए मैं आपका दर्शन कर रहा हूँ।”

तोमार दर्शन ये पाय सेइ भाग्यवान् ।

तोमाके देखिये,—येन साक्षात्भगवान् ॥8॥

तोमार दर्शन-आपके दर्शन; ये पाय-जो प्राप्त करता है; सेइ-वह; भाग्यवान्-बहुत भाग्यशाली; तोमाके देखिये-मैं आपको देख रहा हूँ; येन-समान; साक्षात् भगवान्-साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्।

अनुवाद

“जो आपका दर्शन पाता है, वह सचमुच भाग्यशाली है, क्योंकि आप साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।”

तोमारे ये स्मरण करे, से हय पवित्र ।

दर्शने पवित्र हबे,—इथे कि विचित्र? ॥9॥

तोमारे-आपको; ये-जो कोई भी; स्मरण करे-याद करता है; से-वह; हय-हो जाता है; पवित्र-शुद्ध; दर्शने-देखने मात्र से; पवित्र-शुद्ध; हबे-हो जायेगा; इथे-इसमें; कि विचित्र-क्या आश्चर्य है।

अनुवाद

“चूँकि जो कोई आपका स्मरण करता है, वह पवित्र हो जाता है, इसलिए इसमें कौन सा आश्चर्य है कि आपका दर्शन करने पर कोई पवित्र हो जाये?”

येषां संस्मरणात्पुंसां सद्यः शुध्यन्ति वै गृहाः ।

किं पुनर्दर्शन-स्पर्श-पाद-शौचासनादिभिः ॥10॥

येषाम्-जिनके; संस्मरणात्-स्मरण द्वारा; पुंसाम्-लोगों के; सद्यः-तुरन्त; शुध्यन्ति-शुद्ध हो जाते हैं; वै-निश्चित रूप से; गृहाः-घर; किम् पुनः-क्या कहना; दर्शन-दर्शन द्वारा; स्पर्श-स्पर्श; पाद-शौच-चरणों को धोकर; आसन-आदिभिः-एक आसन अर्पित करना।

अनुवाद

“महापुरुषों का स्मरण करने मात्र से सारा घर पवित्र हो जाता है, तो फिर उनका प्रत्यक्ष दर्शन करने, उनके चरणकमलों का स्पर्श करने, उनका पाद-प्रक्षालन करने या उन्हें आसन देने के विषय में क्या कहा जा सकता है।”

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (1.19.33) से है।

कलि-कालेर धर्म-कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन ।

कृष्ण-शक्ति विना नहे तार प्रवर्तन ॥11॥

कलि-कालेर-इस कलियुग का; धर्म-धर्म; कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन-भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का संकीर्तन; कृष्ण-शक्ति विना-भगवान् कृष्ण द्वारा शक्ति प्राप्त किये बिना; नहे-नहीं होता; तार-उसका; प्रवर्तन-प्रचार।

अनुवाद

कलियुग में मूलभूत धार्मिक प्रणाली कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करने की है। कृष्ण द्वारा शक्ति प्राप्त किये बिना संकीर्तन आन्दोलन का प्रसार कोई नहीं कर सकता।

ताहा प्रवर्ताइला तुमि,—एइ त ‘प्रमाण’ ।

कृष्ण-शक्ति धर तुमि,—इथे नाहि आन ॥12॥

ताहा-वह; प्रवर्ताइला-प्रचार किया है; तुमि-आपने; एइ-यह; त-निश्चित रूप से; प्रमाण-प्रमाण; कृष्ण-शक्ति-कृष्ण की शक्ति; धर-धारण करते हो; तुमि-आप; इथे नाहि आन-इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अनुवाद

“आपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन को प्रसारित किया है। इसलिए यह स्पष्ट है कि आप कृष्ण द्वारा शक्ति प्राप्त हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है।”

तात्पर्य

श्री मध्वाचार्य ने नारायण संहिता के निम्नलिखित उद्धरण की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है :

द्वापरीयैर्जनैर्विष्णुः पञ्चरात्रैस्तु केवलैः।

कलौ तु नाममात्रेण पूज्यते भगवान् हरिः॥

“द्वापर युग में पंचरात्रिकी विधि से पूजा करके कृष्ण या विष्णु को तुष्ट किया जा सकता है, किन्तु कलियुग में केवल भगवान् के नाम कीर्तन द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि को तुष्ट किया और पूजा जा सकता है।” श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर बतलाते हैं कि कृष्ण की अहैतुकी कृपा से आविष्ट हुए बिना कोई जगद्गुरु नहीं बन सकता। केवल मानसिक-कल्पना से कोई आचार्य नहीं बन सकता। वास्तविक आचार्य विश्वभर में भगवान् के पवित्र नाम का प्रचार करके हर एक को कृष्ण की भेंट देता है। इस तरह नाम कीर्तन करके शुद्ध होकर बद्धजीव संसार की प्रज्वलित अग्नि से बच जाते हैं। इस तरह का आध्यात्मिक लाभ आकाश में चन्द्रमा के समान वर्धित होकर पूर्ण होता है। वास्तविक आचार्य को कृष्ण-कृपा का अवतार मानना चाहिए। निस्सन्देह, वह स्वयं कृष्ण का आलिंगन किये रहता है। इसलिए वह सभी वर्गों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) तथा सभी आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) का गुरु होता है। चूँकि वह सबसे बड़ा भक्त माना जाना चाहिए, इसलिए वह परमहंस ठाकुर कहलाता है। ‘ठाकुर’ उपाधि परमहंस को प्रदान की जाती है। इसलिए जो आचार्य की भूमिका निभाता है अर्थात् कृष्ण के नाम तथा यश का विस्तार करके कृष्ण को सीधे प्रस्तुत करता है, वह परमहंस ठाकुर भी कहलाता है।

जगते करिला तुमि कृष्ण-नाम प्रकाशे ।

येइ तोमा देखे, सेइ कृष्ण-प्रेमे भासे ॥13॥

जगते-सम्पूर्ण विश्व में; करिला-किया है; तुमि-आपने; कृष्ण-नाम प्रकाशे-भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का प्राकट्य; येइ-जो कोई भी; तोमा देखे-आपको देखता है; सेइ-वह; कृष्ण-प्रेमे-कृष्ण-प्रेम में; भासे-डूब जाता है।

अनुवाद

“आपने सारे जगत् में कृष्ण नाम को उजागर किया है। जो भी आपको देखता है, वह तुरन्त कृष्ण-प्रेम में निमग्न हो जाता है।”

प्रेम-परकाश नहे कृष्ण-शक्ति विने ।

‘कृष्ण’—एक प्रेम-दाता, शास्त्र-प्रमाणे ॥14॥

प्रेम-कृष्ण-प्रेम भाव का; परकाश-प्राकट्य; नहे-नहीं हो सकता; कृष्ण-शक्ति विने-कृष्ण की शक्ति के बिना;
कृष्ण-भगवान् कृष्ण; एक-एक मात्र, प्रेम-दाता-प्रेम देने वाले; शास्त्र-प्रमाणे सभी प्रामाणिक शास्त्रों का निष्कर्ष।

अनुवाद

कृष्ण द्वारा विशेष शक्ति प्राप्त किये बिना कोई कृष्ण-प्रेम उजागर नहीं कर सकता, क्योंकि कृष्ण ही
परमानन्द प्रेम के एकमात्र दाता हैं। यही सारे प्रामाणिक शास्त्रों का निर्णय है।

सन्त्ववतारा बहवः

पुष्कर-नाभस्य सर्वतो-भद्राः ।

कृष्णादन्यः को वा

लतास्वपि प्रेम-दो भवति ॥15॥

सन्तु-होने दो; अवताराः—अवतार; बहवः—अनेक; पुष्कर-नाभस्य—जिनकी नाभि से एक कमल खिलता है;
सर्वतः भद्राः—पूर्णतया शुभ; कृष्णात्-भगवान् कृष्ण की अपेक्षा; अन्यः—अन्य; कः वा-कौन (सा); लतासु—शरणागत
जीवों को; अपि-भी; प्रेम-दः—प्रेम देनेवाला; भवति—है।

अनुवाद

“भगवान् के कई सर्वमंगलकारी अवतार हो सकते हैं, किन्तु भगवान् कृष्ण के अतिरिक्त ऐसा कौन है,
जो शरणागतों को भगवत्प्रेम प्रदान कर सके?”

तात्पर्य

यह श्लोक बिल्वमंगल ठाकुर कृत है। यह श्री रूप गोस्वामी द्वारा अपने लघु भागवतामृत (1.5.37) में लिया
गया है।

महाप्रभु कहे—“शुन, भट्ट महा-मति ।

मायावादी सन्यासी आमि, ना जानि कृष्ण-भक्ति” ॥16॥

महाप्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; शुन-कृपया सुनो; भट्ट-मेरे प्रिय वल्लभ भट्ट; महा-मति-विद्वान् पण्डित; मायावादी-मायावादी; सन्यासी-सन्यासी; आभि-हूँ; ना जानि-मैं नहीं जानता; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण भक्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, “हे प्रिय वल्लभ भट्ट, आप विद्वान् पण्डित हो। कृपया मेरी बात सुनो। मैं तो मायावादी सन्यासी हूँ। इसलिए कृष्णभक्ति जानने का मेरे पास कोई अवसर नहीं है।”

अद्वैताचार्य-गोसाजि—‘साक्षातीश्वर’ ।

ताँर सङ्गे आमार मन हइल निर्मल ॥17॥

अद्वैत-आचार्य-गोसाजि-अद्वैत आचार्य; साक्षात् ईश्वर-साक्षात् भगवान्; ताँर सङ्गे-उनके संग के कारण; आमार-मेरा; मन-मन; हइल-हो गया है; निर्मल-शुद्ध।

अनुवाद

“फिर भी मेरा मन शुद्ध हो गया है, क्योंकि मैंने अद्वैत आचार्य की संगति की है, जो कि साक्षात् भगवान् हैं।”

सर्व-शास्त्रे कृष्ण-भक्त्ये नाहि याँर सम ।

अतएव ‘अद्वैत-आचार्य’ ताँर नाम ॥18॥

सर्व-शास्त्रे-सभी प्रामाणिक शास्त्रों में; कृष्ण-भक्त्ये-भगवान् कृष्ण की प्रेममयी सेवा में; नाहि-नहीं है; याँर-जिनके; सम-समान; अतएव-अतः; अद्वैत-जिसका कोई प्रतिद्वन्द्वी न हो; आचार्य-आचार्य; ताँर नाम-उनका नाम।

अनुवाद

उनका समस्त प्रामाणिक शास्त्रों का ज्ञान तथा उनकी भगवान् कृष्ण की भक्ति अद्वितीय है। इसीलिए वे अद्वैत आचार्य कहलाते हैं।

याँहार कृपाते म्लेच्छेर हय कृष्ण-भक्ति ।

के कहिते पारे ताँर वैष्णवता-शक्ति? ॥19॥

याँहार-जिनकी; कृपाते-कृपा द्वारा; म्लेच्छेर-म्लेच्छों की; हय-हो जाती है; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण के प्रति सेवा भावना; के-कौन; कहिते पारे-वर्णन कर सकता है; तार-उनकी; वैष्णवता-शक्ति-वैष्णवता की शक्ति।

अनुवाद

“वे इतने महान् पुरुष हैं कि अपनी कृपा से मांसाहारियों (म्लेच्छों) तक को कृष्ण भक्ति दिला सकते हैं। इसलिए उनकी वैष्णवता की शक्ति का अनुमान कौन लगा सकता है?”

तात्पर्य

म्लेच्छ या मांसाहारी को कृष्ण भक्त बना पाना अत्यधिक कठिन है। इसलिए जो ऐसा कर सके, वह वैष्णवता के सर्वोच्च पद पर स्थित होता है।

नित्यानन्द-अवधूत-‘साक्षातीश्वर’ ।

भावोन्मादे मत्त कृष्ण-प्रेमेर सागर ॥20॥

नित्यानन्द-नित्यानन्द प्रभु; अवधूत-परमहंस; साक्षात् ईश्वर-साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; भाव-उन्मादे-प्रेमभाव के उन्माद में; मत्त-उन्मत्त; कृष्ण-प्रेमेर-कृष्ण के प्रेम का; सागर-समुद्र।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु अवधूत भी साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। वे प्रेमावेश के उन्माद में सदैव उन्मत्त रहते हैं। निस्सन्देह, वे कृष्ण-प्रेम के सागर हैं।

षट्-दर्शन-वेत्ता भट्टाचार्य-सार्वभौम ।

षट्-दर्शने जगद्गुरु भागवतोत्तम ॥21॥

षट्-दर्शन-छः दर्शनों के; वेत्ता-ज्ञाता; भट्टाचार्य-सार्वभौम-सार्वभौम भट्टाचार्य; षट्-दर्शने-छः दर्शनों में; जगत्-गुरु-समस्त विश्व के शिक्षक; भागवत-उत्तम-भक्तों में सर्वश्रेष्ठ।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य छः दार्शनिक मतों के पूर्ण ज्ञाता हैं। इसलिए वे दर्शन के छः मार्गों को सिखाने में जगद्गुरु हैं। वे भक्तों में सर्वश्रेष्ठ हैं।

तेंह देखाइला मोरे भक्ति-योग-पार ।

ताँर प्रसादे जानिलुँ ‘कृष्ण-भक्ति-योग’ सार ॥22॥

तेंह-उन्होंने; देखाइला-दिखाया है; मोरे-मुझे; भक्ति-योग-प्रेममयी सेवा; पार-सीमा; ताँर प्रसादे-उनकी कृपा से; जानिलुँ-मैं जान गया हूँ; कृष्ण-भक्ति-भगवान् कृष्ण की प्रेममयी सेवा; योग-योग पद्धति का; सार-सारा।

अनुवाद

“सार्वभौम भट्टाचार्य ने मुझे भक्ति की सीमा दिखलाई है। एकमात्र उन्हीं की कृपा से मैं यह समझ सका हूँ कि कृष्ण की भक्ति ही समस्त योग का सार है।”

रामानन्द-राय कृष्ण-रसेर निधान ।

तेंह जानाइला—कृष्ण-स्वयं भगवान् ॥23॥

रामानन्द-राय-श्रील रामानन्द राय; कृष्ण-रसेर-कृष्ण की प्रेममयी सेवा के दिव्य रसों की; निधान-खान; तेंह-उन्होंने; जानाइला-मुझे उपदेश किया; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; स्वयम्-स्वयं; भगवान्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्॥

अनुवाद

श्रील रामानन्द राय कृष्ण भक्ति के दिव्य रस के आखरी ज्ञाता हैं। उन्होंने मुझे उपदेश दिया है कि कृष्ण ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

ताते प्रेम-भक्ति-‘पुरुषार्थ-शिरोमणि’ ।

राग-मार्गे प्रेम-भक्ति सर्वाधिक जानि ॥24॥

ताते-अतः; प्रेम-भक्ति-प्रेमभाव में भगवत् सेवा; पुरुषार्थ मानव जीवन के सभी उद्देश्यों में; शिरोमणि-सर्वप्रधान; राग-मार्गे-रागानुग प्रेम के मार्ग पर; प्रेम-भक्ति-कृष्ण-प्रेम; सर्व-अधिक-सबसे बड़ा है; जानि-मैं समझा हूँ।

अनुवाद

रामानन्द राय की कृपा से मैं समझ सका हूँ कि कृष्ण-प्रेम जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है और कृष्ण का रागानुग प्रेम सर्वोच्च पूर्णता है।

तात्पर्य

पुरुषार्थ (“जीवन का लक्ष्य”) सामान्यतया धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का द्योतक है। किन्तु इन चार पुरुषार्थों से भी ऊपर है भगवत्प्रेम। यह परम पुरुषार्थ या पुरुषार्थ-शिरोमणि कहलाता है। भगवान् कृष्ण की पूजा साधन भक्ति द्वारा की जाती है, किन्तु भक्ति की सर्वोच्च पूर्णता भगवान् का रागानुग (स्वतः स्फूर्त) प्रेम है।

दास्य, सख्य, वात्सल्य, आर ये शृङ्गार ।

दास, सखा, गुरु, कान्ता,—‘आश्रय’ याहार ॥25॥

दास्य-दासता; संख्य-मित्रता; वात्सल्य-मातृ-पितृ भाव का प्रेम; आर-तथा; ये-जो; शृङ्गार-माधुर्य प्रेम; दास-सेवक; सखा-मित्र; गुरु-वरिष्ठ; कान्ता-प्रेमी; आश्रय-आश्रय; याहार-जिनके।

अनुवाद

दास, मित्र, गुरुजन तथा प्रेमिका-ये दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा शृंगार रसों के आश्रय हैं।

‘ऐश्वर्य-ज्ञान-युक्त’, ‘केवल’-भाव आर ।

ऐश्वर्य-ज्ञाने ना पाइ ब्रजेन्द्र-कुमार ॥26॥

ऐश्वर्य-ज्ञान-मुक्त-ऐश्वर्य ज्ञान से युक्त; केवल-शुद्ध; भाव-भावना; आर-तथा; ऐश्वर्य-ज्ञाने-ऐश्वर्य के ज्ञान द्वारा; ना पाइ-प्राप्त नहीं हो सकता; ब्रजेन्द्र-कुमार-नन्द महाराज का पुत्र।

अनुवाद

“भाव के दो प्रकार हैं। भगवान् के पूर्ण ऐश्वर्यों के ज्ञान से युक्त भाव ऐश्वर्यज्ञान-युक्त कहलाता है। और शुद्ध निष्कलुष भाव केवल कहलाता है। महाराज नन्द के पुत्र कृष्ण के ऐश्वर्य मात्र के ज्ञान से उनके चरणकमलों की शरण प्राप्त नहीं की जा सकती।”

तात्पर्य

देखें मध्य लीला 19.192 ।

नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिका-सुतः ।

ज्ञानिनां चात्म-भूतानां यथा भक्ति-मतामिह ॥ 27॥

न-नहीं; अयम्-ये भगवान् श्रीकृष्ण; सुख-आपः-सरलता से उपलब्ध; भगवान् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; देहिनाम्-उन भौतिकतावादी लोगों के लिए, जिन्होंने देह को ही आत्मा मान लिया है; गोपिका-सुतः-माता यशोदा के पुत्र; ज्ञानिनाम्-मानसिक चिन्तन में रत लोगों को; च-तथा; आत्म-भूतानाम्-कठिन तपस्याओं में लगे हुए लोगों के लिए या निजी संगियों के लिए; ग्रथा-जैसे; भक्ति-मताम्-जो लोग रागानुग प्रेममयी सेवा में रत हैं; इह-इस संसार में।

अनुवाद

“माता यशोदा के पुत्र, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण उन भक्तों के लिए सुलभ हैं, जो रागानुगा भक्ति में लगे हैं, किन्तु जो लोग मानसिक चिन्तक (ज्ञानी) हैं, जो कठोर तपस्या द्वारा आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं या जो शरीर को आत्मा ही मानते हैं, उनके लिए भगवान् दुर्लभ हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.9.21) का है।

‘आत्म-भूत’-शब्द कहे ‘पारिषद-गण’ ।

ऐश्वर्य-ज्ञाने लक्ष्मी ना पाइला ब्रजेन्द्र-नन्दन ॥28॥

आत्म-भूत-शब्द-आत्म-भूत शब्द का; कहे-अर्थ; पारिषद-गण-पार्षद, अन्तरंग संगी गण; ऐश्वर्य-ज्ञाने-ऐश्वर्य ज्ञान में लक्ष्मी-सौभाग्य की देवी; ना पाइला-प्राप्त नहीं कर सकती; ब्रजेन्द्र-नन्दन-नन्द महाराज के पुत्र, कृष्ण की शरण।

अनुवाद

‘आत्मभूत’ शब्द का अर्थ ‘निजी संगी’ है। भगवान् के ऐश्वर्य ज्ञान द्वारा लक्ष्मीजी नन्द महाराज के पुत्र की शरण प्राप्त नहीं कर पाई।

तात्पर्य

लक्ष्मीजी को कृष्ण के ऐश्वर्य का पूर्ण ज्ञान है, किन्तु ऐसे ज्ञान से वे कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त नहीं कर सकीं। किन्तु वृन्दावन के भक्तों को कृष्ण का वास्तविक सान्निध्य प्राप्त है।

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्त-रतेः प्रसादः

स्वयंषितां नलिन-गन्ध-रुचां कुतोऽन्याः ।

रासोत्सवेऽस्य भुज-दण्ड-गृहीत-कण्ठ-

लब्धाशिषां य उदगाद्ब्रज-सुन्दरीणाम् ॥29॥

न-नहीं; अयम्-यह; श्रियः-लक्ष्मी देवी का; अङ्गे-वक्ष पर; उ-हाय; नितान्त-रतेः-जो अत्यन्त निकट से सम्बन्धित है; प्रसादः-अनुग्रह; स्वः-देव लोकों की; योषिताम्-स्त्रियों का; नलिन-कमल पुष्प की; गन्ध-सुगन्ध युक्त; रुचाम्-तथा देह की कान्ति; कुतः-अति निकट; अन्याः-अन्य सभी; रास-उत्सवे-रास नृत्य के उत्सव में; अस्य-भगवान् श्रीकृष्ण की; भुज-दण्ड-भुजाओं द्वारा; गृहीत-आलिंगित; कण्ठ-उनके गले; लब्ध-आशिषाम्-जिन्होंने ऐसी कृपा प्राप्त की; यः-जो; उदगात्-प्रकट हुई; ब्रज-सुन्दरीणाम्-ब्रजभूमि की दिव्य कन्याओं, सुन्दर गोपियों का।

अनुवाद

“जब भगवान् श्रीकृष्ण रास लीला में गोपियों के साथ नृत्य कर रहे थे, तब भगवान् की बाहें गोपियों की गर्दन का आलिंगन कर रही थीं। यह दिव्य कृपा न तो कभी लक्ष्मीजी को, न ही वैकुण्ठ में अन्य प्रेयसियों को प्राप्त हो पाई थी। यहाँ तक कि स्वर्ग लोक की सर्वोत्तम सुन्दरियों ने भी, जिनकी शारीरिक कान्ति तथा सुगन्ध कमल पुष्पों के समान होती है, कभी ऐसी कृपा की कल्पना नहीं की थी। तो फिर संसारी स्त्रियों के विषय में क्या कहा जाए, जो भौतिक अनुमान के अनुसार अत्यन्त सुन्दर कही जाती हैं?”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.47.60) से लिया गया है।

शुद्ध-भावे सखा करे स्कन्धे आरोहण ।

शुद्ध-भावे ब्रजेश्वरी करेन बन्धन ॥30॥

शुद्ध-भावे-शुद्ध कृष्णभावना में; सखा-मित्र; करे-करता है; स्कन्धे-कन्धे पर; आरोहण-चढ़ना; शुद्ध-भावे-शुद्ध कृष्णभावना में; ब्रज-ईश्वरी-ब्रज की रानी, यशोदा; करेन बन्धन-बाँधती हैं।

अनुवाद

शुद्ध कृष्ण चेतना में कृष्ण का मित्र कृष्ण के कन्धों पर चढ़ जाता है और माता यशोदा कृष्ण को बाँध देती हैं।

तात्पर्य

शुद्ध भाव भगवान् के ऐश्वर्यों के ज्ञान पर निर्भर नहीं रहता। ऐसे ऐश्वर्यों के बिना भी, शुद्ध भाव में स्थित भक्त, कृष्ण को मित्र या पुत्र की भाँति प्रेम करने के लिए प्रेरित रहता है।

‘मोर सखा’, ‘मोर पुत्र’,—एइ ‘शुद्ध’ मन ।

अतएव शुक-व्यास करे प्रशंसन ॥31॥

मोर सखा-मेरा मित्र; मोर पुत्र-मेरा पुत्र; एइ-यह; शुद्ध-शुद्ध; मन-भावना; अतएव-इसीलिए; शुक-व्यास-शुकदेव गोस्वामी तथा व्यासदेव; करे प्रशंसन-प्रशंसा करते हैं।

अनुवाद

“शुद्ध कृष्ण चेतना में भगवान् के ऐश्वर्यों के ज्ञान के बिना ही भक्त कृष्ण को अपना मित्र या पुत्र मानता है। इसलिए इस भक्ति भाव की प्रशंसा शुकदेव गोस्वामी तथा व्यासदेव जैसे महाजन भी करते हैं।”

इत्थं सतां ब्रह्म-सुखानुभूत्या

दास्यं गतानां पर-दैवतेन ।

मायाश्रितानां नर-दारकेण

साकं विजः कृत-पुण्य-पुञ्जाः ॥ 32॥

इत्थम्-इस प्रकार; सताम्-जो भगवान् के निराकार पहलू को चाहते हैं; ब्रह्म-निराकार ज्योति के; सुख-सुख द्वारा; अनुभूत्या-जिसने अनुभव किया है; दास्यम् सेवक का भाव; गतानाम्-जिन्होंने स्वीकार किया है; पर-दैवतेन-जो परम

आराध्य विग्रह हैं; माया-आश्रितानाम्-बहिरंगा शक्ति से प्रभावित सामान्य लोगों के लिए; नर-दारकेण-उनके (भगवान् के) साथ, जो इस भौतिक संसार के एक बालक की भाँति; साकम्-मित्रता; विजः-खेले; कृत-पुण्य-पुञ्जाः-जिन्होंने असंख्य पुण्य कार्य किये होंगे।

अनुवाद

“जो लोग भगवान् की ब्रह्मज्योति की प्रशंसा करते हुए आत्म-साक्षात्कार में लगे हुए हैं तथा जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को स्वामी के रूप में स्वीकार करके भक्ति में लगे हुए हैं अथवा जो भगवान् को सामान्य पुरुष मानकर माया के पाश में बँधे हुए हैं, वे यह नहीं समझ सकते कि कुछ महापुरुष प्रचूर पुण्य कर्म संचित करके भगवान् के साथ मैत्री वश ग्वाल बालों के रूप में खेल रहे हैं।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.12.11) से लिया गया है।

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च साङ्ख्य-योगैश्च सात्वतैः ।

उपगीयमान-माहात्म्यं हरिं सामन्यतात्मजम् ॥ 33॥

त्रय्या-तीन वेदों के अनुयायी जो इन्द्र तथा अन्य देवताओं द्वारा किये जानेवाले यज्ञों के समान यज्ञ करते हैं; च-तथा; उपनिषद्भिः-वैदिक ज्ञान के सर्वश्रेष्ठ अंग, उपनिषदों के अनुयायियों द्वारा; च-तथा; साङ्ख्य-ब्रह्माण्ड का विश्लेषण करने वाले दार्शनिकों द्वारा; योगैः-योगियों द्वारा; च-और; सात्वतैः-पंचरात्र तथा अन्य वैदिक ग्रन्थों में वर्णित उपासना पद्धतियों का अभ्यास करने वाले भक्तों द्वारा; उपगीयमान-गाई जाती है; माहात्म्यम्-जिनकी कीर्ति; हरिम्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि को; सा-वे, माता यशोदा; अमन्यत-मानती रही; आत्म-जम्-अपना पुत्र, उनकी देह से जन्मा।

अनुवाद

“जब माता यशोदा ने कृष्ण के मुख के भीतर समस्त ब्रह्माण्डों को देखा, तो वे कुछ समय के लिए निश्चय ही आश्चर्यचकित हो गईं। जिस प्रकार इन्द्र तथा अन्य देवी-देवताओं की पूजा होती है, उसी प्रकार तीन वेदों के अनुयायी यज्ञों द्वारा भगवान् की पूजा करते हैं। उपनिषदों के अध्ययन द्वारा उनकी महानता को समझने वाले सन्त निराकार ब्रह्म के रूप में उनकी उपासना करते हैं। ब्रह्माण्ड का वैश्लेषिक अध्ययन करने वाले महान्

दार्शनिक पुरुष के रूप में उनकी उपासना करते हैं। महान् योगी सर्वव्यापी परमात्मा के रूप में तथा भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में उनकी उपासना करते हैं। फिर भी माता यशोदा भगवान् को अपना पुत्र ही समझती थीं।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.8.45) से लिया गया है।

नन्दः किमकरोद्ब्रह्मन्श्रेय एवं महोदयम् ।

यशोदा वा महा-भागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥ 34॥

नन्दः-नन्द महाराज ने; किम्-क्या; अकरोत्-किया था; ब्रह्मन्-हे ब्राह्मण; श्रेयः-शुभ कार्य; एवम्-जिस कारण से; महा-उदयम्-कृष्ण के पिता के रूप में इतने श्रेष्ठ पद तक उठ गये; यशोदा-माता यशोदा ने; वा-अथवा; महा-भागा-महा भाग्यवती; पपौ-पिए; यस्याः -जिनके; स्तनम्-स्तन; हरिः-परम भगवान् ने।

अनुवाद

“हे ब्राह्मण, नन्द महाराज ने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को पुत्र रूप में पाने के लिए कौन सा पुण्य कर्म किया? तथा माता यशोदा ने कौन-सा पुण्यकर्म किया जिससे परम भगवान् कृष्ण ने उन्हें ‘माता’ कहकर पुकारा और उनके स्तनों का दूध पिया?”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.8.46) से है।

ऐश्वर्यं देखिलेह ‘शुद्धेर’ नहे ऐश्वर्यं ज्ञान ।

अतएव ऐश्वर्यं हइते ‘केवल’-भाव प्रधान ॥ 35॥

ऐश्वर्य-ऐश्वर्य; देखिलेह-देखने के बाद भी; शुद्धेर-एक शुद्ध भक्त को; नहे-नहीं होता; ऐश्वर्य-ज्ञान-ऐश्वर्य का ज्ञान; अतएव-इसलिए; ऐश्वर्यं हइते-ऐश्वर्य ज्ञान की अपेक्षा; केवल-भाव-शुद्ध भाव; प्रधान-अधिक प्रमुख ।

अनुवाद

“यदि शुद्ध भक्त कृष्ण के ऐश्वर्य को देखता भी है, तो वह उसे स्वीकार नहीं करता। इसलिए शुद्ध चेतना (केवल भाव) भगवान् के ऐश्वर्य ज्ञान से अधिक श्रेष्ठ है।”

ए सब शिखाइला मोरे राय-रामानन्द ।

अनर्गल रस-वेत्ता प्रेम-सुखानन्द ॥ 36॥

ए सब-ये सभी; शिखाइला-उपदेश दिये; मोरे-मुझे; राय-रामानन्द-रामानन्द राय ने; अनर्गल-निरन्तर; रस-वेत्ता-जो दिव्य रसों को समझते हैं; प्रेम-सुख-आनन्द-कृष्ण के प्रेमभाव के आनन्द में तल्लीन।

अनुवाद

“रामानन्द राय दिव्य रसों से भलीभाँति अवगत हैं। वे कृष्ण-प्रेमावेश के सुख में निरन्तर तन्मय रहते हैं। उन्हीं ने मुझे यह सब सिखाया है।”

कहन ना याय रामानन्देर प्रभाव ।

राय-प्रसादे जानिलुँ ब्रजेर ‘शुद्ध’ भाव ॥37॥

कहन ना याय-वर्णन नहीं किया जा सकता; रामानन्देर प्रभाव-रामानन्द राय का प्रभाव; राय-रामानन्द राय की; प्रसादे-कृपा द्वारा; जानिलुँ-मैं समझ गया हूँ; ब्रजेर-ब्रजवासियों का; शुद्ध भाव-विशुद्ध प्रेम।

अनुवाद

रामानन्द राय के प्रभाव तथा ज्ञान का वर्णन कर सकना असम्भव है, क्योंकि उन्हीं की कृपा से मैं वृन्दावनवासियों के शुद्ध प्रेम को समझ सका।

दामोदर-स्वरूप—‘प्रेम-रस’ मूर्तिमान् ।

याँर सङ्गे हैल ब्रज-मधुर-रस-ज्ञान ॥38॥

दामोदर-स्वरूप-स्वरूप दामोदर गोस्वामी; प्रेम-रस-प्रेमभाव के दिव्य रसों के; मूर्तिमान्-मूर्त रूप; याँर सङ्गे-जिनके संग द्वारा; हैल-हो गया; ब्रज-ब्रज के; मधुर-रस-माधुर्य प्रेम रस का; ज्ञान-ज्ञान।

अनुवाद

प्रेमावेश का दिव्य रस स्वरूप दामोदर द्वारा मूर्तिमान होता है। उनकी संगति से मैंने वृन्दावन के दिव्य माधुर्य रस को समझा है।

‘शुद्ध-प्रेम’ ब्रज-देवीर—काम-गन्ध-हीन

‘कृष्ण-सुख-तात्पर्य’,—एइ तार चिह्न ॥ 39॥

शुद्ध-प्रेम-निर्मल प्रेम; ब्रज-देवीर-गोपियों या श्रीमती राधारानी का; काम-गन्ध-हीन-भौतिक काम भाव की गन्ध से रहित; कृष्ण-कृष्ण की; सुख-प्रसन्नता; तात्पर्य-उद्देश्य; एइ-यही; तार-उसका; चिह्न-चिह्न।

अनुवाद

“गोपियों तथा श्रीमती राधारानी का शुद्ध प्रेम भौतिक कामवासना के लेशमात्र से रहित है। ऐसे दिव्य प्रेम की कसौटी यह है कि इसका एकमात्र उद्देश्य कृष्ण को तुष्ट करना है।”

यत्ते सुजात-चरणाम्बुरुहं स्तनेषु

भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।

तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किं स्वित्

कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥40॥

यत्-जो; ते-आपके; सुजात-अत्यन्त कोमल; चरण-अम्बु-रुहम्-चरणकमल; स्तनेषु-स्तनों पर; भीताः-भयभीत; शनैः-धीरे से; प्रिय-हे प्रिय; दधीमहि-हम रखती हैं; कर्कशेषु-कठोर; तेन-उनके द्वारा; अटवीम्-मार्ग; अटसि-आप चलते हैं; तत्-वे; व्यथते-पीड़ित हैं; न-नहीं; किम् स्वित्-हम आश्चर्य करती हैं; कूर्प-आदिभिः-छोटे कंकरो इत्यादि द्वारा; भ्रमति-विचलित होता है; धीः-मन; भवत्-आयुषाम्-उनकाजिनके आप ही प्राण-धन हैं; नः-हमारे।

अनुवाद

“हे प्रिय, आपके चरणकमल इतने कोमल हैं कि हम डरते-डरते उन्हें अपने वक्षस्थलों पर धीरे से रखती हैं कि कहीं आपके चरणों को चोट न लग जाए। हमारे प्राण केवल आप पर आश्रित हैं। इसलिए हमारे मन इस बात से चिन्तित हैं कि वनमार्ग में घूमते समय आपके चरण कहीं कंकरो से क्षत-विक्षत न हो जायें।”

तात्पर्य

यह श्लोक गोपियों द्वारा कहा गया है और श्रीमद्भागवत (10.31.19) से है।

गोपी-गणेश शुद्ध-प्रेम ऐश्वर्य-ज्ञान-हीन ।

प्रेमेते भर्त्सना करे एड़ तार चिह्न ॥41॥

गोपी-गणेश-गोपियों का; शुद्ध-प्रेम-निर्मल प्रेम; ऐश्वर्य-ज्ञान-हीन-ऐश्वर्य की जानकारी से रहित; प्रेमेते-शुद्ध प्रेम में; भर्त्सना-डॉटना; करे-करती; एड़-यह; तार-उसी का; चिह्न-लक्षणा।

अनुवाद

“ऐश्वर्य के ज्ञान से रहित शुद्ध प्रेम के बशीभूत गोपियाँ कभी-कभी कृष्ण की भर्त्सना करती हैं। यह शुद्ध प्रेम का लक्षण है।”

पति-सुतान्वय-भ्रातृ-बान्धवान्

अतिविलय तेऽन्त्यच्युतागताः ।

गति-विदस्तवोद्गीत-मोहिताः

कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥42॥

पति-पतियों की; सुत-पुत्रों की; अन्वय-परिवार; भ्रातृ-भाइयों की; बान्धवान्-सम्बन्धियों की; अतिविलय-परवाह किये बिना; ते-आपकी; अन्ति-शरण में; अच्युत-हे अच्युत; आगताः-आयी हैं; गति-विदः-जो हमारे सभी कार्यकलाप जानते हैं; तव-आपकी; उद्गीत-वंशी की ध्वनि द्वारा; मोहिताः-आकृष्ट होकर; कितव-हे। महान छलिया; योषितः-सुन्दर स्त्रियों को; कः-कौन; त्यजेत्-त्यागेगा; निशि-आधी रात के समय।

अनुवाद

“हे प्रिय कृष्ण, हम गोपियों ने अपने पतियों, पुत्रों, परिवार, भाइयों तथा मित्रों के आदेश की अवहेलना की है और आपके पास आने के लिए उनका संग छोड़ा है। आप हमारी इच्छाओं के विषय में सब कुछ जानते

हैं। हम आपकी वंशी के सर्वोत्कृष्ट संगीत से आकृष्ट होकर ही आई हैं। किन्तु आप बहुत बड़े शठ निकले, क्योंकि इस रात्रि में ऐसा कौन होगा, जो हम जैसी तरुणियों का साथ छोड़ देगा?”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.31.16) से लिया गया है।

सर्वोत्तम भजन एङ् सर्व-भक्ति जिनि' ।

अतएव कृष्ण कहे,—‘आमि तोमार ऋणी’ ॥43॥

सर्व-उत्तम-सबसे बढ़कर; भजन-प्रेममयी सेवा; एङ्-यह; सर्व-भक्ति-सब प्रकार की भक्ति; जिनि'-जीतने वाली; अतएव-अतः; कृष्ण कहे-भगवान् कृष्ण कहते हैं; आमि-मैं; तोमार-तुम्हारा; ऋणी-ऋणी हूँ।

अनुवाद

गोपियों का माधुर्य प्रेम सर्वोच्च भक्ति है, जो भक्ति की अन्य सारी विधियों को पार कर जाती है। इसलिए भगवान् कृष्ण को कहना पड़ा, ‘हे गोपियों, मैं तुम लोगों का ऋण नहीं उतार सकता। निस्सन्देह, मैं तुम लोगों का सदैव ऋणी हूँ’

न पारयेऽहं निरवद्य-संयुजां

स्व-साधु-कृत्यं विबुधायुषापि वः ।

या माभजन्दुर्जय-गेह-शृङ्खलाः

संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥44॥

न-नहीं; पारये-चुका सकता; अहम्-मैं; निरवद्य-संयुजाम्-जो कपट से पूर्णतया रहित हैं; स्व-साधु-कृत्यम्-यथोचित कीमत; विबुध-आयुषा-देवताओं के जीवन काल तक भी; अपि-यद्यपि; वः-आपको; याः-जिन्होंने; मा-मेरी; अभजन्-सेवा की; दुर्जय-गेह-शृङ्खलाः-गृहस्थ जीवन के बन्धन जिन्हें पार करना अत्यन्त कठिन है; संवृश्च्य-काटकर; तत्-वह; वः-आपका; प्रतियातु-चुकता होने दो; साधुना-सुकृत्यों द्वारा ही।

अनुवाद

“हे गोपियों, मैं तुम लोगों की निष्कलंक सेवा के ऋण को ब्रह्मा की आयु तक में भी नहीं चुका सकता। मुझसे तुम लोगों का यह सम्बन्ध निन्दा से परे है। तुम लोगों ने समस्त घरेलू सम्बन्धों को तोड़कर मेरी पूजा की है, जिन्हें तोड़ पाना कठिन होता है। इसलिए तुम्हारे यशस्वी कार्य ही तुम्हारा पुरस्कार बनें।”

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत (10.32.22) से है।

ऐश्वर्य-ज्ञान हैते केवला-भाव—प्रधान ।

पृथिवीते भक्त नाहि उद्धव-समान ॥ 45 ॥

ऐश्वर्य-ज्ञान हैते-ऐश्वर्यमय दिव्य प्रेम की अपेक्षा; केवला-भाव-शुद्ध प्रेम; प्रधान-अधिक प्रमुख; पृथिवीते-संसार में; भक्त नाहि-कोई भक्त नहीं है; उद्धव-समान-उद्धव के समान।

अनुवाद

शुद्ध कृष्ण-प्रेम ऐश्वर्य में कृष्ण-प्रेम से सर्वथा भिन्न होता है और सर्वोच्च पद पर होता है। इस पृथ्वी पर उद्धव से बढ़कर कोई भक्त नहीं है।

तेह याँर पद-धूलि करेन प्रार्थन ।

स्वरूपेर सङ्गे पाइलुँ ए सब शिक्षण ॥46॥

तेह-वह; याँर-जिनके; पद-धूलि-चरणकमलों की धूल; करेन प्रार्थन-चाहते हैं; स्वरूपेर सङ्गे-स्वरूप दामोदर से; पाइलुँ-मैंने पाया है; ए सब-ये सब; शिक्षण-उपदेश।

अनुवाद

“उद्धव गोपियों के चरणकमलों की धूलि अपने सिर पर धारण करना चाहते हैं। मैंने स्वरूप दामोदर से भगवान् कृष्ण के इन सारे दिव्य प्रेम-व्यापारों के विषय में सीखा है।”

आसामहो चरण-रेणु-जुषामहं स्यां

वृन्दावने किमपि गुल्म-लतौषधीनाम् ।

या दुस्त्यजं स्व-जनमार्य-पथं च हित्वा

भेजुर्मुकुन्द-पदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥47॥

आसाम्-गोपियों के; अहो-अरे; चरण-रेणु-चरणकमलों की धूल; जुषाम्-समर्पित; अहम्-स्याम्-मैं बनूँ; वृन्दावने-वृन्दावन में; किम्-अपि-कोई भी; गुल्म-लता-औषधीनाम्-झाड़ियों, लताओं या औषधियों में; या-जो; दुस्त्यजम्-छोड़ने में कठिन; स्व-जनम्-परिवार जन; आर्य-पथम्प-तिव्रता धर्म; च-तथा; हित्वा-छोड़कर; भेजुः-सेवा की; मुकुन्द-पदवीम्-मुकुन्द, कृष्ण के चरणकमल; श्रुतिभिः-वेदों द्वारा; विमृग्याम्-खोजने योग्य।

अनुवाद

“वृन्दावन की गोपियों ने अपने पतियों, पुत्रों तथा अन्य पारिवारिक जनों का साथ छोड़ दिया है, जिन्हें छोड़ पाना अत्यन्त कठिन होता है। और उन्होंने वैदिक ज्ञान से खोजे जाने वाले मुकुन्द के चरणकमलों की शरण ग्रहण करने के लिए सतीत्व का मार्ग त्याग दिया है। ओह, यदि मैं वृन्दावन की कोई झाड़ी, लता या औषधी बन जाऊँ, तो कितना भाग्यशाली हूँगा, क्योंकि तब गोपियाँ इन्हें अपने पाँव से रौंदती हुई अपने चरणकमलों की धूल से आशीर्वाद देंगी।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (10.47.61) से है, जिसे उद्धव ने कहा है। जब कृष्ण ने उद्धव को वृन्दावन में गोपियों की दशा देखने के लिए भेजा, तब वे उनके साथ कुछ महीने रुके रहे और उनसे कृष्ण के विषय में लगातार बातें करते रहे। यद्यपि इससे गोपियाँ तथा वृन्दावन के अन्य निवासी अत्यन्त प्रसन्न थे, किन्तु उद्धव ने देखा कि गोपियाँ कृष्ण-विरह से अत्यन्त तीव्रता से ग्रस्त हैं। उनके हृदय इतने विचलित थे कि कभी-कभी उनके मन विक्षिप्त हो उठते थे। कृष्ण के प्रति गोपियों के शुद्ध प्रेम एवं उनकी अनन्य भक्ति को देखकर उद्धव की इच्छा हुई कि वे वृन्दावन की लता, घास की पत्ती या औषधी होते, तो गोपियाँ कभी न कभी उन पर चलतीं, जिससे उनके चरणों की धूल सिर पर धारण करने को मिल जाती।

हरिदास-ठाकुर-महा-भागवत-प्रधान ।

प्रति दिन लय तेंह तिन-लक्ष नाम ॥48॥

हरिदास-ठाकुर-हरिदास ठाकुर; महा-भागवत-प्रधान-सभी शुद्ध भक्तों में सर्वश्रेष्ठ; प्रति दिन-रोज; लय-जप करते हैं; तेंह-वे; तिन-लक्ष नाम-3,00,000 भगवान् के पवित्र नाम।

अनुवाद

“नामाचार्य हरिदास ठाकुर समस्त शुद्ध भक्तों में से सर्वाधिक पूज्य हैं। वे प्रति दिन तीन लाख पवित्र नामों का जप करते हैं।”

नामेर महिमा आमि तारँ ठाजि शिखिलुँ ।

तारँ प्रसादे नामेर महिमा जानिलुँ ॥49॥

नामेर महिमा-पवित्र नाम की महिमा; आमि-मैंने; तारँ ठाजि-उनसे; शिखिलुँ-जानी; तारँ प्रसादे-उनकी कृपा से; नामेर-पवित्र नाम की महिमा-महिमा; जानिलुँ-मैं समझ सका।

अनुवाद

“मैंने तो भगवान् के पवित्र नाम की महिमा के विषय में हरिदास ठाकुर से सीखा है और उनकी कृपा से इस महिमा को जाना है।”

आचार्यरत्न आचार्यनिधि पण्डित-गदाधर ।

जगदानन्द, दामोदर, शङ्कर, वक्रेश्वर ॥50॥

काशीश्वर, मुकुन्द, वासुदेव, मुरारि ।

आर व्रत भक्त-गण गौड़े अवतरि' ॥51॥

कृष्ण-नाम-प्रेम कैला जगते प्रचार ।

इँहा सबार सङ्गे कृष्ण-भक्ति ने आमार ॥52॥

आचार्यरत्न-आचार्यरत्न; आचार्यनिधि-आचार्यनिधि; पण्डित-गदाधर-गदाधर पण्डित; जगदानन्द-जगदानन्द; दामोदर-दामोदर; शङ्कर-शङ्कर; वक्रेश्वर-वक्रेश्वर; काशीश्वर-काशीश्वर; मुकुन्द-मुकुन्द; वासुदेव-वासुदेव; मुरारि-मुरारि; आर-तथा; व्रत-जितने भी; भक्त-गण-भक्तगण; गौड़े-बंगाल में; अवतरि'-अवतरित हुए; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण के

पवित्र नाम के प्रेम-दिव्य कृष्ण-प्रेम का; कैला-किया; जगते-समस्त संसार में प्रचार-प्रचार; ईहा सबार-उन सबके; सङ्गे-संग द्वारा; कृष्ण-भक्ति-कृष्ण की प्रेममयी सेवा; ये-जो; आमार-मेरी।

अनुवाद

आचार्यरत्न, आचार्यनिधि, गदाधर पण्डित, जगदानन्द, दामोदर, शंकर, वक्रेश्वर, काशीश्वर, मुकुन्द, वासुदेव, मुरारि तथा अन्य अनेक भक्तों ने कृष्ण के पवित्र नाम की महिमा तथा कृष्ण के प्रति प्रेम के महत्त्व का जन-जन में प्रचार करने हेतु बंगाल में अवतार लिया है। मैंने इन्हीं से कृष्ण-भक्ति का अर्थ सीखा है।”

भट्टेर हृदये दृढ़ अभिमान जानि ।

भङ्गी करि' महाप्रभु कहे एत वाणी ॥53॥

भट्टेर हृदये-वल्लभ भट्ट के हृदय में; दृढ़-दृढ़; अभिमान-गर्व; जानि'-जानकर; भङ्गी करि'-संकेत करके; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कहे-बोले; एत वाणी-ये वचना।

अनुवाद

यह जानते हुए कि वल्लभ भट्ट का हृदय गर्वित है, श्री चैतन्य महाप्रभु ने ये शब्द यह जताने के लिए कहे कि भक्ति के बारे में किस तरह सीखा जा सकता है।

तात्पर्य

वल्लभ भट्ट को अपने भक्ति विषयक ज्ञान पर अत्यधिक गर्व था, इसीलिए वे महाप्रभु को जाने बिना उनके विषय में बोलना चाह रहे थे। इसीलिए महाप्रभु ने कई प्रकार से इंगित किया कि यदि वल्लभ भट्ट वास्तव में जानना चाहते हैं कि भक्ति क्या है, तो उन्हें उन सारे भक्तों से सीखना होगा, जिनका उल्लेख उन्होंने किया, यथा अद्वैत आचार्य, भगवान् नित्यानन्द, सार्वभौम भट्टाचार्य, रामानन्द राय इत्यादि। जैसाकि स्वरूप दामोदर ने कहा है कि यदि कोई श्रीमद्भागवत का अर्थ जानना चाहता है, तो उसे किसी स्वरूपसिद्ध व्यक्ति से शिक्षा लेनी होगी। किसी को गर्वित होकर यह नहीं सोचना चाहिए कि पुस्तकें पढ़ने से ही वह भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति को समझ सकता है। उसे किसी वैष्णव का दास बनना होगा। जैसाकि नरोत्तमदास ठाकुर ने पुष्टि की है- छाड़िया वैष्णव-सेवा निस्तार पायेछे केबा-शुद्ध वैष्णव की श्रद्धापूर्वक सेवा किये बिना दिव्य पद प्राप्त नहीं किया जा सकता। उसे वैष्णव गुरु का आश्रय स्वीकार करना चाहिए

(आदौ गुर्वाश्रयम्) और तब प्रश्नोत्तरों द्वारा धीरे-धीरे सीखना चाहिए कि कृष्ण की भक्ति क्या है। यही परम्परा प्रणाली कहलाती है।

“आमि से ‘वैष्णव’,—भक्ति-सिद्धान्त सब जानि ।

आमि से भागवत-अर्थ उत्तम वाखानि” ॥54॥

आमि-मैं हूँ; से-वह; वैष्णव-वैष्णव; भक्ति-सिद्धान्त-भक्ति के सिद्धान्त; सब-सभी; जानि-मैं जानता हूँ; आमि-मैं; से-वह; भागवत-अर्थ- भागवत का अर्थ; उत्तम-अच्छी तरह; वाखानि-वर्णन कर सकता हूँ।

अनुवाद

[वल्लभ भट्ट सोच रहे थे :] “मैं महान् वैष्णव हूँ। वैष्णव दर्शन के सारे सिद्धान्तों को सीखने के बाद मैं श्रीमद्भागवत का अर्थ समझ सकता हूँ और बहुत अच्छी तरह से इसकी व्याख्या कर सकता हूँ।”

भट्टेर मनेते एड़ छिल दीर्घ गर्व ।

प्रभुर वचन शुनि’ से हड़ल खर्व ॥55॥

भट्टेर मनेते-वल्लभ भट्ट के मन में; एड़-यही; छिल-स्थित था; दीर्घ-लम्बे समय से; गर्व-गर्व; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; वचन-वचन; शुनि’-सुनकर; से-वह; हड़ल-हो गया; खर्व-नष्ट।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट के मन में ऐसा गर्व दीर्घकाल से चला आ रहा था, किन्तु जब उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु का उपदेश सुना, तो उनका गर्व चूर-चूर हो गया।

प्रभुर मुखे वैष्णवता शुनिया सबार ।

भट्टेर इच्छा हैल ताँ-सबारे देखिबार ॥56॥

प्रभुर मुखे-श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख से; वैष्णवता-वैष्णवता के आदर्श; शुनिया सबार-सभी भक्तों के बारे में सुनकर; भट्टेर-वल्लभ भट्ट की; इच्छा-इच्छा; हैल-हुई; ताँ-सबारे उन सभी को; देखिबार देखने की।

अनुवाद

जब वल्लभ भट्ट ने श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख से इन सारे भक्तों की शुद्ध वैष्णवता के बारे में सुना, तो तुरन्त उनकी इच्छा उन सबके दर्शनों के लिए हुई।

भट्ट कहे,—“ए सब वैष्णव रहे कोन् स्थाने? ।

कोन् प्रकारे पाइमु इहाँ-सबार दर्शने?” ॥57॥

भट्ट कहे-वल्लभ भट्ट ने कहा; ए सब वैष्णव-ये सभी वैष्णव; रहे-रहते हैं; कोन् स्थाने-कहाँ; कोन् प्रकारे-किस प्रकार; पाइनु-मैं प्राप्त करूँगा; इहाँ-सबार दर्शने-इन सभी वैष्णवों के दर्शन।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट ने कहा, “ये सारे वैष्णव कहाँ रहते हैं और मैं उनका दर्शन किस तरह कर सकता हूँ?”

प्रभु कहे,—“केह गौड़े, केह देशान्तरे ।

सब आसियाछे रथ-यात्रा देखिबारे” ॥58॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; केह गौड़े कुछ बंगाल में; केह-कुछ; देश-अन्तरे-अन्य राज्यों में; सब-सभी; आसियाछे-आये हैं; रथ-यात्रा देखिबारे-भगवान् जगन्नाथ का रथयात्रा उत्सव देखने के लिए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, “यद्यपि उनमें से कुछ बंगाल में और कुछ अन्य राज्यों में रहते हैं, किन्तु वे सभी रथयात्रा के दर्शन हेतु यहाँ आये हैं।”

इहाडि रहेन सबे, वासा-नाना-स्थाने ।

इहाडि-पाइबा तुमि सबार दर्शने ॥59॥

इहाडि-यहीं; रहेन सबे-वे सभी रह रहे हैं; वासा-उनके निवासस्थान; नाना-स्थाने-अलग-अलग जगह पर; इहाडि-यहीं; पाइबा-पाओगे; तुमि-आप; सबार दर्शने-सबके दर्शन।

अनुवाद

“इस समय वे सब यहीं रह रहे हैं। उनके आवास विभिन्न स्थानों में हैं। यहीं आप उन सबके दर्शन कर सकोगे।”

तबे भट्ट कहे बहु विनय वचन ।

बहु दैन्य करि' प्रभुरे कैल निमन्त्रण ॥ 60॥

तबे-तब; भट्ट कहे-वल्लभ भट्ट ने कहा; बहु-अत्यन्त; विनय-विनम्र; वचन-वचन; बहु दैन्य करि'-पूर्ण विनम्रतापूर्वक; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; कैल निमन्त्रण-भोजन के लिए निमंत्रित किया।

अनुवाद

तत्पश्चात् अत्यन्त विनय तथा दीनतापूर्वक वल्लभ भट्ट ने श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने घर पर भोजन करने के लिए निमन्त्रित किया।

आर दिन सब वैष्णव प्रभु-स्थाने आइला ।

सबा-सने महाप्रभु भट्टे मिलाइला ॥61॥

आर दिन-अगले दिन; सब वैष्णव-सभी वैष्णव; प्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर; आइला-आये; सबा-सने-उन सबके साथ; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; भट्टे मिलाइला-वल्लभ भट्ट को मिलाया।

अनुवाद

अगले दिन जब सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर आये, तो महाप्रभु ने उस सबसे वल्लभ भट्ट का परिचय कराया।

‘वैष्णवे’र तेज देखि’ भट्टेर चमत्कार ।

ताँ-सबार आगे भट्ट-खद्योत-आकार ॥62॥

वैष्णवे-वैष्णवों की; तेज-कान्ति; देखि'-देखकर; भट्टेर-वल्लभ भट्ट को हुआ; चमत्कार-आश्चर्य; ताँ-सबार-उन सभी के; आगे-सामने; भट्ट-वल्लभ भट्ट; खद्योत-आकार-एक जुगनू के समान।

अनुवाद

वे उनके मुखमण्डलों के तेज को देखकर चकित थे। निस्सन्देह, उन सबके बीच में वल्लभ भट्ट एक जुगनू समान लग रहे थे।

तबे भट्ट बहु महा-प्रसाद आनाइल ।

गण-सह महाप्रभुरे भोजन कराइल ॥ 63॥

तबे-उस समय; भट्ट-वल्लभ भट्ट; बहु-अत्यधिक; महा-प्रसाद-भगवान् जगन्नाथ का महाप्रसाद; आनाइल-ले आये; गण-सह महाप्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को उनके संगियों के साथ; भोजन कराइल-उन्होंने खिलाया।

अनुवाद

तब वल्लभ भट्ट प्रचुर मात्रा में भगवान् जगन्नाथजी का प्रसाद ले आये और उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके संगियों को अच्छी तरह से भोजन कराया।

परमानन्द पुरी-सङ्गे सन्यासीर गण ।

एक-दिके वैसे सब करिते भोजन ॥ 64॥

परमानन्द पुरी-सङ्गे-परमानन्द पुरी के साथ; सन्यासीर गण-श्री चैतन्य महाप्रभु के सभी संन्यासी संगी; एक-दिके-एक ओर; वैसे-बैठ गये; सब-सभी; करिते भोजन-प्रसाद गहण करने के लिए।

अनुवाद

परमानन्द पुरी इत्यादि श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे संन्यासी संगी एक ओर बैठ गये और सबने प्रसाद प्राप्त किया।

अद्वैत, नित्यानन्द-राय-पार्श्वे दुइ-जन ।

मध्ये महाप्रभु वसिला, आगे-पाछे भक्त-गण ॥65॥

अद्वैत-अद्वैत आचार्य; नित्यानन्द-राय-नित्यानन्द प्रभु; पार्श्वे-दोनों ओर; दुइ-जन-दोनों लोग; मध्ये-बीच में; महाप्रभु वसिला-श्री चैतन्य महाप्रभु बैठ गये; आगे-सामने; पाछे-पीछे; भक्त-गण-सभी भक्त।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु समस्त भक्तों के बीच बैठे। अद्वैत आचार्य तथा नित्यानन्द प्रभु महाप्रभु के दोनों ओर बैठे। अन्य भक्त महाप्रभु के आगे और पीछे बैठे।

गौड़ेर भक्त यत कहिते ना पारि ।

अङ्गने वसिला सब हजा सारि सारि ॥66॥

गौड़ेर-बंगाल के; भक्त यत-सभी भक्त; कहिते-वर्णन करने में; ना पारि-मैं असमर्थ हूँ; अङ्गने-आँगन में; वसिला-बैठ गये; सब-सभी; हजा-होकर; सारि सारि-पंक्तियों में।

अनुवाद

बंगाल के सारे भक्त, जिनकी गिनती करने में मैं असमर्थ हूँ, आँगन में पंक्तियों में बैठ गये।

प्रभुर भक्त-गण देखि' भट्टेर चमत्कार ।

प्रत्येके सबार पदे कैल नमस्कार ॥67॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; भक्त-गण-भक्त; देखि-देखकर; भट्टेर-वल्लभ भट्ट को; चमत्कार-आश्चर्य; प्रति-एके-प्रत्येक के; सबार-सभी के; पदे-चरणकमलों में; कैल नमस्कार-उन्होंने प्रणाम किये।

अनुवाद

जब वल्लभ भट्ट ने श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों को देखा, तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, और भक्तिवश उन्होंने उनमें से हर एक के चरणकमलों पर नमस्कार निवेदन किया।

स्वरूप, जगदानन्द, काशीश्वर, शङ्कर ।

परिवेशन करे, आर राघव, दामोदर ॥ 68॥

स्वरूप-स्वरूप; जगदानन्द-जगदानन्द; काशीश्वर-काशीश्वर; शङ्कर-शंकर; परिवेशन करे-बाँटने लगे; आर-और; राघव दामोदर-राघव तथा दामोदर।

अनुवाद

स्वरूप दामोदर, जगदानन्द, काशीश्वर तथा शंकर ने राघव तथा दामोदर पण्डित को साथ लेकर प्रसाद वितरण का कार्य भार सँभाला।

महा-प्रसाद वल्लभ-भट्ट बहु आनाइल ।

प्रभु-सह सन्यासि-गण भोजने वसिल ॥ 69॥

महा-प्रसाद-श्री जगन्नाथ को अर्पित भोग; वल्लभ-भट्ट-वल्लभ भट्ट ने; बहु-अधिक मात्रा; आनाइल-मँगवायी थी; प्रभु-सह-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; सन्यासि-गण-सभी संन्यासी; भोजने वसिल-प्रसाद ग्रहण करने के लिए बैठ गये।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट भगवान् जगन्नाथ को अर्पित ढेर सारा प्रसाद ले आये थे। इस तरह सारे संन्यासी खाने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ-साथ बैठ गये।

प्रसाद पाय वैष्णव-गण बले, 'हरि' 'हरि' ।

हरि हरि ध्वनि उठे सब ब्रह्माण्ड भरि' ॥ 70 ॥

प्रसाद-प्रसाद; पाय-पाते हुए; वैष्णव-गण-सभी वैष्णव; बले-बोलते; हरि हरि-हरि, हरि'; हरि हरि ध्वनि-'हरि-हरि' की ध्वनि; उठे-उठती है; सब ब्रह्माण्ड-सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को; भरि'-पूरित कर दिया।

अनुवाद

प्रसाद पाकर सारे वैष्णवों ने "हरि! हरि!" के पवित्र नाम का उच्चारण किया। हरि के पवित्र नाम की उठती ध्वनि ने सारे ब्रह्माण्ड को पूरित कर दिया।

माला, चन्दन, गुवाके, पान अनेक आनिल ।

सबा' पूजा करि' भट्ट आनन्दित हैल ॥71॥

माला-मालाएँ; चन्दन-चन्दन लेप; गुवाक-मसाले; पान-पान; अनेक-कई; आनिल-लाये; सबा' पूजा करि-सभी वैष्णवों की पूजा करके; भट्ट-वल्लभ भट्ट; आनन्दित हैल-अत्यन्त प्रसन्न हुए।

अनुवाद

जब सारे वैष्णव खा चुके, तो बल्लभ भट्ट बहुत सी मालाएँ, चन्दन लेप, मसाले तथा पान ले आये।
उन्होंने सब भक्तों की आदरपूर्वक पूजा की और इस तरह अत्यन्त सुखी हुए।

रथ-यात्रा-दिने प्रभु कीर्तन आरम्भिला ।

पूर्ववत् सात सम्प्रदाय पृथक् करिला ॥72॥

रथ-यात्रा-दिने-रथयात्रा उत्सव के दिन; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कीर्तन आरम्भिला-संकीर्तन प्रारम्भ किया;
पूर्व-वत्-पहले की तरह; सात सम्प्रदाय-सात टोलियों में; पृथक् करिला-उन्होंने बाँटा।

अनुवाद

रथयात्रा के उत्सव के दिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने संकीर्तन प्रारम्भ किया। पहले की ही तरह उन्होंने सारे
भक्तों को सात टोलियों में बाँट दिया।

अद्वैत, नित्यानन्द, हरिदास, वक्रेश्वर ।

श्रीवास, राघव, पण्डित-गदाधर ॥73॥

सात जन सात-ठाजि करेन नर्तन ।

‘हरि-बोल’ बलि’ प्रभु करेन भ्रमण ॥74॥

अद्वैत-अद्वैत आचार्य; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द; हरिदास-ठाकुर हरिदास; वक्रेश्वर-वक्रेश्वर; श्रीवास-
श्रीवास ठाकुर; राघव-राघव; पण्डित-गदाधर-गदाधर पण्डित; सात जन-सात लोग; सात-ठाजि-सात दलों में; करेन नर्तन-
नाचे; हरि-बोल बलि’-“हरि बोल” कहकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन भ्रमण-घूमते हैं।

अनुवाद

अद्वैत, नित्यानन्द, हरिदास ठाकुर, वक्रेश्वर, श्रीवास ठाकुर, राघव पण्डित तथा गदाधर पण्डित-इन सात
भक्तों ने सात टोलियाँ बना लीं और नाचने लगे। श्री चैतन्य महाप्रभु “हरि बोल!” कीर्तन करते हुए एक टोली
से दूसरी टोली में विचरण करने लगे।

चौद मादल बाजे उच्च सङ्कीर्तन ।

एक एक नर्तकेर प्रेमे भासिल भुवन ॥ 75 ॥

चौद मादल-चौदह मृदंग; बाजे-बज रहे थे; उच्च सङ्कीर्तन-उच्च नाम संकीर्तन; एक एक-प्रत्येक दल के; नर्तकेर-एक नर्तक के; प्रेमे-प्रेमभाव में; भासिल भुवन-सम्पूर्ण विश्व डूब गया।

अनुवाद

उच्च संकीर्तन के साथ-साथ चौदह मृदंग गूँजने लगे। हर टोली का एक-एक नर्तक था, जिसके प्रेमाविष्ट नृत्य से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आप्लावित हो उठा।

देखि' वल्लभ-भट्टेर हैल चमत्कार ।

आनन्दे विह्वल नाहि आपन-साम्भाल ॥ 76 ॥

देखि'-देखकर; वल्लभ-भट्टेर-वल्लभ भट्ट को; हैल चमत्कार-आश्चर्य हुआ; आनन्दे विह्वल-दिव्य आनन्द से विभोर; नाहि-नहीं हुआ; आपन-साम्भाल-अपनी सामान्य अवस्था बनाये रखना।

अनुवाद

यह सब देखकर वल्लभ भट्ट पूर्णतया चकित थे। वे दिव्य आनन्द से विह्वल और अपने में खोए हुए थे।

तबे महाप्रभु सबार नृत्य राखिला ।

पूर्ववत् आपने नृत्य करते लागिला ॥77॥

तबे-फिर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; सबार-उन सभी का; नृत्य राखिला-नृत्य रुकवाया; पूर्ववत्-पहले की तरह; आपने-स्वयं; नृत्य-नृत्य; करिते लागिला-करने लगे।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने सबका नृत्य रुकवा दिया और पहले की तरह वे स्वयं नाचने लगे।

प्रभुर सौन्दर्य देखि आर प्रेमोदय ।

‘एई त’ साक्षात्कृष्ण’ भट्टेर हइल निश्चये ॥78॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; सौन्दर्य-सुन्दरता; देखि-देखकर; आर—तथा; प्रेम-उदय-प्रेमभाव का प्राकट्य;
एइये; त’—निश्चित; साक्षात् साक्षात्; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; भट्टेर-वल्लभ भट्ट का; हइल-था; निश्चय-निश्चय।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के सौन्दर्य तथा उनके प्रेमावेश का उदय देखकर वल्लभ भट्ट ने निष्कर्ष निकाला कि, “निस्सन्देह, ये भगवान् कृष्ण हैं।”

एत मत रथ-यात्रा सकले देखिल ।

प्रभुर चरित्रे भट्टेर चमत्कार हैल ॥79॥

एत मत-इस प्रकार; रथ-यात्रा-रथयात्रा उत्सव; सकले-सभी ने; देखिल-देखा; प्रभुर चरित्रे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र द्वारा; भट्टेर-वल्लभ भट्ट को; चमत्कार हैल-आश्चर्य हुआ।

अनुवाद

इस तरह वल्लभ भट्ट ने रथयात्रा उत्सव देखा। वे श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र से चकित थे।

यात्रानन्तरे भट्ट झाड़ महाप्रभु-स्थाने ।

प्रभु-चरणे किछु कैल निवेदने ॥80॥

यात्रा-अनन्तरे-रथयात्रा के बाद; भट्ट-वल्लभ भट्ट; झाड़-जाकर; महाप्रभु-स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के निवास पर; प्रभु-चरणे-महाप्रभु के चरणकमलों में; किछु-कुछ; कैल-की; निवेदने-प्रार्थना।

अनुवाद

रथयात्रा समाप्त होने के बाद, एक दिन वल्लभ भट्ट श्री चैतन्य महाप्रभु के निवासस्थान पर गये और उनके चरणकमलों पर एक विनती की।

“भागवतेर टीका किछु करियाछि लिखन ।

आपने महाप्रभु यदि करेन श्रवण” ॥81॥

भागवतेर-श्रीमद्भागवत पर; टीका-व्याख्या; किछु-कुछ; करियाछि लिखन-मैंने लिखी है; आपने-आप; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; यदि-यदि; करेन श्रवण-सुनेंगे।

अनुवाद

“मैंने श्रीमद्भागवत पर कुछ टीका लिखी है। क्या कृपा करके आप इसे सुनेंगे?”

प्रभु कहे,—“भागवतार्थ बुझिते ना पारि ।

भागवतार्थ शुनिते आमि नहि अधिकारी” ॥82॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; भागवत-अर्थ- श्रीमद्भागवत का अर्थ; बुझिते ना पारि-मैं समझ नहीं सकता; भागवत-अर्थ- श्रीमद्भागवत का तात्पर्य; शुनिते-सुनने के लिए; आमि नहि अधिकारी-मैं योग्य पात्र नहीं हूँ।

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, “मैं श्रीमद्भागवत का अर्थ नहीं समझता। निस्सन्देह, मैं उसका अर्थ सुनने का सुपात्र नहीं हूँ।”

वसि' कृष्ण-नाम मात्र करिये ग्रहणे ।

सङ्ख्या-नाम पूर्ण मोर नहे रात्रि-दिने ॥83॥

वसि'-बैठकर; कृष्ण-नाम- भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम; मात्र केवल; करिये ग्रहणे-मैं जप करता हूँ; सङ्ख्या - नाम-निर्धारित संख्यापूर्वक; पूर्ण-पूरा; मोर-मेरा; नहे-नहीं; रात्रि-दिने सम्पूर्ण दिन और रात को।

अनुवाद

“मैं मात्र बैठकर कृष्ण के पवित्र नाम का जप करने का प्रयत्न करता हूँ और यद्यपि मैं रात-दिन नाम-जप करता हूँ, तो भी मैं नियत संख्या पूरी नहीं कर पाता।”

भट्ट कहे, “कृष्ण-नामेर अर्थ-व्याख्याने ।

विस्तार कैराछि, ताहा करह श्रवणे” ॥84॥

भट्ट कहे-वल्लभ भट्ट ने कहा; कृष्ण-नामेर-कृष्ण के पवित्र नाम के; अर्थ-व्याख्याने-अर्थ की व्याख्या; विस्तार-अत्यन्त विस्तारपूर्वक; कैराछि-मैंने बनाई है; ताहा-वह; करह श्रवणे-कृपया सुनिये।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट ने कहा, “मैंने कृष्ण के पवित्र नाम के अर्थ की विस्तार से व्याख्या करने का प्रयास किया है। कृपया उस व्याख्या को सुनें।”

प्रभु कहे,—“कृष्ण-नामेर बहु अर्थ ना मानि ।

‘श्याम-सुन्दर’ ‘यशोदा-नन्दन,’-एइ-मात्र जानि ॥85॥

प्रभु कहे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया; कृष्ण-नामेर-कृष्ण के पवित्र नाम के; बहु अर्थ-अनेक अर्थ; ना मानि-मैं नहीं स्वीकार करता; श्यामसुन्दर-श्यामसुन्दर; यशोदा-नन्दन-यशोदानन्दन; एइ-मात्र-केवल यही; जानि-मैं जानता हूँ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, “मैं कृष्ण के पवित्र नाम के कई अलग-अलग अर्थ स्वीकार नहीं करता। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि भगवान् कृष्ण श्यामसुन्दर तथा यशोदानन्दन हैं। बस, मैं इतना ही जानता हूँ।”

तमाल-श्यामल-त्विषि श्री-यशोदा-स्तनन्धये ।

कृष्ण-नाम्नो रूढिरिति सर्व-शास्त्र-विनिर्णयः ॥86॥

तमाल-श्यामल-त्विषि-जिसकी कान्ति गहरे नीले तमाल वृक्ष के समान है; श्री-प्रशोदा-स्तनम्-धये-माता यशोदा के स्तन का पान करनेवाले; कृष्ण-नाम्नः-कृष्ण नाम का; रूढिः-मुख्य अर्थ; इति-यही; सर्व-शास्त्र सारे प्रामाणिक शास्त्रों का; विनिर्णयः-निष्कर्ष।

अनुवाद

“कृष्ण के पवित्र नाम का एकमात्र तात्पर्य है कि वे तमाल वृक्ष की तरह गहरे नीले हैं और माता यशोदा के पुत्र हैं। यही समस्त प्रामाणिक शास्त्रों का निर्णय है।”

तात्पर्य

यह श्लोक नाम कौमुदी से है।

“एइ अर्थ आमि मात्र जानिये निर्धार ।

आर सर्व-अर्थे मोर नाहि अधिकार” ॥87॥

एइ अर्थ-यही अर्थ; आमि-मैं; मात्र केवल; जानिये-जानता हूँ; निर्धार-निष्कर्ष आर-अन्य; सर्व-सभी; अर्थे-अर्थों में; मोर-मेरी; नाहि-नहीं है; अधिकार-समझने की क्षमता।

अनुवाद

“मैं श्यामसुन्दर तथा यशोदानन्दन-इन्हीं दो नामों को निश्चित रूप से जानता हूँ। मैं कोई अन्य अर्थ नहीं समझता, न ही उनको समझने की मुझमें क्षमता है।”

फल्गु-प्राय भट्टेर नामादि सब-व्याख्या ।

सर्वज्ञ प्रभु जानि' तारे करेन उपेक्षा ॥88॥

फल्गु-प्राय-व्यर्थ प्रायः; भट्टेर-वल्लभ भट्ट की; नाम-आदि-नाम आदि की; सब-सभी; व्याख्या-व्याख्याएँ; सर्व-ज्ञ-सब जानने वाले; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; जानि'-जानकर; तारे-उनकी; करेन उपेक्षा-उपेक्षा करते हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु सर्वज्ञ हैं, अतएव वे यह समझ गये कि वल्लभ भट्ट की कृष्ण के पवित्र नाम तथा श्रीमद्भागवत की व्याख्याएँ व्यर्थ हैं। अतएव उन्होंने उनकी परवाह नहीं की।

विमना हजा भट्ट गेला निज-घर ।

प्रभु-विषये भक्ति किछु हइल अन्तर ॥89॥

विमना हजा-दुःखी होकर; भट्ट-वल्लभ भट्ट; गेला-गये; निज-घर-अपने घर; प्रभु-विषये-श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति; भक्ति-विश्वास; किछु-कुछ; हइल-हो गया; अन्तर-परिवर्तित ।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनकी व्याख्याएँ सुनने से साफ मना कर दिया, तो वल्लभ भट्ट खिन्न होकर अपने घर चले गये। महाप्रभु के प्रति उसकी श्रद्धा तथा भक्ति बदल गई।

तबे भट्ट गेला पण्डित-गोसाजिर ठाजि ।

नाना मते प्रीति करि' करे आसा-याइ ॥20॥

तबे-फिर; भट्ट-वल्लभ भट्ट; गेला-गये; पण्डित-गोसाजिर ठाजि-गदाधर पण्डित के निवास पर; नाना मते-अनेक प्रकार से; प्रीति करि'-स्नेह दिखाकर; करे आसा-याइ-आते और जाते।

अनुवाद

तत्पश्चात् वल्लभ भट्ट गदाधर पण्डित के घर गये। वे विभिन्न प्रकार से स्नेह प्रदर्शित करके आते-जाते रहे और उनके साथ सम्बन्ध बनाये रखे।

प्रभुर उपेक्षाय सब नीलाचलेर जन ।

भट्टेर व्याख्यान किछु ना करे श्रवण ॥91॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की उपेक्षाय-उपेक्षा के कारण; सब-सब; नीलाचलेर जन-जगन्नाथ पुरी में लोग; भट्टेर व्याख्यान-वल्लभ भट्ट की व्याख्या; किछु-कुछ; ना करे श्रवण-नहीं सुनते।

अनुवाद

चूँकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने वल्लभ भट्ट को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण नहीं किया, इसलिए जगन्नाथपुरी के किसी भी व्यक्ति ने उनकी कोई व्याख्या नहीं सुनी।

लज्जित हैल भट्ट, हैल अपमाने ।

दुःखित हवा गेल पण्डितेर स्थाने ॥92॥

लज्जित-शर्मिदा; हैल-होकर; भट्ट-वल्लभ भट्ट; हैल अपमाने-अपमानित अनुभव कर; दुःखित हवा-दुःखी होकर; गेल-गये; पण्डितेर स्थाने-गदाधर पण्डित के पास।

अनुवाद

लज्जित, अपमानित तथा दुःखित वल्लभ भट्ट गदाधर पण्डित के पास गये।

दैन्य करि' कहे,—“निलुँ तोमार शरण ।

तुमि कृपा करि' राख आमार जीवन” ॥ 93॥

दैन्य करि'—अत्यन्त विनम्रतापूर्वक; कहे-बोले; निहुँ-मैंने ली है; तोमार शरण-आपकी शरण; तुमि-आप; कृपा करि'—कृपा करके; राख-बचाइये; आमार जीवन-मेरा जीवन।

अनुवाद

उनके पास अत्यन्त विनीत भाव से पहुँचकर वल्लभ भट्ट ने कहा, “मान्यवर, मैंने आपकी शरण ले रखी है। आप मुझ पर कृपालु हों और मेरे प्राणों की रक्षा करें।

“कृष्ण-नाम-व्याख्या यदि करह श्रवण ।

तबे मोर लज्जा-पङ्क हय प्रक्षालन” ॥ 94॥

कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण के नाम की; व्याख्या-व्याख्या; यदि-यदि; करह श्रवण-आप सुनें; तबे-तो; मोर-मेरा; लज्जा-पङ्क-अपमान का कीचड़; हय-होगा; प्रक्षालन-धुल जायेगा।

अनुवाद

“कृपा करके आप कृष्णनाम के अर्थ की मेरी व्याख्या सुनें। इससे मेरे ऊपर जो लज्जा का कीचड़ पड़ा है, वह धुल सकेगा।”

सङ्कटे पड़िल पण्डित, करये संशय ।

कि करिबेन,—एको, करिते ना पारे निश्चय ॥95॥

सङ्कटे-शंका में; पड़िल पण्डित-गदाधर पण्डित पड़ गये; करये संशय-सन्देह करने लगे; कि करिबेन-वे क्या करेंगे; एको-अकेले; करिते ना पारे निश्चय-निश्चय नहीं कर पाये।

अनुवाद

इस तरह पण्डित गोसांई संकट में पड़ गये। वे ऐसे संशय में थे कि उनके लिए यह निश्चित कर पाना कठिन हो गया कि वे क्या करें।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने वल्लभ भट्ट को गम्भीरता से नहीं लिया। इसलिए पण्डित गोसांई अर्थात् गदाधर गोसांई बड़े ही संशय में पड़ गये। यदि वे वल्लभ भट्ट की कृष्ण-नाम व्याख्या को सुनते हैं, तो उनकी स्थिति क्या होगी? निश्चय ही, श्री चैतन्य महाप्रभु रुष्ट होंगे। इसलिए गदाधर पण्डित गोसांई कोई निर्णय नहीं कर पाये।

यद्यपि पण्डित आर ना कैला अङ्गीकार ।

भट्ट याइ' तबु पड़े करि' बलात्कार ॥96॥

यद्यपि यद्यपि, पण्डित-गदाधर पण्डित; आर-भी; ना कैला अङ्गीकार-स्वीकार नहीं किये; भट्ट-वल्लभ भट्ट; याइ'—जाकर; तबु-फिर भी; पड़े-पढ़ते रहे; करि' बलात्कार-जबरदस्ती।

अनुवाद

यद्यपि गदाधर पण्डित गोसांई सुनना नहीं चाहते थे, किन्तु वल्लभ भट्ट अत्यन्त बलपूर्वक से अपनी व्याख्या पढ़ने लगे।

आभिजात्ये पण्डित करिते नारे निषेधन ।

ए सङ्कटे राख, कृष्ण लइलाड शरण ॥ 97॥

आभिजात्ये-उनके उच्च पद के कारण; पण्डित-गदाधर पण्डित; करिते नारे निषेधन-मना नहीं कर पाये; ए सङ्कटे-इस संकट से; राख-कृपया रक्षा करो; कृष्ण-हे भगवान् कृष्ण; लइलाड-मैं लेता हूँ; शरण-शरण।

अनुवाद

चूँकि वल्लभ भट्ट विद्वान् ब्राह्मण थे, अतएव गदाधर पण्डित उन्हें रोक नहीं पाये। इस तरह उन्होंने कृष्ण का ध्यान किया। उन्होंने प्रार्थना की, “हे कृष्ण, इस संकट में मेरी रक्षा करें। मैं आपकी शरण में आया हूँ।”

“अन्तर्यामी प्रभु जानिबेन मोर मन ।

तारै भय नाहि किछु, 'विषम' तारै गण" ॥98॥

अन्तर्यामी-सबके हृदय में विद्यमान; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु: जानिबेन-जान जायेंगे; मोर मन-मेरा मन; तारै-उनका; भय-भय; नाहि-नहीं; किछु-कुछ; विषम-जटिल; तारै गण-उनके संगीगण।

अनुवाद

“श्री चैतन्य महाप्रभु जन-जन के हृदय में विद्यमान हैं, अतः वे निश्चय ही मेरे मन की बात जान लेंगे। इसलिए मुझे उनसे भय नहीं है। किन्तु उनके संगी अत्यन्त आलोचना-पटु हैं।”

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु जन-जन के हृदय में उपस्थित रहते हैं। इसलिए वे उस परिस्थिति को जान जायेंगे, जिसके अन्तर्गत पण्डित गोसांई को वल्लभ भट्ट की व्याख्या सुननी पड़ी और वे निश्चय ही रुष्ट नहीं होंगे। किन्तु, श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ रहने वाले वैष्णवगण गदाधर पण्डित के आन्तरिक मनोभावों को नहीं समझ सकेंगे और वे आरोप लगा सकते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा उपेक्षा किये जाने पर भी उन्होंने वल्लभ भट्ट के साथ समझौता कर लिया। गदाधर पण्डित गोसांई इस तरह गम्भीरतापूर्वक विचार कर रहे थे।

यद्यपि विचारे पण्डितेर नाहि किछु दोष ।

तथापि प्रभुर गण तारै करे प्रणय-रोष ॥99॥

यद्यपि यद्यपि; विचारे-देखने पर; पण्डितेर-गदाधर पण्डित का; नाहि किछु दोष-कोई दोष नहीं था; तथापि-फिर भी; प्रभुर गण-श्री चैतन्य महाप्रभु के गण; तारै-उनके प्रति; करे प्रणय-रोष-प्रेमपूर्ण क्रोध दिखाया।

अनुवाद

यद्यपि गदाधर पण्डित गोसांई का रंच भर भी दोष नहीं था, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के कुछ भक्तों ने उनके प्रति स्नेहमय रोष प्रकट किया।

प्रत्यह वल्लभ-भट्ट आइसे प्रभु-स्थाने ।

‘उद्ग्राहादि’ प्राय करे आचार्यादि-सने ॥100॥

प्रति-अह-प्रतिदिन; वल्लभ-भट्ट-वल्लभ भट्ट; आइसे-आते; प्रभु-स्थाने-भगवान् चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर;
उद्ग्राह-आदि प्राय-व्यर्थ के तर्क; करे-करते; आचार्य-आदि-सने-अद्वैत आचार्य तथा अन्यो के साथ।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट प्रति दिन श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर आते और अद्वैत आचार्य तथा स्वरूप दामोदर
जैसे महापुरुषों से व्यर्थ का तर्क करते थे।

येइ किछु करे भट्ट 'सिद्धान्त' स्थापन ।

शुनितेइ आचार्य ताहा करेन खण्डन ॥101॥

येइ-जो भी; किछु-कुछ; करे-करते; भट्ट-वल्लभ भट्ट; सिद्धान्त-निष्कर्ष; स्थापन-स्थापित; शुनितेइ-सुनते ही;
आचार्य-अद्वैत आचार्य; ताहा-वह; करेन खण्डन-खण्डन कर देते।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट उत्सुकतापूर्वक जितने भी सिद्धान्त प्रस्तुत करते, उन सबका खण्डन अद्वैत आचार्य जैसे
भक्त कर देते।

आचार्यादि-आगे भट्ट यबे यबे याय ।

राजहंस-मध्ये येन रहे बक-प्राय ॥102॥

आचार्य-आदि-आगे-अद्वैत आचार्य तथा अन्यो के समक्ष; भट्ट-वल्लभ भट्ट; यबे प्रबे-जब भी; याय-जाते; राज-
हंस-मध्ये-श्वेत हंसों की सभा में; येन-जैसे; रहे-रहते; बक-प्राय-बगुले के समान।

अनुवाद

जब भी वल्लभ भट्ट अद्वैत आचार्य इत्यादि भक्तों की सभा में प्रवेश करते, वे श्वेत हंसों की सभा में
बगुले जैसे प्रतीत होते।

एक-दिन भट्ट पुछिल आचार्ये ।

“जीव-‘प्रकृति’ ‘पति’ करि’ मानये कृष्णेरे” ॥103॥

एक-दिन-एक दिन; भट्ट-वल्लभ भट्ट ने पुछिल आचार्ये-अद्वैत आचार्य से पूछा; जीव-जीवात्मा; प्रकृति-स्त्री; पति-पति में; करि'-जैसे; मानये कृष्णरे-कृष्ण को स्वीकार करते हैं।

अनुवाद

एक दिन वल्लभ भट्ट ने अद्वैत आचार्य से कहा, “प्रत्येक जीव प्रकृति (स्त्री) है और वह कृष्ण को अपना पति मानता है।”

“पति-व्रता हज्जा पतिर नाम नाहि लय ।

तोमरा कृष्णा-नाम लह, —कोन् धर्म हय?” ॥ 104॥

पति-व्रता-पति को समर्पित; हज्जा-होकर; पतिर-पति का नाम-नाम; नाहि लय-नहीं लेती; तोमरा-आप सब; कृष्ण-नाम-लह-कृष्ण का नाम जप करते हैं; कोन्-क्या; धर्म-धार्मिक नियम; हय-यह है।

अनुवाद

“पतिव्रता स्त्री का धर्म है कि वह अपने पति का नाम न ले, किन्तु आप सब लोग तो कृष्ण के नाम का उच्चारण करते हैं। इसे किस तरह धर्म कहा जा सकता है?”

आचार्य कहे,—“आगे तोमार ‘धर्म’ मूर्तिमान् ।

इंहारे पुछह, इंह करिबेन इहार समाधान” ॥105॥

आचार्य कहे-अद्वैत आचार्य ने कहा; आगे-सामने; तोमार-आपके; धर्म-धार्मिक सिद्धान्त; मूर्तिमान्-मूर्त रूप; इंहारे पुछह-इनसे पूछो; इंह-वे; करिबेन-करेंगे; इहार-इसका; समाधान-समाधान।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने उत्तर दिया, “आपके समक्ष धर्म के साक्षात् मूर्तिमान् स्वरूप श्री चैतन्य महाप्रभु हैं। आप उनसे पूछो, तो वे ही आपको सही उत्तर देंगे।”

शुनि' प्रभु कहेन,—“तुमि ना जान धर्म-मर्म” ।

स्वामि-आज्ञा पाले,—एइ पति-व्रता-धर्म ॥106॥

शुनि'—सुनकर; प्रभु कहेन—श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; तुमि-आप; ना जान-नहीं जानते; धर्म-मर्म-वास्तविक धर्म के रहस्य को; स्वामि-स्वामी का; आज्ञा-आदेश; पाले-पालन करती है; एइ-यह; पति-व्रता-धर्म-एक पतिव्रता स्त्री का धर्म है।

अनुवाद

यह सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “हे वल्लभ भट्ट, आप धर्म के सिद्धान्तों को नहीं जानते। वास्तव में पतिव्रता स्त्री का सर्वप्रथम कर्तव्य यह है कि वह अपने पति की आज्ञा का पालन करे।”

पतिर आज्ञा,—निरन्तर तार नाम लइते ।

पतिर आज्ञा पति-व्रता ना पारे लइधिते ॥107॥

पतिर आज्ञा-पति का आदेश है; निरन्तर-सदैव; तार-उनका; नाम-नाम; लइते-जप करना; पतिर आज्ञा-पति का आदेश; पति-व्रता-समर्पित पत्नी; ना पारे लइधिते-उल्लंघन नहीं कर सकती।

अनुवाद

कृष्ण की आज्ञा है कि उनके नाम का निरन्तर कीर्तन हो। इसलिए जो स्त्री पतिरूप कृष्ण के परायण है, उसे भगवान् के नाम का कीर्तन करना चाहिए, क्योंकि वह अपने पति के आदेश का उल्लंघन नहीं कर सकती।

“अतएव नाम लय, नामेर ‘फल’ पाय ।

नामेर फले कृष्ण-पदे ‘प्रेम’ उपजाय” ॥108॥

अतएव-इसलिए; नाम लय-पवित्र नाम जप करता है; नामेर-नाम का; फल-परिणाम; पाय-प्राप्त करता है; नामेर फले-पवित्र नाम जप के फलस्वरूप; कृष्ण-पदे-कृष्ण के चरणकमलों में; प्रेम-प्रेमभाव; उपजाय-विकसित हो जाता है।

अनुवाद

“इस धार्मिक सिद्धान्त का पालन करते हुए कृष्ण का शुद्ध भक्त सदैव उनके पवित्र नाम का कीर्तन करता है। इसके फलस्वरूप उसे कृष्ण-प्रेम का फल प्राप्त होता है।”

शुनिया वल्लभ-भट्ट हैल निर्वचन ।

घरे याइ' मने दुःखे करेन चिन्तन ॥109॥

शुनिया-सुनकर; वल्लभ-भट्ट-वल्लभ भट्ट; हैल-हो गये; निर्वचन-मौन; घरे याइ'-घर लौटकर; मने-मन में; दुःखे-अप्रसन्न होकर; करेन चिन्तन-सोचने लगे।

अनुवाद

यह सुनकर वल्लभ भट्ट मूक हो गये। वे अत्यन्त दुःखी होकर घर लौट आये और इस तरह विचार करने लगे।

नित्य आमार एइ सभाय हय कक्षा-पात ।

एक-दिन उपरे यदि हय मोर बात् ॥110॥

“तबे सुख हय, आर सब लज्जा याय ।

स्व-वचन स्थापिते आमि कि करि उपाय?” ॥111॥

नित्य-प्रतिदिन; आमार-मेरी; एइ-इस; सभाय—सभा में; हय-होती है; कक्षा-पात-पराजय; एक-दिन-एक दिन; उपरे-ऊपर; यदि-यदि; हय-हो जायें; मोर-मेरे; बात्-वचन; तबे-तब; सुख-प्रसन्नता; हय-हो; आर-तथा; सब-सभी; लज्जा-शर्मिंदगी; याय-चली जाये; स्व-वचन-मेरा विचार; स्थापिते-स्थापित करने के लिए; आमि-मैं; कि-क्या; करि-क; उपाय-उपाय।

अनुवाद

“मैं इस सभा में प्रति दिन पराजित हो जाता हूँ। यदि कदाचित् किसी दिन मैं विजयी हो जाऊँ, तो वह मेरे लिए सुख का महान् स्रोत होगा और मेरी सारी लज्जा जाती रहेगी। किन्तु अपने कथनों को स्थापित करने के लिए मैं किन साधनों को अपनाऊँ?”

आर दिन आसि' वसिला प्रभुरे नमस्करि' ।

सभाते कहेन किछु मने गर्व करि' ॥112॥

आर दिन-अगले दिन; आसि'-आकर; वसिला-बैठ गये; प्रभुरे नमस्करि'-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को प्रणाम करके; सभाते-सभा में; कहेन-वे बोले; किछु-कुछ; मने-मन में; गर्व करि'-गर्व करके।

अनुवाद

अगले दिन जब वे श्री चैतन्य महाप्रभु की सभा में आये, तो महाप्रभु को नमस्कार करके वे बैठ गये और बड़े ही गर्व से कुछ कहने लगे।

भागवते स्वामीर व्याख्यान कैराछि खण्डन ।

लइते ना पारि तारँ व्याख्यान-वचन ॥113॥

भागवते- श्रीमद्भागवत पर अपनी टीका में; स्वामीर-श्रीधर स्वामी की; व्याख्यान- व्याख्या; कैराछि खण्डन-मैंने खण्डन किया है; लइते ना पारि-मैं स्वीकार नहीं कर सकता; तारँ-उनकी; व्याख्यान-वचन-व्याख्या को।

अनुवाद

उन्होंने कहा, “मैंने अपनी श्रीमद्भागवत की टीका में श्रीधर स्वामी की व्याख्याओं का खण्डन किया है। मैं उनकी व्याख्याओं को स्वीकार नहीं कर सकता।”

“सेइ व्याख्या करेन याहाँ येइ पड़े आनि ।

एक-वाक्यता नाहि, ताते ‘स्वामी’ नाहि मानि” ॥114॥

सेइ-वे; व्याख्या करेन-व्याख्या करते हैं; याहाँ-जहाँ पर भी; येइ-जो भी; पड़े-पढ़ते हैं; आनि-स्वीकार करते हैं; एक-वाक्यता-निरन्तरता; नाहि-नहीं है; ताते-अतः; स्वामी-श्रीधर स्वामी को; नाहि मानि-मैं स्वीकार नहीं कर सकता।

अनुवाद

“श्रीधर स्वामी जो भी पढ़ते हैं, उसकी व्याख्या परिस्थिति के अनुसार करते हैं। इसलिए उनकी व्याख्या में एकरूपता नहीं है और उन्हें प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।”

प्रभु हासि' कहे,—“स्वामी ना माने येइ जन ।

वेश्यार भितरे तारे करिये गणन” ॥115॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; हासि-हँसकर; कहे-कहा; स्वामी-पति; ना माने-नहीं मानती; ग्रेइ जन-जो कोई भी;
वेश्यार भितरे वेश्याओं के बीच; तारे-उसे; करिये गणन-मैं गिनता हूँ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने हँसते हुए उत्तर दिया, “जो व्यक्ति अपने स्वामी (पति) को अधिकारी नहीं मानता
उसे मैं वेश्या समझता हूँ।”

एत कहि' महाप्रभु मौन धरिला ।

शुनिया सबार मने सन्तोष हइला ॥116॥

एत कहि'-यह कहकर; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मौन धरिला-अत्यन्त गम्भीर हो गये; शुनिया-सुनकर;
सबार-सभी भक्तों के; मने-मन में; सन्तोष हइला-महान् सन्तोष हुआ।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त गम्भीर हो गये। वहाँ पर उपस्थित सारे भक्तों को यह कथन
सुनकर अतीव सन्तोष हुआ।

जगतेर हित लागि' गौर-अवतार ।

अन्तरेर अभिमान जानेन ताहार ॥117॥

जगतेर-समस्त जगत् के; हित लागि'-लाभ के लिए; गौर-अवतार-श्री चैतन्य महाप्रभु का अवतार; अन्तरेर
अभिमान-आन्तरिक गर्व; जानेन-समझ गये; ताहार-उनका।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु सारे जगत् के लाभ हेतु अवतार के रूप में प्रकट हुए हैं। इस तरह वे वल्लभ भट्ट के
मन को भलीभाँति जान चुके थे।

नाना अवज्ञाने भट्टे शोधेन भगवान् ।

कृष्ण यैछे खण्डिलेन इन्द्रेर अभिमान ॥118॥

नाना-अनेक प्रकार के; अवज्ञाने-असम्मान द्वारा; भट्टे-वल्लभ भट्ट का; शोधेन-शोधन करते हैं; भगवान्-परम भगवान्; कृष्ण-कृष्ण; यैछे-जैसे; खण्डिलेन-काटते हैं; इन्द्रे अभिमान-इन्द्र का अभिमान।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने अनेक संकेतों तथा खण्डनों के द्वारा वल्लभ भट्ट को उसी तरह सुधारा, जिस तरह कृष्ण ने इन्द्र के मिथ्या दर्प को खण्डित किया था।

तात्पर्य

इन्द्र को अपने पद का बहुत गर्व था। अतएव जब वृन्दावनवासियों ने इन्द्र यज्ञ सम्पन्न न करके कृष्ण के आदेशानुसार गोवर्धन यज्ञ करने का निश्चय किया, तो इन्द्र ने अपने मिथ्या गर्व के कारण वृन्दावनवासियों को दण्डित करना चाहा। उसने अपने आपको अत्यन्त शक्तिशाली मानकर वृन्दावन पर मूसलाधार वर्षा करनी प्रारम्भ कर दी, किन्तु भगवान् कृष्ण ने तुरन्त उसके दर्प को चूर करने के लिए ही वृन्दावनवासियों की रक्षा हेतु गोवर्धन पर्वत को छाते की तरह उठा लिया। इस तरह कृष्ण ने अपनी सर्वशक्तिमत्ता के समक्ष इन्द्र की शक्ति को नितान्त तुच्छ सिद्ध कर दिखाया।

अज्ञ जीव निज-‘हिते’ ‘अहित करि’ माने ।

गर्व चूर्ण हैले, पाछे उघाड़े नयने ॥ 119॥

अज्ञ जीव-अज्ञानी जीव; निज-हिते-अपने हित को; अहित करि’ माने-हानि मानता है; गर्व चूर्ण हैले-जब गर्व चला जाता है; पाछे-उसके बाद; उघाड़े नयने-आँखें खुलती हैं।

अनुवाद

अज्ञानी जीव अपना वास्तविक हित नहीं पहचान पाता। अज्ञानता तथा भौतिक गर्व के कारण वह कभी-कभी हित को अहित मानता है, किन्तु जब उसका गर्व चूर हो जाता है, तो वह अपने वास्तविक हित को देख सकता है।

घरे आसि’ रात्र्ये भट्ट चिन्तिते लागिल ।

“पूर्वे प्रयागे मोरे महा-कृपा कैल” ॥120॥

घरे आसि'—घर आकर; रात्र्ये-रात को; भट्ट-वल्लभ भट्ट; चिन्तिते लागिल-सोचने लगे; पूर्वे-पहले; प्रयागे-प्रयाग में; मोरे-मुझ पर; महा-कृपा कैल-अत्यन्त कृपा की थी।

अनुवाद

उस रात घर लौटकर वल्लभ भट्ट ने सोचा, “इसके पूर्व प्रयाग में श्री चैतन्य मुझ पर अत्यन्त दयालु थे।

स्वगण-सहिते मोर मानिला निमन्त्रण ।

एबे केने प्रभुर मोते फिरि' गेल मन? ॥121॥

स्व-गण-सहिते-अपने पार्षदों के साथ; मोर-मेरा; मानिला-स्वीकार किया; निमन्त्रण-निमन्त्रण; एबे-अब; केने-क्यों; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; मोते-मेरे प्रति; फिरि' गेल-बदल गया; मन-मन।

अनुवाद

उन्होंने अपने अन्य भक्तों सहित मेरा निमन्त्रण स्वीकार किया था और वे मुझ पर अत्यन्त कृपालु थे।
यहाँ जगन्नाथपुरी में वे इतना अधिक क्यों बदल गये हैं?

‘आमि जिति’,—एइ गर्व-शून्य हउक ईंहार चित ।

ईश्वर-स्वभाव,—करेन सबाकार हित ॥ 122॥

आमि जिति—मैं विजयी हो जाऊँ; एइ-यह; गर्व-घमंड; शून्य-रहित; हउक-हो जाये; ईंहार चित-इस व्यक्ति का मन; ईश्वर-स्वभाव-परम भगवान् के लक्षण; करेन-वे करते हैं; सजाकार-सभी का; हित-भला।

अनुवाद

“अपनी विद्या पर अत्यधिक गर्वित होकर मैं सोच रहा हूँ, ‘मुझे विजयी हो जाने दो।’ किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु मेरे इस मिथ्या गर्व को भंग करके मुझे शुद्ध बनाना चाह रहे हैं, क्योंकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का स्वभाव है कि वे हर एक के कल्याण के लिए कार्य करते हैं।”

आपना जानाइते आमि करि अभिमान ।

से गर्व खण्डाइते मोर करेन अपमान ॥123॥

आपना जानाइते-अपना विज्ञापन करके; आमि-मैं; करि अभिमान-मिथ्या अभिमान में हूँ; से गर्व-वह गर्व;
खण्डाइते-नष्ट करने के लिए; मोर करेन अपमान-उन्होंने मेरा अपमान किया।

अनुवाद

मैं अपने आपको विद्वान पण्डित घोषित करके मिथ्या ही गर्वित हूँ। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु मेरे
इस मिथ्या गर्व को चूर करके मुझ पर कृपा करने के लिए मेरा अपमान करते हैं।

आमार 'हित' करेन,—इहो आमि मानि 'दुःख' ।

कृष्णेर उपरे कैल येन इन्द्र महा-मूर्ख ॥124॥

आमार-मेरा; हित-भला; करेन-वे कर रहे हैं; इहो-यह; आमि-मैं; मानि-मानता हूँ; दुःख-दुःख; कृष्णेर उपरे—
कृष्ण पर; कैल-किया; येन-जैसे; इन्द्र-इन्द्र; महा-मूर्ख-महामूर्ख ने।

अनुवाद

“वे वास्तव में मेरे हित के लिए ऐसा कर रहे हैं, यद्यपि मैं उनके कार्यों को अपमान मानता हूँ। यह उसी
घटना के तुल्य है, जिसमें भगवान् कृष्ण ने गर्वित महामूर्ख इन्द्र को सही रास्ते पर लाने के लिए उसके गर्व को
चूर किया था।”

एत चिन्ति' प्राते आसि' प्रभुर चरणे ।

दैन्य करि' स्तुति करि' लइल शरणे ॥125 ॥

एत चिन्ति'—यह सोचकर; प्राते-प्रातः काल में; आसि-आकर; प्रभुर चरणे-श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों
में; दैन्य करि'—विनम्रतापूर्वक; स्तुति करि'—अनेक स्तुतियाँ करके; लइल शरणे-शरण ली।

अनुवाद

इस तरह सोचकर दूसरे दिन प्रातःकाल वल्लभ भट्ट श्री चैतन्य महाप्रभु के पास पहुँचे और अत्यन्त
दीनता के साथ अनेक स्तुतियाँ करके उन्होंने महाप्रभु के चरणकमलों की शरण ग्रहण कर ली।

“आमि अज्ञ जीव,—अज्ञोचित कर्म कैलुँ ।

तोमार आगे मूर्ख आमि पाण्डित्य प्रकाशिलुँ” ॥126॥

आमि-मैं; अज्ञ जीव-अज्ञानी जीव; अज्ञ-उचित मूर्खतापूर्ण; कर्म-कर्म; कैलुँ-मैंने किया है; तोमार आगे-आपके सामने; मूर्ख-मूर्ख; आमि-मैंने; पाण्डित्य प्रकाशिलुँ-विद्वत्ता प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट ने स्वीकार किया, “मैं महामूर्ख हूँ और निसन्देह आपके समक्ष अपना पाण्डित्य प्रदर्शित करने का प्रयास करके मैंने मूर्ख जैसा आचरण किया है।”

तुमि—ईश्वर, निजोचित कृपा ये करिला ।

अपमान करि’ सर्व गर्व खण्डाइला ॥ 127॥

तुमि-आप; ईश्वर-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; निज-उचित-आपकी स्थिति के योग्य; कृपा-कृपा; ये-वह; करिला-आपने की है; अपमान करि’-अपमान करके; सर्व-समस्त; गर्व-घमंड; खण्डाइला-आपके चूर कर दिया है।

अनुवाद

“हे प्रभु, आप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। आपने मेरा अपमान करकेमेरा समस्त मिथ्या गर्व चूर करने के लिए अपने पद के अनुकूल मुझ पर कृपा की है।”

आमि-अज्ञ, ‘हित’-स्थाने मानि ‘अपमाने’ ।

इन्द्र येन कृष्णेर निन्दा करिल अज्ञाने ॥128॥

आमि-मैं; अज्ञ-मूर्ख; हित-स्थाने-जो मेरे लिए हितकर है; मानि-मैं मानता हूँ; अपमाने-अपमान; इन्द्र-राजा इन्द्र ने; येन-जैसे; कृष्णेर-भगवान् कृष्ण के प्रति; निन्दा-अपराध; करिल-किया था; अज्ञाने-अज्ञान के कारण।

अनुवाद

“मैं अज्ञानी मूर्ख हूँ, क्योंकि जो मेरे हित के लिए है, उसे मैं अपमान मानता हूँ। इस प्रकार मैं राजा इन्द्र के समान हूँ, जिसने अज्ञानवश भगवान् कृष्ण को मात कर देना चाहा था।”

तोमार कृपा-अञ्जने एवे गर्व-आन्ध्य गेल ।

तुमि एत कृपा कैला,—एबे ‘ज्ञान’ हैल ॥129॥

तोमार कृपा-अञ्जने-आपकी कृपा रूपी अंजन द्वारा; एबे-अब; गर्व-आन्ध्य-मिथ्या अहंकार का अन्धापन; गेल-चला गया; तुमि-आपने; एत-ऐसी; कृपा-कृपा; कैला-की है; एबे-अब; ज्ञान-ज्ञान; हैल-हुआ है।

अनुवाद

“हे प्रभु, आपने मेरी आँखों में अपनी कृपा का अंजन लगाकर मेरे मिथ्या गर्व के अन्धेपन को दूर कर दिया है। आपने मुझ पर इतनी कृपा की है कि अब मेरा अज्ञान समाप्त हो गया है।”

“अपराध कैनु, क्षम, लइनु शरण ।

कृपा करि’ मोर माथे धरह चरण” ॥130॥

अपराध कैनु-मैंने अपराध किये हैं; क्षम-कृपया क्षमा करें; लइनु शरणमें शरण लेता हूँ; कृपा करि’-कृपा करके; मोर माथे-मेरे सिर पर; धरह चरण-आपके चरणकमल रख दीजिये।

अनुवाद

“हे प्रभु, मैंने अपराध किये हैं। कृपया आप मुझे क्षमा कर दें। मैं आपकी शरण में आया हूँ। कृपया अपने चरणकमलों को मेरे सिर पर रखकर आप मुझ पर कृपालु हों।”

प्रभु कहे “तुमि ‘पण्डित’ ‘महा-भागवत’ ।

दुइ-गुण याहाँ, ताहाँ नाहि गर्व-पर्वत ॥131॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; तुमि-आप; पण्डित-अत्यन्त विद्वान्; महा-भागवत-महान् भक्त; दुइ-गुण-दोनों गुण; याहाँ-जहाँ; ताहाँ-वहाँ; नाहि-नहीं हो सकता; गर्व-पर्वत-गर्व का पहाड़।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, “आप बहुत बड़े पण्डित तथा बहुत बड़े भक्त भी हो। जहाँ भी ऐसे दो गुण होते हैं, वहाँ मिथ्या गर्व का पर्वत नहीं रह सकता।”

श्रीधर-स्वामी निन्दि’ निज-टीका कर! ।

श्रीधर-स्वामी नाहि मान',—एत 'गर्व' धर! ॥132॥

श्रीधरस्वामी-श्रीमद्भागवत पर एक महान् भाष्यकार; निन्दि'-निन्दा करके; निज-टीका-अपनी टीका; कर-आपने रची है; श्रीधर-स्वामी-श्रीधर स्वामी को; नाहि मान-आप नहीं मानते; एत-यही; गर्व-घमंड; धर-आप रखते हो।

अनुवाद

“तुमने श्रीधर स्वामी की आलोचना करने का दुःस्साहस किया है। और उनकी प्रामाणिकता को न स्वीकार करके श्रीमद्भागवत पर अपनी टीका करनी शुरू की है। यही आपका मिथ्या गर्व है।”

श्रीधर-स्वामि-प्रसादे 'भागवत' जानि ।

जगद्गुरु श्रीधर-स्वामी 'गुरु' करि' मानि ॥133॥

श्रीधर-स्वामि-श्रीधर स्वामी की; प्रसादे-कृपा द्वारा; भागवत जानि-हम श्रीमद्भागवत को समझ सकते हैं; जगत्-गुरु-समस्त विश्व के गुरु; श्रीधरस्वामी-श्रीधर स्वामी; गुरु करि'-आध्यात्मिक गुरु के समान; मानि-मैं स्वीकार करता हूँ।

अनुवाद

“श्रीधर स्वामी सारे जगत् के गुरु हैं, क्योंकि उनकी कृपा से हम श्रीमद्भागवत को समझ सकते हैं। अतएव मैं उन्हें गुरु के रूप में मानता हूँ।”

श्रीधर-उपरे गर्वे ये किछु लिखिबे ।

‘अर्थ-व्यस्त’ लिखन सेइ, लोके ना मानिबे ॥134॥

श्रीधर-उपरे-श्रीधर स्वामी से आगे; गर्वे-अहंकार वश; ये किछु लिखिबे-आप जो कुछ भी लिखते हो; अर्थ-व्यस्त-विपरीत अर्थ; लिखन सेइ-ऐसा लेखन; लोके ना मानिबे-कोई भी परवाह नहीं करेगा।

अनुवाद

“श्रीधर स्वामी से श्रेष्ठ बनने का प्रयास करते हुए मिथ्या गर्व से आप चाहे जो भी लिखो, उसका विपरीत तात्पर्य होगा। इसलिए उसकी ओर कोई भी ध्यान नहीं देगा।”

तात्पर्य

परम्परा प्रणाली के अनुसार श्रीमद्भागवत की अनेक टीकाएँ हैं, किन्तु श्रीधर स्वामी की टीका सर्वप्रथम है। अन्य सभी आचार्यों की टीकाएँ उनकी ही टीका का अनुगमन करती हैं। परम्परा प्रणाली पूर्ववर्ती आचार्यों की टीकाओं से विपथ होने की अनुमति किसी को नहीं देती। पूर्ववर्ती आचार्यों पर निर्भर रहकर, सुन्दर टीकाएँ लिखी जा सकती हैं। किन्तु पूर्ववर्ती आचार्यों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। मिथ्या गर्व के कारण यदि कोई यह सोचता है कि वह पूर्ववर्ती आचार्यों से अच्छा लिख सकता है, तो उसकी टीका गलत हो जायेगी। आज यह फैशन बन गया है कि हर कोई मनमाने ढंग से लिखने लगा है, किन्तु ऐसी टीकाएँ गम्भीर भक्तों द्वारा स्वीकार नहीं की जातीं। मिथ्या गर्व के कारण, हर विद्वान और दार्शनिक अपने ढंग से शास्त्रों की, विशेषतया भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत की व्याख्या करके अपने पाण्डित्य को प्रकट करना चाहता है। अपने ढंग से टीका करने की इस पद्धति की श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूरी तरह से भर्त्सना की है। इसीलिए वे कहते हैं अर्थव्यस्त लिखन सेइ। अपनी खुद की दार्शनिक विचारधारा के अनुसार लिखी गई टीकाएँ मान्य नहीं होतीं। प्रामाणिक शास्त्रों पर इस तरह की टीकाओं की कोई प्रशंसा नहीं करेगा।

श्रीधरेर अनुगत ये करे लिखन ।

सब लोक मान्य करि' करिबे ग्रहण ॥135॥

श्रीधरेर-श्रीधर स्वामी के; अनुगत-चरणचिह्नों का अनुसरण करके; ये-जो कोई भी; करे लिखन-लिखता है; सब लोक-सभी; मान्य करि'-सम्मानपूर्वक; करिबे ग्रहण-स्वीकार करेंगे।

अनुवाद

“जो व्यक्ति श्रीधर स्वामी के चरणचिह्नों का अनुगमन करते हुए श्रीमद्भागवत पर टीका लिखता है, उसका सभी लोग सम्मान करेंगे और वह सबके द्वारा मान्य होगी।”

श्रीधरानुगत कर भागवत-व्याख्यान ।

अभिमान छाड़ि' भज कृष्ण भगवान् ॥136॥

श्रीधर-अनुगत-श्रीधर स्वामी के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए; कर-करो; भागवत-व्याख्यान-श्रीमद्भागवतम् पर व्याख्या; अभिमान छाड़ि'-मिथ्या अभिमान छोड़कर; भज-सेवा करो; कृष्ण भगवान्-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण की।

अनुवाद

“आप श्रीधर स्वामी के चरणचिह्नों का अनुगमन करते हुए श्रीमद्भागवत की अपनी व्याख्या प्रस्तुत करो। आप अपना मिथ्या गर्व त्याग दो और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करो।”

“अपराध छाड़ि’ कर कृष्ण-सङ्कीर्तन ।

अचिरात् पाबे तबे कृष्णेर चरण” ॥137॥

अपराध छाड़ि’—अपराध छोड़कर; कर कृष्ण-सङ्कीर्तन-कृष्ण नाम का कीर्तन करो; अचिरात्-अति शीघ्र; पाबे-आप प्राप्त करोगे; तबे-तब; कृष्णेर चरण-भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की शरण।

अनुवाद

“अपने अपराधों को छोड़कर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करो। तब आप शीघ्र ही कृष्ण के चरणकमलों की शरण पा सकोगे।”

भट्ट कहे,—“यदि मोरे हड़ला प्रसन्न ।

एक-दिन पुनः मोर मान’ निमन्त्रण” ॥138॥

भट्ट कहे-वल्लभ भट्ट ने कहा; यदि-यदि; मोरे-मेरे प्रति; हड़ला प्रसन्न-आप प्रसन्न हैं; एक-दिन-एक दिन; पुनः-फिर; मोर-मेरा; मान’—स्वीकार कीजिये; निमन्त्रण-निमन्त्रण।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रार्थना की, “यदि आप मुझ पर सचमुच प्रसन्न हैं, तो एक बार फिर मेरा निमन्त्रण स्वीकार कर लें।”

प्रभु अवतीर्ण हैला जगत्तारिते ।

मानिलेन निमन्त्रण, तारे सुख दिते ॥ 139॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु का; अवतीर्ण हैला-अवतार हुआ है; जगत्-विश्व के; तारिते-उद्धार के लिए; मानिलेन-उन्होंने स्वीकार किया; निमन्त्रण-बुलावा; तारे-उन्हें; सुख-प्रसन्नता; दिते-प्रदान करने के लिए।

अनुवाद

समस्त ब्रह्माण्ड का उद्धार करने के लिए अवतार लेने वाले श्री चैतन्य महाप्रभु ने वल्लभ भट्ट को सुख प्रदान करने हेतु उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

जगतेर 'हित' हउक-एइ प्रभुर मन ।

दण्ड करि' करे तार हृदय शोधन ॥140॥

जगतेर-समस्त विश्व का; हित-भला; हउक-हो; एइ-यह; प्रभुर मन-श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा; दण्ड करि'-दण्ड देकर; करे-करते हैं; तार-उसका; हृदय-हृदय; शोधन-शुद्धीकरण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु इस भौतिक जगत् में हर एक को सुखी देखने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं। इसलिए कभी-कभी वे किसी-किसी को दण्ड देते हैं, जिससे वह अपने हृदय को शुद्ध कर सके।

स्वगण-सहित प्रभुर निमन्त्रण कैला ।

महाप्रभु तारे तबे प्रसन्न हइला ॥141॥

स्व-गण-सहित-उनके संगियों के साथ; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु को; निमन्त्रण-निमन्त्रण; कैला-किया; महाप्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; तारे—उस पर; तबे-तब; प्रसन्न हइला-अत्यन्त प्रसन्न हुए।

अनुवाद

जब वल्लभ भट्ट ने श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके संगियों को निमन्त्रित किया, तो महाप्रभु उनसे अत्यधिक प्रसन्न थे।

जगदानन्द-पण्डितेर शुद्ध गाढ़ भाव ।

सत्यभामा-प्राय प्रेम 'वाम्य-स्वभाव' ॥ 142॥

जगदानन्द-पण्डितेर-जगदानन्द पण्डित का; शुद्ध-शुद्ध; गाढ़-गहरा; भाव-प्रेमभाव; सत्यभामा-प्राय-सत्यभामा के समान; प्रेम-उनका भगवान् के प्रति प्रेम; वाम्य-स्वभाव-झगड़े के स्वभाव का।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए जगदानन्द पण्डित का शुद्ध प्रेमभाव अत्यन्त प्रगाढ़ था। इसकी तुलना सत्यभामा के प्रेम से की जा सकती है, जो कृष्ण से सदैव झगड़ती रहती थीं।

बार-बार प्रणय कलह करे प्रभु-सने ।

अन्योऽन्ये खट्मटि चले दुइ-जने ॥143॥

बार-बार-बारम्बार; प्रणय-प्रेममय; कलह-झगड़ा; करे-करते; प्रभु-सने-श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ; अन्योऽन्ये-आपस में; खट्मटि-अनबन; चले-चलती है; दुइ-जने-दोनों के बीच।

अनुवाद

जगदानन्द पण्डित में महाप्रभु से प्रेमपूर्ण झगड़ा करने की आदत थी। उन दोनों के बीच सदैव कुछ न कुछ खटपट चलती रहती थी।

गदाधर-पण्डितेर शुद्ध गाढ़ भाव ।

रुक्मिणी-देवीर यैछे दक्षिण-स्वभाव ॥ 144॥

गदाधर-पण्डितेर-गदाधर पण्डित का; शुद्ध-शुद्ध; गाढ़-गहरा; भाव-प्रेमभाव; रुक्मिणी-देवीर-रुक्मिणी देवी; यैछे-जैसे; दक्षिण-स्वभाव-समर्पित स्वभाव।

अनुवाद

गदाधर पण्डित का भी श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति शुद्ध प्रेम अत्यन्त प्रगाढ़ था। यह प्रेम रुक्मिणी देवी जैसा था, जो सदैव कृष्ण के प्रति विनीत बनी रहती थीं।

ताँर प्रणय-रोष देखते प्रभुर इच्छा हय ।

ऐश्वर्य-ज्ञाने ताँर रोष नाहि उपजय ॥145॥

ताँर-उनका; प्रणय-रोष-स्नेहपूर्ण क्रोध; देखते-देखने की; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; इच्छा हय-इच्छा होती; ऐश्वर्य-ज्ञाने-ऐश्वर्य ज्ञान के कारण; ताँर-उनका; रोष-क्रोध; नाहि-नहीं; उपजय-जागता।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कभी-कभी गदाधर पण्डित का स्नेहिल क्रोध (मान) देखना चाहते थे, किन्तु महाप्रभु के ऐश्वर्य का ज्ञान होने के कारण वे कभी रुष्ट नहीं होते थे।

तात्पर्य

द्वारका में रुक्मिणी से परिहास करते समय कृष्ण ने उन्हें सलाह दी थी कि वे अपने लिए दूसरा पति चुन लें, क्योंकि वे उनके लिए अपने आपको अनुपयुक्त समझते थे। किन्तु रुक्मिणी उनके परिहास को नहीं समझ पाई; अतएव वे उनके विछोह के भय से तुरन्त पृथ्वी पर अचेत होकर गिर पड़ीं। श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं में जगदानन्द पण्डित सदैव सत्यभामा की तरह महाप्रभु से प्रतिकूल रहते, जबकि गदाधर पण्डित महाप्रभु के ऐश्वर्य से सदैव प्रभावित रहते, अतएव वे हर परिस्थिति में महाप्रभु के प्रति विनीत बने रहते।

एइ लक्ष्य पाजा प्रभु कैला रोषाभास ।

शुनि' पण्डितेर चित्ते उपजिल त्रास ॥146॥

एइ-यह; लक्ष्य-उद्देश्य; पाजा-लेकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कैला रोष-आभास-क्रोध का दिखावा करते हैं; शुनि'-सुनकर; पण्डितेर-गदाधर पण्डित के; चित्ते-हृदय में; उपजिल-उत्पन्न हो गया; त्रास-भय।

अनुवाद

इसी कारण से श्री चैतन्य महाप्रभु कभी-कभी ऊपरी रोष प्रकट करते थे। इस रोष को सुनकर गदाधर पण्डित के हृदय में महान् भय उत्पन्न हो जाता।

पूर्वे येन कृष्ण यदि परिहास कैल ।

शुनि' रुक्मिणीर मने त्रास उपजिल ॥147॥

पूर्वे-पहले; येन-जैसे; कृष्ण-भगवान् कृष्ण; यदि-जब; परिहास कैल-मजाक करते हैं; शुनि'-सुनकर; रुक्मिणीर मने-रुक्मिणी देवी के मन में; त्रास-भय; उपजिल-उत्पन्न होता।

अनुवाद

पहले, कृष्ण लीला में जब भगवान् कृष्ण ने रुक्मिणी देवी से परिहास किया था, तब उन्होंने उनके शब्दों को गम्भीरता से लिया, जिससे उनके मन में भय उत्पन्न हो गया।

वल्लभ-भट्टेर हय वात्सल्य-उपासन ।

बाल-गोपाल-मन्त्रे तेंहो करेन सेवन ॥148॥

वल्लभ-भट्टेर-वल्लभ भट्ट की; हय-है; वात्सल्य-उपासन-वात्सल्य भाव में उपासना; बाल-गोपाल-मन्त्रे-बालगोपाल मन्त्र से; तेंहो-वे; करेन-करते हैं; सेवन-उपासना।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट भगवान् कृष्ण की बाल रूप की पूजा किया करते थे। इसलिए उन्हें बालगोपाल मन्त्र की दीक्षा मिली थी और वे इसी रूप में भगवान् की पूजा करते थे।

पण्डितेर सने तार मन फिरि' गेल ।

किशोर-गोपाल-उपासनाय मन दिल ॥ 149॥

पण्डितेर सने-गदाधर पण्डित के संग में; तार-उनका; मन-मन; फिरि' गेल-बदल गया; किशोर-गोपाल-किशोर अवस्था के कृष्ण की; उपासनाय-उपासना का; मन दिल-मन बना लिया।

अनुवाद

गदाधर पण्डित की संगति से उनका मन बदल गया और उन्होंने किशोर गोपाल की पूजा में अपने मन को समर्पित कर दिया।

पण्डितेर ठाजि चाहे मन्त्रादि शिखिते ।

पण्डित कहे,—“एइ कर्म नहे आमा हैते” ॥150॥

पण्डितेर ठाजि-गदाधर पण्डित से; चाहे-चाहे; मन्त्र-आदि शिखिते-दीक्षा लेना; पण्डित कहे-गदाधर पण्डित ने कहा; एइ कर्म-यह कार्य; नहे आमा हैते-मेरे लिए सम्भव नहीं है।

अनुवाद

वल्लभ भट्ट गदाधर पण्डित से दीक्षा लेना चाहते थे, किन्तु गदाधर पण्डित ने यह कहकर मना कर दिया, “मेरे लिए गुरु के रूप में कार्य करना सम्भव नहीं है।”

आमि-परतन्त्र, आमार प्रभु-गौरचन्द्र ।

ताँर आज्ञा बिना आमि ना हइ ‘स्वतन्त्र’ ॥151॥

आमि-मैं; परतन्त्र-अधीन हूँ; आमार प्रभु-मेरे प्रभु; गौरचन्द्र-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; ताँर-उनके; आज्ञा-आदेश; बिना-बिना; आमि-मैं; ना-नहीं; हइ-हूँ; स्वतन्त्र-स्वतन्त्र।

अनुवाद

“मैं पूरी तरह से परतन्त्र हूँ। मेरे प्रभु तो गौरचन्द्र श्री चैतन्य महाप्रभु हैं। मैं उनके आदेश के बिना स्वतन्त्र रूप से कुछ भी नहीं कर सकता।”

“तुमि ने आमार ठाजि कर आगमन ।

ताहातेइ प्रभु मोरे देन ओलाहन” ॥152॥

तुमि-आप; ये-जो; आमार ठाजि-मेरे पास; कर आगमन-आते हो; ताहातेइ-उस कारण; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; मोरे-मुझे; देन-देते हैं; ओलाहन-शब्दों से दण्ड।

अनुवाद

“हे वल्लभ भट्ट, मेरे यहाँ आपका आना श्री चैतन्य महाप्रभु को पसन्द नहीं है। इसलिए कभी-कभी वे मुझे दण्डित करने के लिए बोलते रहते हैं।”

एइ-मत भट्टेर कथेक दिन गेल ।

शेषे यदि प्रभु तारे सुप्रसन्न हैल ॥ 153॥

निमन्त्रणेरे दिने पण्डिते बोलाइला ।

स्वरूप, जगदानन्द, गोविन्दे पाठाइला ॥ 154॥

एइ-मत-इस प्रकार; भट्टेर-वल्लभ भट्ट के; कथेक दिन-कुछ दिन; गेल-बीत गये; शेषे-अन्त में; यदि-जब; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; तारे-उन पर; सु-प्रसन्न हैल-प्रसन्न हो गये; निमन्त्रणेन दिने-निमन्त्रण के दिन; पण्डिते बोलाइला-गदाधर पण्डित को उन्होंने बुलाया; स्वरूप-स्वरूप दामोदर को; जगदानन्द-जगदानन्द पण्डित को; गोविन्दे-गोविन्द को; पाठाइला-उन्होंने भेजा।

अनुवाद

इस तरह कुछ दिन बीत गये और जब अन्त में श्री चैतन्य महाप्रभु वल्लभ भट्ट पर प्रसन्न हुए, तो उन्होंने उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। तब महाप्रभु ने स्वरूप दामोदर, जगदानन्द पण्डित तथा गोविन्द को गदाधर पण्डित को बुलाने के लिए भेजा।

पथे पण्डितेरे स्वरूप कहेन वचन ।

“परीक्षिते प्रभु तोमारे कैला उपेक्षण” ॥155॥

पथे-मार्ग में; पण्डितेरे-गदाधर पण्डित से; स्वरूप-स्वरूप दामोदर ने; कहेन वचन-कुछ वचन कहे; परीक्षिते-परीक्षा लेने के लिए; प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने; तोमारे-तुम्हारी; कैला उपेक्षण-उपेक्षा की।

अनुवाद

रास्ते में स्वरूप दामोदर ने गदाधर पण्डित से कहा, “श्री चैतन्य महाप्रभु तुम्हारी परीक्षा लेना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने तुम्हारी उपेक्षा की है।”

“तुमि केने आसि” तारै ना दिला ओलाहन? ।

भीत-प्राय हजा काँहे करिला सहन?” ॥156॥

तुमि-तुमने; केने-क्यों; आसि-आकर; तारै-उन्हें; ना दिला-नहीं दिया; ओलाहन-उलाहना; भीत-प्राय-भयभीत; हा-होकर; काँहे-क्यों; करिला सहन-तुमने सहन किया।

अनुवाद

“तुमने पलटकर उनकी उलाहना क्यों नहीं की? तुमने डरकर उनकी आलोचना क्यों सह ली?”

पण्डित कहेन,—प्रभु स्वतन्त्र सर्वज्ञ-शिरोमणि ।

ताँ सने ‘हठ’ करि,—भाल नाहि मानि ॥ 157॥

पण्डित कहेन-गदाधर पण्डित ने कहा; प्रभु-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; स्वतन्त्र-स्वतन्त्र; सर्वज्ञ-शिरोमणि-सर्वश्रेष्ठ सर्वज्ञ हैं; ताँ सने-उनके साथ; हठ करि-यदि मैं समान स्तर पर बात करता हूँ; भाल-अच्छा; नाहि मानि-मैं नहीं मानता।

अनुवाद

गदाधर पण्डित ने कहा, “भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। वे सर्वोच्च सर्वज्ञ पुरुष हैं। मेरे लिए शोभा नहीं देता कि मैं उनके बराबर बनकर उनसे बात करता।”

“येइ कहे, सेइ सहि निज-शिरे धरि’ ।

आपने करिबेन कृपा गुण-दोष विचारि” ॥158॥

येइ कहे-वे जो भी कहते हैं; सेइ सहि-मैं सहन करता हूँ; निज-शिरे-मेरे सिर पर; धरि’-धारण कर; आपने-स्वयं; करिबेन कृपा-वे कृपा करेंगे; गुण-दोष-गुण और दोष; विचार-विचार करके।

अनुवाद

“वे जो भी कहते हैं, उसे मैं शिरोधार्य करके सहन कर सकता हूँ। वे मेरे गुण तथा दोषों पर विचार करके स्वयं ही मुझ पर कृपालु होंगे।”

एत बलि’ पण्डित प्रभुर स्थाने आइला ।

रोदन करिया प्रभुर चरणे पड़िला ॥159॥

एत बलि’-यह कहकर; पण्डित-गदाधर पण्डित; प्रभुर स्थाने-श्री चैतन्य महाप्रभु के निवासस्थान पर; आइला-आ गये; रोदन करिया-रोकर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; चरणे-चरणकमलों में; पड़िला-गिर गये।

अनुवाद

यह कहकर गदाधर पण्डित श्री चैतन्य महाप्रभु के पास गये और रोते हुए उनके चरणकमलों पर गिर पड़े।

ईषत् हासिया प्रभु कैला आलिङ्गन ।

सबारे शुनाजा कहेन मधुर वचन ॥ 160 ॥

ईषत् हासिया-मन्द मुस्कराकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैला आलिङ्गन-आलिंगन किया; सबारे—सभी को; शुनाजा-सुनाते हुए; कहेन—कहने लगे; मधुर वचन-मधुर वचन।

अनुवाद

कुछ-कुछ हँसते हुए महाप्रभु ने उनका आलिंगन किया और उनसे मधुर वचन कहे, जिससे अन्य लोग भी सुन सकें।

“आमि चालाइलुँ तोमा, तुमि ना चलिला ।

क्रोधे किछु ना कहिला, सकल सहिला” ॥ 161॥

आमि-मैंने; चालाइलुँ-विचलित करने का प्रयास किया; तोमा-तुम्हें; तुमि-तुम; ना चलिला—विचलित नहीं हुए; क्रोधे-क्रोध में; किछु—कुछ; ना कहिला-तुमने नहीं कहा; सकल-सब कुछ; सहिला-तुमने सहन किया।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, “मैं तुम्हें उत्तेजित करना चाहता था, किन्तु तुम उत्तेजित नहीं हुए। निस्सन्देह, क्रोध में तुमने कुछ नहीं कहा; प्रत्युत तुमने सब सह लिया।

“आमार भङ्गीते तोमार मन ना चलिला ।

सुदृढ़ सरल-भावे आमारे किनिला” ॥162॥

आमार भङ्गीते—मेरी युक्ति द्वारा; तोमार मन—तुम्हारा मन; ना चलिला—विचलित नहीं हुआ; सुदृढ़-दृढ़; सरल-भावे-सरलता द्वारा; आमारे-मुझे; किनिला तुमने खरीद लिया।

अनुवाद

“तुम्हारा मन मेरी युक्तियों से विचलित नहीं हुआ। प्रत्युत तुम अपनी सरलता में दृढ़ बने रहे। इस तरह तुमने मुझे खरीद लिया है।”

पण्डितेर भाव-मुद्रा कहन ना याय ।

‘गदाधर-प्राण-नाथ’ नाम हैल याय ॥163॥

पण्डितेर-गदाधर पण्डित का; भाव-मुद्रा-चरित्र और प्रेमभाव; कहन ना याय-वर्णन नहीं किया जा सकता; गदाधर-प्राण-नाथ-गदाधर के प्राणेश्वर; नाम-नाम; हैल-हो; याय-गया।

अनुवाद

कोई भी व्यक्ति गदाधर पण्डित की भाव-भंगिमाओं तथा प्रेम का वर्णन नहीं कर सकता। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु का दूसरा नाम ‘गदाधर प्राणनाथ’ अर्थात् ‘गदाधर पण्डित के प्राण है।

पण्डिते प्रभुर प्रसाद कहन ना याय ।

‘गदाइर गौराङ्ग’ बलि’ यारै लोके गाय ॥164॥

पण्डिते-गदाधर पण्डित पर; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; प्रसाद कृपा; कहन ना याय-कोई वर्णन नहीं कर सकता; गदाइर गौराङ्ग-गदाधर पण्डित के गौरांग; बलि’-कहकर; यारै-जिन्हें; लोके गाय-लोग बुलाते हैं।

अनुवाद

कोई कह नहीं सकता कि महाप्रभु गदाधर पण्डित पर कितने कृपालु हैं, किन्तु लोग महाप्रभु को गदाइर गौरांग अर्थात् “गदाधर पण्डित के गौरांग महाप्रभु” के रूप में जानते हैं।

चैतन्य-प्रभुर लीला के बुझिते पारे? ।

एक-लीलाय वहे गङ्गार शत शत धारे ॥ 165 ॥

चैतन्य-प्रभुर लीला-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ, के-कौन; बुझिते पारे-समझ सकता है; एक-लीलाय-एक लीला में; वहे-बहती है; गङ्गार-गंगा की; शत शत धारे-सौ-सौ धाराएँ।

अनुवाद

कोई भी श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं को समझ नहीं सकता। वे गंगा के समान हैं, क्योंकि उनकी एक लीला से ही सैकड़ों हजारों शाखाएँ बहती हैं।

पण्डितेर सौजन्य, ब्रह्मण्यता-गुण ।

दृढ़ प्रेम-मुद्रा लोके करिला ख्यापन ॥166॥

पण्डितेर सौजन्य-गदाधर पण्डित का सभ्य आचरण; ब्रह्मण्यता-गुण-एक ब्राह्मण के गुण; दृढ़-दृढ़; प्रेम-मुद्रा-प्रेम का लक्षण; लोके-लोग; करिला ख्यापन-विख्यात हुए।

अनुवाद

गदाधर पण्डित अपने सौम्य आचरण, अपने ब्राह्मण गुणों तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति अपने दृढ़ प्रेम के लिए सारे जगत् में विख्यात हैं।

अभिमान-पङ्क धुजा भट्टरे शोधिला ।

सेइ-द्वारा आर सब लोके शिखाइला ॥167॥

अभिमान-पङ्क-मिथ्या अभिमान का कीचड़; धुजा-धोकर; भट्टरे शोधिला-वल्लभ भट्ट का शोधन किया; सेइ-द्वारा-उसके द्वारा; आर सब-अन्य सभी; लोके-लोगों को; शिखाइला-शिक्षा दी।

अनुवाद

महाप्रभु ने मिथ्या गर्व के कीचड़ को साफ करके वल्लभ भट्ट को शुद्ध किया। ऐसे कार्यों से महाप्रभु ने अन्यो को भी शिक्षा दी।

अन्तरे अनुग्रह, बाह्ये 'उपेक्षार प्राय' ।

बाह्यार्थ येइ लय, सेइ नाश याय ॥ 168॥

अन्तरे-हृदय में; अनुग्रह-कृपा; बाह्य-बाहर; उपेक्षार प्राय-उपेक्षा जैसे; बाह्य-अर्थ-बाहरी अर्थ; येइ-जो कोई; लय-लेता है; सेइ-वह; नाश याय-नष्ट हो जायेगा।

अनुवाद

वस्तुतः श्री चैतन्य महाप्रभु अपने हृदय के भीतर सदैव कृपालु रहते, किन्तु कभी-कभी वे अपने भक्तों की बाह्य रूप से उपेक्षा करते थे। अतः हमें उनके बाह्य लक्षणों में ही नहीं लगे रहना चाहिए, क्योंकि यदि हम ऐसा करेंगे, तो हमारा विनाश हो जायेगा।

निगूढ़ चैतन्य-लीला बुझिते कार शक्ति? ।

सेइ बुझे, गौरचन्द्रे याँर दृढ़ भक्ति ॥169॥

निगूढ़-अति गहरी; चैतन्य-लीला-चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; बुझिते-समझने की; कार-किसकी; शक्ति-शक्ति; सेइ बुझे-वह समझता है; गौरचन्द्रे-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु में; याँर-जिसकी; दृढ़ भक्ति-अबाध भक्ति भावना है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अगाध हैं। इन्हें कौन समझ सकता है? केवल वही इन लीलाओं को समझ सकता है, जिसकी उनके चरणकमलों में दृढ़ एवं अगाध भक्ति होती है।

दिनान्तरे पण्डित कैल प्रभुर निमन्त्रण ।

प्रभु ताहाँ भिक्षा कैल लजा निज-गण ॥ 170 ॥

दिन-अन्तरे-एक और दिन; पण्डित-गदाधर पण्डित ने; कैल प्रभुर निमन्त्रण-श्री चैतन्य महाप्रभु को निमंत्रित किया; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; ताहाँ-वहाँ; भिक्षा कैल-प्रसाद ग्रहण किया; लजा निज-गण-अपने संगी गणों के साथ।

अनुवाद

अन्य दिन गदाधर पण्डित ने श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन पर बुलाया। महाप्रभु ने अपने संगियों सहित उनके घर पर भोजन किया।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर टीका करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने वल्लभ भट्ट के प्रति अत्यन्त दयालु शुभचिन्तक के रूप में उनके पांडित्य के झूठे गर्व को शुद्ध करने के लिए बाह्य रूप से अनेक प्रकार से उपेक्षा की। इसी तरह महाप्रभु ने कुछ दिनों तक गदाधर पण्डित की अवहेलना की, क्योंकि वे वल्लभ भट्ट से संगति कर रहे थे। वस्तुतः

वे गदाधर पण्डित से जरा भी अप्रसन्न नहीं थे। चूँकि गदाधर पण्डित श्री चैतन्य महाप्रभु की निजी शक्ति हैं, अतएव महाप्रभु के उनसे कुपित होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु जो व्यक्ति बाह्य वस्तुओं में अत्यधिक लिप्त रहता है, वह श्री चैतन्य महाप्रभु के इन व्यवहारों का गूढ़ अर्थ नहीं समझ सकता। इसलिए यदि कोई गदाधर पण्डित का अनादर करेगा, तो उसका सर्वनाश हो जायेगा।

ताहाडि वल्लभ-भट्ट प्रभुर आज्ञा लैल ।

पण्डित-ठाजि पूर्व-प्रार्थित सब सिद्धि हैल ॥ 171

ताहाडि-वहाँ; वल्लभ-भट्ट-वल्लभ भट्ट; प्रभुर आज्ञा-श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा; लैल-लेकर; पण्डित-ठाजि-गदाधर पण्डित से; पूर्व-प्रार्थित-पहले से प्रार्थित; सब सिद्धि हैल-सब कुछ उत्तम प्रकार से प्राप्त हुआ।

अनुवाद

वहीं पर वल्लभ भट्ट ने श्री चैतन्य महाप्रभु से अनुमति ली और गदाधर पण्डित से दीक्षा लेने की उनकी इच्छा पूरी हुई।

एइ त' कहिलुँ वल्लभ-भट्टेर मिलन ।

याहार श्रवणे पाय गौर-प्रेम-धन ॥172॥

एइ त कहिलुँ—इस प्रकार मैंने वर्णन किया; वल्लभ-भट्टेर मिलन-वल्लभ भट्ट का मिलन; याहार श्रवणे-जिसे सुनकर; पाय-प्राप्त होता है; गौर-प्रेम-धन-श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रेम का खजाना।

अनुवाद

इस तरह मैंने वल्लभ भट्ट से महाप्रभु की भेंट का वर्णन किया। इस घटना को सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति प्रेम का धन प्राप्त हो सकता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥173॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी के; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे-चरणों में; यार-जिनकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा उनकी कृपा की सदैव कामना करते हुए उनके चरणचिह्नों पर चलकर मैं कृष्णदास श्री चैतन्य चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्य लीला के अन्तर्गत “श्री चैतन्य महाप्रभु एवं वल्लभ भट्ट की भेंट” शीर्षक सातवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय आठ

रामचन्द्र पुरी द्वारा महाप्रभु की आलोचना

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने अमृत प्रवाह भाष्य में आठवें अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है : इस अध्याय में रामचन्द्र पुरी के साथ महाप्रभु के व्यवहार की कथा कही गई है। यद्यपि रामचन्द्र पुरी माधवेन्द्र पुरी का शिष्य था, किन्तु वह शुष्क मायावादियों द्वारा प्रभावित था, इसलिए वह माधवेन्द्र पुरी की आलोचना करता था। फलतः माधवेन्द्र पुरी ने उसे अपराधी कहकर तिरस्कृत कर दिया था। चूँकि रामचन्द्र पुरी अपने गुरु द्वारा तिरस्कृत हो चुका था, इसलिए वह केवल अन्यो में दोष निकालता रहता था और उन्हें शुष्क मायावाद दर्शन के अनुसार उपदेश देता था। इसी कारण से वह वैष्णवों का आदर नहीं करता था। बाद में वह इतना पतित हो गया कि श्री चैतन्य महाप्रभु के भोजन करने की भी आलोचना करने लगा। उसकी आलोचना सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने भोजन करना कम कर दिया, किन्तु रामचन्द्र पुरी जब जगन्नाथपुरी से चला गया तो महाप्रभु पूर्ववत् आचरण करने लगे।

तं वन्दे कृष्ण-चैतन्यं रामचन्द्र-पुरी-भयात् ।

लौकिकाहारतः स्वं यो भिक्षान्नं समकोचयत् ॥१॥

तम्-उनकी; वन्दे-मैं वन्दना करता हूँ; कृष्ण-चैतन्यम्-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की; रामचन्द्र-पुरी-भयात्-रामचन्द्र पुरी के भय से; लौकिक-साधारण; आहारतः-आहार से; स्वम्-अपना; ग्रः-जिन्होंने; भिक्षा-अन्नम्-भोजन की मात्रा; समकोचयत्-कम कर दी।

अनुवाद

मैं उन श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने रामचन्द्र पुरी की आलोचना से डरकर अपना भोजन करना कम कर दिया।

जय जय श्री-चैतन्य करुणा-सिन्धु-अवतार ।

ब्रह्मा-शिवादिक भजे चरण याँहार ॥2॥

जय जय-जय हो; श्री-चैतन्य-श्री चैतन्य महाप्रभु की; करुणा-सिन्धु-अवतार-जो करुणा के सागर के अवतार हैं;
ब्रह्मा-शिव-आदिक-ब्रह्मा, शिव आदि देवगण; भजे-उपासना करते हैं; चरण-चरणकमल; याँहार-जिनके।

अनुवाद

करुणा के सागर श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! उनके चरणकमलों की पूजा ब्रह्माजी तथा शिवजी
जैसे देवता तक करते हैं।

जय जय अवधूत-चन्द्र नित्यानन्द ।

जगत् बाँधिल येंह दिया प्रेम-फाँद ॥3॥

जय जय-जय हो; अवधूत-चन्द्र-वैरागियों में चन्द्रमा समान; नित्यानन्द-भगवान् नित्यानन्द; जगत्-संसार;
बाँधिल-बाँध दिया; येंह-जिन्होंने; दिया-द्वारा; प्रेम-फाँद-कृष्ण के प्रेमभाव की गाँठ।

अनुवाद

महानतम अवधूत श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो, जिन्होंने भगवद् प्रेम की गाँठ से सारे जगत् को बाँध
दिया।

जय जय अद्वैत ईश्वर अवतार ।

कृष्ण अवतारि' कैल जगत् निस्तार ॥4॥

जय जय-जय हो; अद्वैत-अद्वैत आचार्य की; ईश्वर-पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के; अवतार-अवतार; कृष्ण अवतारि'-
कृष्ण का अवतार करवाकर; कैल-किया; जगत्-निस्तार-समस्त संसार का उद्धार।

अनुवाद

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अवतार श्री अद्वैत प्रभु की जय हो! उन्होंने कृष्ण को अवतरित कराया और
इस तरह सम्पूर्ण जगत् का उद्धार किया।

जय जय श्रीवासादि यत भक्त-गण ।

श्री-कृष्ण-चैतन्य प्रभु-याँर प्राण-धन ॥5॥

जय जय-जय हो; श्रीवास-आदि-श्रीवास ठाकुर आदि; यत भक्त-गण-सारे भक्तों की; श्री-कृष्ण-चैतन्य प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; याँर-जिनके; प्राण-धन-प्राण और जीवन।

अनुवाद

श्रीवास ठाकुर इत्यादि समस्त भक्तों की जय हो! श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु उन सबके प्राण एवं जीवन हैं।

एङ्-मत गौरचन्द्र निज-भक्त-सङ्गे ।

नीलाचले क्रीड़ा करे कृष्ण-प्रेम-तरङ्गे ॥6॥

एङ्-मत-इस प्रकार; गौरचन्द्र-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु; निज-भक्त-सङ्गे-अपने भक्तों के साथ; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में; क्रीड़ा करे-विभिन्न लीलाएँ करते हैं; कृष्ण-प्रेम-तरङ्गे-कृष्ण-प्रेम की लहरों में।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथपुरी में निजी भक्तों के साथ कृष्ण-प्रेम की तरंगों में विविध लीलाएँ सम्पन्न कीं।

हेन-काले रामचन्द्र-पुरी-गोसाजि आइला ।

परमानन्द-पुरीरे आर प्रभुरे मिलिला ॥7॥

हेन-काले-इस समय; रामचन्द्र-पुरी-गोसाजि-रामचन्द्र पुरी नामक एक संन्यासी; आइला-आया; परमानन्द-पुरीरे-परमानन्द पुरी; आर-और; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु को; मिलिला-मिला।

अनुवाद

तभी रामचन्द्र पुरी गोसाई नामक एक संन्यासी परमानन्द पुरी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने आया।

परमानन्द-पुरी कैल चरण वन्दन ।

पुरी-गोसाजि कैल तौर दृढ़ आलिङ्गन ॥८॥

परमानन्द-पुरी-परमानन्द पुरी ने; कैल-किया; चरण-चरणों में; वन्दन-वन्दना; पुरी-गोसाजि-रामचन्द्र पुरी ने; कैल-किया; तौर-उन्हें; दृढ़-प्रगाढ़; आलिङ्गन-आलिंगन।

अनुवाद

परमानन्द पुरी ने रामचन्द्रपुरी के चरणों की वन्दना की और रामचन्द्र पुरी ने उनका गाढ़ आलिंगन किया।

तात्पर्य

चूँकि रामचन्द्र पुरी माधवेन्द्र पुरी का शिष्य था, इसलिए परमानन्द पुरी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु दोनों ने ही उसको नमस्कार किया। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि यद्यपि रामचन्द्र पुरी अत्यन्त ईर्ष्यालु था और वैष्णव मत के विरुद्ध था—दूसरे शब्दों में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनके भक्तों के सिद्धान्तों के विरुद्ध था—तो भी सामान्य लोग उसे गोस्वामी या गोसाईं कहते थे, क्योंकि उसने बाह्य रूप से संन्यास ग्रहण कर रखा था और संन्यासी जैसा वेश बनाये रहता था। आधुनिक युग में गोस्वामी उपाधि गृहस्थों के एक वर्ग द्वारा प्रयुक्त की जाती है, किन्तु पहले ऐसा नहीं था। उदाहरणार्थ, रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी इसलिए गोस्वामी कहलाते थे, क्योंकि उन्होंने संन्यास ले रखा था। इसी तरह चूँकि परमानन्द पुरी संन्यासी थे, अतः वे पुरी गोस्वामी कहलाते थे। इसलिए छानबीन करने पर देखा जा सकता है कि गोस्वामी किसी जाति विशेष की उपाधि नहीं है, प्रत्युत यह संन्यासी के लिए उपयुक्त उपाधि है।

महाप्रभु कैला तौर दण्डवत् नति ।

आलिङ्गन करि' तेंहो कैल कृष्ण-स्मृति ॥९॥

महाप्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैला-किया; तौर-उन्हें; दण्डवत् नति-दण्डवत् प्रणाम किया; आलिङ्गन करि'-गले लगाकर; तेंहो-रामचन्द्र पुरी ने; कैल-किया; कृष्ण- स्मृति-कृष्ण का स्मरण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी रामचन्द्र पुरी को नमस्कार किया, जिसने महाप्रभु का आलिंगन किया और इस तरह कृष्ण का स्मरण किया।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामचन्द्र पुरी को अपने गुरु ईश्वर पुरी के भी गुरु श्रील माधवेन्द्र पुरी का शिष्य समझकर नमस्कार किया। जब कोई वैष्णव संन्यासी अन्य वैष्णव संन्यासी से मिलता है, तो वे दोनों श्रीकृष्ण का स्मरण करते हैं। मायावादी संन्यासी तक सामान्यतया नारायण का, जो कि कृष्ण हैं, ॐ नमो भगवते नारायणाय या नमो नारायणाय कहकर स्मरण करते हैं। इस तरह कृष्ण का स्मरण करना संन्यासी का कर्तव्य है। स्मृति शास्त्र के अनुसार संन्यासी न तो नमस्कार करता है न आशीर्वाद देता है। कहा जाता है-संन्यासी निराशीर्निर्ममस्क्रियः-संन्यासी को न तो किसी को आशीर्वाद देना चाहिए, न नमस्कार करना चाहिए।

तिन-जने इष्ट-गोष्ठी कैला कत-क्षण ।

जगदानन्द-पण्डित तौरै कैला निमन्त्रण ॥10॥

तिन-जने-तीनों लोगों ने; इष्ट-गोष्ठी-कृष्ण विषयक चर्चा; कैला-की; कत-क्षण-कुछ समय तक; जगदानन्द-पण्डित-जगदानन्द पण्डित ने; तौरै-रामचन्द्र पुरी को; कैला निमन्त्रण-निमंत्रित किया।

अनुवाद

इन तीनों ने कुछ समय तक कृष्ण के विषय में बातें कीं और तब जगदानन्द पण्डित ने आकर रामचन्द्र पुरी को निमन्त्रण दिया।

जगन्नाथेर प्रसाद आनिला भिक्षार लागिया ।

यथेष्ट भिक्षा करिला तेंहो निन्दार लागिया ॥11॥

जगन्नाथेर प्रसाद-भगवान जगन्नाथ का प्रसाद; आनिला-लाये; भिक्षार लागिया-खिलाने के लिए; यथेष्ट भिक्षा करिला-पेट भर खाया; तेंहो-उन्होंने; निन्दार लागिया-कुछ दोष निकालने के लिए।

अनुवाद

अधिक मात्रा में जगन्नाथ जी का प्रसाद वितरित करने के लिए लाया गया। रामचन्द्र पुरी ने डटकर भोजन किया, किन्तु उसके बाद वह जगदानन्द पण्डित के दोष ढूँढना चाहता था।

भिक्षा करि' कहे पुरी,—“शुन, जगदानन्द ।

अवशेष प्रसाद तुमि करह भक्षण” ॥12॥

भिक्षा करि'—भोजन समाप्त कर; कहे पुरी—रामचन्द्र पुरी ने कहा; शुन जगदानन्द—मेरे प्रिय जगदानन्द, जरा सुनो;
अवशेष प्रसाद-बचा हुआ प्रसाद; तुमि-तुम; करह भक्षण-खा लो।

अनुवाद

भोजन कर लेने के बाद रामचन्द्र पुरी ने अनुरोध किया, “प्रिय जगदानन्द, जरा सुनो तो। तुम इस बचे हुए भोजन को खा लो।”

आग्रह करिया तौरै वसि' खाओयाइल ।

आपने आग्रह करि' परिवेशन कैल ॥ 13॥

आग्रह करिया—अत्यधिक (निवेदन) उत्सुकतापूर्वक; तौरै वसि'—उन्हें बिठाकर; खाओयाइल-खिलाया; आपने-स्वयं; आग्रह करि'—उत्साहपूर्वक; परिवेशन कैल-वितरण किया।

अनुवाद

रामचन्द्र पुरी ने अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक जगदानन्द पण्डित को बैठाया और उन्हें स्वयं प्रसाद परोसा।

आग्रह करिया पुनः पुनः खाओयाइल ।

आचमन कैले निन्दा करिते लागिल ॥14॥

आग्रह करिया-उत्साहपूर्वक; पुनः पुनः—बारम्बार; खाओयाइल-खिलाया; आचमन कैले—जब उन्होंने अपने हाथ-मुँह धो लिए; निन्दा करिते लागिल-निन्दा करना प्रारम्भ किया।

अनुवाद

बारम्बार अनुरोध करके रामचन्द्र पुरी ने उन्हें खूब खिलाया, किन्तु जब जगदानन्द हाथ-मुँह धो चुके, तो रामचन्द्र पुरी उनकी आलोचना करने लगा।

“शुनि, चैतन्य-गण करे बहुत भक्षण ।

‘सत्य’ सेइ वाक्य,—साक्षात् देखिलुँ एखन” ॥15॥

शुनि-मैंने सुना था; चैतन्य-गण-श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी; करे बहुत भक्षण-आवश्यकता से अधिक खाते हैं; सत्य-सच है; सेइ वाक्य-वह कथन; साक्षात्-सामने; देखिलुँ-मैंने देख लिया; एखन-अब।

अनुवाद

उसने कहा, “मैंने सुना है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी आवश्यकता से अधिक खाते हैं। अब मैंने प्रत्यक्ष देख लिया है कि यह सच है।”

सन्न्यासीरे एत खाओयाजा करे धर्म नाश ।

वैरागी हजा एत खाय, वैराग्येर नाहि ‘भास’ ॥16॥

सन्न्यासीरे-एक संन्यासी को; एत-इतना अधिक; खाओयाजा-खिलाना; करे धर्म नाश-नियमों का नाश करता है; वैरागी हजा-संन्यासी होकर; एत-इतना अधिक; खाय- खाता है; वैराग्येर नाहि भास-वैराग्य का लेशमात्र भी नहीं है।

अनुवाद

“संन्यासी को अत्यधिक खिलाने से उसके नियम भंग हो जाते हैं, क्योंकि जब संन्यासी अत्यधिक भोजन करता है, तो उसका वैराग्य नष्ट हो जाता है।”

एइ त’ स्वभाव तार्र आग्रह करिया ।

पिछे निन्दा करे, आगे बहुत खाओयाजा ॥17॥

एइ-यह; त’-निश्चित रूप से; स्वभाव-लक्षण; तार्र-उसका; आग्रह करिया-उत्साहपूर्वक आग्रह करे; पिछे-बाद में; निन्दा करे-निन्दा करे; आगे-पहले; बहुत-अधिक; खाओयाजा-खिलाकर।

अनुवाद

रामचन्द्र पुरी का स्वभाव था कि वह पहले किसी को आवश्यकता से अधिक खिलाता था और बाद में उसकी आलोचना करता था।

पूर्वे यबे माधवेन्द्र करेन अन्तर्धान ।

रामचन्द्र-पुरी तबे आइला तौरँ स्थान ॥18॥

पूर्व-पूर्व में; बे-जब; माधवेन्द्र-माधवेन्द्र पुरी; करेन अन्तर्धान-प्रयाण के निकट थे; रामचन्द्र-पुरी-रामचन्द्र पुरी;
तबे-उस समय; आइला-आया; तौरँ स्थान-उनके स्थान पर।

अनुवाद

इसके पहले जब माधवेन्द्र पुरी अन्तिम साँसें गिन रहे थे, तब रामचन्द्र पुरी उनके स्थान पर आया।

पुरी-गोसाजि करे कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन ।

‘मथुरा ना पाइनु’ बलि’ करेन क्रन्दन ॥19॥

पुरी-गोसाजि-माधवेन्द्र पुरी; करे-कर रहे थे; कृष्ण-नाम-सङ्कीर्तन-भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन;
मथुरा ना पाइनु-मुझे मथुरा में शरण नहीं मिली; बलि’-कहकर; करेन क्रन्दन-रो रहे थे।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन कर रहे थे और कभी-कभी रो रहे थे, “हे प्रभु, मुझे मथुरा
में शरण नहीं मिली।”

रामचन्द्र-पुरी तबे उपदेशे तौरँ ।

शिष्य हजा गुरुके कहे, भय नाहि करे ॥20॥

रामचन्द्र-पुरी-रामचन्द्र पुरी ने; तबे-तब; उपदेशे तौरँ-उन्हें उपदेश दिया; शिष्य हजा-एक शिष्य होकर; गुरुके
कहे-अपने गुरु से कहा; भय नाहि करे-बिना डर के।

अनुवाद

तब रामचन्द्र पुरी इतना मूर्ख था कि उसने निडर होकर अपने गुरु को उपदेश देने का दुस्साहस किया।

“तुमि-पूर्ण-ब्रह्मानन्द, करह स्मरण ।

ब्रह्मवित् हजा केने करह रोदन?” ॥21॥

तुमि-आपको; पूर्ण-ब्रह्म-आनन्द-पूर्ण दिव्य आनन्द में; करह स्मरण-स्मरण करना चाहिए; ब्रह्म-वित् हवा-ब्रह्म का पूरा ज्ञान होकर; केने-क्यों; करह रोदन-आप रो रहे हैं

अनुवाद

उसने कहा, “यदि आप दिव्य आनन्द को प्राप्त हैं, तो आपको अब केवल ब्रह्म का स्मरण करना चाहिए। आप क्यों रो रहे हैं?”

तात्पर्य

जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है- ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा-ब्रह्म का साक्षात्कार कर चुका व्यक्ति सदैव प्रसन्न रहता है। न शोचति न काङ्क्षति- वह न तो शोक करता है, न ही किसी वस्तु की इच्छा करता है। रामचन्द्र पुरी ने बिना समझे-बूझे कि माधवेन्द्र पुरी क्यों रोदन कर रहे हैं, उनका उपदेशक बनना चाहा। इस तरह उसने महान् अपराध किया, क्योंकि शिष्य को कभी भी अपने गुरु को उपदेश नहीं देना चाहिए।

शुनि' माधवेन्द्र-मने क्रोध उपजिल ।

‘दूर, दूर, पापिष्ठ’ बलि’ भर्त्सना करिल ॥22॥

शुनि'-सुनकर; माधवेन्द्र-माधवेन्द्र पुरी के; मने-मन में; क्रोध-क्रोध; उपजिल-उत्पन्न हुआ; दूर दूर चले जाओ; पापिष्ठ-पापी दुष्ट; बलि'-कहकर; भर्त्सना करिल-उन्होंने डाँटा।

अनुवाद

यह उपदेश सुनकर माधवेन्द्र पुरी अत्यधिक क्रुद्ध हुए और, “निकल जा, रे पापी!” कहकर उसको डाँटा।

तात्पर्य

रामचन्द्र पुरी यह नहीं समझ सका कि उसके गुरु माधवेन्द्र पुरी को दिव्य विरह भाव का अनुभव हो रहा था। उनका शोक भौतिक न था—प्रत्युत यह कृष्ण के प्रेमावेश की सर्वोच्च अवस्था से उत्पन्न था। जब वे विरह में रोदन कर रहे थे कि, “मैं कृष्ण को न पा सका! मैं मथुरा न पहुँच सका!” तो यह सामान्य भौतिक शोक न था। रामचन्द्र पुरी माधवेन्द्र पुरी के उद्गारों को समझने में पर्याप्त दक्ष न था; तो भी वह अपने आपको बहुत उन्नत मानता था। इसलिए माधवेन्द्र पुरी

की अभिव्यक्ति को सामान्य भौतिक शोक मानते हुए उसने उन्हें ब्रह्म का स्मरण करने को कहा, क्योंकि वह प्रच्छन्न रूप से निर्विशेषवादी था। माधवेन्द्र पुरी रामचन्द्र पुरी की स्थिति को एक बड़े मूर्ख के रूप में समझ गये, इसीलिए तुरन्त उसे डाँटा। गुरु द्वारा ऐसी डाँट निश्चय ही शिष्य की भलाई के लिए होती है।

‘कृष्ण ना पाइनु, ना पाइनु ‘मथुरा’ ।

आपन-दुःखे मरों—एइ दिते आइल ज्वाला ॥23॥

कृष्ण-भगवान् कृष्ण; ना पाइनु-मुझे नहीं मिले; ना पाइनु-नहीं मिला; मथुरा-मथुरा; आपन-दुःखे-अपने दुःख में; मरों-मैं मर रहा हूँ; एइ-यह व्यक्ति; दिते आइल ज्वाला—मुझे और अधिक कष्ट देने आया है।

अनुवाद

“हे भगवान् कृष्ण! मैं न तो आपके पास और न ही आपके धाम मथुरा पहुँच पाया। मैं अपने दुःख में मर रहा हूँ और उस पर यह मूढ़ अब मुझे और पीड़ा देने आया है।”

मोरे मुख ना देखाबि तुइ, याओ यथि-तथि।

तोरे देखि’ मैले मोर हबे असद्रति ॥24॥

मोरे-मुझे; मुख-चेहरा; ना देखाबि-मत दिखाओ; तुइ-तुम; याओ-जाओ; यथि-तथि-कहीं ओर; तोरे-तुम्हें; देखि’—देखकर; मैले—यदि मैं मरूँगा; मोर हबे असत्-गति-मेरा सद्रति नहीं होगी।

अनुवाद

“तुम मुझे अपना मुँह मत दिखाओ! तुम अन्यत्र जहाँ कहीं जाना चाहो, चले जाओ। यदि मैं तुम्हारा मुँह देखते हुए मरूँगा, तो मुझे जीवन का गन्तव्य प्राप्त नहीं हो सकेगा।

कृष्ण ना पाइनु मुजि मरों आपनार दुःखे ।

मोरे ‘ब्रह्म’ उपदेशे एइ छार मूर्ख ॥ 25॥

कृष्ण-कृष्ण को; ना पाइनु-प्राप्त नहीं कर सका; मुजि-मैं; मरों-मर रहा हूँ; आपनार दुःखे-अपने दुःख से; मोरे-मुझे; ब्रह्म—ब्रह्म का; उपदेशे—उपदेश देता है; एइ—यह; छार—निकृष्ट; मूर्खे—मूर्ख।

अनुवाद

“मैं कृष्ण की शरण पाये बिना मर रहा हूँ, इसलिए मैं अत्यधिक दुःखी हूँ। अब यह गर्हित मूर्ख मुझे ब्रह्म के विषय में उपदेश देने आया है।”

एइ ये श्री-माधवेन्द्र श्रीपाद उपेक्षा करिल ।

सेइ अपराधे ईंहार ‘वासना’ जन्मिल ॥ 26॥

एइ-यह; ये-जो; श्री-माधवेन्द्र श्रीपाद श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी; उपेक्षा करिल-उपेक्षा की; सेइ अपराधे-इस अपराध के कारण; ईंहार-रामचन्द्र पुरी की; वासना-भौतिक इच्छा; जन्मिल-उत्पन्न हुई।

अनुवाद

इस तरह रामचन्द्र पुरी को माधवेन्द्र पुरी ने तिरस्कृत कर दिया। अपने अपराध के कारण उसके भीतर धीरे-धीरे भौतिक इच्छा उदित हुई।

तात्पर्य

वासना (“भौतिक इच्छाएँ”) शब्द शुष्क चिन्तनपरक ज्ञान का सूचक है। ऐसा तार्किक ज्ञान निरा भौतिक होता है। श्रीमद्भागवत (10.14.4) में पुष्टि हुई है कि जो व्यक्ति भक्ति के बिना वस्तुओं को केवल जानना चाहता है। (केवल-बोध-लब्धये) उसे केवल शुष्क ज्ञान प्राप्त होता है, कोई आध्यात्मिक लाभ हाथ नहीं लगता। इसकी पुष्टि भक्ति-सन्दर्भ (111) में भी हुई है :

जीवन्मुक्ता अपि पुनर्यान्ति संसारवासनाम् ।

यद्यचिन्त्यमहाशक्तौ भगवत्यपराधिनः ॥

“भले ही कोई इस जीवन में मुक्त क्यों न हो, यदि वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति अपराध करता है, तो वह भौतिक इच्छाओं में गिर जाता है, जिनमें से आध्यात्मिक अनुभूति का शुष्क चिन्तन एक है।”

श्रीमद्भागवत की लघुतोषणी टीका (10.2.32) में जीव गोस्वामी ने कहा है :

जीवन्मुक्ता अपि पुनर्बन्धनं यान्ति कर्मभिः ।

यद्यचिन्त्यमहाशक्तौ भगवत्यपराधिनः ॥

“भले ही कोई इस जीवन में मुक्त हो, किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति अपराध करने से वह भौतिक इच्छाओं में लिप्त हो जाता है।”

इसी तरह का एक उद्धरण विष्णु भक्ति चन्द्रोदय में पुराणों से लिया गया है:

जीवन्मुक्ता प्रपद्यन्ते क्वचित् संसारवासनाम् ।

योगिनो ना विलिप्यन्ते कर्मभिः भगवत्पराः ॥

“कभी-कभी मुक्तात्मा भी भौतिक इच्छाओं में आ गिरते हैं, किन्तु जो लोग पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भक्तिमयी सेवा में पूरी तरह लगे रहते हैं, वे ऐसी इच्छाओं के शिकार नहीं होते।”

ये प्रामाणिक शास्त्रों के प्रमाण हैं। यदि कोई अपने गुरु या पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का अपराधी होता है, तो वह भौतिक स्तर में पतित होकर केवल तर्कवितर्क करता रह जाता है।

शुष्क-ब्रह्म-ज्ञानी, नाहि कृष्णोर ‘सम्बन्ध’ ।

सर्व लोक निन्दा करे, निन्दाते निर्बन्ध ॥27॥

शुष्क-शुष्क; ब्रह्म-ज्ञानी-निराकारवादी दार्शनिक; नाहि-नहीं है; कृष्णोर-भगवान् कृष्ण के साथ; सम्बन्ध-सम्बन्ध; सर्व-सब; लोक-लोगों की; निन्दा करे-निन्दा करता है; निन्दाते निर्बन्ध-निन्दा में निरन्तर रत।

अनुवाद

जो व्यक्ति शुष्क तर्कवितर्क में लगा रहता है, उसका कृष्ण से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। उसका कार्य वैष्णवों की आलोचना करना रह जाता है। इस तरह वह आलोचना करने में लगा रहता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने अनुभाष्य में बतलाया है कि निर्बन्ध शब्द सूचित करता है कि रामचन्द्र पुरी हमेशा दूसरों की निन्दा करना चाहता था। निराकार मायावादी लोग, जिनका सम्बन्ध कृष्ण से नहीं होता, जो भक्ति नहीं अपना सकते तथा जो ब्रह्म को समझने के लिए तर्क-वितर्क में लगे रहते हैं, ऐसे मायावादी लोग कृष्ण

भक्ति को कर्मकाण्ड या सकाम कर्म मानते हैं। उनके अनुसार कृष्ण की भक्ति धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्राप्त करने का एक अन्य साधन है। इसलिए वे भक्तों की आलोचना भौतिक कर्मों में लगे रहने के लिए करते हैं। वे सोचते हैं कि भक्ति माया है और कृष्ण अथवा विष्णु भी माया हैं। इसीलिए वे मायावादी कहलाते हैं। ऐसी प्रवृत्ति उसी व्यक्ति में उदय होती है, जो कृष्ण तथा उनके भक्तों के प्रति अपराधी होता है।

ईश्वर-पुरी गोसाजि करे श्रीपाद-सेवन ।

स्वहस्ते करेन मल-मूत्रादि मार्जन ॥28॥

ईश्वर-पुरी-ईश्वर पुरी; गोसाजि-गोस्वामी; करे-करते; श्रीपाद-सेवन-माधवेन्द्र पुरी की सेवा; स्व-हस्ते-अपने हाथ से; करेन-करते; मल-मूत्र-आदि-मल, मूल आदि; मार्जन-साफ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के गुरु ईश्वर पुरी ने अपने हाथों से माधवेन्द्र पुरी का मलमूत्र साफ करके उनकी सेवा की।

निरन्तर कृष्ण-नाम कराय स्मरण ।

कृष्ण-नाम, कृष्ण-लीला शुनाय अनुक्षण ॥29॥

निरन्तर—सदैव; कृष्ण-नाम-भगवान् कृष्ण का नाम; कराये स्मरण-स्मरण करवाते; कृष्ण-नाम-कृष्ण का पवित्र नाम; कृष्ण-लीला-कृष्ण की लीलाएँ; शुनाय अनुक्षण-हमेशा सुनाते।

अनुवाद

ईश्वर पुरी सदैव माधवेन्द्र पुरी को भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम तथा उनकी लीलाएँ सुनाते थे। इस तरह उन्होंने माधवेन्द्र पुरी को तिरोधान के समय भगवान् कृष्ण के नाम तथा लीलाओं का स्मरण कराने में सहायता की।

तुष्ट हज्जा पुरी तरै कैला आलिङ्गन ।

वर दिला—‘कृष्णे तोमार हउक प्रेम-धन’ ॥30॥

तुष्ट हवा-सन्तुष्ट होकर; पुरी-माधवेन्द्र पुरी ने; तौरै-उन्हें; कैला आलिङ्गन-गले लगा लिया; वर दिला-वरदान दिया; कृष्ण-कृष्ण के प्रति; तोमार-तुम्हारा; हउक-हो जाये; प्रेम-धन-प्रेमधन।

अनुवाद

ईश्वर पुरी से प्रसन्न होकर माधवेन्द्र पुरी ने उनका आलिंगन किया और यह वर दिया कि वे कृष्ण के महान् भक्त तथा प्रेमी होंगे।

सेइ हैते ईश्वर-पुरी-‘प्रेमेर सागर’ ।

रामचन्द्र-पुरी हैल सर्व-निन्दाकर ॥31॥

सेइ हैते-इस कारण से; ईश्वर-पुरी-ईश्वर पुरी; प्रेमेर सागर-प्रेमभाव के सागर; रामचन्द्र-पुरी-रामचन्द्र पुरी; हैल-हो गया; सर्व-निन्दा-कर-सबकी निन्दा करने वाला।

अनुवाद

इस तरह ईश्वर पुरी कृष्ण-प्रेम के सागर के तुल्य बन गये, जबकि रामचन्द्र पुरी शुष्क चिन्तक तथा हर एक का आलोचक बना।

महदनुग्रह-निग्रहेर ‘साक्षी’ दुइ-जने ।

एइ दुइ-द्वारे शिखाइला जग-जने ॥32॥

महत्-महात्मा की; अनुग्रह-कृपा की; निग्रहेर-डाँट का; साक्षी-प्रमाण; दुइ-जने-दोनों लोग; एइ दुइ-द्वारे-इन दोनों से; शिखाइला-सिखाया; जग-जने-संसार के लोगों को।

अनुवाद

ईश्वर पुरी को माधवेन्द्र पुरी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ, जबकि रामचन्द्र पुरी को उनकी डाँट मिली। इसलिए ये दो व्यक्ति-ईश्वर पुरी तथा रामचन्द्र पुरी-महापुरुष के आशीर्वाद तथा दण्ड के पात्र होने के दृष्टान्त हैं। माधवेन्द्र पुरी ने ये दो दृष्टान्त प्रस्तुत करके सारे जगत् को शिक्षा दी।

जगद्गुरु माधवेन्द्र करि’ प्रेम दान ।

एइ श्लोक पड़ि' तेंहो कैल अन्तर्धान ॥33॥

जगत्-गुरु-समस्त विश्व के गुरु; माधवेन्द्र-माधवेन्द्र पुरी; करि' प्रेम दान-कृष्ण प्रेमभाव दान करके; एइ श्लोक पड़ि'-यह श्लोक पढ़कर; तेंहो-वे; कैल अन्तर्धान-इस भौतिक जगत् को त्याग दिया।

अनुवाद

इस तरह समस्त संसार के गुरु, श्रीपाद माधवेन्द्र पुरी ने कृष्ण-प्रेम का दान किया। इस भौतिक जगत् से विदा लेते समय उन्होंने निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण किया।

अयि दीन-दयार्द्र नाथ हे

मथुरा-नाथ कदावलोक्यसे ।

हृदयं त्वदलोक-कातरं

दयित भ्राम्यति किं करोम्यहम् ॥34॥

अयि-हे प्रभु: दीन-दीनों पर; दया-आई-दयालु; नाथ-हे स्वामी; हे-हे; मथुरा-नाथ-मथुरा नाथ; कदा-कब; अवलोक्यसे—मैं आपके दर्शन पाऊँगी; हृदयम्-मेरा हृदय; त्वत्-आपको; अलोक-देखे बिना; कातरम्-अत्यन्त व्यथित; दयित-हे सबसे प्रिय; भ्राम्यति-विचलित होता है; किम्-क्या; करोमि-करूँ; अहम्-मैं।

अनुवाद

“हे प्रभु! हे दीनदयाल स्वामी! हे मथुरापति! मैं कब आपको फिर से देखूँगी? आपको न देख पाने के कारण मेरा क्षुब्ध हृदय अस्थिर हो चुका है। हे मेरे परम प्रिय, मैं अब क्या करूँ?”

एइ श्लोके कृष्ण-प्रेम करे उपदेश ।

कृष्णेर विरहे भक्तेर भाव-विशेष ॥35॥

एइ श्लोके-इस श्लोक में; कृष्ण-प्रेम-कृष्ण-प्रेम; करे उपदेश-सिखाते हैं; कृष्णेर विरहे-कृष्ण से विरह अनुभव करके; भक्तेर-भक्त की; भाव-विशेष-दिव्य भावना।

अनुवाद

इस श्लोक में माधवेन्द्र पुरी यह शिक्षा देते हैं कि किस तरह कृष्ण-प्रेम प्राप्त किया जाए। कृष्ण से विरह में व्यक्ति आध्यात्मिक पद को प्राप्त होता है।

पृथिवीते रोपण करि' गेला प्रेमाङ्कुर ।

सेइ प्रेमाङ्कुरे वृक्ष-चैतन्य-ठाकुर ॥ 36॥

पृथिवीते-इस भौतिक संसार में; रोपण करि'—बोकर; गेला-गये; प्रेम-अङ्कुर-कृष्ण के प्रेमभाव का बीज; सेइ प्रेम-अङ्कुर-कृष्ण के प्रति प्रेमभाव के उस बीज का; वृक्ष-वृक्ष; चैतन्य-ठाकुर-भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

श्री माधवेन्द्र पुरी ने इस भौतिक जगत् में कृष्ण-प्रेम का बीज बोया और तब विदा ली। वही बीज बाद में श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में विशाल वृक्ष बन गया।

प्रस्तावे कहिलुँ पुरी-गोसाजिर निर्माण ।

येइ इहा शुने, सेइ बड़ भाग्यवान् ॥ 37॥

प्रस्तावे-संयोग से; कहिलुँ-मैंने वर्णन किया है; पुरी-गोसाजिर-माधवेन्द्र पुरी का; निर्माण—तिरोधान; ग्रेइ-जो कोई भी; इहा-यह; शुने-सुनता है; सेइ-वह; बड़ भाग्यवान्-बहुत भाग्यशाली।

अनुवाद

संयोगवश मैंने माधवेन्द्र पुरी के तिरोधान का वर्णन किया है। जो भी इसे सुनता है, उसे अत्यन्त भाग्यशाली माना जाना चाहिए।

रामचन्द्र-पुरी ऐछे रहिला नीलाचले ।

विरक्त स्वभाव, कभु रहे कोन स्थले ॥38॥

रामचन्द्र-पुरी-रामचन्द्र पुरी; ऐछे—इस प्रकार; रहिला नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में रहा; विरक्त—वैरागी का; स्वभाव-नियम; कभु-कभी; रहे—वह रहता है; कोन स्थले-विशेष स्थान पर।

अनुवाद

इस तरह रामचन्द्र पुरी जगन्नाथ पुरी में ठहरा रहा। जैसाकि संन्यासियों में प्रथा है, कभी वे किसी स्थान पर रहते और फिर वहाँ से चले जाते।

अनिमन्त्रण भिक्षा करे, नाहिक निर्णय ।

अन्येर भिक्षार स्थिति लयेन निश्चय ॥39॥

अनिमन्त्रण—बिना बुलाए; भिक्षा करेभोजन करता; नाहिक निर्णय—कुछ निश्चित नहीं था; अन्येर—अन्यों के; भिक्षार—प्रसाद ग्रहण करने की स्थिति स्थिति का; लयेन निश्चय—हिसाब करता।

अनुवाद

इसका कोई निश्चय नहीं रहता था कि रामचन्द्र पुरी कहाँ भोजन करेगा, क्योंकि वह अनिमन्त्रित होने पर भी ऐसा करता था। तो भी वह इस बात को सुनिश्चित करने में बहुत सतर्क रहता कि अन्य लोग कैसे भोजन करते हैं।

प्रभुर निमन्त्रणे लागे कौड़ि चारि पण ।

कभु काशीश्वर, गोविन्द खान तिन जन ॥ 40॥

प्रभुर—श्री चैतन्य महाप्रभु के; निमन्त्रणे—निमन्त्रण में; लागेलागते; कौड़ि चारि पण—320 कौड़ी; कभु काशीश्वर—कभी काशीश्वर; गोविन्द—चैतन्य महाप्रभु का सेवक; खान—खाते; तिन जन—तीन लोग।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को निमन्त्रित करने में 320 कौड़ियाँ व्यय होतीं। इससे श्री चैतन्य महाप्रभु तथा कभी-कभी काशीश्वर और गोविन्द इन तीनों का भोजन हो जाता।

प्रत्यह प्रभुर भिक्षा इति-उति हय ।

केह यदि मूल्य आने, चारि-पण-निर्णय ॥41॥

प्रति—अह-प्रतिदिन; प्रभुर—श्री चैतन्य महाप्रभु की; भिक्षा—भिक्षा; इति—उति—इधर-उधर; हय—है; केह—कोई; यदि—यदि; मूल्य आने—चुकाता है; चारि-पण—चार पण (चार गुना-अस्सी छोटे शंख); निर्णय—नियत राशि।

अनुवाद

महाप्रभु नित्य अलग-अलग स्थानों में भोजन करते और यदि कोई भोजन का मूल्य चुकता करना चाहता, तो उसका मूल्य केवल चार पण निश्चित था।

प्रभुर स्थिति, रीति, भिक्षा, शयन, प्रयाण ।

रामचन्द्र-पुरी करे सर्वानुसन्धान ॥42॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु की; स्थिति-स्थिति; रीति-नियामक सिद्धान्त; भिक्षा-प्रसाद ग्रहण करना; शयन-सोना; प्रयाण-गतिविधियाँ; रामचन्द्र-पुरी-रामचन्द्र पुरी; करे सर्व-अनुसन्धान-सब खबर रखता।

अनुवाद

रामचन्द्र पुरी सभी तरह की सूचनाएँ एकत्र करने में लगा रहता कि श्री चैतन्य महाप्रभु कहाँ पर हैं, उनके नियम क्या हैं, वे कहाँ भोजन करते हैं, कहाँ सोते और कहाँ-कहाँ आते जाते हैं।

प्रभुर यतेक गुण स्पर्शिते नारिल ।

छिद्र चाहि' बुले, काँहा छिद्र ना पाइल ॥43॥

प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु के; प्रतेक गुण-सभी दिव्य गुण; स्पर्शिते नारिल-नहीं समझ सका; छिद्र चाहि'-दोष ढूँढने के लिए; बुले-घूमता; काँहा-कहीं भी; छिद्र-दोष; ना पाइल-वह नहीं ढूँढ सका।

अनुवाद

चूँकि रामचन्द्र पुरी केवल दोष निकालने में लगा रहता, इसलिए वह श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य गुणों को नहीं समझ सका। उसका एक मात्र कार्य दोष निकालना था, किन्तु फिर भी उसे कोई दोष नहीं मिल पाया।

‘सन्यासी हजा करे मिष्टान्न भक्षण ।

एइ भोगे हय कैछे इन्द्रिय-वारण’? ॥44॥

सन्यासी हजा-सन्यासी होकर; करे मिष्टान्न भक्षण-मिठाईयाँ खाते हैं; एइ भोगे-इसे खाने से; हय-होगा; कैछे-कैसे; इन्द्रिय-वारण-इन्द्रिय संयम।

अनुवाद

अन्त में उसने एक दोष ढूँढ निकाला। उसने कहा, “भला एक संन्यासी इतनी तरह की मिठाईयाँ कैसे खा सकता है? यदि वह मिठाईयाँ खाता है, तो उसके लिए इन्द्रियों को वश में रखना अत्यन्त कठिन होगा।”

एइ निन्दा करि’ कहे सर्व-लोक-स्थाने ।

प्रभुरे देखितेह अवश्य आइसे प्रति-दिने ॥45॥

एइ निन्दा-यह निन्दा; करि’-करके; कहे-कहता है; सर्व-लोक-स्थाने-सबको; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु के; देखितेह-दर्शन के लिए; अवश्य-अवश्य; आइसे-आता; प्रति-दिने-प्रतिदिन।

अनुवाद

इस तरह रामचन्द्र पुरी सबके समक्ष महाप्रभु की निन्दा करता, किन्तु तो भी वह नित्यप्रति नियमपूर्वक महाप्रभु के दर्शनार्थ आता।

प्रभु गुरु-बुद्ध्ये करेन सम्भ्रम, सम्मान ।

तेंहो छिद्र चाहि’ बुले,—एइ तार काम ॥46॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु: गुरु-बुद्ध्ये-उसे अपने गुरु के गुरुभाई मानकर; करेन सम्भ्रम सम्मान-पूर्ण सम्मान तथा प्रणाम करते; तेंहो-रामचन्द्र पुरी; छिद्र चाहि-दोष ढूँढने के लिए; बुले-घूमता है; एइ-यह; तार-उसका; काम-कार्य।

अनुवाद

जब वे दोनों मिलते, तो महाप्रभु उसे गुरु के गुरुभाई मानते हुए नमस्कार करते । किन्तु रामचन्द्र पुरी का कार्य महाप्रभु के दोषों को ढूँढना रहता।

यत निन्दा करे ताहा प्रभु सब जाने ।

तथापि आदर करे बड़इ सम्भ्रमे ॥47॥

यत-जो भी; निन्दा-निन्दा; करे-करता; ताहा-वह; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; सब-समस्त; जाने-जानते थे; तथापि-
फिर भी; आदर करे-सम्मान करके; बड़ई सम्भ्रमे-आदरपूर्वक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जानते थे कि रामचन्द्र पुरी सबके समक्ष उनकी आलोचना करता है, किन्तु जब भी वह महाप्रभु से भेंट करने आता, तो महाप्रभु उसका सभी प्रकार से सम्मान करते।

एक-दिन प्रातः-काले आइला प्रभुर घर।

पिपीलिका देखि' किछु कहेन उत्तर ॥48॥

एक-दिन-एक दिन; प्रातः-काले-सुबह के समय; आइला-आया; प्रभुर घर-श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर;
पिपीलिका देखि'-अनेक चीटियाँ देखकर; किछु कहेन उत्तर-कुछ कहने लगा।

अनुवाद

एक दिन रामचन्द्र पुरी प्रातःकाल श्री चैतन्य महाप्रभु के स्थान पर आया। बहुत सी चींटियाँ देखकर महाप्रभु की आलोचना करने की दृष्टि से उसने कुछ कहा।

“रात्रावत्र ऐक्षवमासीत्, तेन पिपीलिकाः सञ्चरन्ति ।

अहो! विरक्तानां सन्यासिनामियमिन्द्रिय-लालसेति ब्रुवन्नुत्थाय गतः” ॥ 49॥

रात्रौ-रात को; अत्र-यहाँ; ऐक्षवम्-मिश्री; आसीत्-थी; तेन-उसके कारण; पिपीलिकाः-चींटियाँ; सञ्चरन्ति-घूम रही हैं; अहो-हाय; विरक्तानाम्-वैरागियों की; सन्यासिनाम्-सन्यासियों की; इयम्-यह; इन्द्रिय-इन्द्रियों की; लालस-आसक्ति; इति-यह; ब्रुवन्-कहकर; उत्थाय-उठकर; गतः-चला गया।

अनुवाद

उसने कहा, “गत रात्रि में यहाँ मिश्री थी, इसलिए यहाँ पर चींटियाँ घूम रही हैं। हाय, यह विरक्त संन्यासी ऐसी इन्द्रियतृप्ति में आसक्त है!” इस तरह कहकर वह उठा और चला गया।

प्रभु परम्पराय निन्दा कैराछेन श्रवण ।

एबे साक्षात् शुनिलेन 'कल्पित' निन्दन ॥50॥

प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; परम्पराय-अन्यों से; निन्दा-निन्दा; कैराछेन श्रवण-सुनी थी; एबे-अब; साक्षात्-प्रत्यक्ष; शुनिलेन-वे सुनते हैं; कल्पित-झूठी; निन्दन-निन्दा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामचन्द्र पुरी द्वारा की जाने वाली निन्दा की अफवाहें तो सुन रखी थीं, किन्तु अब तो उन्होंने उसके मनगढंत आरोपों को प्रत्यक्ष सुना।

तात्पर्य

रामचन्द्र पुरी को श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र में कोई दोष नहीं मिला, क्योंकि वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के दिव्य पद पर स्थित थे। चींटियाँ सामान्यतया सर्वत्र पाई जाती हैं, किन्तु जब रामचन्द्र पुरी ने चींटियों को महाप्रभु के स्थान पर चलते देखा, तो उसने यह मान लिया कि वे वहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा मिठाई खाने से आई होंगी। इस तरह उसने महाप्रभु में कल्पित दोष ढूँढ निकाला और तब वह चला गया।

सहजेइ पिपीलिका सर्वत्र बेड़ाय ।

ताहाते तर्क उठाजा दोष लागाय ॥51॥

सहजेइ-सामान्यतया; पिपीलिका-चींटियाँ; सर्वत्र-सब जगह; बेड़ाय-घूमती हैं; ताहाते-उसके कारण; तर्क उठाजा-विवाद खड़ा करके; दोष लागाय-दोष लगाया।

अनुवाद

चींटियाँ सामान्यतया यहाँ, वहाँ तथा सर्वत्र घूमती रहती हैं, किन्तु रामचन्द्र पुरी तो काल्पनिक दोष की ताक में था, अतएव उसने यह आरोप लगाते हुए महाप्रभु की आलोचना की कि उनके कमरे में मिठाइयाँ रही होंगी।

शुनि' ताहा प्रभुर सङ्कोच-भय मने ।

गोविन्दे बोलाजा किछु कहेन वचने ॥52॥

शुनि'—सुनकर; ताहा-वह; प्रभुर-श्री चैतन्य को; सङ्कोच-संशय; भय-भय; मने-मन में; गोविन्दे बोलाजा-
गोविन्द को बुलाकर; किछु-कुछ; कहेन-बोले; वचने-वचना।

अनुवाद

यह आलोचना सुनने के बाद महाप्रभु को संशय तथा भय हुआ। इसलिए उन्होंने गोविन्द को बुलाकर
इस प्रकार आदेश दिया।

आजि हैते भिक्षा आमार एइ त नियम ।

पिण्डा-भोगेर एक चौठि, पाँच-गण्डार व्यञ्जन ॥53॥

आजि हैते—आज से; भिक्षा आमार-मेरा प्रसाद ग्रहण करने का; एइ-यह; त'-निश्चित; नियम-नियम; पिण्डा-
भोगेर-भगवान् जगन्नाथ के प्रसाद का; एक चौठि-एक पात्र का एक चौथाई; पाँच-गण्डार व्यञ्जन-पाँच गंडा मूल्य की
सब्जियाँ (एक गंडा चार कौड़ियों के बराबर है)।

अनुवाद

“आज से यह नियम होगा कि मैं जगन्नाथजी के प्रसाद का एक चौथाई मात्र तथा पाँच गण्डा मूल्य
की सब्जियाँ ग्रहण किया करूँगा।”

“इहा बड़ अधिक आर किछु ना आनिबा ।

अधिक आनिले आमा एथा ना देखिबा” ॥54॥

इहा बड़-इसके अलावा; अधिक-अधिक; आर-और ज्यादा; किछु-कुछ; ना आनिबा-मत लाओ; अधिक
आनिले—यदि अधिक लाये; आमा—मुझे; एथा-यहाँ; ना देखिबा-तुम नहीं देखोगे।

अनुवाद

“यदि तुम इससे अधिक कुछ भी लाये, तो तुम मुझे यहाँ नहीं देखोगे।”

सकल वैष्णवे गोविन्द कहे एइ बात् ।

शुनि' सबार माथे यैछे हैल वज्राघात ॥55॥

सकल वैष्णवे-सभी वैष्णवों को; गोविन्द-गोविन्द; कहे-बताते हैं; एइ बात्-यह सन्देश; शुनि'-सुनकर; सबार माथे-सभी के सिर पर; येछे-मानो; हैल-हो गया; वज्र-आघात-वज्र का प्रहारा

अनुवाद

गोविन्द ने यह सूचना सारे भक्तों को पहुँचा दी। जब उन्होंने इसे सुना, तो उन्हें लगा कि उनके सिरों पर वज्रपात हो गया है।

रामचन्द्र-पुरीके सबाय देय तिरस्कार ।

‘एइ पापिष्ठ आसि’ प्राण लइल सबार ॥56॥

रामचन्द्र-पुरीके-रामचन्द्र पुरी को; सबाय-सभी भक्तों ने; देय तिरस्कार-तिरस्कृत किया; एइ पापिष्ठ-यह पापी व्यक्ति; आसि-आकर; प्राण-प्राण; लइल-ले लिया; सबार-सब के।

अनुवाद

सारे भक्तों ने यह कहकर रामचन्द्र पुरी को धिक्कारा, “यह पापी व्यक्ति यहाँ आया हुआ है और इसने हमारे प्राण ले लिये हैं।”

सेइ-दिन एक-विप्र कैल निमन्त्रण ।

एक-चौठि भात, पाँच-गण्डार व्यञ्जन ॥57॥

एइ-मात्र गोविन्द कैल अङ्गीकार ।

माथाय घा मारे विप्र, करे हाहाकार ॥58॥

सेइ-दिन-उस दिन; एक-विप्र-एक ब्राह्मण ने; कैल निमन्त्रण-निमंत्रित किया; एक-चौठि भात-एक पात्र का चौथा हिस्सा; पाँच-गण्डार व्यञ्जन-पाँच गंडा मूल्य की सब्जियाँ; एइ-मात्र केवल यही; गोविन्द-गोविन्द ने; कैल अङ्गीकार-स्वीकार किये; माथाय-अपना सिर; घा मारे-पीटकर; विप्र-ब्राह्मण; करे हाहा-कार-‘हाय-हाय’ करने लगा।

अनुवाद

उस दिन एक ब्राह्मण ने श्री चैतन्य महाप्रभु को निमन्त्रण दिया। जब गोविन्द ने केवल पाँच गण्डा मूल्य की सब्जियाँ तथा अन्नपात्र का एक चौथाई अन्न स्वीकार किया, तो उस ब्राह्मण ने निराशावश अपना माथा पीटा और चिल्लाया, “हाय! हाय!”

सेइ भात-व्यञ्जन प्रभु अर्धेक खाइल ।

ये किछु रहिल, ताहा गोविन्द पाइल ॥59॥

सेइ-वह; भात-भात; व्यञ्जन-सब्जी, प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; अर्धेक खाइल-आधी खाई; ये किछु रहिल-जो कुछ बच गया; ताहा-वह; गोविन्द गोविन्द ने; पाइल-लिया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने आधा चावल तथा आधी सब्जियाँ ही खाई और जो बचा रहा, उसे गोविन्द ने ग्रहण किया।

अर्धाशन करेन प्रभु, गोविन्द अर्धाशन ।

सब भक्त-गण तबे छाड़िल भोजन ॥60॥

अर्ध-अशन करेन-आधा खाते; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; गोविन्द-गोविन्द; अर्ध-अशन-आधा खाता; सब भक्त-गण-सभी भक्तों ने; तबे-उस समय; छाड़िल भोजन-भोजन छोड़ दिया।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु तथा गोविन्द आधापेट भोजन करते। इसके कारण अन्य सारे भक्तों ने भोजन करना त्याग दिया।

गोविन्द-काशीश्वरे प्रभु कैला आज्ञापन ।

‘दुँहे अन्यत्र मागि’ कर उदर भरण’ ॥ 61॥

गोविन्द-काशीश्वरे-गोविन्द और काशीश्वर को; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; कैला-दिया; आज्ञापन-आदेश; दुँहे-तुम दोनों; अन्यत्र-कहीं ओर से; मागि-माँगकर; कर उदर भरण-पेट भर लो।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोविन्द तथा काशीश्वर को आज्ञा दी, “तुम दोनों अपना पेट भरने के लिए अन्यत्र भिक्षा ग्रहण कर सकते हो।”

एइ-रूप महा-दुःखे दिन कत गेल ।

शुनि' रामचन्द्र-पुरी प्रभु-पाश आइल ॥62॥

एइ-रूप-इस प्रकार; महा-दुःखे-महान् दुःख में; दिन कत-कुछ दिन; गेल-बीत गये; शुनि'-सुनकर; रामचन्द्र-पुरी-रामचन्द्र पुरी; प्रभु-पाश आइल-श्री चैतन्य महाप्रभु के पास आया।

अनुवाद

इस तरह से कुछ दिन अतीव दुःख में बीते। यह सब सुनकर रामचन्द्र पुरी श्री चैतन्य महाप्रभु के पास गया।

प्रणाम करि' प्रभु कैला चरण वन्दन ।

प्रभुरे कहये किछु हासिया वचन ॥63॥

प्रणाम करि'-प्रणाम करके; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु; कैला चरण वन्दन-चरणवन्दन किये; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु से; कहये-वह कहता है; किछु-कुछ; हासिया-हँसकर; वचन-वचन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामचन्द्र पुरी के चरणों की पूजा करके उसे नमस्कार किया। तब वह हँसा और महाप्रभु से बोला।

“सन्न्यासीर धर्म नहे इन्द्रिय-तर्पण' ।

यैछे तैछे करे मात्र उदर भरण ॥ 64॥

सन्न्यासीर-एक संन्यासी का; धर्म-धर्म; नहे-नहीं है; इन्द्रिय-तर्पण-इन्द्रिय भोग; यैछे तैछे-किसी तरह से; करे-करता है; मात्र केवल; उदर भरण-पेट भरना।

अनुवाद

रामचन्द्र पुरी ने परामर्श दिया, “यह संन्यासी का कर्तव्य नहीं है कि वह अपनी इन्द्रियों की तृप्ति करे। उसे तो किसी भी तरह अपना पेट भरना चाहिए।

तोमारे क्षीण देखि, शुनि,—कर अर्धाशन ।

एइ ‘शुष्क-वैराग्य’ नहे सन्न्यासीर ‘धर्म’ ॥65॥

तोमारे-आपने; क्षीण-दुबला; देखि-मैं देख रहा हूँ; शुनि-मैंने सुना है; कर अर्ध-अशन-आप आधा खा रहे हैं; एइ-यह; शुष्क-वैराग्य-शुष्क वैराग्य; नहे-नहीं है; सन्न्यासीर धर्म-संन्यासी का धर्म।

अनुवाद

“मैंने सुना है कि आपने अपना भोजन आधा कर दिया है। मैं देख रहा हूँ कि आप दुर्बल हैं। ऐसा शुष्क वैराग्य भी संन्यासी का धर्म नहीं है।”

यथा-योग्य उदर भरे, ना करे ‘विषय’ भोग ।

सन्न्यासीर तबे सिद्ध हय ज्ञान-योग ॥66॥

यथा-योग्य-जितना जरूरी है; उदर भरे-पेट भरता है; ना करे-नहीं करता; विषय भोग-भौतिक भोग; सन्न्यासीर-संन्यासी की; तबे-कब; सिद्ध-सफल; हय-होती है; ज्ञान-योग-आध्यात्मिक ज्ञान में प्रगति।

अनुवाद

संन्यासी तो अपने शरीर के पालन के लिए जितना चाहिए उतना ही खाता है, किन्तु वह अपनी भौतिक इन्द्रियों की तृप्ति नहीं करता। संन्यासी इसी तरह से अपने आध्यात्मिक ज्ञान में पूर्ण बनता है।

नात्यश्रतोऽपि योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्चतः ।

न चाति-स्वप्न-शीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥67॥

“युक्ताहार-विहारस्य युक्त-चेष्टस्य कर्मसु ।

युक्त-स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःख-हा” ॥68॥

न-नहीं; अति-अश्रुत:-जो बहुत अधिक खाता है; अपि-तथा; योग:-भगवान् से सम्बन्ध; अस्ति-होता है; न-
न; च-तथा; एकान्तम्-पूर्णतः; अनश्रुत:-जो खाता ही नहीं; न-नहीं; च-तथा; अति-स्वप्न-शीलस्य-जो नींद में अत्यधिक
सपने लेता है; जाग्रत:-जो जागृत रहता है; न-नहीं; एव-निश्चय ही; च-तथा; अर्जुन-हे अर्जुन; युक्त-जितना जरूरी है
उतना; आहार-भोजन; विहारस्य-जिसका इन्द्रिय भोग; युक्त-संतुलित; चेष्टस्य-जिसके प्रयास; कर्मसु-कर्म करने में;
युक्त-जितने जरूरी है; स्वप्न-सोते हुए स्वप्न; अवबोधस्य-जागने से; योग:-योग का अभ्यास; भवति-होता है; दुःख-
हा-कष्ट दूर करने वाला।

अनुवाद

“[भगवान् कृष्ण ने कहा :] ‘हे अर्जुन, जो अधिक खाता है या बहुत कम खाता है, जो अधिक सोता
है और बहुत स्वप्न देखता है, अथवा जो पर्याप्त नहीं सोता, उसके योगी बनने की कोई सम्भावना नहीं है। जो
खाने, सोने, आमोद-प्रमोद तथा कार्य करने के अभ्यास में नियमित रहता है, वह योगाभ्यास द्वारा समस्त
भौतिक क्लेशों से मुक्त रह सकता है।”

तात्पर्य

यह उद्धरण भगवद्गीता (6.16-17) से लिया गया है।

प्रभु कहे,—“अज्ञ बालक मुझ शिष्य’ तोमार।

मोरे शिक्षा देह’,—एइ भाग्य आमार” ॥69॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; अज्ञ-अज्ञानी; बालक-बालक; मुझ-मैं; शिष्य तोमार-आपका शिष्य; मोरे-
मुझे; शिक्षा देह’—आप उपदेश दे रहे हैं; एइ-यह; भाग्य आमार-मेरा महा सौभाग्य है।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने विनयपूर्वक निवेदन किया, “मैं एक नादान बालक के समान हूँ और आपके
शिष्य के समान हूँ। यह मेरा बड़ा सौभाग्य है कि आप मुझे शिक्षा दे रहे हैं।”

एत शुनि’ रामचन्द्र-पुरी उठि’ गेला ।

भक्त-गण अर्धाशन करे,—पुरी गोसाजि शुनिला ॥ 70 ॥

एत शुनि-यह सुनकर; रामचन्द्र-पुरी-रामचन्द्र पुरी; उठि' गेला-उठकर चला गया; भक्त-गण-भक्त; अर्ध-अशन करे-आधा भोजन कर रहे हैं; पुरी गोसावि-रामचन्द्र पुरी ने; शुनिला-सुना।

अनुवाद

यह सुनकर रामचन्द्र पुरी उठा और चला गया। उसने विभिन्न स्रोतों से यह भी सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्त आधे पेट भोजन कर रहे हैं।

आर दिन भक्त-गण-सह परमानन्द-पुरी ।

प्रभु-पाशे निवेदिला दैन्य-विनय करि' ॥71॥

आर दिन-अगले दिन; भक्त-गण-सह-अन्य भक्तों के साथ; परमानन्द-पुरी-परमानन्द पुरी; प्रभु-पाशे-श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने; निवेदिला-निवेदन किया; दैन्य-विनय करि'-अति विनम्रतापूर्वक।

अनुवाद

अगले दिन, परमानन्द पुरी तथा अन्य भक्त अत्यन्त दीनता तथा विनयपूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु के पास पहुँचे।

“रामचन्द्र-पुरी हय निन्दुक-स्वभाव ।

तार बोले अन्न छाड़ि' किबा हबे लाभ?” ॥72॥

रामचन्द्र-पुरी-रामचन्द्र पुरी; हय-है; निन्दुक-स्वभाव-स्वभाव से निन्दक; तार बोले-उसके शब्दों पर; अन्न छाड़ि'-ठीक से खाना छोड़कर; किबा-क्या; हबे-होगा; लाभ-लाभ।

अनुवाद

परमानन्द पुरी ने कहा, “मेरा गुरुभाई रामचन्द्र पुरी स्वभाव से बुरा आलोचक है। यदि आप उसके शब्दों के कारण भोजन करना त्यागते हैं, तो इससे क्या लाभ होगा?”

पुरीर स्वभाव,—यथेष्ट आहार कराजा ।

ये ना खाय, तारे खाओयाय यतन करिया ॥73॥

पुरीर स्वभाव-रामचन्द्र पुरी का चरित्र है; यथा-इष्ट-जिनता अधिक हो सके; आहार कराजा-किसी को खिलाना; ये-जो; ना खाय-नहीं खाता; तारे खाओयाय-उसे खिलाना; यतन करिया-प्रयास करके।

अनुवाद

“यह तो रामचन्द्र पुरी का स्वभाव है कि वह पहले किसी को पेट भर खाने देता है और यदि कोई आवश्यकता से अधिक नहीं खाता, तो बड़े यत्न से वह उसे खिलाकर रहता है।”

खाओयाजा पुनः तारे करये निन्दन ।

एत अन्न खाओ,—तोमार कत आछे धन? ॥74॥

खाओयाजा-खिलाने के बाद; पुनः-फिर; तारे-उसकी; करये निन्दन-निन्दा करता है; एत-इतना; अन्न-भोजन; खाओ-तुम खाते हो; तोमार-तुम्हारा; कत-कितना; आछे-है; धन-धन।

अनुवाद

“इस तरह वह किसी को भी आवश्यकता से अधिक खिलाता है। और तब प्रत्यक्ष आलोचना करता है कि, “तुम इतना अधिक खाते हो। तुम्हारे खजाने में कितना धन है?”

सन्न्यासीके एत खाओयात्रा कर धर्म नाश! ।

अतएव जानिनु,—तोमार किछु नाहि भास’ ॥75 ॥

सन्न्यासीके-संन्यासी को; एत-इतना अधिक; खाओयात्रा-खिलाकर; कर धर्म नाश-तुम उनके धार्मिक नियम भ्रष्ट कर रहे हो; अतएव-इसलिए; जानिनु-मैं समझ सकता हूँ; तोमार—तुम्हारी; किछु नाहि भास—कुछ प्रगति नहीं हुई।

अनुवाद

“यही नहीं, संन्यासियों को इतना अधिक खिलाकर तुम उनके धर्म का विनाश करते हो। इसलिए मैं समझ सकता हूँ कि तुममें कोई उन्नति नहीं है।”

के कैछे व्यवहारे, केबा कैछे खाय ।

एई अनुसन्धान तेहो करय सदाय ॥76॥

के-कौन; कैछे-कैसा; व्यवहारे-व्यवहार; केबा-कौन; कैछे-कैसे; खाय- खाता है; एइ अनुसन्धान—यह खोज;
तेहो-वह; करय-करता है; सदाय-हमेशा॥

अनुवाद

यह तो रामचन्द्र पुरी का धंधा बन चुका है कि वह सदैव अन्यो के बारे में पूछताछ करता रहता है कि
वे किस तरह खाते हैं और नित्य प्रति किस तरह का व्यवहार करते हैं।

शास्त्रे येइ दुइ धर्म कैराछे वर्जन ।

सेइ कर्म निरन्तर ईंहार करण ॥ 77॥

शास्त्रे-शास्त्रों में; येइ-जो; दुइ-दो; धर्म-कर्म; कैराछे वर्जन-वर्जित किये गये हैं; सेइ-वे; कर्म-कार्य; निरन्तर-सदैव;
ईंहार-उसके; करण-कर्म ।

अनुवाद

शास्त्रों में जिन दो प्रकार के कर्मों का निषेध हुआ है, वे ही उसके नित्य कर्म हैं।

पर-स्वभाव-कर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत् ।

विश्वमेकात्मकं पश्यन्प्रकृत्या पुरुषेण च ॥78॥

पर-स्वभाव-कर्माणि-दूसरों के कार्यों की; न-न; प्रशंसेत्-प्रशंसा; न-न; गर्हयेत्-निन्दा; विश्वम्-संसार को; एक-
आत्मकम्-एक समान; पश्यन्-देखना; प्रकृत्या-स्वभाव से; पुरुषेण-जीवों द्वारा; च-तथा॥

अनुवाद

“मनुष्य को यह देखना चाहिए कि भौतिक प्रकृति तथा जीव के संयोग के फलस्वरूप यह ब्रह्माण्ड
स्वभाव से कार्यशील है। इसलिए अन्यो के स्वभावों या कर्मों की न तो प्रशंसा करनी चाहिए, न आलोचना।”

तात्पर्य

यह श्लोक श्रीमद्भागवत (11.28.1) से लिया गया है, जिसे कृष्ण ने उद्धव से कहा है।

तार मध्ये पूर्व-विधि ‘प्रशंसा’ छाड़िया ।

पर-विधि 'निन्दा' करे 'बलिष्ठ' जानिया ॥79॥

तार मध्ये दोनों में से; पूर्व-विधि-पहला कार्य; प्रशंसा-तारीफ; छाड़िया-छोड़कर; पर-विधि-दूसरा कार्य; निन्दा-निन्दा करना; करे-करता है; बलिष्ठ जानिया-इसे प्रमुख मानकर।

अनुवाद

इन दो नियमों में से रामचन्द्र पुरी प्रशंसा करना छोड़कर पहले नियम का पालन करता है, किन्तु यह जानते हुए भी कि दूसरा नियम अधिक प्रमुख है, वह अन्यो की आलोचना करके उसकी उपेक्षा कर देता है।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत का उपर्युक्त श्लोक दो आदेश देता है। पहला पूर्व-विधि है, जिसमें किसी की प्रशंसा नहीं की जाती और दूसरा पर-विधि है, जिसमें किसी की आलोचना नहीं की जाती। जैसाकि अगले श्लोक से पता चलेगा, प्रशंसा के विरुद्ध जो आदेश है, वह निन्दा के विरुद्ध आदेश से कम महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य को सावधानी से पर-विधि का पालन करना चाहिए और चाहे तो वह पूर्वविधि की उपेक्षा कर सकता है। इस तरह वास्तविक आदेश यह है कि मनुष्य प्रशंसा तो करे, किन्तु आलोचना न करे। यह श्लेषोक्ति कहलाती है- अर्थात् दो अर्थों वाली उक्ति। किन्तु रामचन्द्र पुरी इससे ठीक विपरीत करता था, क्योंकि वह पर-विधि की अवहेलना करके पूर्वविधि का कड़ाई से पालन करता रहा। चूँकि वह आलोचना न करने के नियम से अपने आपको बचाता रहा, इसलिए उसने दोनों ही नियमों को तोड़ा।

पूर्व-परयोर्मध्ये पर-विधिर्बलवान् ॥80॥

पूर्व-परयोः-पिछले और पहले के; मध्ये-बीच; पर-विधिः-दूसरा; बलवान्-अधिक विशेष होता है।

अनुवाद

“पहले के और बाद के नियमों में से बाद का नियम ही अधिक महत्त्वपूर्ण है।”

तात्पर्य

यह श्लोक न्याय ग्रंथों से हैं।

याहाँ गुण शत आछे, ताहा ना करे ग्रहण ।

गुण-मध्ये छले करे दोष-आरोपण ॥81॥

याहाँ-जहाँ; गुण-अच्छे गुण; शत-सैकड़ों; आछे हैं; ताहा-उन्हें; ना करे ग्रहण-स्वीकार नहीं करता; गुण-मध्ये-इन गुणों में; छल-छलपूर्वक; करे-करता है; दोष-आरोपण-दोषारोपण।

अनुवाद

“एक आलोचक सैकड़ों अच्छे गुणों के होने पर भी उन पर विचार नहीं करता। प्रत्युत वह किसी न किसी चाल से उन गुणों में दोष निकाल लेता है।”

इँहार स्वभाव इहाँ करिते ना युयाय ।

तथापि कहिये किछु मर्म-दुःख पाय ॥82॥

इँहार स्वभाव-इसका स्वभाव; इहाँ-यहाँ; करिते ना युयाय-पालन नहीं करना चाहिए; तथापि-फिर भी; कहिये-मैं कहता हूँ; किछु-कुछ; मर्म-दुःख-हृदय में दुःख; पाय-प्राप्त करके।

अनुवाद

“इसलिए किसी को रामचन्द्र पुरी के सिद्धान्तों का अनुगमन नहीं करना चाहिए। तो भी मुझे उसके विरुद्ध कुछ कहना पड़ रहा है, क्योंकि वह हमारे हृदयों को दुःखी कर रहा है।”

“इँहार वचने केने अन्न त्याग कर? ।

पूर्ववत् निमन्त्रण मान’,—सबार बोल धर” ॥83॥

इँहार वचने-उसके शब्दों द्वारा; केने-क्यों; अन्न-भोजन; त्याग कर-आप त्यागते हैं; पूर्व-वत्-पहले की तरह; निमन्त्रण मान’—कृपया निमन्त्रण स्वीकार करें; सबार-सभी के; बोल-वचन; धर-स्वीकार कर।

अनुवाद

“आपने रामचन्द्र पुरी की आलोचना के कारण ठीक से भोजन करना क्यों छोड़ दिया है? कृपया पहले की तरह निमन्त्रण स्वीकार करें। यही हम सबकी प्रार्थना है।”

प्रभु कहे,—“सबे केने पुरीरे कर रोष? ।

‘सहज’ धर्म कहे तेंहो, तार किबा दोष?” ॥84॥

प्रभु कहे-श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; सबे-आप सभी; केने-क्यों; पुरीर-रामचन्द्र पुरी पर; कर रोष-क्रोधित हैं; सहज-स्वाभाविक; धर्म-धर्म के सिद्धान्त; कहे-कहते हैं; तेंहो-वे; तार-उनका; किबा-क्या; दोष-दोष।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, “आप सब लोग रामचन्द्र पुरी से रुष्ट क्यों हैं? वे संन्यास जीवन के स्वाभाविक सिद्धान्तों को बता रहे हैं। आप लोग उन्हें क्यों दोष दे रहे हैं?”

“यति हजा जिह्वा-लाम्पट्य-अत्यन्त अन्याय ।

यतिर धर्म,—प्राण राखिते आहार-मात्र खाय” ॥85 ॥

यति हजा-संन्यासी होकर; जिह्वा-लाम्पट्य-जीभ को सन्तुष्ट करने में लगना; अत्यन्त अन्याय-बड़ा अपराध; तिर धर्म-संन्यासी का कर्तव्य; प्राण राखिते-जीवन की रक्षा के लिए; आहार-भोजन; मात्र केवल; खाय-खाता है।

अनुवाद

“एक संन्यासी के लिए जिह्वा की तुष्टि में लगना महान् अपराध है। संन्यासी का कर्तव्य है कि जितना शरीर और आत्मा को एक साथ रखने के लिए आवश्यक हो, उतना ही खाना चाहिए।”

तबे सबे मेलि’ प्रभुरे बहु यत्न कैला ।

सबार आग्रहे प्रभु अर्धेक राखिला ॥86॥

तबे-फिर; सबे मेलि’-जब सभी भक्त मिलकर; प्रभुरे-श्री चैतन्य महाप्रभु से; बहु यत्न कैला-बहुत प्रार्थना किये; सबार आग्रहे सभी के अत्यन्त आग्रह के कारण; प्रभु- श्री चैतन्य महाप्रभु ने; अर्धेक राखिला-आधा खाया।

अनुवाद

सबने मिलकर अनुनय-विनय की कि श्री चैतन्य महाप्रभु पूरा भोजन किया करें, तो भी महाप्रभु वैसा करने के लिए राजी नहीं हुए। प्रत्युत उन्होंने पहले का आधा ग्रहण करना स्वीकार करके उनके अनुरोध का उत्तर दिया।

दुइ-पण कौड़ि लागे प्रभुर निमन्त्रणे ।

कभु दुइ-जन भोक्ता, कभु तिन-जने ॥87॥

दुइ-पण कौड़ि-दो पण कौड़ी; लागे-खर्च; प्रभुर निमन्त्रणे-श्री चैतन्य महाप्रभु को निमंत्रित करने में; कभु-कभी;
दुइ-जन-दो लोग; भोक्ता-खाने; कभु-कभी; तिन-जने-तीन लोग।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को निमन्त्रण देने के लिए आवश्यक भोजन का मूल्य दो पण कौड़ियाँ (160 कौड़ियाँ) निश्चित की गई और उस भोजन को दो व्यक्ति, तो कभी-कभी तीन व्यक्ति खाया करते।

अभोज्यान्न विप्र यदि करेन निमन्त्रण ।

प्रसाद-मूल्य लइते लागे कौड़ि दुइ-पण ॥88॥

अभोज्य-अन्न विप्र-वह ब्राह्मण जिसके घर पर निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया जा सकता; यदि-यदि; करेन निमन्त्रण-वही निमन्त्रण देता; प्रसाद-मूल्य-प्रसाद का मूल्य; लइते-खर्च करते; लागे-कीमत; कौड़ि दुइ-पण-कौड़ियों के दो पण।

अनुवाद

यदि ऐसा ब्राह्मण निमन्त्रण देता, जिसके घर का निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया जा सकता था, तो उसे प्रसाद खरीदने के लिए दो पण कौड़ियाँ देनी होती थीं।

भोज्यान्न विप्र यदि निमन्त्रण करे ।

किछु 'प्रसाद' आने, किछु पाक करे घरे ॥89॥

भोज्य-अन्न विप्र-ऐसा ब्राह्मण जिसको घर पर निमन्त्रण स्वीकार किया जा सकता है; यदि-यदि; निमन्त्रण करे-निमन्त्रण देता है; किछु-कुछ; प्रसाद-प्रसाद; आने-लाता है; किछु-कुछ; पाक करे-पकाता है; घरे-घर पर।

अनुवाद

जब ऐसा ब्राह्मण निमन्त्रण देता, जिसके घर का निमन्त्रण स्वीकार किया जा सकता था, तो वह ब्राह्मण प्रसाद का कुछ अंश खरीदता और शेष को अपने घर में तैयार करता।

पण्डित-गोसाजि, भगवानाचार्य, सार्वभौम ।

निमन्त्रणेन दिने यदि करे निमन्त्रण ॥90॥

ताँ-सबार इच्छाय प्रभु करेन भोजन ।

ताहाँ प्रभुर स्वातन्त्र्य नाइ, यैछे तार मन ॥ 91॥

पण्डित-गोसाजि-गदाधर पण्डित; भगवान्-आचार्य-भगवान् आचार्य; सार्वभौम सार्वभौम भट्टाचार्य; निमन्त्रणेन दिने-जिस दिन चैतन्य महाप्रभु को अन्य कोई निमन्त्रित करते; यदि यदि; करे निमन्त्रण-वे निमन्त्रित करते; ताँ-सबार-उन सब की; इच्छाय-इच्छा द्वारा; प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु; करेन भोजन-उसका प्रसाद ग्रहण करते; ताहाँ उपस्थिति में प्रभुर-चैतन्य महाप्रभु की; स्वातन्त्र्य नाइ-स्वतन्त्रता नहीं थी; यैछे-जैसे; तार-उनके; मन-मन।

अनुवाद

यदि किसी दिन श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन करने का निमन्त्रण अन्यो के यहाँ से मिला रहता और यदि गदाधर पण्डित, भगवान् आचार्य या सार्वभौम भट्टाचार्य उन्हें निमन्त्रण देते, तो श्री चैतन्य महाप्रभु को। तनिक भी छूट नहीं रहती थी। वे उनकी इच्छानुसार उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लेते।

भक्त-गणे सुख दिते प्रभुर 'अवतार' ।

याहाँ यैछे योग्य, ताहाँ करेन व्यवहार ॥ 92॥

भक्त-गणे-अपने भक्तों को; सुख दिते-आनन्द देने के लिए; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; अवतार-अवतार; याहाँ यैछे योग्य-देश, काल, पात्र के अनुसार जो भी उचित था; ताहाँ करेन व्यवहार-वे उसी अनुसार आचरण करते।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का अवतार वस्तुतः भक्तों को सुख देने के लिए हुआ। इसीलिए समय तथा परिस्थिति के उपयुक्त उन्होंने व्यवहार किया।

कभु लौकिक रीति,—येन 'इतर' जन ।

कभु स्वतन्त्र, करेन 'ऐश्वर्य' प्रकटन ॥93॥

कभु-कभी; लौकिक रीति—सामान्य व्यवहार; येन-जैसे; इतर जन-एक सामान्य व्यक्ति; कभु-कभी; स्वतन्त्र—पूर्णतः स्वतन्त्र; करेन-करते; ऐश्वर्य प्रकटन-दिव्य ऐश्वर्य प्रकट।

अनुवाद

पूर्ण स्वतन्त्र होने के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु कभी सामान्य व्यक्ति की तरह आचरण करते और कभी अपना ईश्वरीय ऐश्वर्य प्रकट करते।

कभु रामचन्द्र-पुरीर हय भृत्य-प्राय ।

कभु तारे नाहि माने, देखे तृण-प्राय ॥94॥

कभु-कभी; रामचन्द्र-पुरीर-रामचन्द्र पुरी के; हय-हो जाते; भृत्य-प्राय-एक सेवक के समान; कभु-कभी; तारे-उसे; नाहि माने-नहीं मानते; देखे-देखते; तृण-प्राय-एक तिनके के समान।

अनुवाद

वे कभी रामचन्द्र पुरी को अपना स्वामी मानते और अपने आपको उसका सेवक, तो कभी वे उसकी परवाह न करके उसे तिनके जैसा तुच्छ मानते।

ईश्वर-चरित्र प्रभुर—बुद्धिर अगोचर ।

यबे येइ करेन, सेइ सब-मनोहर ॥95॥

ईश्वर-चरित्र-परमेश्वर के समान चरित्र; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; बुद्धिर अगोचर-बुद्धि से परे; यबे-जब; येइ-जो भी; करेन-वे करते; सेइ-वह; सब-सब कुछ; मनोहर-अत्यन्त मनमोहक।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् जैसा ही आचरण करते, जो किसी की भी बुद्धि की सीमा के परे होता। उन्होंने जो चाहा सो किया, किन्तु उनके सारे कार्य अतीव सुन्दर होते थे।

एइ-मत रामचन्द्र-पुरी नीलाचले ।

दिन कत रहि गेला तीर्थ' करिबारे ॥96॥

एइ-मत-इस प्रकार; रामचन्द्र-पुरी-रामचन्द्र पुरी; नीलाचले-जगन्नाथ पुरी में; दिन कत-कुछ दिन; रहि-रहकर; गेला-चला गया; तीर्थ करिबारे-तीर्थयात्रा के लिए।

अनुवाद

इस प्रकार रामचन्द्र पुरी कुछ दिनों तक नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) में रहा। फिर वह विभिन्न तीर्थस्थानों की यात्रा करने चला गया।

तेंहो गेले प्रभुर गण हैल हरषित ।

शिरेर पाथर येन पड़िल आचम्बित ॥ 97॥

तेंहो गेले-जब वह गया; प्रभुर गण-श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी; हैल हरषित-अत्यन्त प्रसन्न हुए; शिरेर-सिर से; पाथर-एक पत्थर; येन-मानो; पड़िल-गिर गया; आचम्बित-अचानक।

अनुवाद

भक्तगण रामचन्द्र पुरी को अपने सिर के भारी बोझ के समान मानते थे। अतएव जब वह जगन्नाथ पुरी से चला गया, तो वे अपने आपको अत्यन्त सुखी अनुभव करने लगे, मानो उनके सिर से भारी पत्थर का बोझ भूमि पर गिर गया हो।

स्वच्छन्दे निमन्त्रण, प्रभुर कीर्तन-नर्तन ।

स्वच्छन्दे करेन सबे प्रसाद भोजन ॥98॥

स्वच्छन्दे-स्वच्छन्द; निमन्त्रण-निमन्त्रण; प्रभुर-श्री चैतन्य महाप्रभु का; कीर्तन-नर्तन-नृत्य तथा कीर्तन; स्वच्छन्दे-पूर्ण स्वतन्त्रतापूर्वक; करेन सबे-सभी ने किया; प्रसाद भोजन-प्रसाद ग्रहण।

अनुवाद

उसके चले जाने के बाद सब लोग पुनः सुखी हुए। श्री चैतन्य महाप्रभु सदा की तरह निमन्त्रण स्वीकार करने लगे और सामूहिक कीर्तन तथा नृत्य का नेतृत्व करने लगे। हर कोई बिना रोक-टोक प्रसाद स्वीकार करने लगा।

गुरु उपेक्षा कैले, ऐछे फल हय ।

क्रमे ईश्वर-पर्यन्त अपराधे ठेकय ॥ 99 ॥

गुरु उपेक्षा कैले—यदि किसी का गुरु उसे त्याग दे; ऐछे-ऐसा; फल-परिणाम; हय-होता है; क्रमे-धीरे-धीरे; ईश्वर-पर्यन्त-भगवान् तक; अपराधे ठेकय—अपराध करता है।

अनुवाद

यदि किसी का गुरु उसका तिरस्कार कर देता है, तो वह इतना पतित हो जाता है कि रामचन्द्र पुरी की तरह वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति भी अपराध करता है।

यद्यपि गुरु-बुद्ध्ये प्रभु तार दोष ना लइल ।

तार फल-द्वारा लोके शिक्षा कराइल ॥ 100॥

यद्यपि—यद्यपि; गुरु-बुद्ध्ये—उसे गुरु मानकर; प्रभु-श्री चैतन्य महाप्रभु ने; तार-उसके; दोष-अपराध; ना लइल-नहीं माने; तार-उसके; फल-परिणाम; द्वारा-द्वारा; लोके-सामान्य लोगों को शिक्षा कराइल-उन्होंने सिखाया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामचन्द्र पुरी के अपराधों पर विचार नहीं किया, क्योंकि वे उसे अपना गुरु मानते थे। किन्तु उसके चरित्र ने हर एक को गुरु का अपमान करने के परिणाम के विषय में शिक्षा दी।

चैतन्य-चरित्र—येन अमृतेर पूर ।

शुनिते श्रवणे मने लागये मधुर ॥101॥

चैतन्य-चरित्र-श्री चैतन्य महाप्रभु का चरित्र; येन-मानो; अमृतेर पूर-अमृत से परिपूर्ण; शुनिते-सुनकर; श्रवणे-कानों को; मने-मन को; लागये—अनुभव होती है; मधुर-मधुरता।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का चरित्र अमृत से पूर्ण है। उसके विषय में सुनना कान तथा मन को अच्छा लगता है।

चैतन्य-चरित्र लिखि, शुन एक-मने ।

अनायासे पाबे प्रेम श्री-कृष्ण-चरणे ॥102॥

चैतन्य-चरित्र-श्री चैतन्य महाप्रभु का चरित्र; लिखि-मैं लिखता हूँ; शुन-कृपया सुनो; एक-मने-सावधानीपूर्वक; अनायासे-आसानी से; पाबे-तुम प्राप्त करोगे; प्रेम-प्रेमभाव; श्री-कृष्ण-चरणे-श्रीकृष्ण के चरणकमलों में।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र के विषय में लिख रहा हूँ। हे पाठकों, कृपया ध्यान से इसे सुनो, क्योंकि इससे तुम श्रीकृष्ण के चरणकमलों में परमानन्दमय प्रेम सरलता से प्राप्त कर सकोगे।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।

चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥103॥

श्री-रूप-श्रील रूप गोस्वामी के; रघुनाथ-श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के; पदे-चरणकमलों में; यार-जिनकी; आश-आशा; चैतन्य-चरितामृत-चैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ; कहे-वर्णन करते हैं; कृष्णदास-श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए उनके चरणचिह्नों पर चलकर मैं कृष्णदास श्री चैतन्य चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत अन्त्य लीला के अन्तर्गत रामचन्द्र पुरी द्वारा महाप्रभु की आलोचना शीर्षक आठवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

